

# स्कन्द पुराण

## द्वितीय खण्ड

( सरल मायानुवाद सहित, जनोपयोगी संस्करण )

\*

सम्पादक

वैदमूर्ति, उपनिषद्

पं० श्रीराम शर्मा ज्ञान्याय

वारी बेंद, १०८ उपनिषद, पट्ट वरानंद,

२० स्मृतिर्मा और १८ पुराणों के

प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक

संस्कृति संस्थान

हवाजा कुतुब ( वेद नगर ) बरेली

प्रकाशक :  
डा० चमननाथ गौतम  
संस्कृति संस्थान  
हवाजा कुतुब ( वेद नगर )  
बरेली ( उ० प्र० )

✽

सम्पादक :  
प० श्रीराम शर्मा आचार्य

✽

सर्वाधिकार सुरक्षित

✽

प्रथम संस्करण

१९७०

✽

मुद्रक :

दाऊदयाल गुप्त  
सस्ता साहित्य प्रेस  
मथुरा

✽

पृ० साठ रुपये एकाग्र पंक्ति

# दो शतक

स्कन्द पुराण के इस द्वितीय खण्ड में "काशी-खण्ड" और "अवन्ती-खण्ड" और "रेवा-खण्ड" का समावेश है। ये तीनों खण्डों के तीन प्रधान क्षेत्र हैं। काशी की महिमा और विशेषता तो सर्वत्र विदित है। शैव सिद्धान्त और संस्कृत विद्या का सर्व प्रधान केन्द्र होने के कारण वह समस्त देश में प्रसिद्ध है और भारत वर्ष के चारों फौनों के यात्री प्राचीन काल से वहाँ आते रहे हैं। संभवतः हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक और प्रटक से लेकर कामशा देवी तक के दो हजार लम्बे चौड़े प्रदेश में कोई ऐसा प्रसिद्ध नगर नहीं मिल सकता जो काशी से अधिक प्रवीण और भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। यद्यपि वेदों का आविर्भाव पचनद प्रदेश में हुआ, पर उनका पठन-पाठन अध्ययन-प्रध्यापन, मन्त्र मुख्यतः काशी में ही हावा आया है और भारत भर के विद्यार्थी सदा से वहाँ आते रहे हैं।

काशी में शैव तीर्थों की गणना कर सहना कठिन है। प्रत्येक गली कूचे में शिव के अनेक मंदिर खड़े हैं और दशरथमेरु, मणिकर्णिका, ज्ञान बापी, कपान मोचन, त्रिलोचन आदि अनेक प्रसिद्ध तीर्थ हैं, जिनका वर्णन इस खण्ड में किया गया है। यद्यपि प्राचीन काल की काशी तथा पवन काल में अनेकों बार सूटी और तोड़ो फोड़ी गई काशी की स्थिति में बहुत कम अन्तर है तो भी 'स्कन्द पुराण' के "वाराणसी वर्णन" से वहाँ का एक महत्त्व पूर्ण चित्र नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। जब न पुराने समस्त तीर्थ—स्यस्य रह गये हैं और न वह भावना शेष रह गई है, तो भी काशी की महिमा अभी समस्त हिन्दू जगत में अक्षुण्ण है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

अद्वैतिका—वर्तमान उज्जैन नगरी भी प्राचीन भारत का एक ऐतिहासिक धार्मिक स्थल है। इसको महाराज विक्रमादित्य की राजधानी कहा जाता है, जिनके नाम के सम्बन्ध का हम प्रतिदिन उपयोग करते हैं।

“स्कन्द पुराण” की दृष्टि में इस क्षेत्र का महत्त्व इतना अधिक है कि उसने यहाँ की सिन्धु नदी को संसार की समस्त नदियों में शिरोमणि बतलाया है, जिसके दर्शन मात्र से समस्त पाप दूर होकर मनुष्य ध्येय प्रति पा जाता है। इस तीर्थ के अधिपति “महाकासेश्वर” की भी अत्यन्त महिमा है। इसके सिवाय अन्य स्थानों में जो प्रसिद्ध तीर्थ हैं वे सब भी सूक्ष्म रूप में यहाँ मौजूद हैं। समस्त देश में काशी, प्रयाग, अमरकटक, भरत, केदार, करवीर, एकाग्रक, मद्रक आदि जितने प्रधान शैव क्षेत्र हैं, उन्हीं में महाकालेश्वर के महाकालघन की गणना की जाती है। यहाँ रह कर तप, ध्यासना करने से मनुष्य के सम्स्त पापों का क्षय होकर पुण्य-पथ का मार्ग दर्शन मिलता है। इस महा कालघन में एक महाकालेश्वर शिव ही नहीं हैं। यहाँ कोटीश्वर, त्रिशेश्वर, कपाल मोचन देव, कपिलेश्वर, हनुमत्केश्वर, पिप्पलाद, स्वप्नेश्वर, विश्वशोमुख, सोमेश्वर, वैश्वानरेश्वर, गणपेश्वर, प्राणेश, दण्ड्याणि, पुण्डत्त दुर्बतेश्वर, कालेश्वर, कुटुम्बेश्वर, ब्रह्मण्डेश्वर, अधिपति, यात्रेश्वर, बाल्मीकेश्वर, संगमेश्वर, पिशाचेश्वर, विद्यापर तीर्थ, सोमवती तीर्थ, श्रीभाग्य तीर्थ, चक्रपाणि तीर्थ, सोम तीर्थ आदि नामों से इतने तीर्थ हैं, जिनकी गिनती का सुनना भी कठिन है। इसमें सन्देह नहीं कि अवन्तिका किसी समय मध्य भारत का सबसे बड़े धार्मिक समारोह “कुम्भ मेला” के चार प्रमुख केन्द्रों में से एक उज्जैन ( अवन्तिका ) भी है। ‘स्कन्द पुराण’ में इनका वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है।

रेवा खण्ड में नर्मदा तटधर्ती, तीर्थों का वर्णन है। कई स्थानों पर पुराणकार ने नर्मदा की महिमा सबसे बढकर बतलाई है और शैव मत के अनुयायियों की दृष्टि से यह अस्वाभाविक भी नहीं है। गंगा भी यद्यपि शिवजी की जटायो से बहती हुई मानी गई है, फिर भी वह सर्व प्रथम विष्णु के चरणों को घोंने के लिये प्रकट हुई थी। इन लिये उसमें विष्णु की प्रधानता हो मानी जायगी। पर नर्मदा को शिवजी के पसीने से उत्पन्न कहा गया है। महाशिव गंगा के तुल्य ही माना जाता है और उसके समीप बनी भूभाग में हजारों तीर्थ सब भी स्थित हैं। नर्मदा की

स्तुति करते हुए समस्त मुनियों ने बड़े मक्ति भौतिक से कहा था ।

“हे पुण्य जन के आपय वाली ! हे परम पुने !, आपको हमारा नमस्कार हो । आप विबुद्ध सत्व वाली और मुरों के द्वारा सेवित - हे ! आप भगवान छद्म के अंग से परम दरिद्र हैं, आपको हमारा नमस्कार है । हे धरों के प्रदान करने वाली देवि ! हे शिवे ! आपको प्रणाम है । दोनों लोकों में सीस्य के प्रदान करने वाली देवि ! आपतो बनेकों भूतों के समुदासों को समाग्रम देने वाली और भगम हैं, आपको हमारा नमस्कार है । आप समस्त सरिताओं में थोष्ठ हैं । हे पाप हरे ! हे विचित्रवे ! आप गन्धर्व राजस, उरुगों के द्वारा सेवित अण वाली है । हे मनाचनि ! आप समस्त प्राणियों पर कृपा करने वाली और मौल के प्रदान करने वाली हैं । आप हमारा कल्याण करें ।”

येवा सुष्ठ ये भी नारदेद्वर, म गिरस तीर्थ, एकन्द तीर्थ, काटि तीर्थ, धर्मि तीर्थ, अपदान्य तीर्थ आदि बहुसंख्यक सर्वदा सट धरों स्थानों का माहात्म्य विस्तार पूर्वक दखान है । इसमें सम्येह नहीं कि इस पुराण में तीर्थों का माहात्म्य पौराणिक अर्थवाद को प्रणाली से बड़ी रोचकता पूर्वक और बड़ा बड़ा किया गया है, जिससे सामान्य जनता की मक्ति उनके प्रति सुन्दर बनो रहे । साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि ये स्थान प्राकृतिक तथा परम्परागत दृष्टि से धारम बुद्धि में सहायक हैं, और जो सुद्ध भाव से उनका सेवन करेगा वह अवश्य कल्याण साधन कर सकगा । पर खेद है कि इस समय स्वार्थी जनो ने धन कमाने के उद्देश्य से सरह-सरह के लोभ फैलाकर वहाँ के वातावरण को दूषित कर दिया है, जिससे उनकी प्राचीन महिमा अधिकांश में नष्ट हो गई है । इस स्थिति का सुधार हो और तार्थ फिर से अपनी स्थान और उपस्थानम गरिमा को प्राप्त करें, इन उद्देश्य से हमने 'एकन्द पुराण' में वर्णित हजारों तीर्थों के विस्तार वर्णन में से इस प्रकार चुने हुये तीर्थों का वर्णन दिया है, जिससे पाठकों के हृदय में ऐसी ही विचित्र और परमात्म मुक्त भावनाओं का उदम हो ।

## विषय सूची

४४	नियम विधि माहात्म्य वर्णन	६
४५	द्वादशाक्षर महिमा वर्णन	१४
४६	पचाक्षर मन्त्र माहात्म्य वर्णन	२२

### ॥ काशी खण्ड ॥

४७	तीर्थाध्याय वर्णन	३४
४८	गायत्री महत्त्व वर्णन	४७
४९	मणिकुणिकाख्यान वर्णन	५४
५०	गंगा महिमा वर्णन एव दशहरा स्तोत्र कर्मन	७०
५१	वाराणसी महिमा वर्णन	८५
५२	ज्ञानवापी माहात्म्य वर्णन	९९
५३	योगाख्यान वर्णन	११३
५४	दशाश्वमेध माहात्म्य वर्णन	१३३
५५	त्रिलोचनादिर्भाव वर्णन	१४७
५६	ध्यासमुत्रस्तम्भ वर्णन	१५४

### ॥ अवन्ती खण्ड ॥

५७	महाकालवन प्रसंगा वर्णन	१६७
५८	अग्नि आविर्भार वर्णन	१७३
५९	महाकालवन निरास विधि वर्णन	१७९
६०	विद्याघर तीर्थ माहात्म्य वर्णन	१८५
६१	दशाश्वमेध माहात्म्य वर्णन	१८८
६२	महाकाल यात्रा माहात्म्य वर्णन	१८९
६३	वाल्मीकेश्वर महिमा वर्णन	१९५

६४	गणेश माहात्म्य वर्णन	२०१
६५	सोमवती तीर्थ माहात्म्य वर्णन	२०२
६६	सौभाग्य तीर्थ माहात्म्य वर्णन	२१०
६७	प्रतिकल्पाभिधान वर्णन	२१७
६८	शिवा माहात्म्य एवं ज्वरानुग्रह वर्णन	२२५
६९	विष्णु स्तोत्र और ध्यान वर्णन	२३२
७०	कुट्टुम्बेश्वर माहात्म्य कथन	२४८
७१	अखण्डेश्वर महिमा वर्णन	२५२
७२	हनुमत्केश्वर माहात्म्य वर्णन	२५७
७३	शंकरादित्य माहात्म्य वर्णन	२६१
७४	रामेश्वर तीर्थ माहात्म्य वर्णन	२८२
७५	विष्णु माहात्म्य वर्णन	२९०
७६	गया तीर्थ माहात्म्य वर्णन	३०३
७७	नाग तीर्थ महिमा वर्णन	३०९
७८	अवन्ती माहात्म्य वर्णन	३१४
७९	गणेश्वर माहात्म्य वर्णन	३२९
८०	प्रयागेश्वर माहात्म्य वर्णन	३३६

### ॥ रेवा खण्ड ॥

८१	पुराण संहिता वर्णन	३४५
८२	रेवा माहात्म्य वर्णन	३५०
८३	नर्मदा पञ्चदशनाम वर्णन	३५९
८४	नर्मदा स्तोत्र वर्णन	३६७
८५	कावेरी संगम माहात्म्य वर्णन	३७२
८६	शूलभेद प्रश्नोत्तर वर्णन	३७६
८७	कालरात्रिकृत जगत्संहार वर्णन	३८५
८८	सृष्टि संहारण संरम्भ वर्णन	३८५
८९	ब्रह्मकृत शिवस्तुति वर्णन	४०२

९०	द्वादशादित्य रूपेण जगत्संहरण वर्णन	४०७
९१	नमदा माहात्म्य वर्णन	४१३
९२	वाराहकल्प वृत्तान्त वर्णन	४१६
९३	मेघनाद तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४२४
९४	भीमेश्वर तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४३३
९५	नारदेश्वर तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४३४
९६	दारुस्कन्द मधुस्कन्द तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४४०
९७	सुवर्ण शिला तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४४१
९८	करंज तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४४२
९९	कामद तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४४२
१००	भडारी तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४४६
१०१	स्कन्द तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४४६
१०२	अङ्गिरस तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४५३
१०३	गोट्टि तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४५५
१०४	केदारेश्वर माहात्म्य वर्णन	४५६
१०५	पिशाचेश्वर माहात्म्य वर्णन	४६६
१०६	अग्नि तीर्थ सप्त तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४७६
१०७	श्रीकपाल तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४७९
१०८	जामदग्न्य तीर्थ माहात्म्य वर्णन	४८२
१०९	रेवासण्डपुस्तक दानादि माहात्म्य वर्णन	४९१
११०	सत्यनारायण विप्र सवाद वर्णन	४९८



# स्कन्द पुराण

—(१)—

४४—नियम विधि माहात्म्य वर्णन

पितृणातर्पणं कुर्याच्चिद्धायुक्तेन चैतसा ।

स्नानावसाने नित्यं चसुप्ते देवेमहाफलम् ॥१॥

सङ्गमेषरिक्ता तत्र पितृन्संतप्यं देवताः ।

जपहोमादिकर्माणि कृत्वा फलमनन्तकम् ॥२॥

गोविन्दस्मरणं कृत्वा पश्चात्कार्याः शुभाः क्रियाः ।

एष एव पितृदेवमनुष्यादिषु वृत्तिदः ॥३॥

श्रद्धाधर्मपुत्रानाम् स्मृतिपूतानिकारयेत् ।

कर्माणिसकलानोह पातुमांस्येगुणोत्तरे ॥४॥

सत्स गोद्विजभक्तिरव गुरुदेवाग्निर्तर्पणम् ।

गोप्रदान वेदपाठः सत्क्रियासत्यभाषणम् ॥५॥

गोभक्तिदर्शनभक्तिश्चसदा धर्मस्य साधनम् ।

कृष्णेसुप्तेविशेषेण नियमोऽपिमहाफल ॥६॥

नियमः कादृशो ब्रह्मन् फलच नियमेन किम् ।

नियमेन हरिस्तुष्टो यथा भवतिस्तद्वद ॥७॥

श्री ब्रह्मात्री ने कहा—श्री देवदेवर के शयन करने पर स्नान के पन्थ में परम श्रद्धा से युक्त चित्त के द्वारा अपने पितृगणों का तर्पण नित्य ही करना चाहिए—इसका महान फल हुआ करता है ॥१॥ सरिताओं के समम में वही पर पितृगण और देवों का तर्पण मनी भाँति करके और जब तथा होमादि कर्मों को करके मनुष्य अनन्त फलों की प्राप्ति किया करता है । भगवान श्री गोविन्द का स्मरण करके पीछे अन्य शुभ क्रियाएँ करनी चाहिए । यह ही पितृ-देव और मनुष्य आदि से तृप्ति के

देने वाला है ॥२०१॥ इस गुणोत्तर चातुर्मास्य में यहाँ पर धर्मयुत धृष्टा और समस्त कर्मों को स्मृति से पूर करावे । सरगङ्ग, द्विजो में भक्ति गुह्येव और अग्नि का तर्पण—गोदान, वेदपाठ, सत्किया, सत्य भाषण जो भक्ति, दान भक्ति, सदा ये सब धर्म के साधन हुआ करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के शयन कर जाने पर विशेष रूप से नियम भी महान् फल वाले होते हैं । देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भगवान् । नियम किन प्रकार का होता है ? और उस नियम के द्वारा फल क्या हुआ करता है ? जिस प्रकार से नियम में श्री हरि भगवान् तुष्ट हुआ करते हैं—यह कृपया हम को बतलाइये ॥४०॥

नियमश्चक्षुरादीनाक्रियामुविविधासूच ।

कार्योविधावतापु सातत्प्रयोगान्महासुखम् ॥४॥

एतत्पङ्कवर्गहरणं रिपूनिग्रहण परम् ।

अध्यात्ममूलमेतद्धि परम सौख्यकारणम् ॥५॥

तत्र तिष्ठन्तिनियत क्षमासत्याद्योगुणः ।

विवेकरूपिण सर्वे तद्विष्णो परमंन्दम् ॥६॥

कृत भवति यशीय कृतकृत्यत्वमत्र तत् ।

स्यात्तस्य तत्पूर्वजाना येन ज्ञातिमिदं पदम् ॥७॥

तन्मूहत्तंमपिध्यात्वा पापजन्मशतोद्भवम् ।

भस्ममाद्याति विहितनिरञ्जननिषेवणान् ॥८॥

प्रत्यहमङ्गवदस्य क्षुत्पिषामादिकभ्रमः ।

सयोगीनियमीनित्य हरीसुप्तेष्विशिष्यते ॥९॥

चातुर्मास्ये नरो भक्त्या योगाभ्यासरतो न चेत् ।

तस्य हस्तात्परिभ्रष्टममृतं नात्र सशयः ॥१०॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—क्षुर (उस्तरा) घादि की अनेक क्रियाओं में नियम होता है । जो विद्या वाले पुरुष हैं उनको उरको करना चाहिए । उनके प्रयोग से महान् सुख समुपगत होता है । इस पङ्कवर्ग का हरण रात्रुभो का परम निग्रहण होता है । यही पश्यात्व का मूल होता है और यही परम सौख्य का कारण हुआ करता है । यहाँ पर नियम रूप से शपा

और मत्स्य आदि तमस्तु सद्गुण स्थित रहा करते हैं । ये सब विवेक रूपी हांते हैं और वही श्री भगवान् विष्णु का परम पद है । यज्ञोप बर्णात् यज्ञ कर्म का फल कृत होता है । यहा पर वह ही कृत कृत्यत्व (मफलता) है । उसके पूर्वजों का वह होता है । जिमने इम पद की भलोभांति जान लिया है । उन मुहूर्त मात्र भी ध्यान करके सो जन्मों में किया हुआ भी पाप भस्मसात् हो जाया करता है । भगवान् निरञ्जन के सेवन से यह सब विहित होता है । जिमका प्रतिदिन भूख-प्यास आदि धम संकुचित होता है वह योगी और नित्य ही नियमों का पालक है । भगवान् को मुक्त होने पर विशेष रूप से होता है । चातुर्मास्य में नर भक्ति-भाव से यदि योग के अभ्यास में रत नहीं होता है तो वही समझ लेना चाहिए कि उनके हाथ से प्रमृत् परिभ्रष्ट हो गया है इममे कुछ भी संशय नहीं है ॥८-१४॥

मनोनियमितं येन सर्वेच्छासु सदागतम् ।

तस्य ज्ञाने च मोक्षे च कारणं मन एव हि ॥१५

मनोनियमने यत्नः कार्यः प्रजाव्रतासदा ।

मनसा मुगृहीतेन ज्ञानाप्तिरखिला ध्रुवम् ॥१६

तन्मनः क्षमया ग्राह्यं यथाबह्निश्च वारिणा ।

एकया क्षमया सर्वो नियमः कथितो बुधैः ॥१७

सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेक परं तपः ।

सत्यमेकं परं ज्ञान सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ॥१८

धर्ममूलमहिंसा च मनसातां च चिन्तयन् ।

कर्मणा च तथावाचातत एतांसमाचरेत् ॥१९

परस्त्वहरणं चौर्यं सर्वदा सर्वमानुषैः ।

चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदेवस्त्ववर्जनम् ॥२०

अकृत्यकरणं चैव वर्जनीयं सदाबुधैः ।

अनीहः सर्वकार्येषु यः सदा विप्रवर्तते ॥२१

जिमने सभी प्रकार की इच्छाओं में जाने जाने मन को नियमित कर लिया है उसके ज्ञान में और मोक्ष में एक मात्र कारण मन ही होना

है जिसका नियम-नियन्त्रित कर लेना सर्वोपरि साधन माना गया है। अतएव प्रज्ञावाद् पुरुष को अपने मन के नियमन करने में सदा ही प्रयत्न करना चाहिए। जब यह मन सुग्रहीत हो जाता है तो निश्चय ही पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जाया करती है। उम मन को धर्मा के द्वारा शास्य करना चाहिए जिस प्रकार से अग्नि को शान्ति जन से की जाती है और उम अग्नि पर काबू पाया जाता है। बुध पुरुषों ने एकमात्र धर्मा को ही सर्वश्रेष्ठ नियम कहा है। एक सत्य हो परम धर्म होता है और एक पात्र सत्य का परिधानन करना ही परम सत्य हुवा करना है। सत्य ही सर्वोत्तम ज्ञान है क्योंकि सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित रहा करना है। धर्म का मूल अहिंसा है, मनसे उनका चिन्तन करते हुए कर्मों के और बचन के द्वारा इस अहिंसा का समाचरण करना चाहिए। पराये धन का अपहरण करना और कर्म है इसीलिये सब मनुष्यों को सर्वदा और चातुर्मास्य में विशेष रूप से इसका वर्जन कर देना चाहिए। ब्राह्मण का और श्रेयो के धन का वर्जन कर देवे। जो भी अकृत्य है उनका करना बुधों के द्वारा वर्जन करने के योग्य है। जो पुरुष सर्वदा ईहा से रहित होता है वह सर्वश्रेष्ठ हुमा करता है ॥१५-२१॥

स च योगी महाप्राज्ञः प्रज्ञावधुरह न धीः ।  
 बहद्भारो विपमिदं शरीरे वर्तते नृणाम् ॥२२  
 तस्मात्सर्वदा त्याज्यः सुप्ते देवे विशेषतः ।  
 अनीहयाजितक्रोधो त्रिवलोभो भवेन्नरः ॥२३  
 तस्य पापसहस्राणि देहाद्यान्ति सहस्रधा ॥  
 मोहं मानं पराजित्य क्षमरूपेण शत्रुणा ॥२४  
 विचारेण क्षमोप्राप्त्यः सन्नोपेणतथाहिना ।  
 मात्मयंमृजुभावेन नियच्छेत्समुनोद्वरः ॥२५  
 चातुर्मास्ये दयाधर्मो न धर्मो भूतविद्रुहम् ।  
 सर्वदा सर्वमासेषु भूाशोह विवर्जयेत् ॥२६  
 एतत्पापमहस्राणा मूलं प्राहुर्मनीषिणः ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या भूतदया नृभिः ॥२७

सर्वोपाभेव भूतानां हरिनित्यं हृदि स्थितः ।

स एव हि पराभूतोयो भूतद्रोहकारकः ॥२८

यस्मिन् धर्मो दयानंभ स धर्मोद्गीतो मतः ।

दयाविना न विज्ञानं न धर्माज्ञानमेवच ॥२९

तस्मात्सर्वात्मभावेन दयधर्मः सनातनः ।

सेव्यः स पुरुषैर्नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥३०॥

वह ही योगी महा प्रज्ञा से सुसम्पन्न होता है जिसको प्रज्ञा का वस्तु हृषा करता है और ग्रहस्कार की बुद्धि नहीं होती है । मनुष्यों के शरीर में यह ग्रहस्कार विष के ही तुल्य हुआ करता है । प्रत्येक विशेष रूप से देव के मुक्त हो जाने पर उसे निश्चय रूप से त्याग देना चाहिए । ईहा के अभाव होने से मनुष्य क्रोध की जीतने वाला और लोभ पर विजय प्राप्त करने वाला हो जायगा ॥२२-२३॥ उन व्यक्ति के सहस्रों पाप देह से सहस्रो दुकड़े होकर चले जाया करते हैं । मोह और मान को दाम लगी शत्रु के द्वारा पराजित करके विचार के द्वारा दाम का ग्रहण करना चाहिये तथा सन्तोष के द्वारा भी ग्रहण करे । ऋजुभाव से अर्थात् सरलता से मात्सर्य को वह मुनीश्वर नियन्त्रित करे । चातुर्मास्य में क्षमा ही धर्म होता है । भूतो से विद्रोह करना धर्म नहीं होता है । सर्वदा ही सभी मासों में भूतो के साथ द्रोह करना वर्जित कर देवे । मनीषीगण इसको सहस्रो पापों का मूल कहा करते हैं । इसीलिए समस्त प्रयत्नों से मनुष्यों को भूतो पर दया करना चाहिए । समस्त प्राणियों के हृदय में नित्य ही श्री हरि भगवान् स्थित रहा करते हैं । वह ही पराभूत होता है जो मूर्तों से द्रोह के करने वाला होता है । जिस धर्म में दया नहीं होती है वह धर्म ही दोषयुक्त होता है । दया सर्व प्रधान है । इसके बिना न विज्ञान ही होता है और न धर्म का ही ज्ञान हुआ करता है । इसलिये सर्वात्म भाव से दया ही सनातन धर्म होता है । चातुर्मास्य में विशेष रूप से मनुष्यों को उसी परम पुरुष की सेवा करनी चाहिये ॥२४-३०॥

## ४५—द्वादशाक्षरमहिमावर्णन

एकदा भगवान् रुद्र कैलाश शिखरे स्थितः ।  
 दधार परमा लक्ष्मीमुमया सहितः किल ॥१॥  
 गणाना कोट्यस्तिस्रस्त यदा पयवारयन् ।  
 वीरवाहुर्वीरभद्रो वीरसेनश्च भृङ्गिराट् ॥२॥  
 रुचिस्तुष्टिस्तथानन्दीपुष्पदन्तस्तथोत्कटः ।  
 विकटः कण्टकश्चैव हर केशो विघण्टकः ॥३॥  
 मालाधरः पाशधरः शृङ्गी च नरनस्तथा ।  
 पुण्योत्कटः शालिभद्रो महाभद्रो विभद्रकः ॥४॥  
 कणपः कालपः कालोधनरोरक्तलाचनः ।  
 विकटास्यो भद्रकश्च दीर्घजिह्वो विरोचनः ॥५॥  
 पारदो घनदो ध्वाक्षी हंसको नरकस्तथा ।  
 पञ्चशीर्षं त्रिशीर्षं च क्रोडदष्टो महाद्भुतः ॥६॥  
 सिद्धवक्त्रो वृषहनुः प्रचण्डस्तुण्डिरेव च ।  
 एते चान्ये च बहवस्तदाभवसमीपगाः ॥७॥

महापि गालव ने कहा—एक समय पर भगवान् श्री रुद्रदेव कैलाश पर्वत की शिखर पर समवस्थित थे वीर उन्होंने उमा देवी के सहित विराजमान होते हुए परम लक्ष्मी को धारण किया था । जिन समय में तीन करोड़ गण उनके चारों ओर में स्थित थे जिनमें परम प्रमुख गणों के नाम ये हैं, वीरवाहु, वीरभद्र, वीरसेन, भृङ्गिराट्, रुचि, तुष्टि, नन्दो, पुष्प दन्त, उत्कट, विकट, कण्टक, हर, केश, विघण्टक, मालाधर, पाशधर, शृङ्गी, नरन, पुण्योत्कट, शालिभद्र, महाभद्र, विभद्रक, कणप, कालप, कान, घनप, रक्त लोचन, विकटास्य, भद्रक, दीर्घजिह्व, विरोचन, पारद, धनद, ध्वाक्षी, हंसक, नरक, पञ्चशीर्ष, त्रिशीर्ष, क्रोडदष्ट, महाद्भुत, सिद्धवक्त्र, वृषहनु, प्रचण्ड, तुण्डि ये तथा अन्य भी बहुत से गण उनके समीप में गमन करने वाले थे ॥१-७॥

महादेव जयेशुचर्मद्रकालीसमन्विताः ।

भूतप्रेतपिशाचानां समूहा यस्य वत्सला ॥८॥

अस्तुब्रंस्तं समीपस्था वतन्ते समुपागते ।  
 चनराजिविभातिस्म नवकोरकशोभिता ॥९  
 दक्षिणानीलसंस्पशः कवीनां सुखकृद्भवभौ ।  
 वियोगिहृदयाकर्षो किशुकाः पुष्पशोभितः ॥१०  
 द्वन्द्वादिविक्रियाभावं चिन्तोद्भुञ्चसमन्ततः ।  
 तस्मिन्विगाढेसमये मनस्युन्मादकेतथा ॥११  
 चन्दो दण्डवर. सञ्ज्ञादृष्टान्नक्रे हरोपरः ।  
 अलं चापलदोषेण तपः कुर्वन्तु भो गणाः ॥१२  
 तदा सर्वे वनमपि भूकाण्डजमगृ पुनः ।  
 गणास्तेतप आतन्धुर्दृष्ट्वा कान्ति वसन्तजाम् ॥१३  
 ततः सा विश्वजननी पावती प्राह शङ्करम् ।  
 इयं ते करुणा नित्यमक्षमाला महेश्वरः ॥१४

ये सब भद्रकाली देवी के सहित महादेव प्रभु को बच हो, ऐसा उच्च स्वर से कह रहे थे जिसके परम प्रिय भूत, प्रेत और पिशाचों के समुदाय हो हुआ करते हैं ॥८॥ उनके समीप में स्थित हुए ये सब वनन्त के समुपागत होने पर उन प्रभु का स्तवन कर रहे थे । ममस्त वन की पत्तियाँ नवीन कोरकी (कतिर्यो), से शोभित होकर विभाजित हो रहीं थी । दक्षिण दिशा की ओर से जाने वाला धामु कवियों को सुख देने वाला होरहा था । जो वियोगीजन ने उनके हृदय को समाकर्षित करने वाला था और किशुक पुष्पों की परम शोभा से युक्त हो रहा था ॥९-१०॥ उस मन में उन्माद उत्पन्न करने वाले विगाडु समय में सभी ओर में द्वन्द्वादि की विक्रिया के भाव की क्रीडा करने वाले दूसरे हर दण्ड के धारण करने वाले चन्दो ने देख कर सब को सावधान किया था, हे समस्त गणो ! अपलता के दोष को मत करो । सब तपश्चर्या करो । फिर सभी गण भूकाण्डज वन में चले गये थे और वनन्त के द्वारा उत्पन्न की गई कान्ति को देख कर तपस्या करने में समास्थित हो गये थे । इसके अनन्तर वह समस्त विश्व की जननी पार्वती देवी भगवान् शङ्कर से बोली-

हे महेश्वर । यह आपके करकमल में रहने वाली अज्ञी की माला है  
॥११-१४॥

स्वया कि जप्यतेदेव सन्देहयति मे मनः ।

त्वमेक सर्वभूतानामादिकूरसकलेश्वरः ॥१५

न माता न पिता बन्धुस्तव जातिनंकश्चन ।

अहं तव पर किञ्चिद्वशि नास्तीति किञ्चन ॥१६

धमेण त्व समायुक्तो श्वासोच्छ्वास परायणः ।

जपन्नपि महाभक्त्या दृश्यसेत्वं मयासदा ॥१७

त्वत्तः परतरं किञ्चिदश्व घ्यायसिचेतसा ।

तन्मे कथय देवेश यद्यह दयिता तव ॥१८

इवि पृष्ठस्तदा शम्भुरुवाच हरिसेवकः ।

हरेर्नाममहस्राणा सार ध्यायामि नित्यशः ॥१९

जपामि राम नामाङ्कमवतार तु सत्तनम् ।

चतुर्विंशतिसख्याकान्प्रादुर्भावान्हरेगुणान् ॥२०

एतेषामपि यत्सार प्रणवारूपं महत्फलम् ।

द्वादशाक्षरसयुक्तं ग्रह्यरूप सनातनम् । २१

हे देव ! आपके द्वारा यह किन का जाप किया जाता है, मेरे मन में यह सन्देह होता है ? आप तो स्वयं ही समस्त प्राणियों में एक ही आदि स्वरूप हैं, सभी के ईश्वर हैं । आप का न तो कोई पिता है और न कोई माता हो है, न कोई बन्धु है, न जाति ही है । मैं तो आपसे पर किसी को भी नहीं जानती हूँ कि कोई अन्य भी आप से ऊपर है ॥१५-१६॥ आप धर्म से समायुक्त रहा करते हैं और स्वाम, उच्छ्वास के करने में परायण रहा करते हैं । मेरे द्वारा सदा ही आप महा भक्ति से जाप ही करते हुए दिखलाई दिया करते हैं क्या आप से भी कोई परतर है जिसको कि आप पित्त से ध्यान किया करते हैं ? हे देवेश्वर । यह आप मुझे कृपा कर के अतला दीजिए क्योंकि मैं तो आपको प्राण प्रिया हूँ । इस तरह से पार्वती देवी के द्वारा पूछे गये श्री हरि के सेवक भगवान् श्री शम्भु ने कहा— श्री हरि भगवान् के सहस्रो नामों के सार का मैं नित्य ही ध्यान किया



करता है । मैं श्री रामनामक सर्वश्रेष्ठ अवतार का जाप किया करता हूँ । चौबीस संख्या वाले भवान् श्री हरि के प्रादुर्भाव हुए हैं ऐसे श्री हरि के गुणों का जाप किया करता हूँ । इन सबका सार जो सार है वह प्रणव नाम वाला है जो वह सनातन द्वादश अक्षरों से-संयुक्त ब्रह्म का ही रूप है ॥१७-२१॥

अक्षरत्रयसवन्धं ग्रामत्रयसमन्वितम् ।

सविन्दुं प्रणवं सश्रज्जपामि जपमालया । २२

वेदसारमिदं नित्यं ह्यक्षरं सततोद्यतम् ।

निर्मलं ह्यमृतं शान्तं सद्रूपममृतोपमम् ॥ २३

कलातीतं निर्विशगनिर्व्योपारं महत्परम् ।

विश्वाधारं जन्मध्यं कोटिब्रह्माण्डबीजकम् ॥ २४

जडं शुद्धक्रियं वाग्पि निरञ्जनं नियामकम् ।

यज्ज्ञात्वा मुच्यते क्षिप्रं घोरससारबन्धनात् ॥ २५

अक्षरसहितं यच्च द्वादशाक्षरबीजकम् ।

जपनः पापकोटीनां दावाग्नित्वं प्रजापते ॥ २६

एतदेव परं गुह्यमेतदेव परं महः ।

एतद्धि दुर्लभं लोके लोकत्रयविभूषणम् ॥ २७

प्राप्यते जन्मकोटीभिः शुभाशुभविनाशकम् ।

एतदेव परं ज्ञानं द्वादशाक्षरचिन्तनम् ॥ २८

तीन अक्षरों से सम्बद्ध, तीन ग्रामों से समन्वित, विन्दु से युक्त प्रणव को ही मैं जाप करने की इस माला से निरन्तर जप किया करता हूँ । यह सततोद्यत अक्षर नित्य ही वेद का सार भूत है । यह परम निर्मल, अमृत, शान्त सदरूप वाला, अमृत-के ही समान, कलातीत, निर्विशग, निर्व्योपार, विश्वका आधार, परमहत् जन्मध्य, कोटि ब्रह्माण्ड का बीज, जड, शुद्ध क्रिया वाला, निरञ्जन और नियामक है जिसका ज्ञान प्राप्त करके प्राणी इस परम घोर ससार के बन्धन से बहुत हों शीघ्र मुक्त हो जाता करता है ॥२२-२५॥ इस अक्षर के सहित जो द्वादश अक्षरों वाला बीजक है उसको जाप करने वाले को तो करोड़ों पापों को भस्म करने के लिये

दावाग्नित्व हो जाया करता है अर्थात् दावाग्नि के गमान ही सब पापों का भस्म कर दिया करता है । यह ही सबसे अधिक गोपनीय एवं महान् है और सब से अधिक तेज है । यह इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है तथा तीनो लोको का यह विभूषण है । यह शुभाशुभ का विनाश करने वाला करोड़ जन्मों में प्राप्त किया जाता है । यह ही परम ज्ञान है कि द्वादश अक्षरों का चिन्तन किया जावे ॥२६-२८॥

चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मद चिन्तितप्रदम् ।

एतदक्षरज स्तोत्रं यः समाश्रयते सदा ॥२९

मनसा कर्मणा वाचा तस्य नास्ति पुनर्भवं ।

द्वादशाक्षरसयुक्त चक्रद्वादशभूपितम् ॥३०

मासद्वादशनामानि विष्णोर्वोभक्तितत्परः ।

शालग्रामेपुतान्युक्त्वा न्यसेदघहराणि च ॥३१

दिवसे दिवसे तस्य द्वादशाहफलं भवेत् ।

द्वादशाक्षरमाहात्म्य वर्णितुं नैव शक्यते ॥३२

जिह्वासहस्र रपि च ब्रह्मणापि न वर्धते ।

महामन्त्रोऽह्यय लोके जप्तो ध्यातःस्तुतस्तथा ॥३३

पापहा सर्वमासेषु चातुर्मास्ये विशेषतः ।

इदं रहस्यं वेदानां पुराणामनेकशः ॥३४

स्मृतीनामपि सर्वाणां द्वादशाक्षरचिन्तनम् ।

चिन्तनादेव मर्त्यानां सिद्धिर्भवति हीप्सिता ॥३५

चातुर्मास्य में विशेष रूप से यह ब्रह्मज्ञान के प्रदान करने वाला और मन के सभी चिन्तित अभीष्टों के प्रदान करने वाला हुआ करता है । इन अक्षरों से समुत्पन्न स्तोत्र का जो सदा समाश्रय किया करता है और मन, वाणी तथा कर्म के द्वारा इन का ध्यान रखता है उसका फिर इस सत्तार में पुनर्जन्म नहीं होता है । द्वादश अक्षरों से समुक्त और द्वादश चक्रों से यह भूषित है । जो भगवद्भक्ति में परायण मनुष्य शिष्य के प्राप्त में इन द्वादश नामों को बहकर शालग्राम की सेवा में अर्घों के हरण करने वालों को समर्पित कर देता है उसको दिवस-दिवस में द्वादश दिन का फल हुआ

करता है। द्वादश अक्षरों का माहात्म्य ऐसा अद्भुत है कि यह वर्णन नहीं किया जा सकता है। जिस शेष के एक सहस्र जिह्वाएँ हैं उनके द्वारा यह भी नहीं वर्णन कर सकता है और चार मुखों वाले ब्रह्मा के द्वारा भी नहीं वर्णन किया जा सकता है। यह लोक में महात्म्य है। इस का किया हुआ जाप, ध्यान, स्तवन सभी मासों में पापों का हनन करने वाला होता है। चातुर्मास्य में इसका विशेष फल हुआ करता है यह वेदों का और अनेक पुराणों का तथा समस्त स्मृतियों का द्वादशाक्षर का चिन्तन करना परम रहस्य होता है। इसके केवल चिन्तन करने ही से मनुष्यों को ईप्सित सिद्धि हो जाता करता है ॥२६-२५॥

पुण्यदानेन जाप्येन मुक्तिर्भवति शाश्वती ।

वर्णस्तथाश्रमैरेव प्रणवेन समन्वितैः ॥३६

जपैर्ध्यानैः श्रमपरमोक्षयास्यतिनिश्चितम् ।

श्रद्धाणाञ्चापि नारीणां प्रणवेन विवर्जितः ॥३७

प्रकृतीनां च सर्वासां न मनो द्वादशाक्षरः ।

न जपो न तपः कार्यं कायकलेशाद्विशुद्धिता ॥३८

विप्रभवत्या च दानेन विष्णुध्यायेन सिद्धति ।

तासां मन्त्रो रामनाम ध्येयः कोट्यधिको भवेत् ॥३९

रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापामनोदकः ।

गच्छतिष्ठच्छ्राद्धो वा मनुजोरामकीर्तनात् ॥४०

इहनिवृत्तिमायाति प्राग्ते हरिगणो भवेत् ।

रामेतिद्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः ॥४१

सर्वासां प्रकृतीनाञ्च कथितः पापनाशकः ।

चातुर्मास्येऽयं सम्प्राप्ते सोप्यनन्तफलप्रदः ॥४२

चातुर्मास्ये महापुण्ये जप्यते भक्तिवत्परैः ।

देववन्निष्फलं तेषां यमलोकस्य सेवनम् ॥४३

पुण्य दानों से—जाप से दासवती मुक्ति हुआ करता है। सब वर्णों के द्वारा तथा समस्त आश्रमों के द्वारा प्रणव से युक्त जप, ध्यान से शम परमेश्वर लोग निश्चित मोक्ष को प्राप्त हो जाया करेंगे। प्रणव से रहित

इस मन्त्र का जाप शूद्र वर्ण वाले एवं मारीगण भी करके मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं। सब प्रकृतियों का यह द्वादशाक्षर मन्त्र नहीं है। सबको इसका जप या तप नहीं करना चाहिए। काय श्लेश से विगुड़िता प्राप्त करके विप्रो शी भक्ति, दान और भगवान् श्री विष्णु के ध्यान से ही इसकी सिद्धि होती है। उन का तो केशव धीराम का नाम ही महा मन्त्र है। इसका ही ध्यान शेष सबको करना चाहिए। यह करोडो गुना अधिक हुआ करता है ॥३६-३६॥ "राम"—इन दो मन्त्रों का जाप समस्त पापों का अपनोदन करने वाला होता है। गमन करते हुए, स्थित रहते हुए, पापन करते हुए मनुष्य श्री राम नाम के शीर्षन से इस संसार में निवृत्त को प्राप्त हो आया करता है और अन्त में श्री हरि का पर्यट हो जाना है। 'राम'—यह दो मन्त्रों वाला मन्त्र सैकड़ों करोड़ मन्त्रों से भी अधिक होता है। यह सभी प्रकृतियों वाले प्राणियों के लिये पापों का नाश करने वाला कहा गया है। यह भी चातुर्मास्य के प्राप्त होने पर अनन्त फलों का प्रदान करने वाला होता है ॥४०-४३॥

न रामार्धाधिक ऋषिचत्पठन जगती तले ।

रामनामाश्रया ये वै न तेषा यमयातना ॥४४

ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्चये ।

रामान्नैव विलय यान्तिनाथ विचारणा ॥४५

रमते सर्वभूतेषु स्याद्वरेषु चरेषु च ।

अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥४६

रामेति मन्त्रराजोऽय भयव्याधिविदूषकः ।

रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यायसाधकः ॥४७

सर्वतीर्थफलप्रोक्तो विप्राणामपि कामदः ।

रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः । ४८

द्वघदारो मन्त्रराजोऽय सर्वकार्यकरो भुवि ।

देवाऽपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम् ॥४९

चातुर्मास्य के महान् पुण्यो वाले समय में भक्ति में परागण मनुष्यों के द्वारा इसका जाप किया जाता है। उनको देवों के ही समान यमलोक

का सेवन निष्कण्ड हुआ करता है । इस जगतोत्तल में श्रीराम के शुभ नाम से भगिक ग्रन्थ कुछ भी पठन करने का नहीं है । जो केवल श्री राम के परम शुभ नाम का ही समाश्रय लेलिया करते हैं उनको यम की याचना नहीं होती है । जो भी शोप हैं या विघ्नों के करने वाले हैं, मृतक तथा विग्रह हैं वे सभी श्री राम के नाम ही से बिलय को प्राप्त हो आया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है । यह श्रीराम समस्त प्राणियों में चाहे स्पावर हो या जन्म हो, अन्तर्गत्मा के स्वरूप से रमण किया करते हैं जो भी 'श्री राम' यह कहा आया करता है । "श्री राम" यह भगवन्नाम ही मङ्गा मन्त्र राज है जो समस्त भयो और व्याधियों का विनाशक होता है । यही मन्त्रराज रण स्थल में भी विजय के प्रदान करने वाला होता है और समस्त कार्यों का नाशन करने वाला है । यह समस्त तीर्थों का फल प्रदान करने वाला कहा गया है । यह विघ्नों को भी कामनाओं का प्रदाता होता है जिन समय 'श्री राम चन्द्र', श्रीराम, 'श्रीराम', इस प्रकार से नाम का मुख से उच्चारण किया जाता है सब मनोरथ पूरा हो जाया करते हैं । यह केवल दो ही अक्षरों वाला मन्त्रराज है जो कि इस भूमण्डल में सभी कार्यों की निद्रि कर देने वाला होता है । बस गुणों की क्षान 'श्रीराम'—इस नाम का देवगण भी गायन किया करते हैं—इतना महामहिमा से युक्त यह नाम है ॥४४-४९॥

तस्मात्त्वमपि देवेशिरामनाम सदा वद ।

राम नाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्वं किल्बिषः ॥१००

सहस्रनामजं पुण्यं रामनाम्नैव जायते ।

चातुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्यं दशधोत्तर ॥५१

हीनजातिप्रजातानां भद्द्दह्यति पातकम् ॥५२

रामोऽह्ययत्रिंशदिदमग्रम्बतेजसाव्याप्यजनान्तरात्मना ।

पुनातिजन्मान्तरपातकानिस्थूलानिसूक्ष्माणिक्षणाच्चदग्ध्वा ॥

इसलिये हे देवेशि ! आप भी तथा श्रीराम के परम शुभ नाम का उच्चारण किया करो । जो भी कोई श्रीराम के शुभ नाम का जाप किया करता है वह समस्त किल्बिषों से मुक्त हो आया करता है ॥११०॥

एक महत्त अन्य भगवन्नामों के लेने से जो पुण्य-फल होता है वह इस एक ही 'राम'—इस नाम के मुख से उच्चारण करने पर हो जाया करता है । शानुर्मास्य में विशेष रूप से इसका दश गुना अधिक पुण्य होता है । जो हीन जातियों में जन्म ग्रहण करने वाले मनुष्य हैं उनके महान् पातकों को यह शब्द कर दिया करता है ॥५१-५२॥ यह श्री राम का परम पवित्र गुण नाम इस समय विश्व को अपने तेज से व्याप्त करके जनो के अन्तरात्मा के द्वारा अन्य जन्मों के भी स्पून एव सूक्ष्म समस्त पातकों को एक ही क्षण में दाय कर के सबको पवित्र कर दिया करता है ॥५१॥

### ४६—पञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णन

- ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञान चक्षुषे ।  
 नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥१॥  
 आख्यात भवता सूत विष्णोर्माहात्म्यश्रुतमम् ।  
 समस्ताग्रहरं पुण्यं समासेन श्रुतञ्चन ॥२॥  
 इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं त्रिनुरद्विषः ।  
 तद्भक्तानाञ्च माहात्म्यमशेषाग्रहरम्परम् ॥३॥  
 तन्मन्त्राणाञ्च माहात्म्यं तथैव द्विजसत्तम ॥  
 तत्कथायाश्चतद्भक्तेः प्रभावमनुवर्णनम् ॥४॥  
 एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयं सनातनम् ।  
 यदीश्वरकथाया वै जाता भक्तिरहेतुको ॥५॥  
 अतस्तद्भक्तिलेशस्य माहात्म्यं वर्ण्यते मया ।  
 अपि कल्पायुषा नाऽऽनं यस्तुं विस्तरतः क्वचित् ॥६॥  
 सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि ।  
 सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥७॥

मङ्गवाचरण—ज्योति ही जिनका स्वरूप है तथा निर्मल ज्ञान के क्षेत्र बाने, परम शान्त स्वरूप से युक्त, विष्णु की मूर्ति वाले ब्रह्म श्री शिव भगवान् की सेवा में नमस्कार समर्पित है ॥१॥ ऋषियो ने कहा—हे श्री

सूतजी ! आपने भगवान् श्री विष्णु का परमोत्तम माहात्म्य का वर्णन किया जो समस्त पापों का हरण करने वाला है । हम सब ने सत्रों में उसका श्रवण किया है ॥२॥ अब हम सब त्रिपुरामुर के हन्ता श्री शिव का माहात्म्य सुनना चाहते हैं । उनके भक्तों का माहात्म्य विशेष अर्थों का हरण करने वाला है । हे द्विज श्रेष्ठ ! उनके मन्त्रों का माहात्म्य, उनकी कथा और भक्ति प्रभाव का घट्टु वर्णन कीजिए । श्री सूतजी ने कहा— मनुष्यों का इतना यही परम सनातन श्रेय होता है कि उनकी ईश्वर की कथा में बिना हेतु वाली भक्ति उत्पन्न हो जाये । इसीलिये उनकी भक्ति के लेश का माहात्म्य मेरे द्वारा वर्णन किया जाता है । इसका पूर्ण विस्तार से वर्णन तो एक कल्प की आयु में भी कभी कहा नहीं जा सकता है । समस्त प्रकार के पुण्यों और सभी तरह के श्रेयों एवं सम्पूर्ण यज्ञों में यह नाम का यज्ञ ही परम प्रमुख बताया गया है ॥३-७॥

तत्रादौ जपयज्ञस्य फलं स्वस्त्ययन महत् ।

शैव षडक्षरं दिव्यं मन्त्राहुर्महर्षयः ॥८

देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः ।

मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथाशैवः षडक्षरः ॥९

एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तृणां मुक्तिदायकः ।

ससेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषं सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥१०

अस्यैवाक्षरमाहात्म्यं नालम्बन्तुं चतुर्मुखः ।

श्रुतयो यत्र सिद्धान्तं गताः परम निर्वृताः ॥११

सर्वज्ञः पारपूर्णश्च सच्चिदानन्दलक्षणः ।

स शिवो यत्र रमते शैवे पञ्चाक्षरे शुभे ॥१२

एतेन मन्त्रराजेन सर्वोपनिपदात्मना ।

लेभिरे मुनयः सर्वे परब्रह्म निरामयम् ॥१३

नमस्कारेण जीवत्वं शिवेऽत्र परमात्मनि ।

ऐक्यङ्गतमतोमन्त्रः परब्रह्ममयो ह्यसौ ॥१४

उत्तम जप यज्ञ का फल महात् स्वस्त्ययन अर्थात् कल्याणकारी होता है । महर्षि गण शैव षडक्षर वाले शैव मन्त्र को ही परम दिव्य कहते हैं ।

समस्त देवो मे परम देव भगवान् त्रिपुरांतक हे उभो भक्ति यह पडक्षर  
 दौब मन्त्र सभो मन्त्रो मे प्रयान मन्त्र है । यह पाँच अक्षरों वाला मन्त्र  
 ऐसा है कि जो इसका जप करने वाले पुज्य हैं उनको यह मुक्ति के देने  
 वाला होता है । इसी लिये सिद्धि की आकांक्षा करने वाले समस्त श्रेष्ठ  
 मुनियों के द्वारा इसका ससेवन किया गया करता है ॥८-१०॥ इसी मन्त्र  
 के अक्षर का माहात्म्य धनुर्मुस ब्रह्मा के द्वारा भी नहीं कहा जा सकता  
 है । जिसमे सिद्धान्त को प्राप्त हुई श्रुतियाँ परम निवृत्त हो गई हैं । सबको  
 जानने वाले, परिपूर्ण और धीर सन्, धिक् एवं भ्रान्त के लक्षण वाले  
 यह शिव स्वयं जिस पाँच अक्षरों से मुक्त शुभ शौच मन्त्र मे रमण किया  
 करते हैं । इस समस्त उपनिषद् के स्वरूप वाले मन्त्र राज के द्वारा  
 सभी मुनियों ने निरामय परम ब्रह्म को प्राप्त किया था । इस परमात्मा  
 शिव मे नमस्कार से जीवत्य ऐश्वर्य को प्राप्त हुआ था अतएव यह मन्त्र  
 परब्रह्म मय है ॥११-१४॥

भयपाशनिबद्धाना देहिनां हितकाम्यया ।

आहो नम शिवायेति मन्त्रमाद्य शिवः स्वयम् ॥१५

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोध्वरैः ।

यस्यो नमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ॥१६

तावभ्रमन्ति सस्मरे दारुणे दुःखसकुले ।

यावन्तोच्चारयन्तीम मन्त्रं देहभृतः सकृत् ॥१७

मन्त्राधिराजराजोऽय सर्ववेदान्तशेखरः ।

सर्वज्ञाननिधानश्च सोऽयश्चैव पडक्षर ॥१८

कंवत्यमार्गदीपोऽयमविद्या सिन्धुवाहवः ।

महापातकदावाग्निः सोऽय मन्त्रः पडक्षरः ॥१९

तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्र सोऽय पञ्चाक्षरः स्मृतः ।

स्त्रीभिः शूद्रैश्च सङ्घोर्णैर्धर्मिणे मुक्तिकाण्डक्षिभिः ॥२०

नास्यदीक्षान होमश्च न सस्कारो न तर्पणम् ।

नकालोपदेशश्च सदाशुचिरय मनु ॥२१



भव के पाग में निवृद्ध देह धारियों के हिंसे की कामना से भगवान् शिव ने स्वयं आद्य मन्त्र "ॐ नमः शिवाय" यह मन्त्र कहा था । जिन पुरुषों को "ॐ नमः शिवाय" यह मन्त्र हृदय गोचर होता है उस को धन्य ब्रह्म से मन्त्रों से, तीर्थों से, तपश्चर्याओं से और ऋषियों से क्या प्रयोजन है ? अर्थात् फिर किसी मन्त्रादि की आवश्यकता ही नहीं है । ये देहधारी तमों तक इस दाहल और अनेक दुर्षों से संकुल संसार में अमण किया करते हैं जब तक एक बार भी इस महामन्त्र का मुख से उच्चारण नहीं किया करते हैं । यह पठकार मन्त्र अन्य मन्त्रों के अधि राजों का भी राजा है । समस्त वेदान्तों का शिरोमणि है । सम्पूर्णज्ञान का विधान है । यह मन्त्र कैवल्य (मोक्ष) के मार्ग का प्रदीप है और अविद्या सिन्धु का बाढव है । यह मन्त्रराज महान् पाउको को दण्ड करने के लिये दावान्नि के समान है । ऐसा ही महामहिमामय यह छै अक्षरों वाला मन्त्र है । इसी लिये सभी कुछ के प्रदान करने वाला यह पञ्चाक्षर मन्त्र कहा गया है । जो भी मुक्ति की इच्छा रखने वाले स्त्रीगण धूर्त और संकीर्ण जाति वाले प्राणी हैं उन सभी के द्वारा यह धारण किया जाता है । न तो इस मन्त्रराज की कोई दीक्षा होती है—न होम होता है—न कोई सस्कार ही होता है और न तर्पण हुआ करता है । इस मन्त्र का कोई विशेष काल भी नहीं होता है और न कोई उपदेश ही होता है । यह मन्त्र तो सदा ही धुचि रहा करता है ॥१५-२१॥

महापातकविच्छिन्ने शिवइत्वक्षरद्वयम् ।

अलं नमस्क्रियापुक्तो मुक्तये पश्चिरूपते ॥२२

उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने ।

सद्योयथेप्सिता सिद्धिं ददातीति किमदमुतम् ॥२३

अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽयं मन्त्रनायकः ।

पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यः सदा सिद्धिं प्रयच्छति ॥२४

गुरवो निर्मलाः शान्ता साधवो मितभाषिणः ।

कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः ॥२५

एतै कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं प्रसिद्धयति ।  
 क्षेत्राणि जपयोग्यानि समासात्कथयाम्यहम् ॥२६  
 प्रयागं पुष्करं रम्य केदारं सेनुबन्धनम् ।  
 गोकर्णं नैमिपारप्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम् ॥२७  
 लशानुवर्ष्यंते सद्भिरितिहासः पुरातनः ।  
 असकृद्वा सकृदापि श्रृण्वता मङ्गलप्रदा ॥२४

महान् पातकों के विच्छेद करने के लिये "शिव" ये दो प्रश्न ही पर्याप्त होते हैं । और ये ही शिव दो प्रश्न यदि नमस्क्रिया से युक्त हों पर्याप्त 'नमः शिवाय' इस रूप में हो तो फिर यह मुक्ति के लिये परिकल्पित हो जाता है । यदि यह कितो मद्गुरु के द्वारा उपदिष्ट हो जावे और फिर किमी पावन क्षेत्र में इन का जाप किया जावे तो यही मन्त्र तुरन्त ही इच्छित सिद्धियों के प्रदान कर दिया करता है—इसमें कुछ भी शङ्का नहीं है । शीलिये किमी मद्गुरु के मनभय प्राप्त करके इन मन्त्रों में शिरोमणि मन्त्र का ग्रहण करना चाहिए । पुण्य क्षेत्र में हो इसका जाप करना चाहिए जिससे यह मन्त्र तुरन्त ही सिद्धि को प्रदान किया करता है । श्री गुरु वृन्द निर्मल—परमशान्त—माधुशक्ति वाले निजमापण करने वाले—काम, क्रोध से विशेष रूप से निरुक्त-सदाचरण से सम्बन्ध-इन्द्रियों को जीतने वाले हों । ऐसे गुरुगणों के द्वारा कल्याण के भाव से उपदेश किया हुआ मन्त्र शीघ्र ही सिद्धि देने वाला होता है । अब हम मन्त्रों के जाप करने के योग्य क्षेत्रों का वर्णन संक्षेप से करते हैं ॥२२-२६॥ प्रयाग-रम्यपुष्कर-केदार-सेनुबन्ध-गोकर्ण-नैमिपारप्य ये क्षेत्र मनुष्यों को तुरन्त ही सिद्धि करने वाले होते हैं ॥२७॥ यहीं पर एक परम पुरातन इतिहास मत्स्यपुराण के द्वारा बर्णित किया जाता है । इसको अनेक बार या एकबार ही ध्वज करने वालों को यह मङ्गल प्रदान करने वाला होता है ॥२८॥

मयुराया यदुथेंडो दासाहं इति विश्रुतः ।

बभूव राजा मतिमान्महोत्साहो महाबलः ॥२९

शास्त्रज्ञो नयवाच्छूरोर्ध्ववानमितिद्युतिः ।  
 अप्रपृष्टःसुगम्भीरः संग्रामेष्वनिर्वर्तितः ॥३०  
 महारथो महेष्वासो नानाशास्त्रार्थकोविदः ।  
 वदान्यो रूपसम्पन्नो युवा लक्षण संयुतः ॥३१  
 स काशिराजतनयामुपयेमे वराननाम् ।  
 कान्ता कलावतीना रूपशीलगुणान्विताम् ॥३२  
 कृतोद्वाहः स राजेन्द्र सप्राप्य निजमन्दिरम् ।  
 रात्रौ तां क्षयनारूढा सङ्गमाय समाह्वयत् ॥३३  
 सा स्व भर्त्रा समाहूता बहुशः प्रार्थिता सती ।  
 नववन्ध मनस्तस्मिन्नचागच्छतदन्तिकम् ॥३४  
 सङ्गमाय यदा हूता नागता निजवत्सला ।  
 वलादाहर्तुं कामस्तामुदतिष्ठन्महीपतिः ॥३५

मयुरा में यदुभो मे श्रेष्ठ दाशाहं विप्रुत था । यह महान् बल और उत्साह वाला बहुत ही मतिमान् राजा हुआ था । यह राजा शास्त्रों का ज्ञान, नीति जानने वाला अति शूरवीर अमितयुक्ति से सम्पन्न-धर्म वाला प्रवर्धण न करने के योग्य, परम गम्भीर और सप्राप्तो ने लीटकर न घाने वाला था । यह महारथो—महान् धनुष-धारी और नाना शास्त्रों के प्रयो का कोविद था । यह भूपति परम दानशील-रूप सावध्य से युक्त युवा और सभी सुलक्षणां से सम्पन्न था । उस राजा ने श्रेष्ठ सुन्दर मुख वाली काशिराज की पुत्री के साथ विवाह किया था । यह अत्यन्त कान्त और रूप तथा शील एवं गुणों से अन्विता थी और इसका नाम कलावती था । विवाह करके वह राजेन्द्र अपने मन्दिर में प्राप्त हो गया था । रात्रि में क्षयन मे समाहूत हुई उसको राजा ने सङ्गम करने के लिये अपने समीप बुलाया था । वह अपने स्वामी के द्वारा बुलाई भी यपी और बहुत बार उस से प्रार्थना भी की गयी थी किन्तु उमने उस सङ्गम करने के लिये अपने मन की इच्छा नहीं की थी और वह उस राजा के समीप मे भी नहीं गयी थी । जब सगम करने के लिये समाहूत होने पर भी अपनी वत्सला को न समागत देखा तो उसकी वनपूर्वक अपने

समीप मे लाने की इच्छा वाला यह राजा स्वयं ही उठकर लडा हो गया था ॥२६-३५॥

मा मा स्पृश महाराज ! कारणज्ञा व्रतेऽस्थिताम् ।  
 धर्माधर्मौ विजानासि मा कार्पाः साहस मयिः ॥३६  
 क्वचित्प्रियेण भुङ्क्तं यद्रोचते तु मनीषिणाम् ।  
 दम्पत्योः प्रीतियोगेन सङ्गमः प्रीतिवर्द्धनः ॥३७  
 प्रिय यदा मे जायेत तदा सङ्गस्तु तै मयि ।  
 का प्रीतिः किं सुख पुंसा वलाद्भोगेन योपिताम् ॥३८  
 अप्रीता रोगिणी नारीमन्तर्वेत्नी घृतघ्नताम् ।  
 रजस्वलाभवामाञ्च न पामेत वलात्पुमान् ॥३९  
 प्रीणन लालन पोष रञ्जन मार्दव दयाम् ।  
 कृत्वा वधूमुपनमेद्युवतीप्रं भवान्पतिः ।  
 युवती कुसुमे चैव विधेय सुखमिच्छता ॥४०  
 इत्युक्तोऽपितयासाध्व्यासराजाऽमरविट्कलः ।  
 वलादाकृष्यता हस्तेपरिरेभेरिरंसया ॥४१

राज्ञी ने कहा— हे महाराज ! आप मेरा स्पर्श न कीजिए क्योंकि मैं कारण को जानने वाली हूँ और व्रत में इस समय मे समास्थित हूँ । आप तो स्वयं ही विद्वान् हैं और धर्म तथा अधर्म को भली भाँति जानते हैं । मेरे विषय में इस समय आप साहस न करिये ॥३६॥ मनीषियों को जो अन्धता सगता है वही पर प्रिय के द्वारा भोग किया गया है । दम्पति का प्रीति के योग से जो सङ्गम होता है वही प्रीति का वर्धन करने वाला हुआ करला है । जिस समय मे मुझे प्रिय लगेगा उसी समय मे मुझसे प्रापका सगम होगा । बलपूर्वक स्त्रियों के उपभोग करने से पुत्र्यो को क्या तो सुख प्राप्त होगा और दोनों मे प्रीति ही होगी ॥३७-३८॥ पुत्र्य को चाहिए कि जो प्रीति रहित हो, रोगिणी हो, गर्भवती हो व्रत धारण करने वाली हो, रजस्वला हो और काम की वासना से रहित हो ऐसी सती को बलपूर्वक सगम करने की इच्छा न करे ॥३९॥ प्रेम वाले पति को चाहिए कि भार्या का भली-भाँति

प्रीणन, लालन, पोषण, रञ्जन, मार्दव और दया की भावना करके ही युवती वधू के साथ उपगम करे । मुख की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि युवती में और कुसुम में ऐसा ही व्यवहार करे । इस प्रकार से उस साध्वी के द्वारा बहुत कुछ कहे जाने पर भी काम से विह्वल उस राजा ने रमण करने की इच्छा से बलपूर्वक उसको अपने समीप में हाथों से खींचकर परिस्पर्ण किया था । जैसे ही उस का स्पर्श ही केवल उसने किया था कि देखा कि वह सहसातप हुए लोहे के पिण्ड के समान थी और अपने आपको मानों जल-सी रही थी । राजा ने भय से विह्वल हो कर तुरन्त ही उसका त्याग कर दिया था ॥४०-४१॥

तांस्पृष्टमात्रांसहसातप्तायः पिण्ड सन्निभाम् ।

निर्देहन्तीमिवात्मानं तत्याज भयविह्वलः ॥४२

अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं तव प्रिये ।

कथमग्निसमं जातं वपुः पल्लवकोमलम् ॥४३

इत्थं सुविस्मृतो राजा भीतः सा राजवल्लभा ।

प्रत्युवाच विहस्येनं विनयेन शुचिस्मृता ॥४४

राजन्ममपुरा बाल्ये दुर्वासा मुनिमुञ्जवः ।

शैवी पञ्चाक्षरीं विद्यां कारुण्येनोपदिष्टवान् ॥४५

तेन मन्त्रानुभावेन ममांगं कलुषोज्ज्वलम् ।

स्प्रष्टुं न शक्यतेपुग्भिः सपापैदवर्जितैः ॥४६

त्वया राजन्प्रकृतिनाकुलटागणिकादयः ।

मदिरास्वादनिरता निपेव्यन्ते सदास्त्रिया ॥४७

न स्नान क्रियते नित्यं न मन्त्रो जप्यते शुचिः ।

नाराध्यते त्वयेशानः कथं मांस्प्रष्टुमर्हसि ॥४८

तां समाख्याहि सुश्रोणि ! शैवी पञ्चाक्षरी शुभाम् ।

विद्याविध्वस्तपापोऽहं त्वयीच्छामि रतिं प्रिये ॥४९

राजा ने कहा—हे प्रिये ! मैंने आज सुमहान् आपका यह आश्चर्य देखा है । आपका यह पल्लव के समान परम कोमल शरीर ऐसा अग्नि के समान नैसे इस समय हो गया है ? इस तरह से वह राजा बहुत ही

विरहित हो गया था और नमस्कीर्त हो गया था । वह राज बल्लभा हूँत कर शुचि स्मित वाली विनय के साथ इससे प्रति उत्तर देने लगी ॥४३-४४॥ राजी ने कहा—हे राजन् ! पहिले मेरे वचन मे ही मुनिपों मे धंष्टदुर्वासाजी ने करुणा करके पञ्चाक्षरी संवी विद्या का मुझे उपदेश दिया था । उस मन्त्र के ही अनुभाव से यह मेरा अग कलुषो से परिरक्षित हो गया है । हम मेरे अग को पाषो से युक्त पुरपो के द्वारा जो कि मध बजिन है स्पर्श नहीं किया जा सकता है । हे राजन् ! आपने प्रकृति से ही कुलटा और गणिका भादि का उपभोग लिया है और सदा ही मदिरा के समास्वादन मे प्राप निरत रहे है । न तो आप निरय स्नान ही करते हैं और न कभी पवित्र होकर आप के द्वारा मन्त्र का जाप ही किया जाता है । आप कभी ईशान प्रभु का समारोपन भी नहीं किया करते हैं तो प्राप ऐसे समाधरण वाले होकर मुझे स्पर्श करने के योग्य कैसे हो सकते है ? राजा ने कहा—हे सुश्रोणि ! आप मन्त्र मुझे वद परम शुभ शीवी पञ्चाक्षरी विद्या मनलाक्ष्मे । हे प्रिये ! विद्या के द्वारा विध्वस्त पाषो वाला होकर मैं आप के साथ रमण करने की इच्छा करता हूँ ॥४५-४६॥

नाहं तवोपदेशं यं कुर्या मम गुरुर्भवान् ।

उपातिष्ठ गुरुराजन्मर्गं पन्थाविदावरम् ॥५०

इति सम्भाषमाणौ तौ दम्पती गगंमग्निधिम् ।

प्राप्य तच्चरणौ मूर्ध्ना धवन्दा ते कृताञ्जली ॥५१

मथ राजागुरुं प्रीतमभिपूज्य पुन पुन ।

समावष्ट विनीतात्मा रहस्पात्रमनोरपम् ॥५२

कृतायं मां कुरु गुरो संप्राप्त करुणाद्रंधीः ।

संवी पञ्चाक्षरी विद्यामुपदेश्टु त्वमहंभि ॥५३

अनाभातं यदाजातं परकृत राजकर्मणा ।

तत्पाप येन शुष्येत तन्मन्त्रं देहि मे गुरो ॥५४

एवमभ्यासितो राजा गर्गो ब्राह्मणपुङ्गवः ।

तौ निनायमहापुष्य कालिन्द्यास्ततटमृतमम् ॥५५

तत्र पुष्पतरोर्मूले निषण्णोऽथ गुरुः स्वयम् ।

पुष्पतीर्थं जले स्नातं राजानं ममुपोषितम् ॥५६

प्राङ्मुखं चोपवेश्याथ नत्वा शिवपदाम्बुजम् ।

तन्मस्तके करं न्यस्थ ददौ मन्त्रं शिवात्मकम् ॥५७

राज्ञी ने कहा—मैं आपको उपदेश नहीं करूँगी, आप मेरे गुरु हैं । मन्त्रवेत्ताओं में बरिष्ठ गणं मुनि गुरु के समीप में उपस्थित होइये । सूत जी ने कहा—इस प्रकार से परस्पर से सम्भाषण करते हुए वे दम्पती गणं मुनि के समीप में प्राप्त हुए थे । वहाँ पहुँचकर दोनों ने हाथ जोड़ कर उनके चरणों में शिर के बल प्रणाम किया था । इसके अनन्तर राजा ने परम प्रसन्न हुए गुरुदेव की बारम्बार पूजा करके प्रत्यन्त विनीत भाव धारण करके उसने एकत्रित में अपना मनोरथ उनसे कहा था । राजा ने कहा—हे गुरुदेव ! आप तो कुरुणा से युक्त बुद्धि वाले हैं । आपकी सेवा में सम्प्राप्त हुए मुझको कृतार्थ कीजिए । आप मुझे पञ्चाक्षरी शैवी विद्या का उपदेश करने के योग्य हैं । हे गुरुवर्य ! राजकर्म से मैंने बिना जाना हुआ तथा ज्ञात भी जो भी कुछ पाप किया है वह जिसके भी द्वारा दण्ड हो जावे वही मन्त्र का उपदेश प्रथम मुझे प्राप्त कर दीजिये । इस प्रकार से राजा के द्वारा प्रार्थना किये गये ब्राह्मणों में परम श्रेष्ठ गणं मुनि उन दोनों को महापुण्यमय कालिन्दी के उत्तम तट पर से गये थे । वहाँ पर पृथ्वी पुरु के मूल में गुरु स्वयं बैठ गये थे, और उस राजा के मस्तक पर प्रणाम कर कमल रखकर उस शिव स्वरूप मन्त्र को उसको दे दिया था ॥५०-५७॥

तन्मन्त्रधारणादेव तद्गुरोर्हस्तसंगमात् ।

नियंयुस्तस्य वपुषो वायसाः क्षनकोटयः ॥५८

ते दग्धपक्षाः क्रोशन्ती निपतन्तो महीतले ।

भस्मीभूतास्ततः सर्वे दृश्यन्तेस्मसहस्रशः ॥५९

दृष्ट्वा तदायसकुलं दृश्यमानं सुविस्मितो ।

राजा च राजमहिषी च गुरुपर्यपृच्छताम् ॥६०

भगवन्निदमाश्चर्यं कथं जातं शरीरतः ।

वायमाना कुल दृष्टं क्रिमेतत्साधु भण्यताम् ॥६१

राजन्भवसहस्रेषु भवता परिधावता ।

सञ्चितानि दुरन्तानि सन्ति पापन्यनेकशः ॥६२

तेषु जन्मसहस्रेषु यानि पुण्या निसन्ति ते ।

तेषामाधिक्यत इवापि जायते पुण्ययोनिषु ॥६३

उस शीव मन्त्र के धारण करने हो ते और उनही गुरुदेव के हाथ के मंगम से ही उसने शरीर से संकटो करोड कोए निकले थे । वे जते हुए पत्नी वाले चीखने हुए तथा भूमि के सत में निपतित होते हुए सहस्रो तो नक्षी मूढ होगये थे ऐसे दिखलाई दिये थे । उन वायमो के समूह को दायी मूढ हुआ देखकर वे दोनों ही परम विस्मित हुए थे । तथा राजा भीर राजा दोनों ने ही उन श्री गुरुदेव से पूछा था—हे भगवन् ! यह परम आश्चर्य इस शरीर से कैसे हुआ है जो कि यह कौओं का समुदाय इस शरीर से समुत्पन्न हुआ, यह क्या नामला है, कृपया हमे आप भती भाति बतलाइये । श्री गुरुदेव ने कहा—हे राजन् ! आपने अपने सहस्रो जन्मों में दौड लगाते हुए अनेक परम दुरन्त पाप सञ्चित किये थे । उन सहस्रों जन्मों में जो कुछ तुम्हारे पुण्य थे उनको अधिकता से कहीं पुण्य धोनिधो में जन्म लेते हैं ॥६०-६३॥

तथा पापीयसी योनि वचिक्त्वापेन गच्छति ।

साम्ये पुण्यान्ययोश्चैव मानुषी योनिमाप्तवान् ॥६४

शंवी पञ्चाक्षरी विद्या यदा ते हृदयं गता ।

अघाना कोटयस्त्वत्तः काकरूपेण निर्गता ॥६५

कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्य कोटयः ।

स्वर्णस्तेयसुरापानभ्रूणहत्यादिकोटयः ।

भवकोटिसहस्रेषु यैऋये पातकराशयः ॥६६

क्षणाद्भ्रूसमीभवन्त्येव शंवेपञ्चाक्षरे ध्रुते ।

आसस्तवाद्य राजेन्द्र । दग्धाः पातककोटयः ॥६७

अनया सह पूतात्मा विहरस्व यथामुगम् ।



इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठस्तंमन्त्रमुपदिश्य च ॥६८

ताभ्यां विस्मितचित्ताभ्या सहितः स्वगृह ययौ ।

गुरुवर्यमनुज्ञाप्य मुदिता तौ च दम्पती ॥६९

ततः स्वभवनं प्राप्यरेजतुःस्म महाद्युती ।

राजादृढं समाश्लिष्य पत्नी चन्दनशीतलाम् ॥७०

सतोप परमं लेभे नि स्वः प्राप्य यथा धनम् ॥७१

अश्लेषवेदोपनिषत्पुराण शास्त्रावतंसोऽयमधान्तकारी ।

पञ्चाक्षरस्यैवमहाप्रभावोमयासमासात्कथितोऽरिष्टः ॥७२

तथा कही पर पाप से पापीयनी योनि को जाते ही जब पाप प्रौर पुण्य दोनों ही समान प्रबस्था मे प्राप्त हुए हैं तभी आपने इस मानुषी योनि को प्राप्त किया है ॥६४॥ वही पञ्चाक्षरी विद्या जिस समय मे आपके हृदय मे पहुची तो तुम्हारे जो करोड़ो पाप थे वे सब अब आपके शरीर से वायसों के रूप मे निमले पड़े हैं । इनमे करोड़ो ही ब्रह्म हत्या के पाप हैं और करोड़ों ही अगम्य स्थियो मे गमन करने के पाप है, स्वर्ण की चोरी, मदिरा-पान, हत्या आदि के भी करोड़ो पापों के समूह शीघ्र पञ्चाक्षरी मन्त्र के धारण करते ही क्षण भर मे भस्मोभूत हो गये । हे राजन् ! आपके करोड़ो पातकों के समुदाय दग्ध होगये । अब आप परम पवित्र हो गये हैं । आप अपनी इस भार्या के साथ सुसूखक विहार कीजिए । यह कह कर उम श्रेष्ठ मुनि ने उस मन्त्र का उपदेश दिया । फिर विस्मित चित्त वाले इन दम्पति के साथ अपने गृह को वे चले गये । वे दम्पति भी गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त कर परम प्रसन्न हो गये । फिर वे दोनों अपने अपने भवन मे समागत होकर महान् धृति और शोभा से सम्पन्न हुए । राजा ने फिर उस चन्दन के समान शीतल अपनी पत्नी का मलो भाति आलिंगन किया । उसे परम संतोष हो गया, जैसे कोई दरिद्र धन को पाकर महान् संतुष्ट हो जाता है । यह पञ्चाक्षरी महामन्त्र का महान् प्रभाव है, जो सम्पूर्ण दोषों के नाश के लिए उपनिषद् सुल्य अरिष्ट है, सववेद, शास्त्र, पुराणों का भूषण रूप एव विपत्तियों का अन्त करने वाला है इस अरिष्ट उपाख्यान को मीने सक्षेप मे कहा है ॥६४-७२॥

# स्कन्द पुराण

## काशी खण्ड

### ४७—तीर्थाध्याय वर्णन

शृणुसूत महाभाग कथांश्रुतिसहोदराम् ।  
या र्वं हृदिनिधायेह पुरुषः पुरुषार्थभाक् ॥१  
ततः श्रीदर्शनानन्दमुधाधारधुनी मुनिः ।  
अवगाह्य सपत्नीकः परामुदमवाप सः ॥२  
वह्निकुण्डसमुद्भूतः सूतनिमलमानसः ।  
शृणुष्वंकं पुराविदिग्भर्मापितं यत्सुभाषितम् ॥३  
परोपकरणं येषां जागतिहृदये सताम् ।  
नश्मन्ति विपदस्तेषां सम्पदःस्युः पदे पदे ॥४  
तीर्थस्नाननता शुद्धिवंधुनानेने तत्फलम् ।  
तपोभिरुग्रैस्तघ्नाप्यमुपकृत्या यदाप्यते ॥५  
परोपकृत्याथोधर्मोघर्मोदानादिसम्भवाः ।  
एकत्रतुषितो धात्रा तत्रपूर्वोऽभवद्गुरुः ॥६  
परिनिमंथ्य याग्जालं निर्णोतन्निदमेव हि ।  
नोपकारात्परो घर्मो नापकारादघ परम् ॥७

महामुनि श्री पाराशर्य जी ने कहा—हे सुत मूत ! आप तो परम महाद् भाग वाले हैं । अब श्रुति की ही सहोदर एक कथा का यवत्न करो जिसको हृदय में धारण करके पुरुष इस संसार में परमाद्य को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता करता है । इसके उपरान्त वह मुनि अपनी पत्नी के सहित श्री दर्शन के आनाद मुधा की धारा पुनि में अवगाहन करके परम मुद को प्राप्त हुए थे ॥१-२३॥ हे शक्ति ! वृष्ण से

समुत्पन्न होने वाले ! आपका मन परम निर्मल है । हे मूढ ! पुरा वेत्ताओं के द्वारा भावित एक जो सुभाषित है उसका आप श्रवण कीजिए । जिन सत्पुरुषों के हृदय में परायों के उपकार करने का भाव सदा जागरूक रहा करता है उनके विपदायें नष्ट हो जाया करती हैं और उनको पद-पद में सम्पदायें उपस्थित रहा करती हैं ॥३-४॥ अनेक तीर्थों के स्नान करने से वह उस प्रकार की बुद्धि समुत्पन्न नहीं होती है और बहुत से छात्रों से भी वैसे बुद्धि नहीं हुआ करती है और न ऐसा फल ही प्राप्त होता है । परम तप से भी वह प्राप्त नहीं होता जो दूसरों के उपकार के करने से प्राप्त किया जाना करता है । परायों के उपकार से जो धर्म होता है वह धर्म और दानादि अन्य सुकृत्यों से समुत्पन्न होने वाला धर्म इन दोनों को घाता ने एक ही स्थान में रखकर तोला था तो इन दोनों में उपकार से होने वाला धर्म ही गुरु हुआ था । इसलिये समस्त वाणियों के जाल का परिमन्थन करके यही निर्णय किया गया है कि परोपकार से अधिक घोर अन्य कोई भी धर्म नहीं है और दूसरों के उपकार करने से अधिक कोई भी धर्म महान् धर्म नहीं होता है ॥५-७॥

उपकृतु रगस्त्यस्यजातमेतन्निदशनम् ।

भवतादृक्काशिजंदुःख क्वतादृक्श्रीमुखेक्षणम् ॥८

करिकर्णाग्रचपलञ्जीवितविविधवसु ।

तस्मात्परोपकरणकार्यमेक विपश्चिता ॥९

पल्लक्ष्मीनाममात्राप्या नरो नो माति कुत्रचित् ।

साक्षात्समीक्ष्य तां लक्ष्मीं कृतकृत्योभवन्मुनिः ॥१०

गच्छन् यहच्छयासोयदूराच्छ्रीशंलमक्षत ।

पत्रसाक्षान्निसतिदेवः श्रीत्रिपुरान्तकः ॥११

उवाच वचनं पत्नीतदाप्रीतमनामुनिः ।

इहस्थितैवपश्य त्वं कान्तेकान्ततरं परम् ॥१२

श्रीशैलशिखरंश्रीमदिदन्तद्यद्विलोकनात् ।

पुनर्भवोमनुष्याणाभवेऽनभवेत्क्वचित् ॥१३

गिरिश्वनुरक्षीत्यार्यं योजनानां हि विस्तृतं ।

सर्वलिङ्गमयो यस्मादतः कुयत्प्रदक्षिणम् ॥१४

उपकार करने वाले महामुनि अयस्य जो का यह निदर्शन हो गया है । उस जंगल का अतिवृद्ध कुल कहीं है और यैसा भी मुझ का दिक्षण कहीं है ? हाथी के कान के समानाग के समान अपल यह जीवित और धन है । इसलिये विद्वान पुत्र्य को एक परम्यो का उपकार करना चाहिए । जो लक्ष्मी के नाम मात्र की प्राप्ति से मनुष्य कहीं पर भी नहीं समाला है, वह मुनि साक्षात् उस लक्ष्मी का समीक्षण करके कृणु पुरय हो गये थे । गमन करते हुए उसने सद्दृष्ट्या से दूर से ही उस शैल को देखा था जहाँ पर थी त्रिपुरान्तक देव साक्षात् निवास किया करते हैं । उस समय मैं प्रीतिपूर्ण मन वाले मुनि अपनी परमो से यह वचन बोले थे—यही पर स्थिति होती हुई आप काल में परम ज्ञानान्तर को देखो । यही शैल का यह शिखर है जो थो बाला है और जिसके बिलोकन करने से इस समार में मनुष्यो का पुनर्जन्म कभी भी कहीं पर नहीं होता है । यह गिरि शोराती योजनो के विस्तार वाला है । यह सर्व विगमय है इसीलिए इस को प्रदक्षिणा करनी चाहिये ॥८ १४॥

किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामि यद्याज्ञा स्वामिनो भवेत् ।

ब्रूते हि याऽननुशाता पत्या सा पतिता भवेत् ॥१५

किंवदन्तु कामादेवि ! त्वाम्ना हितस्त्वमशङ्कता ।

न स्वाहृतीनावाक्यमिदं त्वुः सेदायजापते ॥१६

तत् पप्रच्छ सा देवी प्रणम्य मुनिमानता ।

सर्वेषाञ्च हि नार्थाय स्वसन्देहापनुत्तये ॥१७

श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा पुनर्जन्मनविद्यते ।

इदमेव हि सत्यञ्चेतिकमथं काशिरिष्यते ॥१८

आकर्ण्य वरारोहे! सत्त्वं पृष्ठ त्वयामले !

निर्णोतमसकृच्चैतन्मां भभिस्तत्त्वचिन्तकैः ॥१९

मुक्तिरथानान्यनेकानि कृतस्तत्रापि निर्णयः ।

तानि ते कथयाम्यथ दत्तचित्ता भव क्षणम् ॥२०

सोपामुद्रा ने कहा—मैं कुछ जानने की इच्छा करती हूँ यदि स्वाधी की वाशा मुझे प्राप्त हो जावे । जो पति की धात्रा न प्राप्त करके ही बोलती है वह नारी पतित हो जाया करती है ॥११५॥ भगवत्य मुनि ने कहा—हे देवि ! भाव क्या बोलने की इच्छा वाली है ? आप निःसङ्कृत होकर ही तत्व को बोलिये । प्राप जैसी पत्नियों का वचन कभी भी पति को खेद करने वाला नहीं हुआ करता है । इसके पश्चात् परम विनत होकर उस देवी ने मुनि को सर्व प्रथम प्रणाम किया था और फिर पूछा था जो कि सभी के हित के लिये था और अपने हृदय में निहित सन्देह को दूर करने के लिए भी था । सोपामुद्रा ने कहा—श्री शैव त्रिखर का दर्शन करके पुनर्जन्म नहीं होता है—यही बात यदि सत्य है तो फिर काशि को किसलिये चाहा जाया करता है ? भगवत्य मुनि ने कहा—ह अमले—हे वरारोहे ! प्रापने सत्य ही पूछा है तो श्रद्ध धरण करो—तत्त्वों के ज्ञाता मुनिमण ने इसका कितनी ही बार निराप किया है कि मुक्ति के तो अनेक स्थान हैं । जसमें भी निर्णय किया गया है । उनको मैं यहाँ पर कहता हूँ । भाप अणु भर के लिये दक्ष पित्त (सावधान) हो जाओ ॥१६-२०॥

प्रथम तीर्थ राजन्तुप्रयागाख्यमुविश्रुतम् ।

कामिकसर्वतीर्थानाघर्मकामार्थमोद्भदम् ॥२१

नैमिषञ्च कुरुक्षेत्रं गङ्गाद्वारमवन्तिका ।

वयोध्या मथुरा धं व द्वारकाप्यमरावती ॥२२

सरस्वतीसिन्धुसङ्गो गङ्गासागरसङ्गमः ।

कान्तीचभ्यम्बकञ्चापिसप्तगोदावरीतटम् ॥२३

कालञ्जर प्रभासश्च तथा बदरिकाथमः ।

महालयस्तथोद्धारक्षेत्र वंपोरुपोत्तमम् ॥२४

शोकर्णभृगुकच्छश्च भृगुतुङ्गश्चपुष्करम् ।

श्रीपर्वतादितीर्थानि धारातीर्थं तथैव च ॥२५

मानसान्यपितीर्थानिसत्यादीनि चर्षप्रिये ।

एतानि मुक्तिदान्येवनाश्रकार्याविचारणा ॥२६

गयातीर्थञ्च यत्प्रोक्त तत्पितृणा हि मुक्तिदम् ।

पितामहानामृणतो मुक्तास्तत्तनया अपि ॥२७

सबसे प्रथम तीर्थों का राजा प्रयाग नाम वाला बहुत प्रसिद्ध है । यह सब तीर्थों का कामिक है अर्थात् चाहने वाला है एव समस्त तीर्थों को इच्छाये पूरा करने वाला है तथा धर्मार्थ काम और मोक्ष का प्रदान करने वाला है । अब अन्य विधेय तीर्थों के नामों का विवरण दिया जाता है जो मुक्ति के प्रदाता हैं—नीमिष—वृत्तोत्र—गङ्गा द्वार—अवन्तिका—अयोध्या—मथुरा—द्वारका—अमरावती—सरस्वती—सिन्धुसङ्ग—गङ्गा सागर—सगर—काशी—श्यामक—सप्त गोदावरी तट, कालजर—प्रभास—बदरिकाश्रम—महालय—ओङ्कार क्षेत्र—पौरुषोत्तम क्षेत्र—गोकर्ण—भृगुकण्ठ—भृगुगुण—पुष्कर—भी पर्वत धाद तीर्थ—धारा तीर्थ—मानस आदि तीर्थ—हे प्रिये । सत्यादि तीर्थ—ये सभी तीर्थ मुक्ति देने वाले हैं—इस विषय में तनिक भी विचारणा नहीं करनी चाहिए । गया तीर्थ जो कहा गया है वह उनके पितृगणों को ही मुक्ति का देने वाला होता है । उनके पुत्र भी महान पितामहों के श्रेण से मुक्त हो आया करते हैं ॥२१-२७॥

मानसान्यपितीर्थानियान्युक्तानिमहामते ।

कानिकानिचतानीहृष्टेतदास्वातुमर्हसि ॥२८

शृणुतीर्थानिगदतोमानसानिममानये ।

येषुमम्यङ् नरः स्नात्वाप्रयातिपरमागतिम् ॥२९

सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहं ।

सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थं भाजयमेव च ॥३०

दानतीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थं मुच्यते ।

ब्रह्मचर्यं परतीर्थं तीर्थञ्च प्रिययादिता ॥३१

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थं भुदाहृतम् ।

तीर्थनिामपि तस्तीर्थं त्रिणुद्धिमं न सः परा ॥३२

न जलाप्नुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते ।

सस्नातीयोदमस्नात शुचिः शुद्धमनोमलः ॥३३

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः ।

सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एवमः ॥३४

सधमिणी ने कहा—हे महामते ! मानस तीर्थ भी आपने जो बतलाए हैं वे कौन-कौन यहाँ पर से होते हैं—यह भी कृपा करके मुझे बतलाने के योग्य हैं ? महामुनि अगस्त्यजी ने कहा—हे अनघे ! बोलने वाले मुझसे घाप उन मानस तीर्थों का भी श्रवण कर लीजिए जिनमें मनुष्य स्नान करके परमोत्तम गति को प्रयाण किया करता है । एक तो मानस तीर्थों में सत्य तीर्थ है—दूसरा क्षमा तीर्थ है और ममस्त इन्द्रियों का निग्रह कर लेना यह भी एक महान् मानस तीर्थ है । सब प्राणियों पर दया का भाव सदा रखना तीर्थ है और सर्वदा कुटिलता रहिस सोचापन (सरलता) रखना यह भी मानस तीर्थ होता है । दान तीर्थ है—दम (दमन करना) तीर्थ है और सदा मन में पूर्णतया सन्तोष की भावना को स्थिर भाव से रखना भी मानस तीर्थ कहा जाता है । पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य को धारण रखना सबसे परम तीर्थ होता है घाठी प्रकारों से ब्रह्मचर्य के धारण करने का ही नाम ब्रह्मचर्य है केवल स्त्री से साक्षात् सगम ही नहीं करना ब्रह्मचर्य का परिपालन नहीं होता है । मद्य के साथ सदा श्रिय भाषण करना भी एक मानस तीर्थ होता है । ज्ञान रखना तीर्थ है—धैर्य रखना भी तीर्थ है और तपश्चर्या करना भी मानस तीर्थ होता है । इन समस्त बतलाने मानस तीर्थों में सबसे श्रेष्ठ एवं प्रमुख तीर्थ मन की शुद्धता है । केवल मन में बुबकियाँ लगाने वाले देह का स्नान नहीं कहा जाया करता वास्तव में वही स्नान किमा हुआ है जो दमन से स्नान किया हुआ है और जिसके मन का मल शुद्ध है वही शुचि होता है । जो लुब्ध अर्थात् लोभ से परिपूर्ण है—विशुन अर्थात् पीठ पीढ़े दूसरों की बुराई करने वाला या झुगली करने वाला है—जो क्रूर अर्थात् घत्यन्त कठोर निर्दयी है—जो दाम्भिक अर्थात् कायरपूर्ण दिखावा करने वाला है और जो विषयों में हूषा हुआ है वह भले ही सभी तीर्थों में क्यों न स्नान किया हुआ हो वह फिर भी महान् पापी है और मलिन ही रहा करता है ॥२८-३४॥

न शरीरमलत्यागाक्षरो भवतिनिर्मल ।  
 मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्न मुनिर्मलः ॥३५  
 जायन्ते च म्रियन्ते च जलेऽप्येव जलो रुसः ।  
 न च गच्छन्ति ते स्वर्गं भविषुद्धमनोमलाः ॥३६  
 विगयेष्यति संरागो मानसो मल उच्यते ।  
 तेष्वेव हि विरागोऽभ्यनेर्मल्य समुदाहृतम् ॥३७  
 चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थं स्नानान्न शुद्ध्यति ।  
 गतगोथजलं धोतसुराभाण्डमिवाशुचिः ॥३८  
 दानमिज्यातपः शौचतीर्थं सेवाश्रुतं तथा ।  
 सर्वाण्येतानि तीर्थानि यदि भावो न निर्मलः ॥३९  
 निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्र वचवसेन्नरः ।  
 तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नमिपपुष्कराणि च ॥४०  
 ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे ।  
 यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमागतिम् ॥४१  
 एतत्ते कथितं देवि ! मानसं तीर्थं लक्षणम् ।  
 भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणाश्रुणु ॥४२

केवल शरीर के इस ऊरु मल के त्याग कर देने से मनुष्य निर्मल  
 या शुचि नहीं हो जाया करता है । मन में रहने यासे मल के त्याग देने  
 पर ही मनुष्य अन्दर से मुनिर्मल हुआ करता है । जलचारी बीष जब  
 ही में समुत्पन्न होते हैं, जीवन में वही रहा करते हैं और अन्त में उष  
 ही में उनकी मृशु भी हुआ करती है किन्तु वे विषुद्ध मनोमल शरीर न  
 होने के कारण कभी स्वर्ग लोक में नहीं जाया करते हैं । प्रथम तो वे  
 जलचर विषक योनि वासे ज्ञान से ही क्षुण्य होते हैं फिर भी शुचिता के  
 स्वरूप को वे बुझ जान ही नहीं सकते हैं । मानस मल उषी को कहा  
 जाता है जो सांसारिक विषयो में घर्षान् इन्द्रियो के विभिन्न विषयों में  
 अच्छी तरह से राग होता है । उन्ही में विराग का होना मन की निर्मलता  
 नहीं जाया करती है । यह अन्दर में छिपा रहने वाला पित्त प्रत्यक्ष ही  
 दुष्ट हुआ करता है । यह इस ऊरु स्नान के कर देने से कभी भी दुष्ट



नहीं हुआ करता है । सैकड़ों बार जल से जैसे मंदिरा का पात्र धो मो लिया जाये तो भी वह पवित्र न होकर अशुचि ही रहा करता है ॥३५-३८॥ दान-इज्या-तप-शौच-तीर्थाटन-श्रुत में सभी तीर्थ ही होते हैं किन्तु भाव की प्रधानता है । यदि भाव शुद्ध नहीं है तो इनका कोई फल नहीं है । जिनसे घपनो समस्त इन्द्रियों को पूर्णतम जीतकर घनने काबू में कर लिया है वह जहाँ पर भी कहीं निवास करे उसके लिए वही स्थल परम पवित्र कुच्छेत्र-नेमिप ओर पुष्कर है अर्थात् तीर्थ है । जो ध्यान से पवित्र ज्ञान रूपी जल में जो राग-द्वेष के मल का अघहरण कर देने वाला है मनुष्य स्नान किया करता है जिससे कि मानस तीर्थ कहते हैं वह पुष्प परमोत्तम गति को प्राप्त किया करता है । हे देवि ! हमने आपके सामने यह मानस तीर्थ का समग्र सङ्गण बतला दिया है । अब इन भूमि में रहने वाले तीर्थों का भी कारण सुन लो अर्थात् मानस तीर्थ ही सर्वोत्तम तीर्थ हैं वो इनकी रचना का क्या कारण है उसका भी अब अवगत कर लो ॥३९-४२॥

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेघ्यतमाः स्मृताः ।

तथापृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः ॥४३

प्रभावादद्भुताद्भुते. सलिलस्य च तेजसा ।

परिग्रहान्मुनीनाञ्चतीर्थानापुण्यतास्मृता ॥४४

तस्माद्भूमिषु तीर्थेषुमानसेषुचनित्यशः ।

उभयेष्वपिपयः स्नातिसयाति परमागतिम् ॥४५

अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्यच ।

अदस्वा काञ्चनंगाश्चदरिद्रोनामजायते ॥४६

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ।

न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेनयत् ॥४७

यस्यहस्तौ च पादौचमनश्चैव सुसंयतम् ।

विद्यातपश्चकीर्तिश्चसतीर्थं फलमश्नुते ॥४८

प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येनकेनचित् ।

अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थं फलमश्नुते ॥४९

जिस प्रकार मे इस शरीर के कुछ उद्देश भर्षात् भाग परम पवित्र माने गये हैं । ठीक उसी भाँति से इस पृथ्वी के भी कुछ भाग परम पुण्य तम कहे गये है । इस भूमि के अद्भुत प्रभाव से—जल के विशेष तेज से घोर बुनि गणों के परिग्रहण करने से इन समस्त तीर्थों की पुण्यता बतलाई गई है । इसलिए भूमिगत तीर्थों का भी महत्त्व अवश्य ही होता है अतएव मानवों का कर्तव्य यह होना चाहिए कि इन भूमिगत तीर्थों में और साथ ही मानस तीर्थों में भी निरव ही दोनों में स्नान करना चाहिए । इन दोनों ही प्रकार के तीर्थों में जो स्नान किया करता है वही मानव परम गति को प्राप्त होता है । तीर्थों में पहुँचकर जो तीन रात्रि तक उपवास नहीं करता है तथा वहाँ पर जाकर सुषुप्त्यं दान एवं गोदान नहीं करता है वह पुण्य दरिद्र ही रहा करता है । अग्निष्टोम आदि यज्ञों से जिनने बहुत अधिक दक्षिणा दी गई हो मनुष्य वह फल प्राप्त नहीं किया करता है जो तीर्थों के अभिगमन से फल होता है । जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर और मन सुगम्य होता है वह विद्या—तप—कीर्ति और तीर्थों का फल प्राप्त किया करता है । प्रतिग्रह से उपावृत्त होने वाला अर्थात् दान न लेने वाला घोर जो भी कुछ मिल जाये उसी से सन्तुष्ट रहने वाला तथा ग्रह कार में रहित होता है वह तीर्थान्त के फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥४३-४४॥

अदम्भको निरारम्भोलच्चाहारोजितेन्द्रिय ।

विमुक्त सर्वसर्गैः सर्वैर्यं फलमश्नुते ॥४०

अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादीदृढव्रतः ।

आत्मोपमश्चभूतेषु स तीर्थं फलमश्नुते ॥४१

तीर्थान्यनुपरन् धीर. श्रद्धधान. समाहित. ।

कृतपापो विनुद्धयेत किपुन शुद्धकर्मकृत् ॥४२

तिर्यग्योनि न वै गच्छेत्कुदेषे नव जायते ।

न दुःखी स्यात्स्वर्गं भावव मोक्षोपायञ्च विन्दति ॥४३

अश्रद्धधानः पापात्मानास्तिकोऽच्छिन्नसर्गः ।

हेतुनिष्ठदण्डचेतेनतीर्थं फलभागिन ॥४४

तीर्थनिचयथोक्तेनविधिनासञ्चरन्तिये ।

सर्वद्वन्द्वप्रहाघोरास्तेनराः स्वर्ग भागिनः ॥५५

तीर्थ यात्राञ्चिकीर्णुः प्राग्बिघायोपोषणं गृहे ।

गणेशञ्च पितृन्विप्रान्साधुञ्चत्या प्रपूज्य च ॥५६

दम्भ से रहित—बिना प्रारम्भ वाला—बहुत हल्का और कम आहार करने वाला—इन्द्रियों को जीतने वाला और सब प्रकार के संगो से जो विमुक्त रहने वाला है वह भी तीर्थटन करने का फल प्राप्त कर लिया करता है । जो बिना क्रोध वाला निर्मल मति वाला—मत्स्य भाषण करने वाला—दृढ व्रत वाला और समस्त प्राणियों में अपनी ही आत्मा के समान भाव रखने वाला जो मनुष्य हुआ करता है वह तीर्थ करने का पूर्ण पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है । तीर्थों का अनुसरण करता हुआ—धीरज वाला—श्रद्धा से सम्न्वित एक परम समाहित जो मनुष्य होता है वह पापों के करने वाला भी विमुक्त हो जाया करता है और जो शुद्ध कर्मों के करने वाला होता है उसके विषय में तो कहा ही गया जावे ॥५०-५२॥ ऐसा जीव कभी भी तिर्यक योनि में नहीं जाया करता है और कभी कुदेस में भी उत्पन्न नहीं होता है । वह मनुष्य कभी दुःखित नहीं होता है तथा स्वर्ग लोक का भोक्ता एक मोक्ष प्राप्त करने का उपाय पाया करता है ॥५३॥ जो श्रद्धा नहीं रखने वाला है तथा पापात्मा की और ईश्वर को सत्ता को नहीं मानने वाला नास्तिक—जिमका सन्ध छिन्न नहीं हुआ हो और जो हेतु में ही निष्ठा रखने वाला हो ऐसे ये पाँच प्रकार के पादमी कभी भी तीर्थों के फल के भागी नहीं होते हैं । जो यथोक्त विधि से तीर्थों का पर्यटन किया करते हैं और सभी प्रकार के द्वन्द्वों के सहने वाले एक धीर होते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग के भागीदार हुआ करते हैं । जब कोई भी तीर्थ यात्रा करने की इच्छा वाला हो तो पहिले उनको घर में ही उपोषण करना चाहिए और विघ्न विनाशक भगवान गणेश का पूजन करे तथा पितृगण, विप्र वृन्द और साधुओं का पूजनार्चन करना चाहिये ॥५४-५६॥

कृतपारणकोद्देशो गच्छेन्नियमधृक्पुनः ।  
 आगत्याभ्यर्च्यं च पितृन् यथोक्तफलमाग्भवेत् ॥५७  
 नपरीक्षयोद्विजस्तीर्थं ध्वन्नार्थी भोज्य एव च ।  
 सक्तुभिः पिण्डदानञ्च चरुणापायसेन च ॥५८  
 कर्तव्यमृषिभिर्द्वंष्ट्रं पिण्याकेन गुडेन च ।  
 श्राद्धं तत्र प्रकर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥५९  
 अकालेष्वथवा काले तीर्थं श्राद्धञ्च तर्पणम् ।  
 अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्न समाचरेत् ॥६०  
 तीर्थं प्राप्य प्रसङ्गेन स्नानं तीर्थं समाचरेत् ।  
 स्नानज फलमाप्नोति तीर्थं यात्राश्रितं न च ॥६१  
 नृणां पापकृतां तीर्थं पापस्य दामनं भवेत् ।  
 यथोक्तफलद तीर्थं भवेच्छ्रद्धात्मनां नृणाम् ॥६२  
 षोडशांशं स लभते यः परार्थं च्च गच्छति ।  
 अद्वं तीर्थं फलं तस्य याः प्रसंगेन गच्छति ॥६३

किये हुए उपवास का पारण करके नियमों को पारण कर परम  
 हर्ष से सद्युत होकर फिर तीर्थ यात्रा को गमन करे । वहाँ से घाकर भी  
 पुनः अपने पितृगण का श्रचन करे—तभी बह पुण्य फल का भागी हुमा  
 करता है ॥५७॥ तीर्थों में कभी भी किसी द्विज की परीक्षा न करे । जो  
 भी घन्न का श्रर्थो हो उसको ही भोजन करा देना चाहिये । भोजन  
 सत्तू से करावे तथा पिण्डदान भी सत्तू से करावे । घोर चरु एव पायस  
 के द्वारा करे । शृषियों के द्वारा दृष्ट पिण्याक एव गुड से करता चाहिए ।  
 अर्घ्यं घोर घवाहन से रहिन वहाँ पर श्राद्ध भी करना चाहिए । काल  
 हो अथवा अकाल ही में तीर्थ में श्राद्ध घोर तर्पं अविलम्ब से हो कर  
 देवे घोर कभी भी इसमें विघ्न न करे । प्रसङ्ग वश भी यदि तीर्थ में प्राप्त  
 हो जावे तो वहा पर स्नान का समापरण अवश्य ही करे । यह मनुष्य  
 वहाँ पर स्नान का फल तो अवश्य ही प्राप्त कर सगा किन्तु उसे तीर्थ  
 यात्रा करने वा फल नहीं प्राप्त होगा ॥५८-६१॥ पापों के करने वाले  
 मनुष्यों के तीर्थ में पापों वा दामन हो जाया करता है । तीर्थ जित प्रकार

से पुण्य-फल का प्रदान करने वाला होता है वह श्रद्धा धारण करने वालों को ही होता है ॥६२॥ जो कोई दूसरों के लिए ही तीर्थों में धर्मन कर्म करता है वह फल का सोलहवाँ अंश प्राप्त करता है । जो किसी अन्य कार्य के प्रसङ्ग से तीर्थ में पहुँच जाता है उसको तीर्थ यात्रा का आधा फल ही प्राप्त हुआ करता है ॥६३॥

कुसप्रतिकृति कृत्वा तीर्थ वारिणि मज्जयेत् ।  
 मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोष्टमांश लभेत वै ॥६४  
 तीर्थोपवास कर्तव्यः शिरसो मृण्मनं तथा ।  
 शिरो गतानि पापानि यान्तिमुष्णन्तीयत ॥६५  
 यदह्नितीर्थं प्राप्तिः स्यात्ततोहनः पूर्ववासरै ।  
 उपवासस्तु कर्तव्यः प्राप्ताह्नि श्राद्धोभयेत् ॥६६  
 तीर्थं प्रसगातीर्थ्यागमप्युक्त त्वस्युरी मया ।  
 स्वर्गसाधनमेवंतन्मोक्षोपायश्च वै मवेत् ॥६७  
 काशी कान्तो च मायाख्या त्वयोद्या द्वारावत्यपि ।  
 मथुरादन्तिका वंता मप्तपूर्वोऽप्य मोक्षदा ॥६८  
 श्रीशंभो मोक्षदः सर्वं केदारोऽपि ततोऽधिकः ।  
 श्रीशंभोऽपि केदारप्रयाग मोक्षद परम् ॥६९  
 प्रयागादपितीर्थाप्रचादयिमुक्त विशिष्यते ।  
 यथा विमुक्ते निर्वाण न तथाक्वाप्य संशयम् ॥ ७०

कुस्रा को एक प्रतिकृति बनाकर तीर्थों के जल में मज्जित करा देवे । जिस उद्देश्य को लेकर उसका मज्जन करावे उसका अष्टमांश फल उसे प्राप्त हो जाता करता है । तीर्थों में जाकर उपवास पवण ही करे और वहाँ पर मुष्णन भी करावे । मुष्णन के जल में शिर में प्राप्त हुए ममस्त पाप धुलें जाया करते हैं । जिस दिन में तीर्थों की प्राप्ति होवे उस दिन के प्रथम दिन में ही उपवास करना चाहिए और प्राप्त हो जाने वाले दिन में श्राद्ध देने वाला होवे । इस तीर्थ यात्रा के प्रसंग में मिले आपके प्राणों तीर्थों के अङ्ग का भी वर्णन कर दिया है । यही स्वर्ग का साधन होता है और मोक्ष प्राप्त करने का भी उपाय है । काशी,

कान्ती (गान्धी), पाया नामवालो (हरिद्वार), प्रयोध्या, द्वारवती (द्वारका), मयुरा, अवन्तिका (उज्जैन) ये सात पुरियाँ ऐसी हैं जो मोक्ष के प्रदान करने वाली होती हैं ॥६४-६८॥ श्री शैल सम्पूर्ण मोक्ष प्रदाता है । वेदार गिरि उससे भी अधिक होता है । श्री शैल और वेदार से भी परम मोक्ष का देने वाला प्रयाग हुआ करता है ॥६९॥ प्रयाग से भी अधिक जो कि समस्त तीर्थों में प्रथम है (उत्तम) होता है अविमुक्त तीर्थ हुआ करता है । जैसा इस अविमुक्त तीर्थ में निर्वास होता है वगैरा तो वही भी नहीं होता है—यह निःसन्देह है ॥७०॥

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तकराणि च ।

काशी प्राप्याऽपि मुच्येत नान्यथा तीर्थं कोटिभिः ॥ १

अत्रार्थं कथयिष्यहमितिहासं पुरातनम् ।

यथाविष्णुगणैरुक्तं द्विजाय शिवशर्मणे ॥७२

तीर्थाध्यायमिमं श्रुत्वा नरोनियतमानम ।

थावपित्वा द्विजाश्चापि धृद्धाभक्तिं समन्विता ॥७३

क्षत्रियान्धर्मनिरतान्ब्रह्मण्यो मन्मार्गवर्तिनः ।

शूद्रान्द्विजेषु भक्ताश्च निष्पापो जायते द्विज ॥७४

अब भी मुक्ति के क्षेत्र हैं और वे काशी के प्राप्ति करा देने वाले होते हैं किन्तु काशी में तो प्राप्त होकर ही मानव मुक्त होनाया करता है अन्यथा करोड़ों तीर्थों से भी नहीं होता है ॥७१॥ इस विषय में हम एक परम पुरातन इतिहास आपको कहेंगे जैसा कि भगवान् विष्णु के गणों ने शिव शर्मा द्विज से कहा था । इस तीर्थाध्याय को मनुष्य नियत मन वाला होकर ध्यान करता है तथा द्विजों को इसका ध्यान कराना है जो कि सुनने वाले धृद्धाभक्ति से युक्त हो एव धर्म में विदित धर्मियों को तथा सन्मार्ग में रहने वाले बंदों को और द्विजों में भक्ति रखने वाले शूद्रों को मुनाता है वह द्विज निष्पाप हो जाता करता है ॥७२-७४॥

४८—गायत्री महत्त्व वर्णन

गायत्रीमन्त्रतोयाद्य दस्येनाञ्जलिप्रयम् ।  
 कालेनविश्वेकिनस्थस्तेनर्त्ता जगत्प्रयम् ॥१  
 किंकिनसवितासूतेकालेसम्यगुपासितः ।  
 आयुरारोग्यमंश्वर्यं वसूनि त पशूनि च ॥२  
 मिश्रपुत्रकन्याणि क्षेत्राणि विविधानि च ।  
 भोगानष्टविधाश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम् ॥३  
 अष्टादशसुविद्यासु मीर्मानातिगरीयसी ।  
 नतोपितकशास्त्राणिपुराणे तेभ्य एव च ॥४  
 ततोविघ्नमंवास्त्राणितेभ्योगुर्वीश्रुतिद्विज ! ।  
 ततोप्युपनिषद्भ्रेष्ठागायत्रीचततायिका ॥५  
 दुर्लभामर्चमन्त्रेषु गायत्रीप्रणवान्विता ।  
 न गायत्र्याधिक किञ्चित्प्रयोषु पारसीयते ॥६  
 न गायत्रीसमो मन्त्रोनकास्तीगृणीपुरी ।  
 नविद्वेषममभिद्भूँ सत्य सत्य पुनः पुनः ॥७

महा महर्षि श्री अगस्त्य जी ने कहा—गायत्री मन्त्र से बहुत सीन जल की अञ्जलिवा जिस पुरुष ने भगवान् सविता के लिये समय पर समर्पित करती है उसने क्या श्रमभक्त को नहीं दे डाला है ? शास्त्र में यह है कि उसने सभी कुछ समर्पित कर दिया है । शास्त्र में बताया हुए भगव पर भली भाँति उपासित सूर्यदेव क्या क्या नहीं प्रदान किया करते हैं भवति सभी कुछ वे देते हैं । आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मिश्र, पुत्र, कन्या, विविध क्षेत्र, आठों प्रकार के भोग, स्वर्गलोक वा सिवाम और अपवर्ग यह सभी प्राप्त होते हैं ॥१-३॥ अठारह विद्याओं में मीर्माना विद्या अत्यन्त बड़ी है । इस से भी अधिक गुठ तक शास्त्र है । उनसे भी अधिक पुराण है और उन से भी अधिक धर्म शास्त्र होते हैं और इनसे अधिक गुण श्रुति है । हे द्विज ! श्रुतियों से भी अधिक गुण उपनिषद् हैं और इनसे भी परम श्रेष्ठ गायत्री होती है । इससे अधिक कोई भी नहीं

है । प्रणव से समन्वित गायत्री सभी मन्त्रों में दुर्लभा है । त्रयी में षष्ठीय वेद त्रयी में गायत्री से अधिक कुछ भी नहीं परिगोत किया जाता है ॥४-६॥ गायत्री के समान कोई अन्य मन्त्र नहीं है और काशी के समान अन्य कोई भी पुरी नहीं है । विश्वनाथ भगवाद् तुल्य कोई भी शिव तिष्ठ नहीं है—मह पुनः पुनः पूर्यन्त्या सत्य है—सत्य है ॥७॥

गायत्री वेदजननी गायत्रीब्राह्मणप्रसूः ।

गातार त्रायतेयस्माद्गायत्री तै न गीयते ॥८

वाच्यवाचकसम्बन्धो गायत्र्याः सविनुद्धयोः ।

वाच्योसौ सविता साक्षाद्गायत्री वाचिका परा ॥९

प्रभावेणैव गायत्र्या क्षत्रियः कोशिको वशी ।

राजपितृपरिस्त्रयः प्रह्लादिपदमीयिवान् ॥१०

सामर्थ्यं प्राप चात्युच्चरन्मदभुवनतजने ।

किं किं न दद्याद्गायत्री सम्यगेवमुपासिता ॥११

न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्रपठनादपि ।

देव्यास्त्रिकालमस्यासाद् ब्राह्मण स्याद्धि नान्यथा ॥१२

गायत्र्येव परं विष्णुर्गायत्र्येव परं शिव ।

गायत्र्येव परो ब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी ततः ॥१३

देवत्रयं सभगवानशुभाली दिवाकर ।

सर्वेषां महसाराशिः कालः कालप्रवतकः ॥१४

यह गायत्री वेदों की जननी है । गायत्री ब्राह्मणों की प्रसूत करने वाली है । क्योंकि इसका जो गायन (जाप) करता है उसकी यह सुरक्षा (प्राण) किया करती है इसीलिए इसको गायत्री कहा जाता है । गायत्री और सविता इन दोनों का वाच्य-वाचक सम्बन्ध होता है । वाच्य तो भगवाद् सविता देव है और गायत्री साक्षात् परा उनकी वाचिका होती है ॥८-९॥ इस गायत्री देवी के प्रभाव से ही वशी क्षत्रिय कोशिक (दिव्यमित्र) राजपितृत्व का त्याग करके प्रह्लादि के पद को प्राप्त हो गये थे ॥१०॥ द्रुमरा बहुत ऊँचा भुवम के निर्माण करने की भी उन्होंने साधर्म्यं प्राप्त करती थी । भस्मी भूति से उपासना भी की हुई



गायत्री देवी मनुष्य को क्या क्या नहीं दे दिया करता है ? अर्थात् सभी कुछ प्रदाय कर देती है । वेदों के पाठ करने से ब्राह्मण नहीं बना करता है और शास्त्रों के पढ़ने से भी ब्राह्मणत्व नहीं आता है केवल सीनों कानों में गायत्री देवी की उपासना के अन्वय से ही ब्राह्मण हुआ करता है अन्य किसी भी प्रकार से ब्राह्मणत्व नहीं आता है । यह गायत्री देवी ही परम विष्णु है और गायत्री ही परम शिव है—गायत्री ही परब्रह्मा है तथा वेदत्रयो भी गायत्री ही होती है । यह भगवान् अनुमाली दिवाकर देव देवत्रय अर्थात् तीनों देवों का स्वरूप तथा यह सभी तीनों का समूह है और काल का प्रवंचक साक्षात् काल है ॥११-१४॥

भक्तमुद्दिश्य सततमस्मत्लोकानिवानिनः ।

श्रुतिह्युदाहरन्तीमा भारग्वारविवेकिनः ॥१५

एषोह देवः अविशोनुनर्वाः पूर्वोह जातः स व गर्भे अन्तः ।

स एव जातः स अनिध्यमाणः प्रत्यङ् अनस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥

सदबभुषतिष्ठेरन् शौरैः सूक्तैरनन्दिता ।

येनमन्थयते विप्रा विभ्रामास्करसन्निभा ॥१७

पुष्याकंप्ययहस्ताकं मूलाकंप्ययवाद्भिज ।

सत्तराकं ऽथयत्कार्यं तत्कलत्येवनान्यथा ॥१८

पौषेमास्यकं दिवसेयः स्नात्वाभास्करोदये ।

दानं होमजपकुर्वाद्दक्षमिकं स्थचवतः ॥१९

श्रद्धावानेकभक्तश्च कामक्रोधाविर्वाजितः ।

सहाप्सरोभिद्युतिमान्सवसेदयभोगवान् ॥२०

अथनेविपुत्रेचापि पदशीतिमुत्सेपु वा ।

विष्णुपश्चाच्चये दद्युर्महादानानि सुप्रता ॥२१

हमारे लोक के निवासी जन जो सार और असार के विवेकी हैं निरन्तर भगवान् सूर्य का उद्देश्य करके इस पृथ्वी का उदाहरण किया करते हैं ॥१५॥ यह ही देव सच दिवा-अविशोनों में है । यह ही सबसे पूर्व में उत्पन्न हुए हैं, यह ही अन्तर गम में हैं, यह ही उत्पन्न हुए हैं और

वह ही अनिष्यमाण है, यह ही मनुष्यों के पीछे और सभी ओर मुख करने वाला स्थित है ॥१६॥ सदा ही घतन्द्रित होते हुए सौर ( सूर्य सम्बन्धी ) मूक्तो के द्वारा उपाख्यान करना चाहिए । जो विप्र यहाँ पर मगवान् सूर्य को नमन किया करते हैं वे विप्र भास्कर के ही समान तेज वाले हुए करते हैं । हे द्विज । पुष्यार्क में अथवा हस्तार्क में, मूलार्क में या उत्तरार्क में जो भी वृद्ध किया जाता है वह ही फल देने वाला होता है अथवा वृद्ध भी फल नहीं देता है ॥१७-१८॥ रविवार के दिन पीप मास में जो सूर्योदय के समय पर स्नान करके दान, होम और जाप किया करता है तथा सुन्दर व्रत वाला सूर्य देव का मन्त्र करता है उसे परम श्रेष्ठ वाला, एक ही समय में भोजन करने वाला तथा काम, क्रोधादि रहित रहता है । वह यहाँ पर समस्त भोगों वाला होकर अप्सरामों के साथ निवास किया करता है । और अत्यन्त छुट्टि से युक्त होता है । अथन में, विषुव में अथवा पृथ्वीति मुखो में जो विष्णुपदों में महान् व्रत वाले दान दिया करते हैं वे ईश्वरान् लोक में वास किया करते हैं ॥१९-२१॥

तिलाञ्जुह्वति माज्याश्च ग्राह्याणान् भोजयन्ति च ।

पितृनुद्दिश्य च भ्रातृ ये कुर्वन्ति विपश्चितः । २२

महापूजाञ्च ये कयु महामन्त्राञ्चरन्ति च ।

तेऽथ वंशतने लोके विकतनसमप्रभाः । २३

न दरिद्रा न दुःखार्ता न ध्याधिपरिपीडिता ।

सक्रमेष्टवर्कं भक्ता ये न विरूपा न दुःभगाः । २४

सक्रमेषु न यदत्त न म्नाततीर्थधारिण्यु ।

विशेषहोमो न कृताकपिलाज्याप्लुतं स्तलैः । २५

तं दृश्यन्ते प्रतिद्वार दिहीतनयनानमाः । २६

देहिदेहीति जल्पन्तो देहितः सपटञ्चराः । २६

समकृष्णलयेनापि यो दद्यत्काञ्चनं कृती ।

सूर्यशहे कुरक्षेत्रे मवसेदनं पुण्यभाक् । २७

जो उपर्युक्त अवसरों में घृत के सहित तिसों का हवन किया करते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं और जो विद्वान् पुण्य अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर श्राद्ध किया करते हैं। जो कोई महापूजा करते हैं तथा महा मन्त्रों का जाप किया करते हैं वे इस संकलन लोक में विकलान (सूर्य) के समान प्रभा में सुखम्पन्न होकर निवाम करते हैं। वे लोग कभी भी दग्ध्र नहीं होते हैं और न कभी दुःखों में घात तथा व्याधियों से पीडित ही दृशा करते हैं। यक्रमण काल में अर्घ्य सूर्य की सक्रान्ति के समय में जो सूर्य देव की भक्ति किया करते हैं वे न ता कभी विषय ही होते हैं और न दुर्भाग्य बाने ही हुआ करते हैं ॥२२-२६॥ जिन्होंने सक्रान्ति में कभी क्षुद्र भी दान नहीं दिया है और तीर्थों के जल में स्नान नहीं किया है तथा कोई दितेष होम भी कपिना के घृत से प्युत तिलों से नहीं किया है व प्रत्येक द्वार पर नयन और ध्यान में विहीन हाकर दिखलामो दिसा करते हैं। एने लोग सपदन्धर हांते हुए, "हम को कुछ दा" ऐसा कहते हुए देहभारी घूमा करते हैं। जो कोई कृती कृष्णलक के समान भी सूर्य प्रदण में कृष क्षेत्र में सुवण का दान करता है वह परम पुण्यात्मा दश लोक में साकर निवाम किया करता है ॥-५--७॥

सर्वगङ्गासमन्तोय सर्वैर्ब्रह्ममादिजा ।

सर्वदेव स्वरासमराहमस्ते दिवाकरे ॥२८

दत्तं जप्तं हुतं स्नातं यत्किञ्चित्सदनुष्ठितम् ।

भानूपरागेश्राद्धादि तद्धेतुर्ब्रह्ममन्त्रिये ॥२९

रविवारे सक्रमश्चेदुपरागोऽथवा भवेद् ।

तदा यदजिन पुण्य तदिहाक्षयमाप्यते ॥३०

भानुवारो यदा पठया सप्तम्यामथ जायते ।

तदायत्सुकृतं कर्म कृतन्त्रदिह मुज्यते ॥३१

हसो भानुः सहस्राष्टुस्तपनस्तापनोरविः ।

विकर्तनो विश्वस्वाश्च विश्वकर्मा विभावसु ॥३२

विश्वत्प्यो विश्वकर्ता मातं ण्डो मिहिरोऽशुमान् ।

आदित्यश्चोष्णगः सर्गोऽग्निमा यस्तोऽदिवाकर ॥-३

द्वादशात्मा सप्तहयोपास्करोऽहस्करः सगः ।  
 सूरः प्रभाकरः श्रीमाल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥२४  
 त्रिलोकेजी लोकसाक्षी तमोऽरिः शाश्वतः शुचिः ।  
 गमस्तिहस्तस्तीव्रागुस्तरणिः सुमहोरणिः ॥२५

दिवाकर भगवान् के राहु के द्वारा ग्रस्त होने के अवसर पर सभी जल गङ्गा के समान होता है और सभी दिग् ब्रह्मा के सहस्र हुआ करते हैं तथा सभी कुछ दान में दी हुई वस्तु सुवर्ण के ही तुल्य होता है । दान दिया हुआ, आप किया हुआ, हवन, स्नान, और जो कुछ भी सद अनुष्ठान होता है एवं धाढ घादि सभी सूर्य के ग्रहण के समय में ब्रह्म सन्निधि का हेतु हुआ करता है । अर्थात् यह सभी ब्रह्म के समीप में पहुँचाने वाला होता है । रविवार के दिन में रात्रमण हो प्रथवा ग्रहण उस समय में जो पुण्य का अर्जन होना है वह यहाँ पर अर्जय होकर प्राप्त किया जाता है । पक्षी या सप्तमी तिथि में रविवार हो तो उस समय में जो भी कुछ सुकृत का अर्जन किया गया है वह यहाँ पर भोगा जाता करता है ॥२५-३१॥ अब सत्तर भगवान् भाम्कर नामी का उल्लेख किया जाता है—हस, भानु, सहस्रांगु, तपन, तापन, रवि, विकर्तन विवस्वान, दिव्यकर्मों, विभावसु, विद्वहव, विद्वकर्ता, मातण्ड, मिहिर, भद्रुमान्, आदित्य, उत्पन्न, सूर्य, अयंमा, ब्रह्म, दिवाकर, द्वादशात्मा, सप्तहय, भास्कर, अहस्कर, सग, सूर, प्रभाकर, श्रीमान्, लोक चक्षु, ग्रहेश्वर, त्रिलोकेश, लोकसाक्षी, तमोऽरि, शाश्वत, शुचि, गमस्ति हस्त, तीव्रांगु, तराणि, सुमहोरणि, ॥३२-३५॥

धुमजिहरिदश्वोर्कोभानुमान्भपनाशनः ।

छन्दोश्रोवेदवेसदचभास्वान्पूपा वृषाकपिः ॥३६

एकचक्ररथो निग्रो मन्देहारिस्तमिषहा ।

ईत्यहा पापहर्ता च धर्मो धर्मप्रकाशकः ॥३७

हेलिकश्चित्रभानुश्चकलिघ्नस्तादयं वाहनः ।

दिवपतिःपश्चिमीनायाङ्कुशेशयकरोहरिः ॥३८

धर्मराशिमर्दुनिरीक्ष्यदचण्डानुः कश्यपात्मजः ।

एभिः सप्ततिसस्याकैः पुष्यैः सूर्यस्य नामभिः ॥३९

प्रणवाविचतुर्थ्यन्नं नैमरकारसमन्वितैः ।

प्रत्येकमुच्चरन्नाम दृष्ट्वा दृष्ट्वा दिवाकरम् ॥४०

विगृह्यपाणियुग्मेन ताभ्रपात्रं मुनिर्मलम् ।

जानुभ्यामवनी गत्वा परिपूर्णजलेन च ॥४१

करवीरादिकुमुमं रक्तचन्दनमिश्रितं ।

दूर्वाकुरं रक्षतं श्वनिक्षिप्तं पात्रगण्यतः ॥४२

दद्यादध्वंमतर्घ्यायसवित्रेध्यानपूर्वकम् ।

उपमौलि समानीय तत्पात्रं नान्यदृङ्मना ॥४३

प्रतिमन्त्रं नमस्कुर्यादुदयास्तामये रविम् ।

अनेया नाम सप्तत्या महामन्त्ररहस्यया ॥४४

धूम्रणि, हरिदश्व, अर्क, मानुमान्, मयनाशन, छन्दोजव, वेदवेद्य, भास्वान्, पूषा, वृषाकपि, एकचक्र रथ, मित्र, मन्त्रेहारि, तमिषहा, ईर्यहा, पापहर्ता, धर्म, धर्म प्रकाशक, हेतुक, चित्रमानु, कलिघ्न, ताक्ष्यं वाह्य, दिक्षपति, पद्मिनोनाय, कुशेशयकर, हरि, धर्मराशि, दुनिरीक्ष्य, चण्डांसु, कश्यपात्मज, ये कूल राक्षस मरुत्या बाले परम पुण्यमय भगवान् सूर्य के नाम हैं । इनमें प्रत्येक नाम के पहिले प्रणव लगाकर चतुर्थी दिनांकि सूर्य के सभी नामों के आगे जोड़ कर 'नम' इम नमस्कार वाचक शब्द को जोड़ देये । यथा 'ॐ नमो भूर्गो नमः' । इसी भाँति उपरि कथित प्रत्येक नाम को उच्चरित करते हुए दिवाकर देव का चारम्बार उचन करे । गुग्गर एवं निमल जल से युक्त ताभ्र पात्र को दोनों हाथों में दृष्ट्वा करे और दोनों घुटनों से भूमि में जाकर बल से परिपूरित करे । करवीर आदि के पुष्पों से मिश्रित, रक्त चन्दन से मिश्रित, दूर्वाकुर, और अक्ष निक्षिप्त किये हो ऐसे उस पात्र के मध्य से प्रणव्यं सवित्रा देने के लिये ध्यान पूर्वक धर्म्य देना चाहिए । मस्तक के समीप पर्यन्त उस पात्र को ले कर ही अन्य और दृष्टि तथा मन को न सेजाकर धर्म्य देना चाहिए ॥३६-४४॥

एव कुर्वन्नरो जातु न दरिद्रो न दुःखमाक् ।

व्याधिभिर्मुंध्यतेघोरं रविजन्मान्तरादिभिः ॥४५॥

विनीषधैर्विनावेद्यैर्विना पथ्यपरिग्रहैः ।

कालेन निषन प्राप्त.सूर्यलोके महीयते ॥४६

इ येकदेश कथितो भानुलोकस्य सत्तम ।

महातेजो निधेरस्य को विशेषमवत्यहा ॥४७

इसी रीति से प्रत्येक उपर्युक्त मन्त्र के द्वारा उदय घोर अस्त के समय में रविदेव को नमस्कार करना चाहिए । यह सूर्यदेव के शुभ नामों को तसति है इससे जो कि महामन्त्र के रहस्य से सम्बन्धित है मनुष्य को प्रतिदिन ही नमस्कार करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य कभी दरिद्रो घोर दुखों के भोगने वाला नहीं हुआ करता है । जन्मान्तरो को अहित व्याधियों से भी वह मुक्त होश्रापा करता है । इन व्याधियों से छुटकारा पाने के लिये किसी अंगपवि, वैद्य तथा पथ्यपरिग्रह आदि की आवश्यकता ही नहीं हुआ करती है । जब उपका अन्त समय आता है तो मृत्यु प्राप्त करके वह सूर्य लोक में ही प्रतिष्ठित हुआ करता है । हे सत्तम । भानु लोक का यह एक देश तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया है । यह महा तेज का निधि है । इसी तथा विशेषता जानते हो ॥४५-४७॥

### ४८— मणि कर्णिकाख्यानवर्णन

प्रमत्तोऽस्मिदिस्कन्द।मयिप्रीतिरनुत्तमा ।

तत्तमाचदवभगवश्चिरयन्मेहृदिस्फितम् ॥१

अविमुक्तमिदक्षेत्र कदारभ्य भुवस्तले ।

परा प्रथितिभापन्न मोक्षदञ्ज्याभङ्गक्यम् ॥२

प्रथमेया त्रिलोकीड्या गीयते मणि कर्णिका ।

तथाऽऽसीत्किम्पुरा स्वामिन्यदा नाऽमरनिम्नगा ॥३

वाराणसीतिकाशीति रुद्रावामइतिप्रभो !

अवा इ नामधेयानि कथमेतानि सा पुरी ।

आनन्दकानन रम्यमविमुक्तमनन्तरम् ॥४

महात्मज्ञान इतिचकथ स्वातशिशिष्वज ॥

एतदिच्छाम्यह श्रोतु सन्देहमेऽवनोदय ॥५

प्रथमभारोयमशुलस्त्वया य समुदाहृतः ।

कुम्भघोतेऽमुमेवार्यमप्राक्षीदश्विकाहरम् ॥६

यथा च देवदेवेन सवज्ञेन निवेदितम् ।

षण्मातुः पुरस्ताच्च तथैव कथयामि ते ॥७

महामहर्षि पत्न्य श्री पद्मस्य जी ने कहा—हे स्कन्द देव ! आप यदि मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मुझ में आपकी उत्तम प्रीति विद्यमान है तो हे भगवन् । मेरे हृदय में बहुत समय से स्थित उत्तमो ही कहिए, कि यह अविमुक्त क्षेत्र इस भूमि के तम मे कब लेकर आरम्भ हुआ है और यहाँ पर परम प्रतिष्ठि की प्राप्ति हुआ है तथा यह मोक्ष के प्रदान करने वाला कैसे हो गया है ? इसमें यह त्रिलोकों की ईश्वर ( स्तवण करने के योग्य मणिर्कणिका कंठों गावों जाती है ? क्या पहिले भी यहाँ पर अब तक यह जमर नदी ( गङ्गा ) नहीं थी यह विश्वमान थी ? हे स्वामिन् । हे दिवो । वाचाणुषी, नाद्यो, श्रीर स्थायाम ये नाम इस महापुरी ने कैसे प्राप्त किये थे ? पानन्द नानन इसके अनन्तर रम्य अविमुक्त और महा प्रशान्त ये सब नाम भी हे त्रिलोक्यज [ किन् प्रकार से प्रकल्पन म विद्यमान हुए हैं—यह सभी में प्रमाण करने की इच्छा रखता हूँ । आप मेरे मन्देश का अपनोदन ( निवारण ) किये । श्री स्कन्द देव ने कहा— आपने यह महाम् भारी प्रश्नों का समुदाय कर डाला है । हे कुम्भघोते । यत्किञ्च माता ने भयवान श्री शम्भु से भी यही प्रश्न पूछा था । देवों के देव सर्वज्ञ प्रभु ने जिस प्रकार से निवेदित किया था उन अवतार की माता के समस्त र्म इसका उत्तर धर्षित किया था लोक बंसा हो उत्तर में भी ध्याप को बतलाना है ॥१-७॥

महाप्रलयकाले च नष्टे स्यावरजगमे ।

आसीत्तमोमय सर्वमनर्वग्रहत्तारकम् ॥८

अचन्द्रमनहोराशमनग्न्यानिस्तभूतलम् ।

अप्रधान विद्यच्छून्यमन्यतेजोविबधितम् ॥९

द्रष्टृत्वाशिवहीनञ्च शब्दस्पर्शसमुज्जितम् ।

व्यपेतगन्धरूपञ्च रसस्पर्शमादिष्टमुखम् ॥१०

इत्य सत्यन्वतमनि सूचीभेद्ये निरन्तरे ।  
 तत्सद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्यासदं क पतिपाद्यते ॥११  
 धमनोगोचरोवाचा विषय न कथ्य चन ।  
 अनामरूपघणञ्च नस्यूल नच यत्कृशाम् ॥१२  
 अल्लस्वदीर्घमलघुगुरुत्वपरिवर्जितम् ।  
 न यत्रोपचयः कांश्चनथा चापचयोपिच ॥१३  
 अभिषत्त मचकित्त यदस्तोति श्रुनि पुनः ।  
 सत्य ज्ञानमनन्तञ्च यदानन्दं परं महः ॥१४

जिम समय में महा प्रलय का काल उपस्थित हो गया था और यह स्थावर तथा जड़म जगत्त सभी नष्ट हो गया था उस समय में यहाँ सर्वत्र अन्धकारमय ही था । न तो गुरु था और न हल एव तारकों का ही मण्डल विद्यमान रहा था । चन्द्र, अग्नि, अश्वि, भूतल और ग्रहो रात्रि कुछ भी नहीं था । विना प्रधान वाला अन्य तेज से विभूषित यह शून्य नियत था । इसके दृष्टा में भी मह विहान था एव शब्द, स्पर्श से समुत्पन्न था । गन्ध रूप, रस, दिग्ना इन सब से रहित था । इस प्रकार के सूचीभेद्य अर्थात् अत्यन्त गहरे निरन्तर रहने वाले सत्यमन्त्र तम में वह एक नद् ब्रह्म था जिमका श्रुति के द्वारा प्रतिपादन किया जाता है । वह मन, वाणी का किमी भी प्रकार से गोचर विषय नहीं था । उसका कुछ भी नाम, रूप और वर्ण नहीं था । वह न तो स्थूल ही था और न सूक्ष्म था । वह ह्रस्व, दीर्घ, लघु, गुरु मयसे वर्जित था । न तो जिममें कुछ भी उपचय था और न कोई भी अपचय ही था । श्रुति बहुत ही चकित हो कर मदी कहती थी कि कुछ है जो माय स्वरूप, अनन्त, ज्ञानरूप, परम आनन्द रूप एक तेज है ॥८-१४॥

अप्रमेयमनाकारमविकारमनाश्रुति ।

निर्गुण योगिगम्यञ्च सर्वध्याप्येकारणम् । १५

निर्विकल्पं निरारम्भ निर्माय निरुपद्रवम् ।

यस्यैतद्यं सविकल्प्यन्ते सजाः संज्ञोदितस्यैव ॥१६



तस्यंकलस्य धरतोद्वितीयेच्छाभवत्किल ।

अमूर्त्तेनस्वमूर्त्तिश्च तेनाकल्पिस्वलीलया ॥१७

सर्वेश्वर्यगुणीपेतासर्वज्ञानमयी शुभा ।

सर्वगा सर्वरूपा च सर्वहृत्सर्व कारिणी ॥१८

सर्वैकवन्द्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसङ्कृतिः ।

परिकल्प्येति तां मूर्त्तिमोश्वरी शुद्धरूपिणीम् ॥१९

अन्तर्दधे परारूपं यद् ब्रह्म सर्वगमव्ययम् ॥२०

श्रुति भी यही कहती है कि वह ब्रह्म अप्रमेय, भाषार से रहित, जविहार, बिना आकृति धाना, निगुण, उपद्रवों से हीन, योगियों के द्वारा ही जानने के योग्य, सर्व व्याप्य, एक मात्र कारण रूप, निर्विकल्प, निरारम्भ, माया से शून्य ऐसा ही वह है जिसके विषय में इमी प्रकार से अनेक विकल्प होते हैं ये ही उसकी सज्ञोदित की सजाएँ हैं । इस भाँति एक क्वच उनके सञ्चरण करते हुए अभी में एक स्वयं ही दूसरी इच्छा समुत्पन्न हुई थी और उस अमूर्त्त ने अपनी एक मूर्त्ति अपनी ही लीला से कल्पित की थी जो कि सब ऐश्वर्य और समग्र गुणों से समुपेत थी तथा सर्व ज्ञान मयी, शुभा, सर्वत्र गमन करने वाली, सर्वरूपा, सर्वहृत् और सब कुछ करने वाली थी । वह सभी के द्वारा वन्द्यमाना, सबकी छाया और सर्वदा सर्व संहृति रूपा थी । ऐसी उस शुद्ध रूप वाली ईश्वरी उस मूर्त्ति को कल्पना करके वह सर्वग अव्यय ब्रह्म जो परारूप है अन्तर्हित होगये थे । १५-२०॥

अमूर्त्तं यत्पराख्यं वैतस्यमूर्त्तिरहं प्रिये !।

अर्वाचीनपराचीना ईश्वरं मां जगुर्बुधाः ॥२१

ततस्तदेकलेनापि स्वरं विहरतामथा ।

स्वविग्रहात्स्वयं सृष्टास्वशरीरानपायिनी ॥२२

प्रधान प्रकृतित्वाञ्चा मायांगुणवतीपराम् ।

बुद्धितत्त्वस्यजननीमाह्वविकृतिवजिताम् ॥२३

युगपच्च त्वयाशक्त्यासाककालस्वरूपिणा ।

मयाऽद्य मुपेयात्तश्चेन्नचापिविनिमित्तम् ॥२४

साशक्ति प्रकृतिः प्रोक्ता स तु मानीश्वरः परः ।  
 ताम्याञ्चरममाणाम्यातस्मिन्क्षेत्रे घटोद्भव ॥२५  
 परमानन्दरूपा म्या परमानन्दरूपिणी ।  
 पञ्चकोशपरीमाणे स्वपादतलनिमित्ते ॥२६  
 मुने! प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रकदाचन ।  
 विमुक्त हि शिवाम्या यदविमुक्तं ततो विदु ॥२७  
 न यदा भूमिवलयं न यदाऽप्या समुद्भव ! ।  
 तदा विह्वलुं मीशेन क्षेत्रमेतद्विनिमित्तम् ॥२८

हे प्रिये ! जो पराक्षय दसका प्रमूर्ता रूप या उसकी मूर्ति ही मैं हूँ ।  
 अर्धाचीन और पराचीन बुधगण मुझको ही ईश्वर कहकर मान किया  
 करते हैं । इसके उपरान्त एक काल और स्वतन्त्र रूप से विहार करते हुए  
 मैंने अपने ही विग्रह से अपने ही शरीर वाली, अनपायिनी प्रधान प्रकृति  
 प्रापको जो माया और परा गुणवती हैं सृजन किया था । आपको बुद्धि  
 तत्त्व की जननी एवं विकृति से रहित कहते हैं । एक साथ शक्तिरूपिणी  
 प्रापके साथ काल रूपी आद्य पुरुष मैंने पापो से रहित वह क्षेत्र विशेष  
 रूप से निमित्त किया है ॥२१-२४॥ भगवान् स्कन्द देव ने कहा—वही  
 शक्ति प्रकृति वही गमी है और पुरुष पर ईश्वर कहे गये है । हे घटोद्भव  
 उन दोनों के उस क्षेत्र में सञ्चरण करते हुए जो कि परम ध्यानन्द के  
 स्वरूप धाते हैं उस परमानन्द रूप धाते पाँच कोश के परिमाण  
 से युक्त, अपने ही पाद तल के द्वारा निमित्त यह क्षेत्र है । हे  
 मुने ! यह क्षेत्र प्रलय काल में भी जबकि सभी का विलय होजाया  
 करता है शिव और शिवा से विमुक्त नहीं हुआ करता है अतएव वह  
 “अविमुक्त” इस नाम से प्रख्यात हो गया है । हे जल से समुत्पन्न होने  
 वाले ! जिस समय में यह भूमि मण्डल भी नहीं था उसी समय में ईश्वर  
 ने विहार करने के लिये इन क्षेत्र का निर्माण किया है ॥२५-२८॥

इदं रहस्य क्षेत्रस्य वेदकोऽपि न कुम्भज ।

गास्तिनाय न वक्तव्यकदाचिच्चर्मचक्षुषे ॥२९

श्रद्धालवे विनीताय त्रिकालज्ञानचक्षुषे ।  
 शिवभक्तागशान्ताय वक्तव्यञ्चमुमुक्षवे ॥३०  
 अविमुक्तं तदारभ्य क्षेत्रमेतदुदीर्यते ।  
 पर्यङ्कधृतं शिवयोर्निरन्तरसुखास्पदम् ॥३१  
 अभाव कल्पते मूर्ख्यदा च शिवयोस्तयोः ।  
 क्षेत्रस्यास्य तवाभावः कल्प्यो निर्वाणकारिणः ॥३२  
 जनाराध्यमहेजानमनयाप्यचक्राशिकाम् ।  
 योगाद्युपायविज्ञोऽपिननिर्वाणमवाप्नुयात् ॥३३  
 अस्यानन्दवनं नाम पुराऽकारिपिताकिनः ।  
 क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वादविमुक्तमनन्तरम् ॥३४  
 आनन्दकन्दवीजानामङ्कुराणि पतस्ततः ।  
 ज्ञेयानि सर्वलिङ्गानि तन्मिन्नानन्दकानने ॥३५  
 अविमुक्तमिति स्थितमामीदृश घटोद्भव ।  
 तथा चास्याम्यथ मुने । यथाऽऽसीन्मणिकर्णिका ॥३६

हे कुम्भज ! इस क्षेत्र के इस रहस्य को कोई भी नहीं जानता है । जो सर्व चक्षु वाला नास्मिक हो उसके आगे इस परम गोपनीय रहस्य को कभी भी नहीं कहना चाहिए । जो श्रद्धालु हो, परम विनीत हो, त्रिकाय के ज्ञान की चक्षु वाला जो हो, शिव के परम भक्त, शान्त और जो मुक्ति प्राप्त करने का इच्छुक हो उसको ही यह कहना चाहिए । तभी से आरम्भ करके यह क्षेत्र अभिमुक्त इस नाम से कहा जाया करता है । यह शिव और शिवा इन दोनों का पर्यङ्क के समान ही है और निरन्तर सुख का अस्पद होता है ॥३६-३१॥ जिस समय में मूर्खों के द्वारा उन दोनों शिव और शिवा का अभाव कल्पित किया जाता है उसी समय में निर्वाण देने वाले इस क्षेत्र का अभाव कल्पना करने के योग्य होता है ॥३२॥ महेश्वर प्रभु की आराधना न करके और वाशी पुरी में न पहुँच कर जो उपायों का बिना भी योग से ही निर्वाण पद को प्राप्त नहीं किया करता है ॥३३॥ पिताकी मगधात् ने ही पहिले इसका आनन्दवन यह नाम रखा था क्योंकि यह क्षेत्र आनन्द का हेतु होता था । इसके अन्तर

इसका नाम अविमुक्त रखवा गया था । जहाँ-उहाँ पर आनन्द कण्ठ धीजो के अकुर वहाँ पर जानने चाहिए । उस आनन्द कानन में सभी निद्रा जानने के योग्य हैं । हे षटोद्भव ! इस प्रकार से यह अविमुक्त इस नाम से विख्यात हुआ था । हे मुने ! और भणिकणिका त्रिस तरह से हुआ था उसको मो में कद्रता है ॥३४-३६॥

प्रागानन्दवने तत्र शिवयोरममाणयो ।

इच्छेत्यभूत्कलशज्ज। सृज्यः कोप्यपर. किल ॥३७

यस्मिन्पस्ते महाभारे आत्रा स्व.स्वरचारिणौ ।

निर्वाणश्राणन कुर्व. केवल काशिशायिनाम् ॥३८

स एव सर्वं कुरुते स ए व परिपाति च ।

स एव सवृणोत्यन्ते सर्वं श्रयंनिधि सव ॥३९

चेत नमद्भमाकुञ्च्यविन्ताकल्लोलदोलितम् ।

सत्वरत्नतमोप्राहरजोविद्रुमवल्लितम् ॥४०

यस्य प्रसादातिष्ठाव. सुखमानन्दकानेन ।

परिक्षिप्तमनोवृत्तौ बवहिचिन्तातुरे सुखम् ॥४१

सप्रघापेतिस विभु सर्वं तश्चिरस्वरूपया ।

तथा सहजगदाश्याजगद्धाताऽथघूर्जटिः ॥४२

सव्ये व्यापारयाञ्चक्रे दृशमङ्गे सुधामूचम् ।

ततः पुमानाविरासोदेकस्त्रैलोक्यगुन्दरः ॥४३

हे कलशज ! पहिले उस आनन्द मन में दोनो शिव और शिव के रमण करते हुए उनको ऐसी इच्छा हुई थी कि कोई दूसरा स्थल भी मृज्ज करना ही चाहिए । जिन पर समस्त भार न्यस्त करके हम दोनों स्वच्छन्द चरण करने वाले हो जावें । हम सबन काशी में शयन करने वालों को ही निर्वाण का प्राणन किया करते ॥३७-३८॥ वह ही सब कुछ किया करते हैं और वह ही परिपालन किया करते हैं । वही अन्त समय में सबका सबरण किया करते हैं और यह सभी ऐश्वर्यों के विधि हैं । यह वित्त समुद्र के समान है जो कि चिन्ता रूपिणी तरङ्गों से दालित रहा करता है । सन्दरगुण जो जो भावनायें उसमें विद्यमान हैं वही रत्न के

समान है और तमोगुण का प्रभाव ही इसमें भयानक प्राह है तथा रजोगुण के बिन्दुओं से यह वलित रहा करता है । ऐसे इस चित्त को प्राकुञ्चित करके जिसके प्रसाद से उस आनन्द कामन में सुखपूर्वक स्थित रहें । चिन्ता से आनुर परिश्रित मनोवृत्ति में सुख कहाँ हो सकता है ? उन प्रभु से यह सम्प्रधारण करके जगत् के घाता विभु धूर्जटि भगवान् ने चित्स्वरूप वाली उग जगत् की धात्री के साथ सभी ओर से अपने सध्व भंग में सुखा का स्रवण करने वाले नेत्र व्यापार वाला किया था । इसके पदधात् एक पुरुष जो शैलोक्य में परम सुन्दर था अपिभूत अर्थात् प्रकट हुआ था ॥२६-४३॥

शान्तः सत्त्वगुणोद्विक्तो गम्भीर्यंजितसागरः ।

तथा च क्षमयायुक्तो मुनेऽलद्योपमोऽभवत् ॥४४

इन्द्रनीलद्युतिःश्रीमान्पुण्डरीकोत्तमेक्षणः ।

सुवर्णाकृतिमुच्छायदुकूलयुगलावृतः ॥४५

लसत्प्रचण्डदोर्दण्डयुगलद्वयराजितः ।

उल्लसत्परमाप्रोदनाभीहृदकुशेदायः ॥४६

एकःसर्वगुणावासस्त्वेकःसर्वकलानिधिः ।

एकःसर्वोत्तमोयन्माततोय.पुरुषोत्तमः ॥४७

सतो महान्तं तं वीक्ष्य महातहिमभूगणम् ।

महादेव उवाचेदं महाविष्णुर्भवाच्युत ॥४८

तव निःश्वसितं वेदास्तेभ्यः सर्वमवैष्यसि ।

वेददृष्टेन मार्गेण कुरु सर्वं यथोचितम् ॥ ९

इत्युक्त्वा तं महेशानो बुद्धितत्त्वस्वरूपिणम् ।

शिवया सहितो रुद्रो विवेशाऽऽनन्दकाननम् ॥५०

हे मुनिवर ! यह पुरुष परम शान्त स्वरूप वाला सत्त्व गुण से उद्विक्त—गम्भीरता से सागर को भी जोर लेने वाला तथा क्षमा से युक्त बलव्य उपमा वाला था ॥४४॥ इन्द्रनील मणि के समान उसके भंग की द्युति थी, श्री से सम्पन्न पुण्डरीक के तुल्य उत्तम नेत्रों वाला—सुवर्ण के समान जाग्वल्यमान भाष्टति वाला सुन्दर कान्ति से सम्पन्न

और दो वस्त्रों से समावृत था। शोभा से युक्त एवं प्रचण्डदोरेण्ड (बाहुयुगल) से वह विराजमान था। उल्लसित परम कामोद से नाभि स्वी हृद मे कुशोत्थ होने वाला था अर्थात् शयन करने वाला था। यह एक ही थे और समस्त सद्गुणों का आवास स्थान थे। यह एक ही समस्त कलाओं के निधि थे। यह एक ही सबसे उत्तम थे। इसी कारण से यह पुरुषोत्तम हुए थे। इसके अनन्तर उनको महती महिमा से भूषित एवं महान् देखकर श्री महादेव यह बोले—हे प्रभुन् ! आप महा विष्णु ही जाइये। ये वेद सब आपका ही निःश्वसित हैं। उन से आप सभी कुछ जान लेंगे। वेद के द्वारा दृष्ट ओ मार्ग है उसी मार्ग के द्वारा आप सब समोचिन् करिए। महास्वर प्रभु बुद्धि तत्व के स्वस्वधारी उनसे यह कह कर भगवान् रुद्र फिर शिवा के साथ आनन्द कानन मे प्रवेश कर गये थे ॥४४-५०॥

ततःशुभगवाविष्णुमौलावाज्ञां निधाय च ।  
 क्षणध्यानपरोभूत्वा तपस्येवमनोदधौ ॥५१  
 खनित्वा तत्रचक्रेणरम्या पृष्करिणीहरिः ।  
 निजाङ्गम्रेदसन्दोहसलिलंस्तामपूरयत् ॥५२  
 समा महस्रं पञ्चाशत्तप उग्रञ्चचार सः ।  
 चक्रमुष्करिणीतीरे तत्र स्थाणुममाकृति ॥५३  
 तताशुभगवानीशो मृडान्यासहितोमृडः ।  
 दृष्ट्वाज्वलन्ततपसा निञ्चलमीलितेक्षणम् ॥५४  
 तमुवाच हृषीकेश मौलिमान्ःशोलपन्मुहुः ।  
 अहो महस्त्व तपस्त्वहोर्धेयं व चेतसः ॥५५  
 अहो अनिन्यनो वह्निज्वलत्स्येप निरन्तरम् ।  
 बल तप्त्वा महाविष्णो! वर वरय सत्तम ॥५६  
 मृडस्याऽऽम्नेडितमिद प्रत्यभिज्ञयाभाषितम् ।  
 उन्मीलितदृगम्भोजः समुत्तस्थौ चतुर्भुजः ॥५७

इसके अनन्तर भगवाद् विष्णु ने अपने मस्तक पर प्रभु शिव की प्राज्ञा को धारण करके एक क्षण भर ध्यान मे समाहित होकर फिर

उपस्थायी करने ही में अपनी मर स्थिर किया था । श्री हरि ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा वहाँ पर एक सुरम्य पुष्करिणी का खनन करके अपने मर्गों से प्रवहमान स्वैद के तब से उसको परिपूर्ण कर दिया था ॥५१-५२॥ फिर उन्होंने पचास सहस्र वर्षों तक प्रत्यन्त उग्र तपस्या की थी । इस चक्र पुष्करिणी के तट पर वहाँ पर एक स्थाणु (सूखे हुए काष्ठ का ढठन) के समान आकृति वाली मृदानी के सहित भगवान ईश मूढ ने तप से जलते हुए—निद्रमल नेष मृदे हुए इनको देखा था । उस समय से बारम्बार मस्तक को हिमाते हुए भगवान शिव भगवान हृषीकेश से कहा—मोही ! इस उपस्थायी की कौसी अद्भुत महिमा है तथा इस तपस्वी के चित्त का धर्म्य को कैसा विलक्षण है । ओ हो ! बड़े ही भावपूर्ण की बात है कि बिना ही ईंधन के यह अग्नि निरन्तर बलना रहा करती है । हे महा विष्णो ! अब आप तप मत करिये । यह भावकी पर्याप्त तपस्मा ही चुस्ती है । हे सतम । धार मुकते बरदान गीग लीजिए ॥५३-५६॥ यह तो भगवान् सन्नु का ही कथन है—देखा उस भाषित को पहिचान कर अतुमुंज मनु अपने कमल के समान नेत्रों का खोजकर सड़े हो गये थे ॥५७॥

अन्यत्रकृत्वापापानि वहूनि सुमहान्ति च ।

अश्रद्दधानोऽतस्त्वन्नो मद्यश्च विपद्यते ॥५८

महिमन्यनेभिर्भोपि क्षीत्रस्यात्यजनादेन !

तस्ययागविरुद्धिदद्यात्तानिनामप सुश्रुत ॥५९

पञ्चक्रोशीश्रविशतस्त्रस्यपातकसन्ततिः ।

वह्निरेव प्रतिष्ठेत नाम्नानिविशते क्वचिन् ॥६०

भयाद् बहिः स्थितायाञ्च तस्य पातकसन्ततौ ।

श्रिभूलगारापापीनां गणानां सीमचारिणाम् ॥६१

प्रवेशमाश्रादणध. सर्वैरेनोभिरुज्जितम् ।

सस्नायमणि काणिक्यापुष्यंप्राजोरयगुत्तमम् ॥६२

सर्वतीर्थेषुस्नानाद्यतपुष्यंसमवाप्यते ।

तत्पुष्यमाप्यतेसम्यग्भगिकष्यकमज्जनात् ॥६३

भगवान् शिव ने महा-घन्य स्थल में बड़े से बड़े बहुत से पापों को कण्ठके श्रद्धा भाव न रखने वाला और तस्वो का ज्ञान नहीं रखने वाला पुरुष यदि यहाँ पर विपन्न होता है। हे जनार्दन ! इस क्षेत्र की महिमा का अनभिज्ञ भी हो तो उसको जो गति अदृष्ट होती है हे सुब्रह्मन् । उसको ध्यान करो। इस पंच कोसी में प्रवेश करते हुए ही उसके पातको की सन्तति बाहिर ही खरी रहा करती है और कहीं पर भी वह उसके अन्दर प्रवेश नहीं किया करती है। भय से बाहिर ही स्थित हुई उसके पातको की सन्तति रहती है। क्योंकि विशूल हाथों में लेकर सीमा में सञ्चरण करते रहने वाले गण वहाँ रहा करते हैं उन्हीं का भय पातको को रहा करता है। मनुष्य के प्रवेश मात्र के करने ही से समस्त पापों से वह परित्यक्त हो जाया करता है और घनघ होकर फिर उस मणिकणिका में भली भाँति स्नान करके अति उत्तम पुण्य को प्राप्त कर लिया करता है। समस्त तीर्थों में स्नान करने से जो पुण्य फल प्राप्त किया जाता है उतना ही महान पुण्य-फल मणिकणिका में एक ही बार स्नान करने से प्राप्त किया जाता है ॥५८-६३॥

विधिनातत्रसस्नायमृद्गोमयकुशादिभिः ।

स्वशाखावारुणमन्त्रं द्रुं वर्षाभागंदभक्तं ॥६४

सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यसंबंदानेषुयत्फलम् ।

मणिकर्ण्यविधिस्नातः श्रद्धयातदवाप्नुयात् ॥६५

अथद्वयापिय स्नातोमणिकर्ण्यविधानतः ।

सोऽपिपुण्यमवाप्नोतिस्वर्गप्राप्तिकरं परम् ॥६६

श्रद्धया विधिवत्स्नात्वा कृत्वा देवादितर्पणम् ।

तिलवर्हिष्यं वः नम्यकसर्वं यज्ञफलं लभेत् ॥६७

श्रद्धयानोविधिस्नातः कृतसर्वोदकक्रिया ।

जपदेवान्समम्यच्य सर्वमन्त्रफलं लभेत् ॥६८

स्नात्वामोनेन विश्वेशदशानान्निपतेन्द्रियः ।

सर्वं यत्कृतं श्रेयो लभेद्वाचयमः शिवे ॥६९



स्नाने देवाचने जप्ये मलमूत्रविसर्जने ।

मौन कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनहोमयो ॥७०

उक्त मणिकर्णिका में विधि पूर्वक भली भाँति स्नान करना चाहिए, मृत्तिका, गोमय, कुश आदि से तथा अपनी शाय्या के बाह्य मन्त्रों के द्वारा दुर्घा, अपामार्ग और डाम से शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ही वहाँ पर स्नान करे । अन्य समस्त तीर्थों में जो स्नानादि करने का पुण्य-फल होता है तथा सम्पूर्ण दानों में जो पुण्य होता है वही पुण्य मणिकर्णिक में विधि पूर्वक स्नान करने से और श्रद्धा के साथ स्नान करने में प्राप्त कर लिया जाता है । मणिकर्णिका में बिना श्रद्धा की भावना के भी जो विधि के सहित स्नान कर लेता है वह भी पुण्य प्राप्त कर लिया करता है जाकि परम स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराने वाला होता है । श्रद्धा से विधि पूर्वक स्नान करके देवादि का तर्पण तिल, बर्हि और जौ से करे तो वह मनुष्य भली-भाँति सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त किया करता है । नियत इन्द्रियो वाला पुरुष मौन होकर स्नान करे और फिर ध्या विश्वनाथ भगवान् के दर्शन करे तो हे शिवे ! यह मौनी समस्त व्रतों के पुण्य एवं धर्म को पा लेता है । श्रद्धा वाला पुरुष सविधि स्नान करके और सम्पूर्ण जल की प्रिया करके जाप करता हुआ देवों का अर्चन करे तो समस्त मन्त्रों के फल को पा लिया करता है । मौन रहने की बहुत बड़ी महिमा है । स्नान में, देवों के अर्चन में, जाप करने में, मल-मूत्र का त्याग करने में तथा वातून करने में और होम करने के अनन्तर में प्रयत्न पूर्वक मौन रहने का ही सम्पादन रक्षना चाहिए ॥६४-७०॥

विश्वेश्वर समन्वय्ये सूपचारं विधानतः ।

यावज्जीव शिवार्चायाः फलमाप्नोति वै सकृत् ॥७१

दत्त्वाऽरूपमपि देवेशि!न्यायेनोपाजितधनम् ।

अविमुक्तममक्षेत्रे न दरिद्रो भवेत्त्ववचित् ॥७२

विविधधनमावर्ज्ययोगविमुक्तं न यच्छति ।

सप्राप्यनिधनं मूढोऽप्यत्र शोचति सर्वदा ॥७३

रम्याणि यानि रत्नानि भोगजाश्वान्वराप्यपि ।

कृतानि तानि श्रेयोर्धर्मविमुक्तनिवासिनाम् ॥७४

विश्वेशप्रीणनार्थापघननिघनमेववा ।

न्यायेनकाश्याय कुर्यात्सघन्यःसचधर्मवित् ॥७५

योऽप्री विश्वेश्वरो देवः काशीपुर्यामुमे ! स्थितः ।

लिङ्गरूपधर मास्तान्ममर्धे यास्पद हितव ॥७६

समस्त पूजनोपचारो के द्वारा श्री विघ्नेश्वर प्रभु का विमान के साथ सम्पर्धन करना चाहिए । जब तक जोखित रहे तब तक एक बार के ही शिवार्धन का फल प्राप्त किया करता है ॥७१॥ हे देवेशि ! न्याय से उपाजित धन वा बहुत थोड़ा मा भी भाग दान करके उस धविमुक्त क्षेत्र में फिर कभी वह धनुष्य दरिद्र नहीं हुआ करता है ॥७२॥ अनेक प्रकार के धन को प्राप्त करके भी जो मूढ़ इस अविमुक्त क्षेत्र में दान नहीं देता है वह मूढ़ मृत्यु प्राप्त करके फिर मन्यत्र सर्वदा ही शोच किया करता है । जो रम्य रत्न है तथा गी, गज, अश्व और वस्त्र आदि हैं वे सब धविमुक्त में निवास करते वानों के धर्म के लिये ही किये गये हैं । श्री विश्वनाथ भगवान् के प्रसन्न करने के ही लिये यह धन तथा निघन है । न्यायपूर्वक जो वाणी में इनका उपयोग किया करता है वही पुरव परम धन्य है और यह ही ननुष्य धर्म का ज्ञाता है । हे उमे ! जो यह विश्वनाथ देव काशी-पुरी में लिङ्ग के स्वरूप को धारण करके स्थित है वह साक्षात् मेरा स्वरूप है और परम धर्म के आस्पद होते हैं ॥७३-७६॥

धविमुक्त महर्षोऽपञ्चक्रोऽपरीमितम् ।

ज्योतिर्लिङ्गं तदेकहिंशं यद्विश्वेश्वरानिधम् ॥७७

एकदेशस्थितमपियथामार्तण्डमण्डलम् ।

दृश्यते सर्वं ग सर्वं काश्याविश्वेश्वरस्तथा ॥७८

निष्प्रसूहेन योगेन नानाजन्माजितेन च ।

परकल लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्या स्वजतस्तनुम् ॥७९

तप्त्वा तथासि सर्वाणि बहुकाल जितेन्द्रियैः ।

यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यामेकराश्रितः ॥८०

अक्षेत्रमहिमज्ञोऽपि श्रद्धाहीनोऽपि कालतः ।  
 काशीप्रवेशादनघोऽमृतत्वं लभते मृतः ॥८१  
 कृत्वाप्येनासि चोग्राणि कालात्प्राप्याथ काशिकाम् ।  
 त्यक्त्वा तनुं प्रसादान्मे मामेव प्रतिपद्यते ॥८२  
 विना मम प्रसादं च क काशीप्रतिपद्यते ।  
 विना यध्नविशालाक्षिदिनकृत्कइहोच्यते ॥८३  
 अप्राप्यकाशीकोदेवि! निरन्तरसुखं लभेत् ।  
 ब्रह्माद्याः प्राकृतैः पाशैर्यतो वद्वानिरन्तरम् ॥८४

यह अविमुक्त एक परम महान् क्षेत्र है जो पाँच कोश के परिमाण में स्थित है और वह श्री विश्वनाथ नाम वाले प्रभु एक ही ज्योतिर्लिङ्ग जानने चाहिए । एक ही देश में स्थित जिस तरह से यह मार्तण्ड मण्डल सब के द्वारा सर्वत्र यमन करने वाला दिखलाई दिया करता है वैसे ही काशी में यह भगवान् विश्वनाथ प्रभु हैं । निर्विघ्न योग के द्वारा जो कि अनेक जन्मों में अज्ञित किया गया है जो भी कुछ फल भग्यत्र प्राप्त होता है वह केवल काशीपुरी में निवास करके शरीर के त्यागने से ही मिल जाया करता है ॥७७-७९॥ इन्द्रियों को जात कर के बहुत काल पर्यन्त समस्त तपश्चर्याओं का तपन करके अन्य स्थान में मनुष्यों के द्वारा तो पुण्य-फल प्राप्त किया जाता है वह समस्त काशीपुरी में एक रात्रि के ही निवास करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥८०॥ इस महाक्षेत्र की महिमा को न जानने वाला भी और धृष्टा से रहित भी उस पुरुषकाल से काशी में प्रवेश करने ही से निष्ठाप हो जाया करता है और वहाँ पर मृत्यु प्राप्त करके अमृतद्वय को प्राप्त कर लेता है ॥८१॥ महान् उग्र पापों को करके भी कोई कालव्रत काशीपुरी को प्राप्त कर लेता है और वही पर शरीर का त्याग करता है तो वह मेरे प्रसाद से मुक्त को ही प्राप्त कर लिया करता है ॥८२॥ बिना मेरी कृपा के कौन काशी पुरी को प्राप्त कर सकता है अर्थात् मेरे प्रसाद के हुए बिना कोई भी काशी पुरी को प्राप्त ही नहीं कर सकता है जिस तरह से हे विशालाक्षि ! यहाँ पर सूर्य के बिना दिनकृत् कौन कहा जाया करता है ? ॥८३॥ हे देवि !

काशी को प्राप्त न करके निरन्तर सुख कौन प्राप्त कर सकता है ? मर्णात् कोई भी नहीं करता है क्योंकि ब्रह्माय सभी प्राकृत पाशो से निरन्तर बद्ध है ॥८४॥

चतुर्विंशतिभिः पाशैस्त्रिगुणं क्रियया दृढैः ।

कण्ठे बद्धा विमुच्यन्ते कस्य काशी विना जनाः ॥८५॥

बहूःमर्गो योगोऽथ कच्छसाध्यन्तपो हियत् ।

योगाद् भ्रष्टस्तपोभ्रष्टो गर्भंक्लेशसहः पुनः ॥८६॥

कृत्वाऽपि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत् ।

भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनमुक्तिमवाप्स्यति ॥८७॥

काश्या मृताना जन्तूनादेवात्पापकृतामपि ।

न पातो नरकेतेपातेषां शास्ताहमेवयत् ॥ ८८ ॥

कार्यं विज्ञाय सापाय स्मृत्वा गर्भस्य वदनाम् ।

त्यक्त्वा राज्यमपि प्राज्य सेव्या काशी निरन्तरम् ॥८९॥

अर्तकितसमम्येत्य यमदूना सुदारुणा ।

यद्ध्वापाशैर्हनिष्यन्तिक्षिप्रकाशीतत श्रयेत् ॥९०॥

नपापेभ्यो भययत्र नभययत्रव यमात् ।

न गर्भवासभीर्यत्र ता काशी को न सश्रयेत् ॥९१॥

अद्यप्रातः परश्वोवामरणप्राथमेव च ।

यावत्कालविलम्बोऽस्तितावत्काशीनमाश्रयेत् ॥९२॥

प्राप्ते तु मरणे पु सा पुनर्जन्म पुनर्मृतिः ।

अपुनर्भवभूमिं च तस्मात्काशी श्रयेद्बुधा ॥९३॥

चौशीत पाशो से जो कि त्रिगुणों की क्रिया से अत्यन्त दृढ हैं । सभी मनुष्य इनसे कण्ठ में बद्ध रहा करते हैं ये काशी के बिना कैसे विमुक्त हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं होते हैं ॥८५॥ यह योग बहुत उप सर्गों वाला होता है अर्थात् इसमें अत्यधिक विघ्न बाधाएं हुआ करती हैं और तप-दृष्ट्या जो होती है वह बहुत कष्टों के द्वारा साध्य होती है । योग से भ्रष्ट हो जावे और तप से जो भ्रष्ट हो जाता है वह फिर गर्भ के क्लेशों का

सहन करने वाला बनता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म होता है ॥८६॥ काशी पुरी में रहकर भी पापों को करके भी जो काशी पुरी में ही अपने प्राणों का त्याग किया करता है वह रुद्रदेव का पिशाच होकर भी पुनः मुक्ति को प्राप्त किया करता है ॥८७॥ काशीपुरी में मृत हुए जन्तुओं के यदि वे दैववश पाप करने वाले भी हों तो उनका पतन नरक में नहीं होता है क्योंकि उनका दासक भी में ही होता है । अर्थात् से युक्त इस शरीर को समझ कर और गर्भगत वेदना का ज्ञान करके अर्थात् स्मरण करके परम विशाल राज्य को भी त्याग करके निरन्तर काशीपुरी का ही सेवन करना चाहिए ॥८८-८९॥ अनन्त के समीप में आकर सुदारुण यमराज के दूत पानों से घाँवकर हनन करेंगे । इसलिये बहुत शीघ्र ही काशीपुरी का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए । काशी में मृत्यु प्राप्त होजाने पर दुःख न जन्म ही होता है और न मृत्यु ही होती है । जहाँ पर पापों से कोई भी भय नहीं होता है और न यमराज के द्वारा दण्ड प्राप्त करने का ही फिर भय रहा करता है । वहाँ पर गर्भ में बान करने का भी भय नहीं रहता है ऐसी उस काशी का कौन मूढ़ है जो आश्रय ग्रहण न करेगा । यह काशीपुरी तो अपुनर्भव की भूमि है । इसलिये ध्रुव पुरुष का कर्तव्य है कि उस काशीपुरी का सेवन करे ॥९०-९३॥

पुत्रक्षेत्रकलत्राख्यां त्यक्त्वा माया हि वैष्णवीम् ।

भ्रान्तरेज्जेकरूपाम्मघघ्नी काशिकां श्रयेत् ॥९४

दूरं मे मरण युवाहमधुना घाय्यं न चित्ते स्थिति

श्रोतव्यो निमृत्तं कृतान्तमहिषप्रैवेयघण्टारव ।

नैकटघात्रकटोत्कटश्रमघटामप्राप्य हित्वा द्रुतं ।

लीर्णा पर्णकुटी ततः पट्टमतिगच्छेत्पुरी धूर्जटे ॥९५

अगस्त्यस्य पुरःसूत! कथयित्वा कथामिमाम् ।

सर्वं पापप्रशमनी पुनःस्कत्न उवाचह ॥९६

पुत्र, क्षेत्र और कलत्र नाम वाली वैष्णवी माया का त्याग करके भ्रान्तर में अनेक रूप वाली और भय का नाश करने वाली काशीपुरी का सेवन करना चाहिए । भगवान् रुद्र ने कहा—मेरा मरण अभी

बहुन दूर है और अभी मैं युवा हूँ, ऐसा वित्त में कभी भी धारण नहीं करना चाहिए चुप-चाप यमराज के वाहन महिष (भैंसा) के पले में बंधे हुए घण्टा की ध्वनि सुननी चाहिए । निकटना में प्रकट उल्कट धरा को पाकर ही शीघ्र त्याग करके पटुमति वाले पुरुष को घूर्जटि भगवान् की पुरी काशी में वीर्यं पर्यंकुटी का ही निवास ग्रहण करना चाहिए । भगवान् व्यास देव ने कहा—हे सून ! भगस्त्य के आगे हम कथा को जो समस्त पापों का प्रणमन करने वाली है यह कह कर फिर भगवान् स्कन्द ने कहा या ॥६४-६६॥

५०—गङ्गामहिमादर्णन एवं दशहरास्तोत्रकथन

वाराणसोतीप्रायत यथा चानन्दकाननम् ।

तथा च कश्यपामीहदेवदेवेन भाषितम् ॥१

निशामयमहाबाहो ! विष्णो त्रैलोक्यसुन्दर ! ।

प्राप्त वाराणसीत्याख्यामविमुक्त यथा तथा ॥२

निदग्धान्सागराञ्छ्रुत्वा कपिलक्रोधवह्निना ।

अश्वमेधाश्वसमुक्तान्पूर्वजान् स्वान् भगोरथः ॥३

सूर्यवंशे महातेजा राजा परमधार्मिकः ।

आरिराधयिपुंगुंङ्गां तपसे कृतनिश्चयः ॥४

हिमवन्त नगश्रेष्ठममात्यन्यस्तराज्यधूः ।

जगाम यशसा राशिरुद्दिधीर्युः पितामहान् ॥५

ब्रह्मशापाग्निनिदग्धान्महादुर्गतिगानपि ।

विना त्रिमार्गंगा विष्णो ! को जन्तुंस्त्रिदिवं नयेत् ॥६

भगवान् श्री स्कन्द ने कहा—यह जिस प्रकार से आनन्द कानन है वैसे ही वाराणसी, इस नाम से भी प्रसिद्ध है और मैं उसी भक्ति से देवों के देव के द्वारा भाषित को कहता हूँ । श्री ईश्वर ने कहा—हे महान् बाहुओं वाले ! हे विष्णो ! हे त्रैलोक्य में परम सुन्दर । अब आप यह सुनाइये कि जैसे यह अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी इस नाम को प्राप्त हुआ है ।

राजा भगीरथ ने कपिल मुनि के क्रोध की घण्टि से अश्रुमेघ यज्ञ के बन्ध से समन्वित अपने पूर्वजों को नगर के पुत्रों को निर्वन्ध सुनकर यह सूर्य वन में महान् तेजस्वी शीत परम धार्मिक राजा हुआ था। इसने गङ्गा की आराधना करने की इच्छा वाता होकर तप करने के लिये निश्चय किया था ॥१-४॥ इसने अपने मन्त्रियों पर समग्र राज्य का भार छोड़कर फिर यह पर्वतों में परम श्रेष्ठ हिमालय पर सुन्दर यशों का समुदाय स्वरूप राजा भगीरथ अपने पितानहो कष उद्धार करने की इच्छा वाता होकर तप करने के लिये चला गया था। हे विष्णो ! यह धाम है भस्मसाए हुए महान् दुर्बलि वाले उन नगर के पुत्रों को त्रिमासगा (गङ्गा) के बिना किसकी सामर्थ्य है जो स्वर्ग में पहुँचा सके। ॥५-६॥

मयैव सायरामूर्तिस्तोयरूपा शिवात्मिका ।

ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारः प्रकृतिः परा ॥७

शुद्धविद्यास्वरूपा च त्रिशक्तिः करुणात्मिका ।

आनन्दामृतरूपा च शुद्ध धर्मस्वरूपिणी ॥८

यामेता जगता धात्री धारयामि स्वलीलया ।

विश्वस्य रक्षणार्थाय परब्रह्म स्वरूपिणीम् ॥९

त्रैलोक्ये यानितीर्थानि पुण्यक्षेत्राणि यानि च ।

सर्वत्र सर्वे ये धर्माः सर्वे यज्ञाः सदक्षिणाः ॥१०

तपांसि विष्णो ! सर्वाणि श्रुतिः सांखा चतुर्विधा ।

अहं च त्वञ्च कश्चापि देवतानां गणाश्च ये ॥११

पुष्ट्यार्थाश्च सर्वे वेशक्तयो विविधाश्च याः ।

गङ्गायाः सर्वे एवंते सूक्ष्मरूपेण सस्थिताः ॥१२

सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वक्रतुषु दीक्षितः ।

चीर्णं सर्वं ब्रह्म, सोऽपि यन्तु गङ्गां निवेदते ॥१३

तपांसि तेन तप्तानि सर्वदानप्रदः स च ।

स प्राप्तयोगनियमो यस्तु गङ्गां निवेदते ॥१४

यह गङ्गाजी मेरी ही एक जल के स्वरूप धामी द्रव्ये मूर्ति है जो शिवात्मिका ही है। यह अनेकों ब्रह्माण्डों की आधार और परा प्रकृति है।

यह शुद्ध विद्या के स्वरूप बानी, तीन शक्तियों से युक्त, कर्णारिमिका, आनन्दामृत के रूप वाली एवं शुद्ध धर्म के स्वरूप बानी है। जिस इसको समस्त जगतों की धात्री को मैं अपनी लीला ही से धारण किया करता हूँ। इस पर ब्रह्म के स्वरूप वाली को मैं विश्व की रक्षा करने के ही लिये धारण किया करता हूँ। इस त्रिलोकी में जो भी तीर्थ हैं तथा पुण्य के क्षेत्र हैं, मन्त्र सब जो धर्म हैं तथा दक्षिणा से युक्त यज्ञ है और हे विष्णो ! समस्त जो तप है तथा अगों के महित सब चारों प्रकार के वेद हैं, मैं घोर घाप और कोई भी, देवताओं के गण जो हैं, समस्त पुष्ट्यार्थ तथा विविध शक्तियाँ ये सभी इस गङ्गा में सूक्ष्म रूप से सन्निहित रहना करते हैं। जो पुष्ट्य श्री गङ्गा देवी का सेवन करता है उसने सम्पूर्ण योग के नियमों को प्राप्त कर लिया है और उस सभी तपों का भी तपन कर लिया है तथा वह सभी दानों का प्रदाता होगया है ॥७-१४॥

सर्वे वर्णाश्रमेभ्यश्च वेदविद्भ्यश्च वै तथा ।

शास्त्रार्थपारगेभ्यश्च गङ्गास्नायी विशिष्यते ॥१५

मनोवाक्श्रावणैर्दोषैर्मुंष्टो बहुविधैरपि ।

वीक्ष्य गङ्गा भवेत्पूतः पुरुषो नात्र संशयः ॥१६

कृते सर्वत्र तीर्थानि त्रेतायां पुष्करम्परम् ।

द्वापरे तु कुरुक्षेत्रे कलौ गङ्गाव केवलम् ॥१७

पूर्वंजन्मान्तराम्यासवासनावशतो हरे ! ।

गङ्गातीरे निवास स्यान्मदनुग्रहत परात् ॥१८

ध्यान कृते मोक्षहेतुस्त्रेतायां तच्चर्व तपः ।

द्वापरे तद्द्वय यज्ञा कलौ गङ्गाव केवलम् ॥१९

यो देहपतनाद्यावद्गंगातीरं न मुञ्चति ।

स हि वेदान्त विद्योगी ब्रह्मचर्यं श्रतो सदा ॥२०

कलौ कल्पचित्तानां परद्रव्यरताश्मनाम् ।

विधिहीनक्रियाणाञ्च गतिगमा विना न हि ॥२१

समस्त वर्णों घोर सभी आश्रमों से तथा वेदों के वेत्ताओं से और शास्त्रों के पूर्ण पारगामी विद्वानों से भी गंगा में स्नान करने वाला पुरुष



विशिष्ट हृषा करता है ॥१५॥ मन-वाणी और काया से समुत्पन्न दोषों से जो कि बहुत से प्रकार के होते हैं दुष्ट पुरुष भी गंगा का दर्शन प्राप्त करने ही पवित्र हो जाया करता है—ऐसा केवल गंगा के दर्शन मात्र का प्रभाव होता है—इसमें लेशमात्र भी सदाय नहीं है। कृतयुग में सर्वत्र तीर्थ है—त्रेता युग में पुष्कर ही परम तीर्थ है। द्वापर युग में कुक्षेत्र सर्व शिरोमणि तीर्थ माना गया था और अब कलियुग में केवल गंगा ही सर्वोपरि विशाजमान प्रमुख तीर्थ है। हे हरे ! पूर्व जन्मों के अभ्यास से जो वासना है उसी के बल में यदि गंगा के तट पर निवास प्राप्त हो जावे तो यह मेरा ही परम धनुषह है। कृतयुग (मत्स्ययुग) में ध्यान की ही मुख्यता थी। त्रेता में तपश्चर्या प्रधान मानी गई थी। द्वापर में ये दोनों ही तथा यज्ञों का यजन प्रधान माने गये थे और अब इस घोर कलियुग में अब कि ध्यान तप और यज्ञों का होना ही नितान्त आवश्यक सा है केवल इस उद्धार के लिये गंगा ही सब कुछ है। जो मनुष्य देह के पतन होने के समय तक गंगा के तट का त्याग नहीं करता है वह वेदान्त का ज्ञाता योगी है और तदा ब्रह्मचर्य के धर्म का पालन करने वाला है। कलियुग में कलुषित चित्त वाले तथा पराये धन के पाने में रति रखने वाले—विविध तथा क्रिया से सर्वथा हीन पुरुषों की केवल एक गंगा ही उद्धार करने वाली होती है। यह न हो तो ऐसे पुरुषों का कल्याण ही नहीं हो सकता है ॥१६-२१॥

अलदमो. कालकर्गी च दुःस्वप्नो दुर्विचिन्तितम् ।

गंगामगैतिजपनात्तानि नोपविशन्ति हि ॥२२

गंगा हि सर्वभूतानामिहामुष फलप्रदा ।

भादानुरूपतो विष्णो सदा सर्वजगद्धिता ॥२३

यज्ञदानतपोयोग जपाः सनिवमायमाः ।

गंगासेवानहृत्साशं न लभन्ते कलौ हरे ! ॥२४

किमष्टागेन योगैत्र किं तपोभिः किमच्चरैः ।

वास एव हि गंगायां ब्रह्मज्ञानस्य कारणम् ॥२५

अपि दूरस्थितस्यापि गंगामाहात्म्य वेदिनः ।

अयोग्यस्यापि गोविन्द ! भक्त्या गगा प्रसीदति ॥२५

श्रद्धाधर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धाज्ञानम्परन्तपः ।

श्रद्धास्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धया सा प्रसीदति ॥२७

अज्ञानरागलोभाद्यैः पृंसा सम्मूढचेतनाम् ।

श्रद्धा न जायते धर्मं गंगाया च विशेषतः ॥२८

घलदमी—कालकण्ठी—दु स्वप्न—दुविचिन्तन अर्थात् बुरे विचार  
 "गङ्गा-गङ्गा" इसके नामों का इस प्रकार से जाप करने से ये सब समीप  
 में ही नहीं ठहरा करते हैं । अर्थात् इनका कोई भी बुरा प्रभाव नहीं  
 होता है । यह गङ्गा समस्त प्राणियों को इस लोक में और परलोक में  
 दोनों ही जगह पर फल प्रदान करने वाली होती है । हे विष्णो ! भावों  
 के अनुसार यह सदा ही सम्पूर्ण जगत् के हितों के करने वाली है । हे  
 हरे ! यज्ञ—दान—तप—योग—अप—नियम और यम ये सब गंगा के  
 सेवन के महत्त्व अथवा के बराबर भी इस कलियुग में नहीं होते हैं । इस  
 घाटों में ही वासे योग के साधन से क्या लाभ है ? अथवा तपश्चर्चाओं  
 के करने से भी क्या प्रयोजन है तथा यज्ञों के यजन से भी क्या सिद्धि  
 होती है । इन सबके द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है जो कि  
 आत्मोद्धार का हेतु है सो यह ब्रह्मज्ञान तो गङ्गा तट पर निवास करते  
 ही हो जाना करना है क्योंकि यह निवास ही उसका कारण होता है ।  
 हे गोविन्द ! गंगा नदी से बहुत दूर में भी स्थित हो तथा गंगा के  
 माहात्म्य का ज्ञाता हो और सभी प्रकार से योग्यता से हीन भी हो  
 तो भी गंगा अपनी भक्ति से ही प्रसन्न हो आया करती है और उम भक्त  
 का कल्याण किया करती है । यह श्रद्धा का भाव ही सर्वोपरि धर्म होता  
 है । यह परम सूक्ष्म है । श्रद्धा ही ज्ञान है और परम तप है । श्रद्धा का  
 बड़ा महत्त्व है । यही स्वर्ग है और मोक्ष भी है । इसी श्रद्धा से यह गंगा  
 प्रसन्न हो जाती है । अज्ञान ( ज्ञान का सर्वथा न होना )—राग अर्थात्  
 आसारिक बड़ चेतन वस्तुओं में ममत्वपूर्ण आसक्ति—लोभ आदि से

सम्पूजित वासे पुरुषों की घटा कमी भी धर्म में नहीं हुआ करती है तथा गङ्गा में तो विशेष स्व से नहीं हुआ करती है ॥२२-२८॥

बहिः स्थितं जलं यद्वन्नारिकेलान्तरे स्थितम् ।

तथा ब्रह्माण्डबाह्यस्थं परब्रह्माम्बु जाह्नवी ॥२९

गंगालाभात्परो लाभः क्वचिदन्योन विद्यते ।

तस्माद्गंगामुपासीत गंगैव परमः पुमान् ॥३०

शक्तस्य पण्डितस्यापि गुणिनो दानशीलिनः ।

गंगास्नानविहीनस्य हरे ! जन्म निरर्थकम् ॥३१

वृथा कुलं वृथा विद्या वृथा यज्ञा वृथा तपः ।

वृथा दानानि तस्येह कलौ गंगा न यो भजेत् ॥३२

गुणवत्पात्रपूजायान स्याद्वतादृश फलम् ।

यथा गंगाजलस्नान पूजने विधिना फलम् ॥३३

ममतेजोग्निगर्भे यं मम वीर्यति सवृता ।

दाहिका सर्वदोषाणां सर्वपापविनाशिनी ॥३४

स्मरणादेव गंगायाः पापसङ्घात पञ्जरम् ।

शतधा भेदमायाति गिरिवञ्जहतो यथा ॥३५

बाहिर में स्थित यह गंगा का जल उसी भाँति है जिन तरह से मारियल के अन्दर जल रहा करता है । उसी प्रकार से इस ब्रह्माण्ड के बाहिर में स्थित यह परब्रह्मरूपी जल वाला भंगा है । गंगा को प्राप्ति के समान अन्य कोई भी परम लाभ समार में नहीं है । इसीलिए गंगा की उपामना अवश्य ही करनी चाहिए । यह गंगा ही साक्षात् परम पुरुष है । समुच्चपदाभिष्टब्ध इन्द्र ही क्यों न हो—चाहे महान पण्डित हो—अनेक सद्गुणों से युक्त भी हो और दान देने के स्वभाव वाला भी हो यदि ऐसा भी कोई गंगा के स्नान से होना है तो उमका जन्म ही निरर्थक हो जाता है । जो इस कलियुग में गंगा का सेवन नहीं किया करता है उसको कुल-विद्या—यज्ञ - तप और दान सभी वृथा हैं । किसी भी गुण गण सम्पन्न पात्र की पूजा में भी उस प्रकार का फल नहीं होता है जैसा कि विधि के सहित गंगा के जल में स्नान और उसके पूजन में फल प्राप्त हुआ करना

है । यह गंगा मेरे तेज की अग्नि का गर्भरूप है और यह मेरे ही घोष से प्रति सन्तृत है । यह सभी दोषों के दाह करने वाली और समस्त पापों को विनाश कर देने वाली है । केवल गंगा का स्मरण ही करने से पापों के सघान का पञ्जर सँकड़ो दुकड़े होकर भिन्न हो जाया करता है जिन तरह से वज्रगण के होने से पर्वत दुकड़े-दुकड़े हो जाया करते हैं ॥२१-२५॥

गंगा गच्छति यस्त्वेको यस्तु भक्त्याऽनुमोदयेत् ।  
 तयोस्तुत्य फल प्राहुर्भक्तिरेवात्र कारणम् ॥२६  
 गच्छतिष्ठञ्जपन्ध्यायन् भुञ्जन्जाग्रत स्वन्धदन् ।  
 य. स्मरेत्ततत गंगा स हि मुच्येत बन्धनात् ॥२७  
 पितृभुद्दिश्य यो भक्त्या पायस मद्युमयुतम् ।  
 गुडमपिस्तिलं साधं गंगाम्भसि विनिक्षेपेत् ॥२८  
 तृप्ता भवन्ति पितरस्तस्म वर्षशत हरे ।  
 यच्छन्ति त्रिविधान्कामान्परितुष्टा. पितामहाः ॥२९  
 लिंगे सम्पूजिते सर्वमर्चितस्याञ्जगद्यथा ।  
 गंगास्नानेन लभते सर्वतीर्थं फलं तथा ॥३०  
 गंगाया तु नर स्नात्वायोलिंग नित्यमर्चति ।  
 एकेन जन्मनमुक्तिं परा प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥३१  
 अग्निहोत्रं च यज्ञाश्च यतदानं तपांसि च ।  
 गंगाया लिंगपूजाया कोटय शेतापिनोसमा ॥३२  
 गंगा गन्तुं घनिश्चित्य कृत्या श्राद्धादिकं गृहे ।  
 स्थितस्य सम्यक्सङ्कल्पात्तस्य नन्दन्ति पूर्वजाः ॥३३

एक तो गंगा नदी में स्नान करने को जाया करता है और एक भक्ति की भावना से उसका अनुमोदन करता है उन दोनों का समान ही पुण्य फल हुआ करता है क्योंकि यहाँ पर भक्ति ही एक मुख्य कारण होता है । गमन करते हुए—स्थित रहते हुए—नाम का जाप करते हुए—ध्यान करते हुए—भोजन करते हुए—जागते—सोते और ध्यानचीन करते हुए, जो निरन्तर गंगा का स्मरण किया करता है वह सांसारिक बन्धन से

मुक्त हो जाता करता है ॥३६-३७॥ अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर जो कोई भी पुरुष भक्तिपूर्वक मधु से ममन्वित पायम गुठ-घृत और तिलों से युक्त करके गंगा के अंत में मिश्रित किया करता है हे हरे ! उनके पितृगण सो वर्ष तक वृत्त हो जाता करते हैं । पितामह आदि जब पूर्णतया परितृष्ट हो जाते हैं तो अनेक प्रकार की कामनाओं को पूर्ण कर दिया करते हैं । पितृ मिथ का पूजन कर लेने पर अग्नि में सभी का समर्पण हो जाता करता है जिस प्रकार से तथा वैशत स्नान कर लेने से समस्त तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त हो जाता करता है । जो मनुष्य नित्य ही गंगा में स्नान करके शिवलिंग का समर्पण किया करता है वह एक ही जन्म में परा मुक्ति का लाभ निश्चय ही प्राप्त कर लिया करता है । भगिनहोत्र-यज्ञ-वन-दान-तप ये सब गंगा में स्नान और शिव लिंग का प्रवर्जन के करोड़ भाग के बराबर भी नहीं हुआ करते हैं । गंगा पर जाने का निश्चय करके घर में धाड़्यादिक करके सम्यक रीति से सकल्प करके जो स्नान रहता है इसके पूर्व उल्लास बड़ा नारी अग्निस्नान किया करते हैं ॥३८-४३॥

पापानि च ह्यन्त्याशुहा नवपास्यामइत्यलमु ।

लोभमोहादिभिः साहं मन्त्रयन्ति पुनः पुनः ॥४४

ययानग गाप्राप्तयेप तथा विघ्नं प्रकुमहे ।

ग गामतोयसार्चय न उच्छिति विचास्पति ॥४५

गृहाद्वा गावगाहाय गच्छन्तु पदे पदे ।

निराशानिद्रजन्येव पापान्यस्य शरीरतः ॥४६

पूर्वंजन्मकृतं पुण्यंस्त्यक्त्वा लोभादिक हरे ।

व्युदस्य सर्वत्रिघ्नोपायं ग गा प्राप्नोति पुण्यवान् ॥४७

अनुपगेन मोल्येन वाणिज्येनापि मेवया ।

कामासक्तोऽपि वा मर्त्यो गंगांस्नातो दिवं भजेत् ॥४८

अनिच्छयापि सस्पृष्टो बह्नोहि यथा बहेत् ।

अनिच्छयापि सस्नाना गंगा पापं तथा बहेत् ॥४९

शक्ति शीघ्र पापों का हनन कर देने वाले गंगा में स्नान करने वाले पुरुष के पाप रुदन किया करते हैं कि शंख हम कहीं पर जाकर निवास करे मे । वे लोभ-मोह और मद आदि के साथ बारम्बार मन्त्रणा किया करते हैं । वे यह भी सोचते हैं हम सब ऐसा कोई विघ्न उपस्थित कर देवे कि यह गंगा पर न जाये और गंगा पर गया हुआ यह पुण्य हमारा फिर उच्छेद नहीं करेगा । घर से गंगा के अदशाहन करने के लिए गमन करने वाले पुरुष के बदन-बदन में इसके शरीर से निराश होकर पाप भी गमन कर भागने लग जाते हैं । हे हरे ! पूर्व जन्मों में किये हुए पुण्यों के ही प्रभाव से लोभादिक का त्याग करके और समस्त विघ्नों के समूहों को हटाकर जो परम पुण्यात्मा पुरुष होता है वही गंगा पर पहुँचकर प्राप्त हुआ करता है । मूलरूप से—अनुप ग वश से—वाणिज्य से—सेवा से अथवा क्रमासक्त भी पुण्य गंगा में जो स्नान कर लेता है वह निश्चय ही दिवलोक को प्राप्त हो जाया करता है । बिना इच्छा के भी अग्नि का स्पर्श हो जाने पर वह जला दिया करता है वैसे ही बिना इच्छा भी गंगा में स्नान करने वालों के पापों को गंगा भस्म कर दिया करती है क्योंकि उसका यह प्रभाव ध्रुव होता है ॥४४-४६॥

तावद् भ्रमति ससारे यावद् गंगां न सेवते ।

ससेव्य गंगां नो जन्तुर्भवक्लेशं प्रपश्यति ॥५०

यो गंगाम्भसिनिस्नातो भक्त्या सत्यक्तसशयः ।

मनुष्यवमणानन्द स देवोनात्र सशयः ॥५१

गंगास्नानार्थं मुद्युक्तो मध्येभागं मृतो यदि ।

गंगास्नानफलं सोऽपि तदाप्नोति सशयः ॥५२

माहात्म्यं ये च गंगायाः शृण्वन्ति च पठन्ति च ।

तेऽप्यशेषंममहापापंमुच्यन्ते नाऽत्र सशयः ॥५३

दुर्वृद्धयो दुराचारा हेतुका बहुसशयाः ।

पश्यन्ति मोहिता विष्णो गंगामन्यनदीमिव ॥५४

जन्मान्तरकृतैर्दानैस्त्रयोभिर्निष्कर्मैर्षैः ।

इह जन्मनि गंगायां नृणां भक्तिः प्रजायते ॥५५

गं माभक्तिमतार्थं महेन्द्रादि पुरेषु च ।

हृष्यर्षिण रस्यभोगानि निर्मितानि स्वयम्भुवा ॥५६

महं अन्तु इस सत्कार में सभी तक प्रमत्त करता रहता है जब तक यह मामोरपी श्री गंगा का जीवन नहीं करता है । गंगा का भली भाँति सेवन करके फिर यह अन्तु सत्कार के बसंध को कभी नहीं देखता है । जो भक्ति की भावना से भले प्रक्षर से ससय का त्याग करके श्री गंगा के चर में स्नान कर चुका है वह मनुष्य के चमड़े से बना हुआ साधन सेवता ही हो जाता है—इसमें शक्य नहीं है । गंगा के स्नान करने के लिये उद्युक्त हो और मध्य में ही मर्त्य में मृत्युगत हो जावे तो वह भी गंगा के स्नान का पूर्ण फल प्राप्त कर लिया करता है—इसमें तनिक भी शक्य नहीं है । जो मृत्यु गंगा के इस माहात्म्य का पाठ किया करते हैं तथा धर्म भी कर लिया करते हैं वे लोग भी अपने समस्त कर्म हुए पापों से मुक्त हो जाया करते हैं—इसमें भी कुछ शक्य नहीं है । हे विष्णो ! दुष्ट बुद्धि वाले—दूषित धारदार वाले—द्वैतुक और बहुत अधिक मशय करने वाले मनुष्य इस गंगा को मोहित होकर अन्य नदी की ही भाँति देखा करते हैं । मनुष्या की शक्ति भी इस जन्म में सभी हुआ करती है जब उनके पूर्व जन्मों में कुछ किए हुए दान—तप—निष्कम और व्रत हुआ करते हैं । गंगादेवी में भक्ति भाव रखने वाले मनुष्यों के लिए महेन्द्र आदि के पुरों में स्वयम्भू भगवान् ने बड़े २ सुन्दर हर्म्य और सुगन्ध दुर्गों का निर्माण कर दिया है ॥५०-५६३

सिद्धय. सिद्धिलिगानि न्यर्षील्लिगान्यनेकशः ।

प्रासादा रत्नरचिताश्चिन्नामणियणा अपि ॥५७

गंगान्तान्तरिष्ठान्ति कलिकल्पमभीसितः ।

अत एष हि समेव्या कलो ग गेष्टसिद्धिदा ॥५८

सूर्योदये तर्माशीववज्रपातभयान्नगाः ।

ताक्ष्येक्षणाद्यथा सर्पा मेघा वाताहता इव ॥५९

उत्त्वन्नानाद्ययामोहः सिंह दृष्ट्वा यथाभृगाः ।

तथा सर्वाणि पापानि यान्ति गरी क्षणात्क्षयम् ॥६०

दिव्योपधर्मधारोगालोभेन च यथागुणाः ।

यथाश्रीधनोष्मसम्पत्तिरगाधहृदमञ्जनात् ॥६१

तूलशील स्फुलिगेन यथा नश्यति तत्क्षणात् ।

तथा दोषाः प्रणश्यन्ति गंगांभः स्पर्शनाद् ध्रुवम् ॥६२

क्रोधेन च तपोपद्वत्कामेन च यथा मतिः ।

अनयेन यथा लक्ष्मीविद्यमानेन वै यथा ॥६३

दम्भकौटिल्यमायाभिर्यथा धर्मो विनश्यति ।

तथा नश्यन्ति पापानि गंगाया दशनेन तु ॥६४

गिद्धियो-सिद्धियो के सिद्ध-धनेक स्वशं निग प्रासाद जो रत्नी से रचित हैं एव सिद्धामणि गण भो ये सभी कलियुग के कर्मयो से भीत होकर गंगा के ही धन के धन्दर रिषन रहा करते हैं । यतएव श्रीष्टो की सिद्धियो के प्रदान करने वाली गंगा का इन कलियुग मे भसी भाँति सेवन करना ही चाहिये ॥५७-५८ । सुयोदय के होने पर अधकारो की भाँति-व्यपात के भय से पर्वतो के समान-गरुड के भय से सर्पो के सृश-बाधो से माहृत मेघो के तुल्य-जैसे तत्व ज्ञान से मोह भोर सिंह को देखकर मृग दूर भाग जाया करते हैं ठीक उसी प्रकार से समस्त पाप भी गंगा के दशन मात्र करने से क्षण भर मे ही धम को प्राप्त हू जाया करते है । जिस तरह से दिव्य ओपधियो से रोग-नोभ से सदगुण और ओष्म की ऊष्म सम्पत्ति किसी प्रगाध हृद के जल मे मज्जन करने से नष्ट हो जाया करती है । तूलका (हर्द का विशाल डेर जो एक पर्वत के ही समान होता है धम्मि के एक ही सृष्टिग (पतिगा) से क्षण भर मे नष्ट हो जाया करता है उसी तरह से गंगा के जल के स्पर्श मात्र करने ही से एक ही क्षण मे निश्चय ही समस्त दोष नष्ट हो जाया करते है । क्रोध करने से जैसे तप और काम से मति-धन्य के विद्यमान हाने से लक्ष्मी-दम्भ और कौटिल्य की माया से धर्म नष्ट हो जाया करता है ठीक उसी भाँति गंगा के दशने से ही सब पाप विनष्ट हो जाते है ॥५१-६४॥

मानुष्य दुर्लभ प्राप्य विद्युत्सम्मातचञ्चलम् ।

गंगाया सेवते सोऽत्र बुद्धे पारपरगतः ॥६५



विधूतपापा ये मर्त्याः परंज्योतिः स्वरूपिणीम् ।  
 सहस्रसुवंप्रतिमा गंगा वदन्ति ते भुवि ॥६६  
 साधारणाम्भसा पूर्णा साधारण नदीमिव ।  
 पश्यन्ति नास्तिका गंगा पापौपहतलोचना ॥६७  
 संसारमोचकवाहं जनानामनुकम्पया ।  
 गंगाहरंरूपेण सोपानं निर्ममे दिवः ॥६८  
 सर्व एव शुभं काल सर्वोदिशस्नयाशुभ ।  
 सर्वो जनो दानपात्र धीमती जाल्क्षवी तटे ॥६९  
 यथाश्रमेधो यज्ञाना नगानां हिमवान्यथा ।  
 व्रतानञ्च यथा सत्य दानानाम भय यथा ॥७०

इस परम दुर्लभ मनुष्य का जीवन प्राप्त करके जो कि बिजली के सफाई अतीव खर्चवण है जो गंगा का महा सेधर किया करता है वह ही मनुष्य सचेत है और बुद्धि के पर धार को प्राप्त हुआ अर्थात् बहुर हो बुद्धिमान होता है । जो मनुष्य अपने पापों का विमूलन कर देते हैं वे ही मनुष्य इस भूलोक में परम ज्योति स्वरूपिणी और सृष्टी सभों के प्रतिमा वाली इस गंगा का दशन प्राप्त किया करते हैं । पापों से उपहृत नेत्रों वाले नास्तिक मोहा ही इस गंगा को नावाग्ण बन से परिपूर्ण एक मामूली नदी की ही भांति देखा या समझा करते हैं । जनों के ऊपर अनुकम्पा करके मैं संसार से मोचन करने वाला हूँ । और मैंने गंगा के तरंगों के स्वरूप में ही स्वर्गलोक में जाने के लिए गीर्घियों का निर्माण कर दिया है । धी मर्तो गंगा के तट पर सभी काल परम शुभ होता है तथा सभी देश सुभकारी हैं और वहाँ पर सभी जन दान के योग्य पात्र हुआ करते हैं । जिन तरह समस्त पशुओं में अन्वसेध समस्त पर्वतों में हिमवान्—सब धरतों में सत्य का पत मग्नुरां दानों में अमय व। दान उत्तम माना जाता है ॥६५-७०॥

प्रणामदश्च तपसा मन्त्रार्गा प्रणवो यथा ।

धर्मिणामप्यहिमा च काम्यानां श्रीर्यथा वय ॥७१

यथात्मविद्याविद्याना स्त्रीणां गौरी ययोत्तमा ।  
 सर्वदेवगणानाञ्च यथा एव पुरुषोत्तम ॥७२  
 सर्वेवामेष पात्राणां शिवभक्तो यथा वर ।  
 तथा सर्वेषु तीर्थेषु गगा तीर्थं विदिष्यते ॥७३  
 हरे ! यश्चावयोर्भद्रं न करोति महामतिः ।  
 शिवभक्त सविज्ञेयो महापाशुपतश्च सः ॥७४  
 पापपासुमहाधात्या पापद्रुम कुठारिका ।  
 पापेन्धनदवाग्निश्च गगेथ पुण्यवाहिनी ॥७५  
 नानाहपाश्च पितरा गाथा गायन्ति सर्वदा ।  
 अपि कश्चित्कुलेऽस्माक गगास्नायी भविष्यति ॥७६  
 देवर्षीन्परिसन्तप्यं दीनानायांश्च दुःखितान् ।  
 श्रद्धया विधिना स्नात्वा दास्यते सलिलाञ्जलिम् ॥७७  
 अपि न स कुले भूयाच्छिवे विष्णौ च साम्प्रदक् ।  
 तदालयकरोभक्त्या तस्य सम्मार्जनादिकृत् ॥७८

जिस तरह से समस्त तपो मे प्राणायाम, सब मन्त्रो मे प्रणव, सब धर्मो मे अहिंसा, सब काम्य पदार्थो मे वरा धो सर्वोत्तम माने जाती है । जैसे सब विद्याओ मे आत्म विद्या, स्त्रियो मे गौरी उत्तम होती है । हे पुरुषोत्तम ! समस्त देवो मे जैसे आप सर्वश्रेष्ठ देव हैं समस्त पात्रों में भगवान् शिव का भक्त श्रेष्ठ होता है । उगरी प्रकार से सम्पूर्ण तीर्थों में गङ्गा का तीर्थं विशिष्ट तीर्थ होता है । हे हरे ! जो महा मति पुण्य हम और आप इन दोनों मे भेद का भाव नहीं रखता है वही शिव का भक्त जानना चाहिए और वही महा पाशुपत होता है । पाप हवी पासु ( धूमि करण ) के लिये महा धात्या धर्मान् जोरदार आँवी, पापो के द्रुमों को काटने वाली कुल्हाड़ी तथा पाप हवी ईंधन के लिये दवाग्नि यह परम पुण्य वाहिनी गगा है । अनेक रूपो वाले पितृगण सर्वदा गाथा का गायन किया करते हैं कि हमारे भी कुल मे कोई ऐसा गगा का परम भक्त गंगा मे स्नान करने वाला जन्म लेगा जो देवो की और ऋषियो की सन्तुष्ट करने दोन, अनाथ और दुःखियो को श्रद्धा से विधि पूर्वक गगा में स्नान

करके जलाब्जबलि देगा ? वे पितर लोभ यह कहा करते हैं कि कभी कोई भेषा भी उलपन्न होमा जो शिव तथा विष्णु भगवान् में समान भावना रखे तथा भक्ति से उनके मन्दिर का निर्माण करावे और उस देवालय से सम्मालन आवि करे ॥७१-७८॥

अकामोयानकामोर्वातिर्दग्धोनिगतोऽपिवा ।

गङ्गायां यो मृतो मर्त्योऽनरकस न पश्यति ॥७९

तीर्थमन्यस्त्रयसन्ति गङ्गातीरेस्वित्ताण्व ये ।

गङ्गा न वदुमन्यन्ते ते स्मृतिरगमामिनः ॥८०

मां चत्वा चंबयोद्बुष्टि गङ्गां च पुण्याधमम् ।

स्वकीयं पुरुषं सार्धं स धार नरकं व्रजेत् ॥८१

यदिगणमहसाणि गङ्गा रक्षन्ति सर्वदा ।

ममक्तानाञ्च पापानां वासेविघ्नम्प्रकुर्वते ॥८२

कामकोपमहामोह लोभादिनिशितं शरैः ।

ज्वन्ति तेषां मनस्तत्र स्थितिचापनयन्ति च ॥८३

गङ्गां सभाश्रेष्ठस्तु स मुनिः स च पण्डितः ।

कुतकुतयः सविशेषः पुण्याथ चतुष्टये ॥८४

किसी भी कामना से मुक्त हो प्रयत्न करना उ रहित हो या किसी भी तीर्थक योजि से रहने वाला हो जो प्राणी गङ्गा तट के समीप में अपने प्राणी का परिष्कार किया करता है वह फिर कभी भी नरक का मुक्त नहीं देखा करता है । जो मनुष्य तथा के तीर पर स्थित होकर अन्य तीर्थों की प्रशंसा किया करते हैं और गंगा को विशेष महत्व वाणी नहीं मानते हैं वे निश्चय ही नरक के गामी हुमा करते हैं । जो कोई मूक को या भासकी ईप-लाव से देखता है वह पुत्रों से महान् उपम ही हारा करता है । ऐसा प्राणी अपने पितरों के सहित कठोर घोर नरक में गमन किया करता है । साठ चरस गण सर्वदा मग्न की रक्षा किया करते हैं और जो मरु नहीं होते हैं या पापी होते हैं उनके बर्ही पर निवास करने से महान् विघ्नो को किया करते हैं । काम, कोप, महा मोह और लोभ प्रादि पने शरों से उनके मन का हनन किया करते हैं और उनकी

वहाँ पर स्थिति का अपनपन किया करते हैं । जो गंगा का समाधय ग्रहण किया करता है वह मुनि है और महान् पंडित है । उसको चारो पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिये सफल ही सम्भवा चाहिए ॥७६-८४॥

गङ्गायाञ्च सकृदस्नातो हयमेघफल लभेत् ।

तर्पयश्चपितृ स्तत्र तारयेन्नरकार्णवात् ॥८५

नेरन्तर्येण गगयामासं यः स्नानि पुण्यवान् ।

सकल्लोके स वसति यावच्छक्रं स पूर्वजः ॥८६

वद्व यः स्नाति गंगायां नेरन्तर्येण पुण्यभाक् ।

विष्णोर्लोकं ममानाद्य स सुखं स त्रसेन्नरः ॥८७

ग गाया स्नाति यो मर्त्यो यावजीव दिने दिने ।

जीवन्मुक्तं स विज्ञेयो देहान्ते मुक्ति एव सः ॥८८

तिथिमक्षत्रपूर्वादि नापेक्ष्य जाह्नवी जले ।

स्नातमात्रेण ग गाया सञ्चिताघं विनश्यति ॥८९

पण्डितोऽपि स मूर्खः स्याच्छक्तियुक्तोऽथशक्तिरुः ।

यस्तु भागीरथी तीर मुखसेव्य न सश्रयेत् ॥९०

किं वाऽऽयुषाऽप्यरोगेण विकृतिन्याऽप्य किं श्रिया ।

किंवा बुद्ध्या निमलया यदि ग गां न सेवते ॥९१

गंगा में स्नान करने वाला पुरुष अन्धमेघ यज्ञ के करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है । वही पर पितृ गणों का तर्पण करता हुआ उनको नरको के सागर से तार दिया करता है । जो निरन्तर रूप से पुण्यात्मा एक मास पर्यन्त गंगा का स्नान किया करता है वह इन्द्र लोक में जा कर जब तक वह इन्द्र वहाँ पर रहता है निवास किया करता है । जो पुण्यात्मा एक वर्ष तक निरन्तर गंगा के पवित्र जल में स्नान करता है वह विष्णुलोक में जाकर सुख पूर्वक वहाँ पर निवास किया करता है ॥८५-८७॥ जो मनुष्य जब तक जीवित रहता है तब तक नित्य प्रति गंगा में स्नान करता है उसको जीवन्मुक्त ही समझना चाहिए और देह के अन्त होने पर वह मुक्त हो जाता करता है । गंगा के जल में तिथि नक्षत्र और पूर्वादि की कभी ध्येक्षा नहीं करनी चाहिए । गंगा में तो केवल स्नान से

ही मनुष्य सचित्र भयो का विनाश कर दिया करता है । यह पवित्र होवे हुए भी महान् मूर्ख ही है और अपनी शक्ति से युक्त होने पर भी वह सचित्र धूर्त ही है जो सुख से सेवन करने के योग्य भागोरयो के लट का समाशय नहीं किया करता है । परम स्वल्प रोग रहित कामु से क्या लाभ है और विकास से परिपूर्ण श्री से भी क्या प्रयोजन है तथा संत विमल बुद्धि से क्या सिद्धि है यदि मनुष्य ने अपने जीवन में गण का सेवन नहीं किया है ॥२८-३१॥

### ५१—वाराणसीमहिमावर्णन

शृङ्गस्त्यमहाभागतचराजाभगीर्यः ।  
 वाराण्यश्रीमहादेवमुदिदबोर्षु पितामहान् ॥१  
 ब्रह्मशापविनिर्दग्धान्मर्त्रान् राजर्षिमत्तमः ।  
 महासातपसाभूमिमाविनाय त्रिवर्त्मगाम् ॥२  
 त्रयाणामपिलोकानाहितायमद्वतेनृप ।  
 समानेषोसतोगङ्गायत्राञ्जनीमणिकर्णिका ॥३  
 आनन्दकानन शम्भोश्चक्रगुष्करिणीहरेः ।  
 परब्रह्मैकसुखेत्र लीलामोक्षसमर्पकम् ॥४  
 प्रापयामास तांगणं दैलोपि पुरतरश्चरन् ।  
 निर्वाणकाशनाथय काशीति प्रथितापुरी ॥५  
 अविमुक्त महाशैश न मुक्त शम्भुनाक्वचित् ।  
 प्रागेवहिमुनेऽन्यथास्यजाम्बूनदस्वयम् ॥६  
 पुनर्वारित्तरेणापि ह्रीरेणयदिसंगतम् ।  
 चक्रगुष्करिणीतीर्थं प्रागेव श्रेयसास्पदम् ॥७

महाशान् श्री स्कन्द ने कहा—हे महाभाग प्रगतस्य । सब आप प्रयत्न क्योबिए यह राजा भगीरथ ने अपने पितामहों का उद्धार करने की इच्छा यान्ता होवे हुए श्री महादेव की आराधना की थी । राजर्षियों में परम श्रेष्ठ भगीरथ ने अपने पूर्वजो क्य, जोकि सभी ब्रह्म शाप से विशेष निदास

हो गये थे, उच्चार करने का निश्चय किया था और अपनी महती तपस्या से वह विद्वान् गामिनो गंगा को भूमंडल में ले आये थे। तीनों सोर्कों के हित की महती कायना में राजा वहाँ से गंगा को लाये थे जहाँ पर मलिकनिगा थी। भगवान् शम्भु के आनन्द कानन, हरि का चक्र पुष्करिणी, पर वहाँक मुझे जो कि सीना ही से मोक्ष का सम्पर्क था दिनीप के वंशज राजा ने आगे भागे चपते हुए उम गंगा को प्राप्त करा दिया था। जहाँ पर त्रिवर्ण के काशन से यह पुरी 'काशी'—इस नाम से प्रसिद्ध हुई थी। यह अविनुक्त महा क्षेत्र इसीलिये कहलाया गया है कि भगवान् शम्भु ने इनको किसी भी दशा में परित्यक्त नहीं किया था। हे मुने! पहिले ही परम अनर्घ्य जात्य जाम्बूनद स्वयं हुआ था। फिर बारिधर हीरे से यदि यह सगल होगया तो अत्युत्तम बन गया है। यह एक पुष्करिणी तीर्थ पहिले ही धेयो के प्रदान करने वाला था ॥१-७॥

तत श्रेष्ठतरंशम्भोर्मणिश्रवणभूषणात् ।

आनन्दकानने तस्मिन्नविमुक्तं शिवालये ॥८

प्रागेवमुक्ति संतिद्धागंगासंगात्ततोयिका ।

यदाप्रभृतिसागगामणिकर्ण्यसुभागता ॥९

तदा प्रभृतितत्त्वोत्र दृग्प्रापन्निदशैरपि ।

कृत्वाकर्माण्यनेकानिकल्याणानीतराणिवा ॥१०

तानि क्षणात्समुत्तिष्य काशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।

तस्यां वेदान्तवेद्यस्य निदिष्यासनतो विना ॥११

विना साहस्येन योगेन काश्यां संस्थोऽमृतो भवेत् ।

कर्मनिर्मूलनवता विना ज्ञानेन कुम्भज ॥ १२

शशिमूर्तिप्रसादेन काशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।

यत्नतोऽप्यनतो वापि कालारयक्त्वा कलेवरम् ॥१३

तारकस्योपदेशेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।

अनेकजन्मसंसिद्धं बद्धोऽपिप्राकृतं गुणं ॥१४

धसिन्मभेदयोगेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।

देहत्यागोऽभवेदानदेहत्यागोऽभवेत्तपः ॥१५

इससे भी शम्भु के मणि श्रवण रूपण से वह अधिक प्रोष्ठ हो गया था । उस शिव का आलय अविमुक्ति आनन्द कानन में पहिले ही मुक्ति ससिद्धि थी ही । फिर गंगा के संग होने से और भी अधिक हो गई थी । अब से लेकर वह क्षेत्र देवों के द्वारा भी कुप्राप्त हो गया है । अनेक कल्याणकारी कार्य तथा अल्प कार्य करके उन मन्त्र को क्षण भर समुत्थित करके काशी सस्थित प्रमृत हो जाता है । उन काशी में वेदान्त में जानने के योग्य के निदिध्यासन के बिना ही तथा मोक्ष्य और योग के बिना काशी में सस्थित होने वाला प्रमृत हो जाता है । हे कुम्भज ! क्योंकि निमूल करने वाले ज्ञान के बिना भगवान् शशिमीनि (शिव) के प्रसाद से काशी में निवास करने वाला प्रमृत हो जाता है । यत्न से अपवा अयत्न से काल से कनेवर को त्याग करके तारक के उपदेश से काशी में सस्थित होने वाला प्रमृत हो जाया करता है । अनेक जन्मों में सनिद्ध प्राकृत गुणों से बढ नां अक्षि सम्भेद के योग से काशी पृथि में संस्थिति करने वाला पुरुष प्रमृत हो जाता है । यहाँ पर प्रपने देह का त्याग कर देना ही दान होता है और देह-त्याग ही तप है । यहाँ पुरी में रहकर देह का छोड़ देना ही वडा भारी योगाभ्यास है जो कि निर्वर्ण और सीरुष का कर देने वाला है ॥२-१५॥

प्राप्योत्तरवहा काश्यामतिदुष्कृतवानपि ॥१६

यायात्स्वं हेलया त्यक्त्वा तद्विष्णोः परमम्पदम् ।

यमेन्द्राग्निमुखा देवा शृष्ट्वा मुक्तिपथोन्मुखान् ॥१७

सर्वान्सर्वसमालोभय रक्षाञ्चक्रुः पुरापुरः ।

असिमहाशिरूपाञ्चप्राप्यसन्मतिखण्डनीम् ॥१८

दुष्टप्रवेशन्धुन्वानान्यूनोन्देवा त्रिनिमंसा ।

वरणाञ्च अशुस्तक्षेत्रविघ्ननिवारिणोम् ॥१९

दुष्टं तसुप्रवृत्तेश्च निवृत्तिकरणीसुराः ।

दक्षिणोत्तरदिग्भागेकृत्वासि वरणा सुराः ॥२०

क्षेत्रस्यमोक्षनिक्षेपरक्षानिवृत्तिमाप्नुयुः ।

क्षेत्रस्यपश्चाद्दिग्भागेतंदेहलिबिनायकम् ॥२१

स्वयव्यापारयामास रघार्यं दक्षिणेश्वरः ।

अनुज्ञातप्रवेशानां विश्वेशेन कृपायता ॥२२

ते प्रवेशम्प्रयच्छन्ति नान्येषाहि कदाचन ।

इत्यर्थेकयद्विष्येऽहमितिहासम्पुरातनम् ।

आश्रयकारिपरमं काशीभक्तिप्रवर्धनम् ॥२३

एक महात् द्रुक्ृतो बाला भी भार के बहन करने वाला पुत्र्य काशी में उत्तर बहा गंगा को प्राप्त करके हेला ही से अपने शरीर का त्याग करके श्री विष्णु भगवान् के परमपद को प्राप्त हो गया था । यम, इन्द्र और अग्नि जिनमें प्रमुख थे ऐसे देवगण भुक्तिपद के अनुभूतो को देखकर सभी सब का समालोकन करके पहिले इस पुरी की रक्षा किया करते थे । सम्मति का सपष्टन करने वाली महातिरुपा धर्मि को प्राप्त करके देवों ने दुष्टों के प्रवेश को रोकने वाली घुनी का निर्माण किया था । यहाँ पर क्षेत्र के समागत विष्णो का निवारण करने वाली घरणा की रचना की थी । सुरो ने दुराचारियों की सुपकृति की निवृत्ति करने वाली घरणा को धर्मि दक्षिणोत्तर दिग्भाग में किया था । क्षेत्र की मोटा के निक्षेप की रक्षा करके ही वे निवृत्ति को प्राप्त हुए थे । क्षेत्र के पश्चात् दिग्भाग में दक्षिणेश्वर भगवान् ने स्वयं रक्षा के लिये देहतिरिचि मायक को निपुक्त किया था । कृपालु विश्वनाथ के द्वारा जिनके प्रवेश की अनुज्ञा प्राप्त हो जाती थी उनके प्रवेश को ही वे होने देते हैं और दूसरों का नहीं होने दिया करते हैं । इस अर्थ में भी एक पुरातन इतिहास कर्तृगा जो परम आश्चर्य करने वाला और काशी की भक्ति के बढ़ाने वाला है ॥१६-२३॥

काश्या प्रवेशं प्राप्याऽपि तदस्थानि पटोद्भूय ॥

विना वैश्वेश्वरामाज्ञाम्प्रहिर्षितानि तत्क्षणात् ॥२४

एवकाश्याप्रविश्यापिपीपीधमनिपङ्गतः ।

नक्षेत्रफलमाप्नोतिबहिर्भवति तत्क्षणात् ॥२५

तस्माद्विश्वेश्वरान्न घकाशीवासेऽत्र कारणम् ।

असिश्चवरणायत्र दो वरक्षाकृता कृते ॥२६



वाराणसीतिविख्याता तदारम्यमहामुने ॥  
 असेश्वरणायाश्च सगमं प्राप्याकाशिका ॥२७  
 वाराणसीह षष्ठ्यामयदिव्यमूर्ति  
 हतमृज्य यत्र तु तनु तनुमृत्सुखेन ।  
 विश्वेशदिङ्महमि यत्सहसा प्रविश्य  
 रूपेण ता वितनुताम्पदवीं दधाति ॥२८  
 जातो मृतो बहुषु तीर्थत्रयेषु वरेत्वं  
 जन्तो न जातु तव क्षान्तिरभूनिमज्ज्य ।  
 वाराणसी निगदतोहं मृतोऽमृतत्व  
 प्राप्याऽधुना मम बलात्समरशासनम्वा ॥२९  
 अन्यत्र तीर्थं सलिले पनितो द्विजन्मा  
 देवादिभावमयत्ते न तथा तु काश्याम् ।  
 चित्रं यदय पतितपुनरुत्थिति न  
 प्राप्नोति पुल्कसजनोऽपिकिमग्रजन्मा ॥३०

किसी प्रकार से काशी में प्रवेश प्राप्त करके भी हे पटोद्भव !  
 उसकी प्रस्थियाँ विश्वेश्वरी धात्रा के बिना ठमो क्षण में बाहिर चली  
 जाया करती हैं । इस प्रकार से कोई प्राणी यम के धनुषज्ज से काशी  
 में प्रवेश प्राप्त करने भी उस पुण्य क्षेत्र के फल को प्राप्त नहीं किया  
 करता है और उसी क्षण में बाहिर हो जाता है । इसलिये हम काशीपुरी  
 के निवास करने में श्री विश्वनाथ भगवान् की आज्ञा ही मुख्य कारण  
 है जहाँ पर सति और वरणा ये दोनों क्षेत्र की रक्षा करने वाली कर दी  
 गयी हैं ॥२४-२५॥ हे महामुने ! तभी से धारम्भ करके यह पुरी  
 "वाराणसी"—इस नाम से विख्यात हो गई है । यह काशी सति और  
 वरणा इन दोनों का सङ्गम प्राप्त करने वाली हुई है । यहाँ पर यह  
 वाराणसी षष्ठ्यामय दिव्य मूर्ति है । जहाँ पर बेहूशरो सुषुपूर्वक अपने  
 देह का उत्सर्ग करके सहस्र विश्वनाथ की दिशा के तैल में प्रवेश करके  
 स्व से उस वितनुता की पदवी को धारण किया करता है ॥२७-२८॥

हे जन्तो ! तू बहुत-से श्रेष्ठ तीर्थों में उरपन्न हुआ और मृत्युगत भी हुआ है किन्तु कभी भी निभञ्जन करके तुझे शान्ति नहीं हुई है । वाराणसी कहती है यहाँ पर मृत हुआ अब भ्रमृतरव की प्राप्ति करके मेरे बल से स्मरशासन अर्थात् शिव हो जावेगा । अन्य तीर्थ अलमे पतित होकर द्विजन्मा देशादि के भाव को प्राप्त होता है इस काशी पुरी में उस प्रकार की बात नहीं है । यह एक अत्यन्त विचित्र बात है कि यहा पर एक बार पतित हुआ फिर उत्थान को ही नहीं प्राप्त किया करता है चाहे कोई पुष्कसजन भी बयो नहीं कि भ्रमजन्मा (याह्याण) की तो बात ही क्या है ॥२६-३०॥

सैषा परो ससृतिरूपपारावारस्यपारम्परहापुरारिः ।  
यस्या परं पौरुपमर्थमिच्छन्तिद्विभ्रयेत्पौरपरम्परा सः ॥३१

तीर्थान्तराणि मनुजपरितोज्जगाह  
हित्वा तनु कल्पिता दिवि दैवतं स्यात् ।  
वाराणसीपरिसरे तु विसृज्य देह  
सन्देहभाग्भति देहदशाप्तयेऽपि ॥३२

वाराणसीममरसीकरणादृतेऽपि  
योगादयोगजनता जनतापहन्त्री ।  
तत्तारक श्रवणगोचरता नयन्ती  
तद्ब्रह्म दर्शयति येन पुनर्भवो न ॥३३

वाराणसीपरिसरे तनुमिष्टधात्री  
धर्मार्थं कामनिलयामहहा विसृज्य ।  
इष्ट पद किमपि हृष्टतरोर्ऽभलष्य  
सामोऽस्तु मूलमपि नो यदघाप शून्यम् ॥३४

आः काशिवासिजनता ननु वञ्चिताऽभूद्  
भालेदिलोचनवता वनिताधंभाजा ।  
आदाय यत्सुकृतभाजनमिष्टदेह  
निर्वाणमात्रमपवर्जयता पुनर्भू ॥३५

पुरहा पुरारी की यह ऐसी पुरी है जो संसार स्त्री सागर का परना पार या उटखन है जिस पुरी में परम पौरुष धर्म की इच्छा करता हुआ वह पौरपरम्परा निद्रि को प्राप्त करा देता है ॥३१॥ मनुष्य दूसरे तीर्थों का मभी ओर से प्रवसाहन करके इस कनुषित शरीर का त्याग करके दिवलाक में देव हो जाया करता है । इस वाराणसी के परिसर में तो अपने देह का त्याग करके फिर देह दशा की प्राप्ति के लिये भी सन्देह नाकू हो जाया करता है । यह वाराणसी योग के बिना भी रामर सीकरों मे अयोगी जनो के तापो वन हनन करने वाली है । यह उस तारक मन्त्र को श्रवणो का गोचर कराती हुई उस ब्रह्म का दर्शन करा दिया करता है जिससे फिर दूसरा जन्म ही नहीं हुआ करता है । इस वाराणसी के परिसर में नमस्त अभोष्टों का जनन करने वाले प्रीर धर्म—अर्थ—पान का नितय स्वरूप शरीर का त्याग करके, बढहा । बड़े ही हर्ष की बात है कि परम हृष्ट होकर किसी भी प्रभोष्ट पद की इच्छा करके उसका लाभ होता है और मुन को भी प्राप्त कर लेता है जिसको कि शून्य नहीं प्राप्त हुआ है । परम सुकृत का भाजन इस इष्ट देह को लेकर पुनजन्म के षष वर्णन करने वाले प्रभु ने निर्वाण मात्र ही प्रदान किया है वनिजार्थ स्व यजन करने वाले विलोचन पारो के द्वारा निष्पय ही काशी के निवास करने वाली जनता वञ्चित हो गई है ॥३२-३५॥

वाराणसीरुफुरदसीमगुर्णकभूमिः

यत्र स्थितास्तनुभृतःशशिभृत्प्रभावात् ।

सर्वे गले गरलिनोऽक्षिभुजो तलाटे

वामार्धवामतनवोऽनवस्ततोऽन्ते ॥३६

बानन्दकाननमिदं सुखदं पुरंव

तत्रापि चक्रमरसीमणिकणिकाज्य ।

स्व.सिन्धुसंगतिरयोपरमास्पदञ्च

चिद्वेशिनुः किमिह तन्नविमुक्तये यत् ॥३७

वाराणसीह वरणासिसरिद्धरिष्ठा

सम्भेदखेदजननी धुनदो लसञ्ज्नीः ।

R

००००

००००

००००

००००

००००

००००

विश्रामभूमिरचलामलमोदलक्ष्म्या  
 हैना विहाय किम् सोदति मूढजन्मः ॥३८  
 किं विस्मृतं त्वहह गर्भजमामनस्य  
 कार्तान्तदूतकृतबन्धननाडनञ्च ।  
 शम्भोरनुग्रहपरिग्रहलभ्य काशी मूढो  
 विहाय किम् याति करस्यमुक्तिम् ॥३९  
 तीर्थान्तराणि कल्पुपाणि हरन्तिसद्यः  
 श्रेयो ददत्यपि बहु त्रिदिव नयन्ति ।  
 पानावगाहनविधानतनुप्रहारं  
 वरारणसी तु कुरुते वत मूलनाशम् ॥४०  
 काशीपुरीपरिसरे मणिकर्णिकाया  
 त्यक्त्वा तनुन्तनुभृतमृतनुमाप्नुवन्ति ।  
 माले विलोचनवती गलनीललक्ष्मी  
 वामार्धबन्धुरवधू विघुरायरोघाः ॥४१  
 शात्वा प्रभावमतुल मणिकर्णिकाया  
 ग.पुद्गलन्त्यजति वाशुचि पूयगन्धि ।  
 स्वात्माविदोघमहसा सहसा मिलित्वा  
 कल्पान्तरेष्वपि स नैव पृथक्त्वमेति ॥४२

यह वाराणसी स्थिति प्रतीम गृणो को एक ही भूमि है जहाँ पर  
 शशिधर के प्रभाव से शयोरधारी स्थित रहा करते हैं । सब गरल धारण  
 करने वाले गले में हैं—ललाट में अक्षि युज है और वामार्ध में सुन्दर  
 शरीर वाले हैं किन्तु घन्ट में फिर वे सब तनुरहित होते हैं । यह आनन्द  
 कानन पहले ही सुख प्रदान करने वाला है उसमें भी चक्र सर मणि-  
 कर्णिका है । स्वर्ग नहीं को सगति से यह विश्वनाथ का परमास्पद ही  
 गया है । यहाँ पर ऐसा क्या है जो विमुक्ति के लिए न हो व्यर्थ ही सभी  
 विमुक्ति देने वाले हैं ॥३६-३७॥ यहाँ पर वाराणसी करणाक्षि  
 शरितापो से परम शरित्त है और सम्भेद के सेद की जननी देव नक्षो सोप्रा  
 से सुसम्पन्न है । जबल और प्रमत्त मोक्ष की लक्ष्मी से युक्त यह विद्याम

की भूमि है। ऐसी इन पुरी का त्याग करके यह मूढ़ जन्तु क्यों दुःख पाया करता है। क्या तू हे जन्तो। गर्भ में उत्पन्न कष्ट को भूल गया है ? और क्या तूने यमराज के दूतों के द्वारा दण्डम और ताड़ना को भुला दिया है ? तू महान् मूढ़ है कि भगवान् शम्भु के अनुग्रह से काशीपुरी को प्राप्त करके हाथ में स्मित मुवित का त्याग करके क्यों जा रहा है ? ॥३८-३९॥ अन्य समस्त तीर्थ कल्पों का हरण किया करते हैं और सुरन्त ही धर्म प्रदान किया करते हैं और बहुतों को स्वर्ग में भी पहुँचा दिया करते हैं परन्तु यह वाराणसी जन पान-भवगाहन-विधान पूर्वक देह त्याग के द्वारा मूल का ही नाश कर दिया करती है ॥४०॥ काशी पुरी के परिसर में मणिकणिका में देहवारी देह का त्याग करके दूसरा ही क्लेश प्राप्त किया करते हैं जो कि भाल में विलोचन वासा होता है और जिसके कण्ठ में नीलिया की शोभा हुमा करती है तथा यामार्ग भाग में जिसके मुहोत्त नरीर बानी बधू है और विद्युरावरोध युक्त है। सात्पर्य यह है कि शिव का भा ही नरीर प्राप्त हो जाया करता है ॥४१॥ मणिकणिका में प्रतुष प्रभाष को जान जो प्रसुचि और पूरा गन्वीर पुद्गल का त्याग करता है वह अपने आत्मा के प्रबोध के तेज से सहसा मिलकर कल्पान्तरो में भी पृथक्ता को प्राप्त नहीं होता है ॥४२॥

रागादिदोषपरिपूरमनोहृषीकाः

काशीपुरीमतुलदिव्यमहाप्रभावाम् ।

ये कल्पयन्त्यपरतीर्थ समां समन्ता

ते पापिनो न सहते परिभाषणीयम् ॥४३

वाराणसी स्मरहरप्रियराजधानी

त्यक्त्वा कुतो ब्रजसि मूढ! दिगन्तरेषु ।

प्राप्याप्याजाद्यसुलभां स्थिरभोजलक्ष्मी

लक्ष्मीं स्वभावचपलाकिमु कामयेथाः ॥४४

विद्याधनानि सदनानि गजाश्वभृत्याः

स्रक्चन्दनानि वनिताश्च विनान्तम्याः ।

स्वर्गोऽप्यगम्य इह नोद्यमभाजि पुंसि  
वाराणसी त्वसुलभा शलभादिमुक्तिः ॥४५

धात्रा घृतानि तुलया तुलनामवेतुं  
वंकुष्ठमृष्यभुवनानि च काशिका च ।  
तान्युद्ययुलंघुतयान्यगिय गुहत्वात्तस्थौ  
पुरीह पुरुषार्थं चतुष्टयस्य ॥४६

काशीपुरीमधिवसन्निह नरो नरोऽपि  
ह्यारोप्यमाण इन मान्य इवैकहद्रः ।

नानोपसर्गं जनिसर्गं जदुत्तभारैः

कर्मापनुद्य स विशेत्परमेशधाम्नि ॥४७

स्थिरापायकायञ्जननमरणवशेशनिलय

विहायास्याकाश्यामहहपरिगृहणीतनकुतः ।

वपुस्तेजोरूप स्थिरतरपरामन्दसदनं

विमूढोऽशौ जन्तुः स्फुटितमिव कास्य विनिमयन् ॥४८

रागादि दोषों से परिपूर्ण मन और इन्द्रियो वाले जो लोग इस  
प्रतुन एव दिव्य महान् प्रभाव वाली काशी को दूसरे ही तीर्थों के समान  
परि बलिपत किया करते हैं वे महा पापी हुमा करते हैं उनके साथ भाषण  
भी नहीं करना चाहिए । हे मूढ़ ! यह वाराणसी कामदेव को भस्म कर  
देने वाले भगवान् शिव की परम प्रिय राजधानी है । इसका परिचयाप  
करके दिग्गन्तरो मे कहीं गमन कर रहा है ? इस अज्ञान के सुलभ इग  
महालक्ष्मी को प्राप्त करके भी जो स्थिर मोक्ष के प्रदान करने वाली  
लक्ष्मी है फिर उस स्वभाव से अपन लक्ष्मी को प्राप्त करने की क्यों कामना  
किया करता है ? विद्या-धन-गदन-गज-प्रदव-मृत्य-सक्-चन्दन-अत्यन्त सुरम्य  
बनिते और और स्वर्ग भी उद्यम शील पुरुष को अगम्य नहीं है किन्तु यह  
वाराणसी अमुनभा है जहाँ पर शलभा आदि की भी सुबित हो आया  
करती है । एक बार पाता ने तुलना का परिज्ञान प्राप्त करने के लिए  
तुला में (सराजू) वंकुष्ठ मृष्य जिनमे है ऐसे समस्त भुवनो को और  
काशीपुरी को रबसा था तो वे सब भुवन जिनमे वंकुष्ठ भी था सपु हुए

ये और पुरुषार्थ मनुष्य की यह काशीपुरी गुण्य से युक्त सिद्ध हुई थी । काशीपुरी में प्रविष्ट करने वाला मनुष्य भी यहाँ पर आरोप्यमाण एक छत्र के ही समान मान्य हुआ करता है । अनेक उपमाओं और सांख्य धुतियों के भारों के दलों का धवनोक्तन करके यह परमेश के धाम में प्रवेश किया करता है और जहाँ पर ही निवास करता है । इस काशीपुरी में स्थित अर्थात् बासे और जनन तथा मरण के इच्छा का निवास स्थान का स्थान करके उसे यही प्रह्लाद कहे हो । बहुत तेज के स्वप्न वाले और स्थिर तर परानन्द के सदन का यह महापुत्र जन्म सुते हुए कर्षी के पात्र में बदन ना रहा है ॥४२४६॥

अहो! लोक शोक किमिह सद्गते हन्त हृतधीः ।

विपद्भारैः सारनियतनिघर्नैर्ध्वंसितधनैः ॥५०

क्षितौ सत्या काश्या कथयति शिवो अथ निघने ।

श्रुती किञ्चिद् भूयः प्रविशति न येनोदरदरीम् ॥५१

काशिवासिनि जने बनेचरे द्वित्रिभुज्यपि समीरमोजने ।

स्वैरचारिभिर्मितेन्द्रिये-अहोकाशिवासिनिननेविशिष्टता ॥५२

नाजतीह दुष्कृतकृता सुकृतात्मना वा ।

काविद्विषेपगतिरन्तकृता हि काश्याम् ॥५३

बीजानि कमंजनिदानि यद्वधराया ।

नाड्कूरयन्ति हृदम्भलितानि तेषाम् ॥५४

शाशका मशका वकाशुकाः कलविस्फुरथ वृकाः कनम्बुकाः ।

तुरगारमधानरा नरा गिरिजे! काशिमृताः परामृतम् ॥५५

खरुद्वद्राक्षफणान्द्रसूक्ष्मास्त्रिभुज्यसुद्धसुद्धार्थधरा धरा गताः ।

निरन्तरकाशिनिर्वासितोन्नर्भागरेन्द्रजेपरिपदात्मतामम ॥५६

बहुत ही मातृपर्यं और वेद की मातृ है—यह लोक लोक का इस मसार में कबो सहन कर रहा है ? अस्पन्द ही कुछ है कि यह हृत् बुद्धि वाला मनुष्य विपदाओं के द्वारा रूप-निरिचत मृत्यु से युक्त और ध्वंसित यह काले सारा से यह रात्र दिन विपत्तियों का महता ही रहा करता है जबकि हम भूमि में काशीपुरी जंगल क्षेत्र विद्यमान है जहाँ साक्षात् शिव

विराजमान रहने हुए यह कहा करते हैं कि काशी में निम्न हो जाने पर वे कान में कुछ घर्षण करके मन्त्र कह दिया करते हैं जिसके प्रभाव से वह पुनः माता की उदर दरी में प्रवेश हो नहीं किया करता है घर्षण पुनः उसको गर्भ में निवास करने का यन्त्राणें नहीं महनी होती हैं ॥१०-११॥ काशी में ब्रह्म करने वाले मनुष्य वन में वरण करने वाला हो—दूधरे-तीनरे दिन में भोजन करने वाला हो या समोर (बायु) का ही भोजन करके जीवित रहने वाला हो—स्वजन्मना से विचरण करने वाला हो, शिबेन्द्रिय हो तो उन काशीपुरी के निवास करने वाले पुरुष में विशिष्टता दृष्टा करनी है। काशी में जिनका घन्ट होता है वे चाहे दुष्ट करने वाले हो या सृष्टिवात्मा हो उनकी कोई भी विशेष गति उहाँ पर नहीं होती है। जिन तरह से ऊपर भूमि में बोये हुए भी बीज अंकुरित नहीं होते हैं उनी तरह से उनके कर्मों से जन्मित बीजों का भगवान् शम्भु की दृष्टि से भस्म हो जाने पर कोई भी अंकुर नहीं रहा करता है ॥१२-१४॥ रासक-भगक-बक-गुक-कलविह-वृक=जम्बुक-तुरग—उरग—बातर और तर हे गिरिजे ! काशी में मृत्युगत होने पर ये नन्ने परा मृत्यु की प्राप्त हो ब्रह्मा करने हैं। हे गिरिन्द्रजे ! अरु रक्षा और फलोन्नों के रूपण तथा त्रिगुण अन्तर्गामी इन भूमि में स्थित काशी के निवासियों मेरे पार्से हो माने गये हैं ॥१५-१६॥

यावन्त एव निवसन्ति च जन्तवोऽप्य

कात्याजलस्थल चरा ऋषजम्बुकाद्या ।

तावन्त एवमश्नुषहस्त्रदेहा

देहावसा नमधिगम्य मयि प्रविष्टा ॥१७

ये तुवर्षेपवो रुद्रा दिवि देवप्रकीर्तिनाः ।

घातेपवोज्जतरिक्षे ये ये मुच्यन्तेपव. प्रिये! ॥१८

रुद्रा दशदशप्राच्यवाचीप्रत्यगुदक् स्थिताः ।

ऊर्ध्वदिक्स्थाश्च मे रुद्रा.पठन्ते वेदवादिभिः ॥१९

असङ्घपाताःमहम्नाणि ये रुद्रा अधिभूतले ।

तस्मैवम्योप्रधिका कास्यां जन्तवो रुद्ररूपिण. ॥२०



रुद्रावासतस्ततः प्रोक्तमविमुक्तं घटीश्लेषः ॥

यस्मात्समर्च्य काश्चिद्व्यान्वणन्विर्येत राधमान् ॥६१

श्रद्धयेदवरबुद्धथा च रुद्रार्चफलमाङ्गनरः ॥६२

इस काशी में जितने भी जन्तु निवास किया करते हैं वे जलवारी हों या स्थल पर रहने वाले हों जो कि रूप जम्बुक बादि हैं वे सब के सब उठने ही केरे धनुप्रह से रुद्र देहा देहावसान को प्राप्त करके भुक्त में ही शनिष्ट हो जाया करते हैं। जो वर्षेपन छद् है जो दिग्भाक से देव कीर्तित किये गये हैं—जो वातेपव अन्तरिक्ष में है और हे प्रिय। जो इन्द्र भूमिधन में अमेपव है। प्राचीनराची (पूर्व-पश्चिम)—प्रायक् और उदक् (दक्षिण-उत्तर) दिशाओं में दश-दश रुद्र स्थित होते हैं। वेद वादियों के द्वारा जो ऊर्ध्व दिशा में स्थित रुद्र पड़े जाया करते हैं और जो अक्षरशत सदसो इस मूलक के मध्य में छद् हैं उन सबसे प्रथिक छद् स्वरूप वाले जन्तु काशी में हैं। हे अटोषमव। यह काशी रुद्रों का आवास स्थल है इसीलिए इसको सविमुक्त कहा गया है। इसी कारण से काशी में स्थित वरुणों का भी अर्चण आदनों का भी शक्ति वर्णन करके चाहे वह अटा से किया जाये अथवा इश्वर की बुद्धि से किया जाने मातुष्य छद् की शर्चा का पुण्य फल प्राप्त करने का अधिकारी होजाया करता है ॥५७-६२॥

श्मशब्देनश्रव प्रोक्तः शान शयनमुच्चरते ।

निर्वचन्ति श्मशानार्थं मुनेः शब्दार्थं कौयिदा ॥६३

महान्त्वपि च भूतानि प्रलयेसमुपस्थिते ।

शेरतेऽत्र तदा मूत्वा श्मशानमुत्तमीमहद् ॥६४

अप्यु भूरिह लये लयं रुजेदप सौर्वचदनोपकन्दरे ।

मात्तारश्चानि महासूनूपारुघोम्नि सक्षयति च सदापति ॥६५

व्योम चापि लयमेत्यहकृती सार्जपि प्रोडशविकारसमुता ।

लीयते महति बुद्धिसञ्शके हा। महाप्रकृतिमध्यगो नयेत् ॥६६

सा गुणत्रयमयी च निर्गुणन्तं पुमासन्नवगुह्य तिष्ठति ।

पञ्चविंशति त्रयः पर पुमान्देहमेहवतिरेयजीवकः ॥१७

“श्म”—इस शब्द से शब्द प्रयात् मृतक के शरीर को कहा गया है और “घान”—यह शब्द शयन के लिए कहा जाया करता है । हे मुने ! शब्दों के अर्थ के मनोयोगी लोग श्मशान शब्द के अर्थ का इसी प्रकार से निर्धारण किया करते हैं । प्रलयकाल के समुपस्थित होने पर महान् भूत गण भी यहाँ पर राव होकर शयन किया करते हैं । इसीलिए यह महाद् श्मशान है ॥६२-६४॥ यहाँ पर लय के समय में यह भूमि जल में लय को प्राप्त हो जाया करती है । यह जल उर्वों के धरन की परमोष्ठ कन्दराओं में बला जाया करता है । महान् तनूनपात वायु में लीन होता है और सदागति अर्थात् वायु आकाश में लय को प्राप्त हो जाया करता है । यह ध्योम भी अहंकार में लीन होता है और सोलह विकारों से संयुक्त वह भी बुद्धि सशक्त महान् में लय को प्राप्त होती है । यह महत्त्व बुद्धि और प्रकृति के मध्य में गमन वाला होता है । वह त्रिगुणमयी प्रकृति निर्गुण पुरुष में अवगृहीत होकर स्थित रहा करती है । इन पच्चीस घोर तम से पर देह गेह का पति महा पुमान् जीवक है ॥६१-६७॥

प्राकृतः प्रलय एव उच्यते ह्यस्यानहरिरुद्रवर्जितः ।

कालमूर्तिरथ तच्छ्व पूदप हेलया कलयतीश्वरः परः ॥६८

स वै महाविष्णुरितीयंते बुधंस्त वै महादेवमुदाहरन्ति ।

मोऽन्तादिमध्ये परिवर्जितः शिवः सश्रोपतिः सोऽपि हि पाव्यंती पतिः

दैर्नन्दिनेषु प्रलये त्रिशूलकोटौ समृत्क्षिप्य पुरी हरः स्वाम् ।

विभक्तिमर्षतमहास्थिभूषणस्ततोहिकाशीकलिकालवर्जिता ॥

धाराणसोसि काशीति रुद्रावास इति द्विज ! ।

महाश्मशानमित्येव प्रोक्तमानन्दकाननम् ॥७१

इति देवीपुरः प्रोक्तं देवदेवेन शम्भुना ।

यथाविष्णो पुराख्यात तथैव च मयाश्रुतम् ॥७२

तच्छ्व स्वदशै व पिस रहस्य काशिज महत् ।

जप्लाऽध्यायमिम पुण्य महापातकनाशनम् ॥७३

धावयित्वा द्विजान्सम्यक् शिखलोकेमहीयते ।

अतः परं कलमज ! किञ्चुत्पतिद्वद ॥७४

काशीकथं कथ्यमाना ममाक्षि परितीयकृत् ॥७५

ग्रह्या—हरि और श्च से वर्जित यह प्राकृत प्रलय कहा जाता है । उस पुण्य को यह काल मूर्ति पर ईश्वर देना ही से कलन किया करता है । वह ही बुधो के द्वारा महा विष्णु—इस शुभ नाम से पुकारे जाया करते हैं और उनको महादेव कहा करते हैं । वह अण्ड-आदि और भव्य से रहित—ओ के स्वामी तिम हैं और वह ही पार्वती के पति हैं । वे हर इन देनन्दिन प्रलय में जपान् दिनों दिन में होने वाली प्रलय में अपनी पुरी को त्रिमूल की कोटि में समुत्थित करके संवर्ण महास्थि क्षण प्रमु धारण किया करते हैं । अभी से यह काशी काल के काल से वर्जित है । भगवान् स्कन्द ने कहा—हे द्विज । इस पुरी के कई सुम नाम हैं—वाराणसी—काशी—छायास—महात्मनाम और ध्यानन्द कानन कहे गये हैं । यही देवो के देव भगवान् शम्भु ने देवी के आगे कहा था । पहिले जिस प्रकार मैं विष्णु के सामने कहा गया था और मैंने जो उसी मूर्ति धरण किया था यही मैंने काशी में उत्पन्न होन वाला महान् रहस्य आपके सामने कह दिया था । इस परम पुण्यमय अध्याय का पाठ करके महापातको का नाश हो जाता है । द्विजो को इस अध्याय का मली मूर्ति धरण कराकर शिखलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । हे कलमज ! इससे आगे आप क्या सुनना चाहते हैं—यह मुझे बतलाइए । यह कथ्यमान काशी की कथा मुझको भी महान् परितीय के करन वाली होती है ॥६८-७५॥

### ५२—ज्ञानवापीमाहात्म्यवर्णन

स्कन्द ! ज्ञानोदतीर्षस्य माहात्म्यं वद साम्प्रतम् ।

ज्ञानवापीं प्रशमन्ति यतः स्वर्गोक्तोत्थलम् ॥१

धृष्टोद्भव महाप्राज्ञ ! शृणु पापप्रणोदिनीम् ।

ज्ञानवाप्याः सुप्रसृतिं कथ्यमाना मयाधुना ॥२

अनादिसिद्धे संसारे पुरा देवयुगे मुने ! ।  
 प्राप्त कुर्वांश्चदीशानश्चरन्स्वैरमितस्ततः ॥३  
 न वपन्ति यदा भ्राणि न प्रावर्तन्त निम्नगाः ।  
 जलाभिलाषो न यदास्नानपानादिकर्मणि ॥४  
 क्षारस्वाद्भूदयोरेव यदासीञ्जल दर्शनम् ।  
 पृथिव्या नरसंचारे वत्तमाने ऋचिक्वचिवित् ॥५  
 निर्वाणकमलाक्षेत्र श्रीमदानन्दकाननम् ।  
 महाश्मशान सर्वेषां बीजानां परमूपरम् ॥६  
 महाशयनसुप्तानां जन्तूनां प्रतिबोधकम् ।  
 सप्तारसागरावर्तपतञ्जन्तुतरण्डकम् ॥७

महा महर्षि श्री अंगस्वामी ने कहा—हे श्री स्कन्दजी ! अब आप  
 श्रुत्या ज्ञानाद तीर्थ का माहात्म्य कहिए । इनको ज्ञानवापी कहकर प्रशंसा  
 किया करते हैं जो कि स्वर्ग लोक में निवास करने वाले देवों को भी दुर्लभ  
 है । श्री स्कन्द भगवान् ने कहा—हे घटोद्भव ! आपकी प्रशंसा तो बहुत  
 ही अधिक है । अब मेरे द्वारा वर्णित इस पापी को हटाने वाली ज्ञानवापी  
 के माहात्म्य का ध्वजा कीजिए । हे मुने ! इन अनादि सिद्ध संसार में  
 पहिले देवयुग में इधर-उधर संचरण करते हुए भगवान् शम्भु कहीं से  
 यहाँ पर प्राप्त होगये थे । जिस समय में मेष नहीं बरसते थे, नदियाँ  
 नहीं बहती थीं, जिन काल में स्नान पानादि कर्मों में  
 कहीं पर भी जल का अभिभाव ही नहीं था । जिस समय में पारो स्वाद  
 वाले जल का ही दर्शन था । पृथिवी में कहीं कहीं पर मनुष्यों के सप्ता  
 में ऐसी ही दशा विद्यमान थी । निर्वाण कमला का क्षेत्र, श्रीमान आनन्द  
 कानन, महा श्मशान सप्तन बीजों का परम ऊपर क्षेत्र हो रहा था । महा  
 शयन में सुप्त हुए जन्तुओं का प्रति बोध कराने वाला इस संसार सागर  
 के आवर्त में पड़े हुए जन्तुओं का तरण्डक यह क्षेत्र था ॥१-७॥

यातायातातिसमिन् जन्तुविश्राममठपम् ।

अनेकजन्मगुणितकर्मसूत्रच्छिउदाशुरम् ॥

सच्चिदानन्दनिलयम्परब्रह्म रसायनम् ।  
 सुखसन्तानजनकम्मोक्षसाधनमिद्विदम् ॥१२  
 प्रविश्य क्षेत्रमेतत्स ईशानो जटिलस्तदा ।  
 लसत्प्रिशूल विमल रश्मिजालसमाकुल ॥१०  
 आलुलोके महालिङ्गं वैकुण्ठपरमेष्ठिनो ।  
 महाहमहमिकाया प्रादुरास यदादितः ॥११  
 ज्योतिर्मयीभिमालाभि परितः परिवेष्टितम् ।  
 वृन्दं वृन्दारकर्षीणा गणानाञ्च निरन्तरम् ॥१२  
 सिद्धानां योगिनांस्तोमैरच्यमान निरन्तरम् ।  
 गीयमानं घग्न्धर्वै स्तूपमान च चारणैः ॥१३  
 अंगहारैरप्सरोभिः सेव्यमानमणिकथा ।  
 नीराज्यमानं सततन्दागीभिर्मणिदीपकैः । १४

इस ससार में गमनागमन से अच्छी तरह खिन्न हुए जन्तुओं का विषय करने का मण्डप, अनेक जन्मों में संचित विघ्ने हुए कर्मों के खेदन करने वाले घुरा के समान, सद्, चिद् और आनन्द का निरूप, परब्रह्म का रमायन स्वरूप, सुख और सन्तति का जनक और मोक्ष के साधन को सिद्धि का प्रदान करने वाला यह क्षेत्र है जिस समय में भगवान् शम्भु ने जो माये पर नटाएँ धारण कर रूढ़े थे, हाथ में द्योमित्र त्रिदल की विमल किरणों के जास से समाकुल उग भगवान् शिव का स्वरूप था । जिस समय में आदि में वैकुण्ठ परमेष्ठियों का यह महा लिङ्ग दिखलाई दिया था और महती प्रहमहमिका से अर्थात् मेरा ही मन्त्रसे घागे हो, इस भावना से प्रादुर्भूत हो रहा था । उस समय में यह सभी और ज्योतिर्मयी मानाओं से परिवेष्टित था । देवों और ऋषियों के समूहों तथा गणों के द्वारा निरन्तर समर्पित था । सिद्ध, योषी आदि के समुदायों से निरन्तर पूज्यमान हो रहा था । गन्धर्वों के द्वारा गीयमान और चरणों के द्वारा स्तूपमान हो रहा था । यह महालिङ्ग अनेक प्रत्नरों से प्रत्नराओं के भङ्गहारों के द्वारा सेव्यमान था और नागिनियों की कृपा में रहने वाली

मण्डिपो के दोषो के द्वारा नीराज्यमान हो रहा था अर्थात् मागिनियों अपनी मण्डिपो के दोषो से घारतो कर रही थी ॥८-१४॥

विद्याधरीकिन्नरीभिस्त्रिकालं कृतमडनम् ।

अमरीचमरीराजिवीज्यमानमितस्ततः ॥१५

अस्येशानस्य तल्लिगं दृष्टेच्छ्रेय्य भवत्तदा ।

स्नपयामि महत्लिगं कलशैःसीतलेर्जलैः ॥१६

त्रयान् च त्रिशूलेन दक्षिणाशोपककंठतः ।

कुण्ठ प्रचण्ड वेगेन रुद्रोरुद्रवपुधंरु ॥१७

पृथिव्यावरणाम्भोति निष्कान्तानि तदा मुने !

भूप्रमाणाद्दशगुणैर्यैरिय वसुधावृता ॥१८

तैर्जलैः स्नापयाञ्चके त्वस्पृष्टे रन्वदेहिभिः ।

तुपारैर्जडिष्व विधुरैर्जञ्जपूकौघहारिभिः ॥१९

सन्मनोभिरिवात्यच्छैरनच्छैर्व्योमवतमं वत् ।

ज्योत्स्नावदुज्ज्वलच्छायैः पावनैः शम्भुनामवत् ॥२०

विद्याधरी और किन्नरियों के द्वारा तीनों कालों में उस महालिग का अतद्दुरण और मण्डन किया जा रहा था । देवाङ्गनाओं की चमरियों के समूह से ऊपर-उपर धीज्यमान था अर्थात् दोनों घोर चमर घुराये जा रहे थे । इस ईशान के उस दिग को देख कर इनकी भी इच्छा ऐसी उस समय में समुत्पन्न होगई थी कि इस महालिग का सीतल जल से परिपूर्ण कलशों से स्नपन कराऊँ । उसी समय में दक्षिण दिशा के समीप में भगवान् शम्भु ने अपने त्रिशूल के द्वारा खनन किया था । रुद्र वपु के धारण करने वाले रुद्र देव ने बड़े वेग से एक परम प्रचण्ड कुण्ड तयार करदिया था । हे मुने ! उस समय में पृथिवी के आवरण जल निकले थे । वह वपुः भूप्रमाण से दशगुने जलो से समावृत्त होगई थी । पापों के समूहों का हरण करने वाले, प्रत्येक देह धारियों के स्पर्श से रहित, तुपार और आर्य विधुर उन जनों से स्नपन कराया था । ये जल सत्पुरुषों के मन की भाँति स्वच्छ थे तथा व्योम मार्ग के तुल्य प्रसन्न थे, चाँदनी के

समान आत्मन्त उज्ज्वल कान्ति वाले थे एवं भगवान् राम्मु के नाम के सहस्र परम पावन थे ॥१५-२०॥

पीयूषवत्स्वादुतरैः सुखस्पर्शैर्वागवत् ।  
 निष्पापधीवद्गम्भीरैस्तरलै पापिदामैवत् ॥२१  
 विजिताब्जमहागन्धैः पाटलामोदमोदिभिः ।  
 ब्रह्मदृष्टपूर्वलोकानां मनोनयनहारिभिः ॥२२  
 अज्ञानतापसं तप्तप्राणिप्राणैकरक्षिभिः ।  
 पञ्चामृतानां कलशैः स्नपनाति फलप्रदं ॥२३  
 श्रद्धोपस्पर्शि हृदयलिगसितयहेतुभिः ।  
 अज्ञानतिमिराकर्मैर्ज्ञानदाननिदायकैः ॥२४  
 विश्वभर्तुं रुमास्पर्शमुखाति मुखकारिभिः ।  
 महाघनृयमुस्नान महाशुद्धि विधायिभिः ॥२५  
 सहस्रधारैः कलशैः सह ईशानोषटोद्भ्रज !  
 सहस्रकृत्वः स्नपयामास संहृष्टमानसः ॥२६  
 ततः प्रसन्नो भगवान्निश्चात्माविश्वलोचनः ।  
 तमुवाच तदेशानं ह्रद रुद्रवपुर्धरम् ॥२७  
 तव प्रसन्नोऽग्नीशान कर्मणाज्जेन मुद्रत !  
 गुरुणानुन्य पूर्वेण ममाति प्रीतिकारिणा ॥२८  
 ततस्त्वं जटिलेशान । वरं ध्रूहि तपोधन !  
 अदेयं न तवास्त्यद्य महोद्यमपरायण ॥२९

यह जब अमृत के समान स्वाद वाला, गी के मङ्ग के सहस्र मुख स्पर्श के मुक्त, निष्पाप बुद्धि के समान गम्भीर और पापी के घर्म की भाँति तरल था । विजित पद्म के समान महान् गन्ध वाला, पाटल के आमोद से आमोदित जो पहिले कभी भी नहीं देखे गये ऐसे लोकों के मन और नेत्रों के हरण करने वाले थे जब थे । अज्ञान तापस को ततत प्राणियों के प्राणों की रक्षा करने वाले, फलप्रद पञ्चामृत के कलशों के द्वारा स्नपन से प्रति पुष्प फल को देने वाले थे । प्रदा के उपस्पर्श करने वाले हृदय के लिगमितय के हेतु, अज्ञान स्वी अन्धकार का निगारण करने के विषे

सूर्य के समान, ज्ञान के दान को देने वाले, विश्व के भरण करने वाले स्वामी और उमा देवी के स्पर्श से सुखातिमुल्लवारी, महान् अवभृथ के सुन्दर स्नान से होने वाली मुष्टि के त्रिषायक, सहस्र धाराओं वाले कलशों के द्वारा हे घटोद्भव ! भगवान् राम्भु ने सहस्रवार संप्रहृष्ट भन वाले होते हुए स्नान कराया था । इसके अनन्तर विश्वलोचन, विश्वात्मा भगवान् परम प्रसन्न हुए थे । फिर रुद्र के यशु को धारण करने वाले ईशान उन रुद्र ने बोले—हे ईशान ! मैं पापसे प्रसन्न हूँ । हे मुद्र ! पापके इस कर्म से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है । यह आपका कर्म महान् गुरु है अरु ऐसे पहिले पाप किमी ने भी नहीं किया है । यह मेरी अत्यन्त प्रीति का करने वाला है । हे जटितेशान् ! हे महान् तपोधन ! पाप कोई भी वरदान माँगलो । आज इस समय मे मुझे आप से इतनी प्रसन्नता हुई कि कुन् भी प्रदेय नहीं है अर्थात् चाहे जो कुछ भी माँगोगे सो देदूँगा क्योंकि आप इस महान् उद्यम में परायण हो रहे हैं ॥२१-२६॥

यदि प्रसन्नो देवेश ! वरयोगोऽस्म्यहं यदि ।

तदेतदतुल तीर्थं तव नाम्नास्तु शङ्कर ! ॥२०

त्रिलोक्या यानि तीर्थानि भूभुव स्वाः स्थितान्यपि ।

तेभ्यो खिलेभ्यस्तीर्थेभ्यः शिवतीर्थमिदं परम् ॥२१

शिव ज्ञानमिति श्रुत्वा शिवशब्दार्थचिन्तका ।

तच्च ज्ञानन्दवीभूतमिहमे महिमोदयात् ॥२२

अतो ज्ञानोदनामैतत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

अस्य स्पर्शमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२३

ज्ञानोदतीर्थं सस्पर्शादश्वमेधफलं लभेत् ।

स्पर्शनाचमनाभ्याञ्च राजसूयाश्वमेधयोः ॥२४

फलमुतीर्थे नरः स्नात्वा सन्तर्प्य च पितामहान् ।

यत्फलं समवाप्नोति तदश्रयाद्धकर्मणा ॥२५

ईशान ने कहा—हे देवेश ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मैं यदि बह दान देने के योग्य आप का पाप बन गया है तो हे शङ्कर ! यह आपके ही शुभ नाम से एक अतुल, अनुपम तीर्थ हो जावे । भगवान्



विदेवस्व ने कहा—इस त्रिलोको में जो भी भू भुवः स्वः में स्थित भी तीर्थ है उन समस्त तीर्थों से यह शिव तीर्थ परम शिरोमणि तीर्थ होगा ॥२०-३१॥ 'शिव'—इस शब्द के अर्थ के चिन्तन करने वाले लोग शिव को ज्ञान ही कहा करते हैं। वही ज्ञान इवीभूत हो गया है और यहाँ पर मेरी महिमा के उदय होने से ही हुआ है। प्रथम यह तीर्थ ज्ञानोद नाम से ही श्रौतव्य में विप्रुत होगा। इसके स्पर्श मात्र से ही मनुष्य समस्त प्रकार के पापों से भी मुक्त होजाया करता है। इस ज्ञानोद तीर्थ के स्पर्श मात्र से ही मानव अश्वमेव यज्ञ के फल को प्राप्त कर लेता है। स्वयं और आचमन से राजसूय यज्ञ और अश्वमेज दोनों का फल प्राप्त कर लिया करता है। गया में फल्गुतीर्थ में स्नान करके तथा अपने पितरों का बलीर्मांतिर्तर्पण करके जो पुण्य फल प्राप्त किया करता है। वह ही फल यहाँ पर आठ कर्म करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥३२-३५॥

गुरुमुष्यासिताष्टम्यां द्यतीपातो यदा भवेत् ।  
 तदात्र आठकरणाद्गयाकोटिगुण भवेत् ॥३६  
 यत्फलं समधाप्नोति पितृन्मन्तर्ष्यं पुष्करे ।  
 तत्फलं कोटिगुणितं ज्ञानतीर्थे त्रिलोचकः ॥३७  
 सन्निहत्यां कुक्षेत्रे तमोप्रस्ते विवस्वति ।  
 यत्फलं विण्डदानेन तज्ज्ञानोदे दिने दिने ॥३८  
 पिडनिर्वपणं येषां ज्ञानतीर्थे सुतैः कृतम् ।  
 मोदन्ते शिवलोके ते यावदाभूतसंप्लवम् ॥३९  
 अष्टम्याञ्चतुर्दश्यामुपवासी नरोत्तमः ।  
 प्रातः स्नात्वाथ पीताम्भस्त्वन्तर्लिंगमयो भवेत् ॥४०  
 एकादश्यामुपोष्यात्र प्रादनातिचुलुकत्रयम् ।  
 हृदयेत्रस्य जायन्ते श्रीलिङ्गान्यसशयम् ॥४१  
 ईजानतीर्थे यः स्नात्वा विशेषात्सोमवासरे ।  
 सन्तर्ष्यं देवपि त्रितृन्दत्त्वादानं स्वशक्तितः ॥४२  
 ततः समर्च्यं श्रीलिङ्गं महासभारविस्तरेः ।  
 अत्रापि इत्था नानार्थान्कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥४३

गुरुवार से मुक्ता गुप्ता पत्र की पुष्प समान्वित ब्रह्मी तीर्थ में जब ध्योपात हो उम समय में यहाँ पर धाड़ करने से गया में किये गये धाड़ से करोड़ गुना फल प्राप्त होता है । उमो फल को पुष्कर में पितृगण का मन्त्रपाठ करके प्राप्त किया करना है । वही फल ज्ञान तीर्थ में त्रिवेदक के द्वारा करने पर करोड़ गुना हो जाता करता है ॥३६-३७॥ तन्निर्हृदि मे दुरोधे मे दिवस्वान् के उमोवस्त होने पर धर्मात् उपयग के धरसर मे विष्णो के दान से जा फल प्राप्त हुमा करना है वही फल ज्ञानोद मे दिन दिन मे होता है । जिनके पुत्रो ने इस ज्ञान तीर्थ मे पिण्डो का निरूपण किया है वे सब शिव लोक मे अब तक मृत सप्तव होता है तब तक भानन्द का लाभ प्राप्त किया करने है । अष्टमी तिथि मे और चतुर्दशी तिथि मे उपवास करने वाला धेष्ठ पुरुष ज्ञानःकाल मे स्नान करके इसके जल का पान करता है वह अन्तर्निष्कमय ही हो जाता करता है ॥३८-४०॥ एकादशी तिथि मे उपवास करके यहाँ पर ओ तीन घुन्नु जन का ध्यान किया करता है उसके हृश्य मे बिना किसी समय के तीन निष्क उत्पन्न हो जाता करते हैं । इस ईशान तीर्थ में विशेष रूप से सोमवार के दिन में स्नान करके अपने पितृगणो को और देव तथा ऋषियो का भवी मंति तांण करके अपनी राक्षि के अनुमार दान दिया करता है और इसके अनन्तर महान् सम्भार से मुक्ता विस्तार वाले उपचारो के द्वारा भी विष्णु का ध्यान किया करता है और यहाँ पर भी नाना धर्मो को देकर अनुप्य कृतकृत्य हो जाता है ॥४१-४२॥

उपास्य सगंध्या ज्ञानोदे यत्पाप कालसोपजम् ।

क्षणेनतदपाकृत्य ज्ञानवान् जायते द्विजः ॥ ४४

शिवतीर्थमिदं प्रोक्तं ज्ञानतीर्थमिदं शुभम् ।

तारकात्रयमिदं तीर्थं मोक्षतीर्थं इदं ध्रुवम् ॥ ४५

स्मरणादपि पापौघो ज्ञानोदस्य क्षयेद्घ्रुवम् ।

दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानात्पानाद्दर्भादि सम्भवः ॥ ४६

ज्वरापस्मारविस्फोट द्वितीयकचतुर्थकाः ।

सर्वप्रशममायान्ति शिवतीर्थं जलेक्षणगात् ॥४८

ज्ञानोदतीर्थं पानीयलिङ्गं यः स्नापयेत्सुधीः ।

सर्वतीर्थोदकैस्तेन घ्रुवं संस्नापितम्मवेत् ॥४९

इस ज्ञानोदक तीर्थ में संध्या की उपासना करते मनुष्य काल के लोप से समुत्पन्न वाप को एक ही क्षणमात्र में दूर करके द्वित्र ज्ञानवान् हो जाया करता है । यह शिव तीर्थ कहा जाता है और इस शुभ तीर्थ को ज्ञान तीर्थ भी कहा गया है । इस तीर्थ का नाम तारक तीर्थ भी है और यह तीर्थ निश्चिन्त रूप से मोक्ष के देने वाला मोक्ष तीर्थ है । पापी का समुदाय इस ज्ञानोद तीर्थ के स्मरण करने ही से निश्चय क्षय को प्राप्त हो जाया करता है । इसके दर्शन से, स्पर्शन से, स्नान से और पान से धर्म प्रादि की समुत्पत्ति हुआ करता है ॥४८-४९॥ डाकिनो, शाकिनी, भूत, प्रेत, वेताल, राक्षस, ग्रह, कूष्माण्ड, मोटिङ्ग, नाल कर्गो, शिशुग्रह, ज्वर, अपस्मार, विस्फोट, द्वितीयक और चतुर्थक अर्थात् चौरवा-प्वर-ये सभी शिव तीर्थ के जल के ईक्षण (दर्शन) से प्रशम को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥४७-४८॥ जो सुधी पुरुष इस ज्ञानोद तीर्थ के जल से लिंग स्नान कराया करता है उसने मानो समस्त तीर्थों के जल से ही निश्चित रूप से स्नान करा दिया है अर्थात् अन्य सभी तीर्थों के जल से स्नान का पुण्य फल प्राप्त उसे ही जाया करता है ॥४९॥

ज्ञानरूपोऽहमेवात्र द्रवमूर्ति विधाय च ।

जाडघविध्वंससतंकुर्या कुर्या ज्ञानोपदेशनम् ॥५०

इति दत्त्वावराञ्छम्मुस्तत्रैवान्तरधीयत ।

कृतकृत्यमिवात्मानं सोऽप्यमस्तात्रिशूलभृत् ॥५१

ईशानो जटिलो रुद्रस्तत्राश्रय परमोदकम् ।

अवाप्तवान् पर ज्ञान येन निर्वृतिमाप्तवान् ॥५२

अश्रुता मोक्षलक्ष्मीर्या वेदान्ते परिपठन्ते ।

विमुक्तये सतां संपा श्रीमती मणिकर्णिका ॥५३

मरणं मङ्गलं यत्र सफलं यत्र जीवितम् ।  
 स्वर्गंस्तृणायते यत्र संपा श्रीमणिकर्णिका ॥५४  
 यत्र सम्पत्तिसम्मारान्त्रिश्राप्य निघनेच्छया ।  
 यतिव्रतं समालम्ब्य तिष्ठते मूलकन्दमुक्त् ॥ ५५  
 यत्र त्रिभार्गगा गङ्गां मार्गमाणो मृतान्तर ।  
 स्वमौलि बालचन्द्रेण मृत्तिभागं प्रदर्शयन् ॥५६

यहाँ पर इस तीर्थ में ज्ञान रूप बाला में ही है और इस मृत्ति धारण करके मैं अठता का विघ्नस किया करता हूँ तथा ज्ञान का उपदेश भी दिया करता हूँ ॥५०॥ ये इन प्रकार से भगवान् राम्नु वरदान प्रदान करके वही पर अन्तर्नि हो गये थे । वह त्रिगुण धारण करने वाले भी अपने भावको परम कृत कृत्य मानने लगे थे ॥५१॥ ईशान जटाधारी छत्रदेव ने उस परम पुण्यमय जपका पान करके परमोच्छ्रुत ज्ञान की प्राप्ति की थी जिससे वह निवृत्ति को प्राप्त हो गये थे ॥५२॥ भलइमी के साथ जो मोक्ष लक्ष्मी वेदान्त में पढ़ी जाया करती है । वह यह श्रीमती मणिकर्णिका सत्युद्य की विभक्ति के विने होती है । जहाँ पर मरना भी परम भगल होता है और जहाँ पर जीवित भी सकल होता है । जहाँ का ऐसा प्रबल पुण्य का प्रभाव होता है कि स्वर्ग भी उनके सामने एक तुच्छ तिनके समान होता है ऐसी यह भी मणिकर्णिका है । जहाँ पर सम्पत्ति के सम्मारों को विश्राणित करके नियम की दृष्टि से यति के व्रत का समाप्तम्बन करके मूल और कन्दों को उपभोग करके स्थित रहना करना है । यहाँ पर त्रिभार्गो ने गमन करने वाली गंगा का अन्वेषण करते हुए भगवान् हर मूर्तों को अपने मस्तक में स्थित बाल चन्द्र के द्वारा मुक्ति के मार्ग का प्रदर्शन कराया करते हैं ॥५३-५६॥

ससारं यत्र दुर्वारं प्रतारयति शङ्करः ।  
 मृता अप्यमृतायन्ते कर्णधाराद्यतो नराः ॥५७  
 संशारसारपदवी यत्र स्याददवीयसी ।  
 कर्ण जपान्महेशानात्करुणावह गालयात् ॥५८

अनेकभवसम्भूत प्रभूत सुकृतनरा ।

करुणं जपं भवं यत्र लभन्ते ते भवापहम् ॥५९

स्वोकृत्य क्षेत्रसन्धासं यद्वलेन महाधियः ।

तृणं कृतान्तं मन्यन्ते सेयं मणिकर्णिका ॥६०

तृणीकृत्य निजं देहं यत्र राजपित्तमः ।

हरिश्चन्द्रः सपत्नीको व्यक्रोणाद् भूरियं हिता ॥६१

अभिलष्यन्ति यत्रत्यमपिवैकुण्ठवासिनः ।

सैकतं मृदुलं तल्पं सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥६२

अनेकजन्मजनितकर्मसूत्रनिधन्त्रम् ।

सन्मुच्य यत्रमुक्ताः स्युः सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥६३

यह सगार अतीव दुर्बार है और भगवान् शङ्कर इससे तार दिया करते हैं । इस मणिकर्णिका धार का ऐसा महान प्रभाव है कि मरे हुए भी नरा प्रभूत हो जाया करते हैं । देव स्वरूप बन जाते हैं और मोक्ष के अधिकारी हो जाया करते हैं । जहाँ पर सगार के तार की पदवी प्रदवी-यत्रा होती है । कार्य में अप के प्रभाव से करुणा के सागर महेशान से संसार से मुक्त हो जाया करते हैं किन्तु मनुष्य जहाँ पर भव के अपहरण करने वाले बर्ष में अप करने वाले भव अनेक जन्मों में समुत्पन्न बहुत से सुकृतों से ही प्राप्त किया करते हैं । महान बुद्धिशाली लोग जिसके बल से क्षेत्र सन्धास को स्वीकार करके यम राज को एक तुच्छ तिनके के समान ही माना करते हैं वह ऐसी श्रीमणिकर्णिका है । जहाँ पर राजपियों में परम श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र ने अपने देह को तृण के तुल्य समझ कर पत्नी के सहित देव बनाया, यह वह ही परम पावन भूमि है ॥५७-६१॥ जहाँ के परम मृदु वासुका नी शय्या को सैकुण्ठ में निवास करने वाले भी बाधा करते है वही यह मणिकर्णिका है ॥६२॥ अनेक जन्मों में समुत्पन्न कर्मों के मूत्र के निमन्त्रण का उन्मोचन कर जहाँ पर मनुष्य मुक्त होजाया करते हैं वही यह मणिकर्णिका है ॥६३॥

सत्यलोकेऽपि ये लोकास्तेऽर्थयन्ति निरन्तरम् ।

या महोदीघनिद्रायं सेय श्रीमणिकर्णिका ॥६४

अथ हि स कुलस्तम्भो यत्र श्रीकालभैरवः ।  
 क्षेत्रपापकृत शास्ति दर्शयस्तीव्रयातनाम् ॥६५  
 अन्यत्र विहितम्पापं नश्येत्काशीनिरीक्षणात् ।  
 काश्या कृताना पापानां दारुणे यन्तु यातना ॥६६  
 कपालमोचन तीर्थं मेतत्तदपि पावनम् ।  
 कपालं पतित यत्र विधे भैरवपाणित ॥६७  
 ऋणत्रयाद्विमुच्यन्ते यत्र स्नाता नरोत्तमा ।  
 तीर्थं विष्णुद्विजनकं तदेतदृणमोचनम् ॥६८  
 प्रणवाख्य पर ब्रह्म यत्र नित्य प्रकाशते ।  
 स पञ्चायतनोपेत अङ्कारेशोऽप्यमद्भुतः ।६९  
 अक्ष उध्वमकारश्च नादो बिन्दुश्च पञ्चमः ।  
 पञ्चात्मकं पर ब्रह्म यत्र नित्य प्रकाशते ॥७०

जो लोग सत्य लोक में भी रहा करते हैं वे भी निरन्तर इसकी  
 याचना किया करते हैं । जिसको दीर्घ निद्रा के लिये चाहते हैं वही यह  
 धी मणिनणिका है ॥६४॥ यह सकुण स्तम्भ श्री कालभैरव जहाँ पर क्षेत्र  
 में पाप करने वालों पर शासन किया करते हैं और तीव्र यातना को  
 दिमाया करते हैं, अन्यत्र किन्वा हुआ पाप काशी में निरीक्षण ही से नष्ट होजाते  
 हैं । किन्तु काशी में रहकर जो पाप किये जाते हैं उनकी यातना अत्यन्त  
 दारुण होती है । एक वहाँ पर कपाल मोचन नाम वाला तीर्थ है और  
 वह भी परम पावन होता है, जहाँ पर भैरव के हाथ से विषाता का कपाल  
 गिर गया था । जिस तीर्थ में स्नान किये हुए नरोत्तम तीनों प्रकार के  
 ऋणों से मुक्त हो जाया करते हैं । इसी लिये विष्णुद्वि का उत्पन्न करने  
 वाला यह ऋण मोचन तीर्थ है । प्रणव नाम व सा परम ब्रह्म जहाँ पर  
 नित्य ही प्रकाश किया करता है । यह पञ्चायतन से युक्त अद्भुत  
 अकारेश होता है । अकार, उकार, मकार, नाद और पाँचवा बिन्दु इन तरह  
 से यह पञ्चात्मक अर्थात् पाँच के स्वरूप वाला परम ब्रह्म जहाँ पर नित्य  
 ही प्रकाश किया करता है ॥६५-७०॥

एषा मत्स्योदरी रम्या यन्स्तातो मानवोत्तमः ।  
 यन्मुक्तितूदरदरीं न विभेदेय निश्चयः ॥७१॥  
 त्रिलोचनी य भगवान्कृष्यदिव त्रिलोचनम् ।  
 निजभक्त कृपायुक्तस्त्वपि देशान्तरस्थितम् ॥७२॥  
 अमी कामेश्वरो देवो यः कामान्पूरयेत्सदात्तम् ।  
 दुःखासाञ्जयिप्रापनिजकाममहोदयम् ॥७३॥  
 स्वयलीनी महेशोत्र प्रमत्तकामसमृद्धये ।  
 तस्मात्स्वर्गानिसञ्ज्ञास्य देवदेवस्य शूलिनः ॥७४॥  
 चारुभस्या महादेवो यः पुराणेषु पठयेत् ।  
 क्षेत्राभिमानो भगवास्तन्प्रासादोऽयमद्भुत ॥७५॥  
 अमी स्कन्देश्वरोदेवः प्रद्वयायद्विनोकनात् ।  
 ब्राह्मणव्रह्मचर्यस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७६॥  
 विनायकेश्वरश्चाम सर्वनिद्विप्रदायकः ।  
 यस्सेवया प्रणस्यन्ति नृणाः सर्वे विनायका ॥७७॥

यह मत्स्योदरी है जो बहुत ही रम्य है और जिसमें स्नान किया हुआ परम पद मानव फिर अपनी माता के उदर त्विणी गुफा में सभी प्रवेश हो नहीं किया करता है यह परम सिद्धिगत बात है अर्थात् निश्चय पूर्वक फिर उमका मोक्ष हो जाने के दुसरा कल्प ही इस सभार में नहीं हुआ करता है ॥७१॥ परमेश्वर से युक्त पदवात् त्रिलोचन फिर अपने पवन की वाहे वह किसी भी सुदूर देश में ही स्थित क्यों न हो उसे त्रिलोचन ही बना दिया करते हैं ॥७२॥ यह कामेश्वर देव है जो सत्पुरुषों के कामों पर परिपूर्ण कर दिया करते हैं जहाँ पर दुर्गमा ज्यपि भी अपनी कामनाओं के महात् उदय की प्राप्त हो गया था ॥७३॥ यहाँ पर अपने भक्त की कामनाओं की समृद्धि के लिये भगवान् महेश्वर स्वयं ही मौन रहा करते हैं । इसी कारण से इस देवों के देव भगवान् शूरी की 'इमनोत्त'—यह सत्ता होती है ॥७४॥ बारागली में महादेव हैं जो पुराणों में पढ़े जाया करते हैं वह सैन के पूर्ण यन्निमान रखने वाले भगवान् हैं उनका प्रसाद यह अत्यन्त प्रदुक्त होता है ॥७५॥ यह

स्कन्देश्वरदेव है । अन्धा से जिनका दर्शन करने से मानव अजन्म ब्रह्म-  
चर्य धारण करने के फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥७६॥ यह  
विनायकेश्वर हैं जो ममस्त प्रकार की सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं  
जिनकी सेवा करने से मनुष्यों के सभी विनायक नष्ट हो जाया करते हैं  
अर्थात् फिर उनको कोई भी बिघ्न नहीं हुआ करते हैं ॥७७॥

इय वाराणसी देवी साक्षान्मूर्तिमयी शुभा ।

यस्या विलोकनात्पुंसा भूयो नो गर्भसम्भवः ॥७८॥

पावतीश्वरलिङ्गस्य महदायतन त्विदम् ।

यत्र नित्य महेशानो गौर्यासह विमुक्तिदः । ७९

एष भृङ्गीश्वरः श्रीमान्महापातकनाशन ।

जीवन्मुक्तोऽभवद् भृङ्गी यस्य लिङ्गस्य सेवया ॥८०॥

चतुर्वेश्वरश्चैष चतुर्वेदधरो विधिः ।

लभेद्यद्वीक्षणाद्विप्रो वेदाध्ययनज फलं ॥८१॥

यज्ञाः सस्थापितरुचंतल्लिङ्गं यज्ञेश्वराभिदम् ।

यदर्चनात्लभेन्मृत्युं सर्वयागफल महत् ॥८२॥

पुराणेश्वरनामंतल्लिङ्गमष्टादशांगुलम् ।

अष्टादशाना विधानास्यादाधारोयदीक्षः । ८३

धर्मशास्त्रेश्वरश्चाय स्मृतिभिश्च प्रतिष्ठितः ।

स्मृत्यध्ययनजम्पुण्य यद्विलोकनतो भवेत् ॥८४॥

यह वाराणसी देवी हैं जो परम शुभ मूर्तिमयी माता देवी हैं जिनके  
दर्शन का एक बार ही भोका ले लेने पर पुनः गमनास में रहने की कोई  
भी सम्भावना ही नहीं रहा करती है ॥ ८१॥ पावतीश्वर लिंग का यह  
महान् आयतन है । जहाँ पर नित्य ही महेशान प्रभु गौरी देवी के साथ  
विमुक्ति को प्रदान करने वाले विराजमान रहा करते हैं ॥७६॥ यह इस  
क्षेत्र में धीमान् भृङ्गीश्वर भगवान् हैं जो महान् महापातकों के नाश करने  
वाले हैं जिस लिंग की सेवा से मृगी जीवन्मुक्त हो गये थे ॥८०॥ यहाँ  
पर यह चतुर्वेश्वर भगवान् हैं जो चारों वेदों के धारण करने वाले  
विधाता स्थित रहा करने हैं जिनके दर्शन करने से ही विप्र वेदों के



अथ्ययत् से समुत्पन्न फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥८१॥ यह लिंग यज्ञो के द्वारा स्थापित किया गया है जो महाेश्वर नाम वाले है जिनके अर्चन से मनुष्य समुत्पन्न भागों के महान फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥८२॥ यहाँ पर यह एक पुराणेश्वर नाम वाला महाेश्वर मनुष्य के प्रमाण वाला लिंग है जिनके केवन दर्शन हो करने से अष्टादश विधाओं का पूर्ण साधार मनुष्य हो जाता करता है । यहाँ पर यह एक अमृतानन्देश्वर प्रभु भी है जो स्मृतियों के द्वारा प्रतिष्ठित किये गये है । स्मृतियों के अध्ययन से उत्पन्न होने वाला पृथ्वी उनके दर्शन मात्र से ही प्राप्त हो जाता करता है ॥८३-८४॥

### ५३—योगाख्यान वर्णन

वेदानुषणम शक्त्वा ब्रह्मचर्यं तपो दमम् ।  
 श्रद्धोपवाताः स्वात्मस्थमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥१॥  
 स हि सर्वो विजिज्ञास्य आत्मं वाश्रम वतिभिः ।  
 श्रोतव्यस्त्वथमन्तव्योऽष्टव्यश्च प्रयत्नतः ॥२॥  
 आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृतेन हि ।  
 स च योगश्चर कालमभ्यासादथ सिध्यति ॥३॥  
 नारण्यसथयाद्योगो न नाना अन्य चिन्तनाम् ।  
 न दानेनैव तैर्भाषि न तपोभिर्नैवा मलैः ॥४॥  
 न च पद्मामनाद्योगो न वा ध्यानाप्रबोधनात् ।  
 न शरीरेण न मीनेन न मन्त्रारोचनेरपि ॥५॥  
 अभियोगात्मदाभ्यासात्तत्रैव च विनिश्चयात् ।  
 पुन पुनरनिर्वैशास्तिध्मेद्योगो न चान्यथा ॥६॥

वेदों के अनुषणम को आत्मकर ब्रह्मचर्य-तप-दम-अदा-उपवास और स्वात्म्य आत्मा के ज्ञान के हेतु हैं ॥१॥ समस्त आदर्शों में रहने वाले लोगों के द्वारा आत्मा ही जानने के योग्य है अर्थात् आत्मज्ञान प्राप्त करना ही सर्वोपरि होता है । अतएव प्रयत्नपूर्वक आत्मज्ञान को ध्यान

करना चाहिए—उसका ही मनन करना चाहिए और उस आत्मा का वसन प्राप्त करना चाहिए ॥२॥ इसी आत्मा के ज्ञान से मुक्ति हुआ करती है और वह भी योग के बिना नहीं होती है तथा वह योग विर काल तक अभ्यास करने से ही सिद्ध हुआ करता है ॥३॥ वेधस परम्य में घपना घात्रय बना लेने मात्र से योग की सिद्धि नहीं हुआ करती है और घनेक ग्रन्थों के चिन्तन करने से भी योग सिद्ध नहीं हुआ करता है । शान्ति से—धर्मों से—तत्त्वदर्शनों से और मर्षों से भी योग की सिद्धि नहीं है ॥४॥ यह योग पद्मासन धारकर बंठने से भी सिद्ध नहीं होता और नार्गका के घट भाग के देखने से भी योग की सिद्धि नहीं होती है । शौच, मोन घर, और मन्त्रों के सवाराध आदि से यह योग सिद्ध नहीं होता है ॥५॥ अभिषेग मे घर्षत् सभी घोर मन को हटाकर एक निश्चल चर्माकी वृत्ति क करने से—निरन्तर उसका ही अभ्यास करने से पूण रूप से निश्चय करने से तथा बारम्बार निवेद से ही इस योग की सिद्धि हुआ करती है अन्य किसी भी प्रकार से यह कभी भी सिद्ध नहीं होता है ॥६॥

आत्मक्रीडस्यसतत सदात्म मिधुनस्य च ।  
 आत्मन्येव मुत्तुप्तस्य योगसिद्धिनंदूरतः ॥७  
 अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयो न पदयति ।  
 आत्मारामः न योगीन्द्रो ब्रह्मीभूतो भवेदिह ॥८  
 सयोगस्त्वात्मगतसोर्षोग इत्युच्यते युधैः ।  
 प्राणापानगमायोगो योग इत्यपि र्दशचन् ॥९  
 विषयेन्द्रियसंयोगो योग इत्यप्य पठितः ।  
 विषयगतचित्तानां ज्ञान मोक्षश्च दूरतः ॥१०  
 दुर्निवारा मनोवृत्तिर्मावत्सा न निवर्तते ।  
 किञ्चिदन्त्यपि योगस्य तावन्नेदीयसी कुतः ॥११  
 वृत्तिहीनं मन इत्या क्षेत्रज्ञे परमात्मनि ।  
 एकीकृत्य विमुच्येत योगयुक्त स उच्यते ॥१२

बहिर्भुंक्षानि सर्वाणि कृत्वास्यान्यन्तराणि वै ।

मनस्येवेन्द्रियग्रामं मनश्चात्म नियोजयेत् ॥१३

सर्वभावविनिर्मुक्त क्षेत्रज्ञ ब्रह्मणि स्थसेत् ।

एतद्ब्रह्मानन्वयोगश्च शेषोज्यो घन्यविस्तर ॥१४

निन्तर अपनी आत्मा क ही साथ क्रीडा करने बाने का और तथा आत्मा के ही साथ जोडा बनाये रखने बाने का तथा अपनी आत्मा मे ही सृत्य रहने बाने को ध्यान की सिद्धि दूर नहीं रखा करती है ॥१३॥ जो अपनी आत्मा के अतिरिक्त हमारे अन्य किसी को कही पर भी सहो देख करता है वही आत्मा राम अर्थात् आत्मा मे रमण करने बाना योगीन्द्र और ब्रह्मीभूत है । आत्मा और मन के साम म समोप होने का ही नाम दूध पुषपा के द्वारा योग कहा जाता है । कुछ विद्वानों के द्वारा प्राण वायु और अथाव वायु के संयोग को भी योग कहा जाया करता है ॥१८-६॥ जो अपण्डित हैं उनके द्वारा विषयेन्द्रिय संयोग भी योग कहा गया है । सिद्धान्त यह है कि जो विषयों में समासक विन बाने पुषप हैं उनकी ज्ञान और योग तथा मोक्ष बहुत दूर की वस्तु है तात्पर्य यह है कि उनको यह हो ही नहीं सकता है । यह मन की धृति बहुत ही दुर्निवारण किये जाने वाली है और जब तक यह निवृत्त नहीं होती है तब तक उप योग की अभ्यवन्ती भी अस्मिन्कृत नहीं होती है । इस मन को धृतिवै से हीन करके उस तैवत्त परमात्मा में एकीकरण करके जो विमुक्त होता है वही योग युक्त कहा जाता है ॥१०-१२॥ आकाश के अन्तर सब को बहिर्भुंक्ष करके और इन्द्रियों के समुदाय को मनम ही निहित करे और फिर उस मन को आत्मा मे योजित कर देना चाहिए ॥१३॥ सब भावों से विनिर्मुक्त उस क्षेत्र को ब्रह्म में स्थित कर देवे । ब्रह्म, इतना ही ध्यान और योगशास्त्र है । शेष अन्य जो इस विषय में विज्ञा या कहा गया है वह सभी अन्धो का विस्तार मात्र है । सार एवं सत्त्व की वस्तु को केवल इतना ही होता है ॥१४॥

यन्नास्ति सर्वलोकेषु तदस्तीति विरुध्यते ।

कथ्यमानं तदन्यम्य हृदयेनावतिष्ठते ॥१५

स्वसवेद्य हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा ।  
 अयोगीनेतद्वेत्ति जात्यन्ध इव वर्तिकाम् ॥१६  
 नित्याभ्यसनशीलस्य स्वसवद्यं हि तद्भवेत् ।  
 तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्य पर ब्रह्म मनात्मनम् ॥१७  
 क्षणमप्येकमुदकं मथानस्थिरतामियात् ।  
 वाताहतं यथाचित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥१८  
 अतोऽनिलं निरुन्धीत चित्तस्यस्पर्शं हेतवे ।  
 मरुन्निरोधनार्थाय पङ्कजं योगमभ्यसेत् ॥१९  
 आसनं प्राणसरोधं प्रत्याहारश्च धारणा ।  
 ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति यद् ॥२०  
 आसनानीह तावन्ति यावन्त्यो जीवयोनयः ।  
 सिद्धासनमिदं प्रोक्तं योगिनो योगसिद्धिदम् ॥२१

जो समस्त लोको में नहीं है वह है ऐसा जो कयन है वही विशुद्ध होता है । यह मन्य का कथ्यमान हृदय में कभी भी अवस्थित नहीं हुआ करता है ॥१५॥ जिस प्रकार से कुमारी स्त्री का सुख होता है उसी प्रकार से वह ब्रह्म स्वसवेद्य ही होता है अर्थात् उसके आनन्द का धनुभव अपने ही द्वारा करने के योग्य हुआ करता है । जो योगी महो वह उस ब्रह्मानन्द को कभी भी नहीं जानता है जिस तरह से अग्मान्ब पुरुष चतिका वा ज्ञान नहीं रखता है । जो नित्य ही अभ्यास करने के स्वभाव वाला होता है उसी को स्वयं वह जानने के योग्य होता है । यह परब्रह्म इतना सूक्ष्म है कि उस सनात्मन का निर्देश नहीं किया जा सकता है । जिस प्रकार से वायु से घ्राह्य जल एक क्षण भी धरा स्थान पर स्थिर नहीं रहा करता है उसी भाँति ठीक इस मानव के चित्त की दशा हुआ करती है । अतएव इस महा चंचल चित्त का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए । इसीलिए इस चित्त की स्थिरता के लिए प्राण वायु का विरोध करे अर्थात् प्राणायाम करना चाहिए । इस वायु के विरोध करने के लिए पङ्कज (छँ म गो वाले) योग का अभ्यास करे ॥१६-१८॥ वे छँ मङ्ग में हैं—आसन—प्राणायाम—प्रत्याहार—धारणा—ध्यान और

समाधि—ये ही योग के छै भंग हुमा करते हैं ॥२०॥ यहाँ पर उतने ही आसन होते हैं अतः ये जोव योनियां हुमा करती हैं । योगी के योग की सिद्धि को प्रदान करने वाला यह विद्वान्मन कहा गया है ॥२१॥

एतदभ्यसनान्नित्यं बध्मदाढ्यं मवाप्नुयात् ॥२२

दक्षिणं चरणं न्यस्य वामोरुपरि योगवित् ।

याम्योरुपरि वामं च पद्मासनमिदं विदुः ॥२३

कराम्यां धारयेत्पश्चादंगुष्ठौ दृढबन्धवित् ।

भवेत्पद्मासनादस्मादभ्यासाद् दृढविग्रहः ॥२४

अथ बाह्यासने यस्मिन्सुखमस्योपजायते ।

स्वस्तिकादौ तदध्यास्य योगं युञ्जीत योगवित् ॥२५

न तोय वह्निं सामीप्ये न जीर्गरिण्य गोष्ठयोः ।

नदं शमशकाकीर्णं न चंत्येन च चत्वरं ॥२६

केशभस्म तुपाङ्गारकीकसादि प्रदूषिते ।

नाभ्यसेत्पूतिगन्धादौ न स्थाने जन संकुले ॥२७

सर्वदाघाविरहिते सर्वेन्द्रियसुखावहे ।

मनः प्रसादजनने स्रग्भूपामोदमोदिते ॥२८

इसके नित्य अभ्यास करने से कर्म की दृढता को प्राप्त हुमा करता है ॥२२॥ योग के वेत्ता पुरुष को चाहिए कि अपने दाहिने चरण को बाँधे ऊरु के ऊपर रखे और वाम ऊरु के ऊपर बाँधे चरण को रखे—इसी प्रकार से स्थिति बनाकर बैठने के आसन को पद्मासन कहा करते हैं । दृढ बन्ध के वेत्ता को पीछे दोनों भंगूठों को हाथों से पकटना चाहिये । इस प्रकार के बाँधे हुए पद्मासन के अभ्यास से दृढ़ विग्रह वाला हो जाया करता है । इनके अनन्तर जिस बाह्यासन में इस अभ्यास को सुख उत्पन्न हो जाता है । फिर स्वस्तिकादि में उमका अभ्यास करके योग के जानने वाले पुरुषों को योग का युञ्जन करना चाहिए ॥२३-२५॥ अब योगाभ्यास करने में निषिद्ध स्थलों को बताते हैं—जल के ओर अग्नि के समीप में कभी योगाभ्यास न करे । किचो जीणुं (टूटे-पूटे पुराने) मकान में—अंगल में घोर गोष्ठ में भी योगाभ्यास नहीं करना

चाहिये । जो स्थान दश घोर भयको से घिरा हुआ हो उसमें—चैत्य (श्मशान) में—चत्वर (सुखे आँगन) में तथा केश, मस्म, सुपाङ्गार तथा कीरुम आदि से दूषित स्थान में और दुर्गन्ध दोष वाले स्थान में एवं जनों से समाकीर्ण जगह में कभी योग का अभ्यास नहीं करना चाहिए । सभी प्रकार की विघ्न-बाधाओं से रहिये—सभी इन्द्रियों को सुख देने वाले तथा मन को प्रमत्तता देने वाले घोर माला, घुप आदि से परम भुगन्धित स्थान में योग का अभ्यास करे ॥२६-२८॥

नातितृप्त क्षुधार्तो न नविष्मूत्र प्रबाधिनः ।

नार्ध्वस्त्रिन्तो न चिन्तार्तो योगं युञ्जीत योगवित् ॥२९

ऊरस्थोत्तानचरणः सठ्ये न्यस्योत्तरं करम् ।

उत्तान किञ्चदुन्नम्य वक्त्रं त्रिष्टभ्य चोरसा ॥३०

निमोलताश्च सत्त्वस्यो दन्तैर्दंतान्त सस्पृशेत् ।

तालुस्याचलजिह्वश्च सम्बृतास्य सुनिश्चलः ॥३१

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं नानि नीचोच्छ्रितासनः ।

मध्यमचोत्तमचाय प्राणायाममुपक्रमेत् ॥३२

चलेऽनिलेचल सर्वं निश्चले तत्र निश्चलम् ।

स्याणुत्वमाप्नुयाद्योगी ततोऽनिल निरुन्धनात् ॥३३

यावद्देहे स्थितः प्राणोजीवितं तावदुच्यते ।

निगंते तत्र मरणं ततो प्राण निरुन्धयेत् ॥३४

यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चेतो निराश्रयम् ।

यावद्दृष्टिभ्रुवोर्मध्ये तावत्कामं भयं कुतः ॥३५

एक अभ्यासी को स्वयं कैसा होना चाहिये जब कि वह अभ्यास का आरम्भ करे—यह बतनाया जाता है—योग के ज्ञान को योग का युञ्जन करने के समय अत्यन्त हृत्त नहीं होना चाहिये—शुधा से वह घाति न हो तथा मस-मूत्र के उत्सर्ग करने की बाधा से युक्त न हो—मार्ग गमन के वेद से वह युक्त न हो अर्थात् अन्त न हो और किसी भी विन्ता से परत न होवे । ऐसी परम निजान्त दान्त अवस्था में अवस्थित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए । ऊरु में स्थित उत्तान चरण वाला सव्य में

उत्तर करने रखकर कुछ ऊंचा उन्नमित होकर उरःस्थान से मुख को निस्तब्ध करे और पीछे मुँहकर सत्व में समवस्थित होकर दाँतों को दाँतों से स्पर्श नहीं करना चाहिए । तानु में स्थित प्रचल त्रिह्ला वाला होकर मुख बन्द करके एक दम सुरक्षल हो जावे । अपनी सपस्त इन्द्रियों पर पूर्ण संयम रखकर रहे । आसन जो बैठने का हो वह न हो अधिक ऊंचा हो और न ज्यादा नीचा हावे । फिर मध्यम और उत्तम प्राणायाम करने का उपक्रम करना चाहिये । इन वायु से चञ्चल होने पर सभी प्रमायमान होते हैं और जब यह निश्चल हो जाता है तो सब कुछ निश्चल हो जाता करते हैं । अग्नि के अर्थात् प्राण वायु के विरोध करने पर सबका निरोध हो जाने से योगी स्थाणुता को प्राप्त हो जाता है । मुखे हुए पेट के मूल भाग को जो जमीन में कटे या उखड़े वृक्ष का होता है वही स्थाणु है । जब तक इस शरीर में प्राण स्थित रहता है सभी तक इस देह को जोषित कहा जाता है । इन प्राण वायु के शरीर से निष्कल जाने पर ही मरण होता है अतएव प्राणो का निरोध करना चाहिये । जब तक यह वायु इस देह में बद्ध है और जिस समय तक चित्त निराश्रय होता है तथा जब तक भ्रष्टों के मध्य में दृष्टि है तभी तक फल का भय कंते हो सकता है अर्थात् ऐसी अभ्यास की दशा में कोई भी फल का भय होता ही नहीं है ॥२६-३५॥

कालसाध्वसतो ब्रह्मा प्राणायामं सदाचरेत् ।

योगिनः सिद्धिमापन्नाः सम्यक् प्राणनियन्त्रणात् ॥३३

मन्दोद्वादेशमाश्रन्तु मात्रालध्वक्षरामता ।

मध्यमो द्विगुणः पूर्वदुत्तमस्त्रिगुणस्ततः ॥३७

स्वेदं कम्प विषादं च जनयेत्क्रमणस्त्वसौ ।

प्रथमे न जयेत्स्वेदं द्वितीयेन तु वेपथुम् ॥३८

विषादं हि तृतीयेन तिस्र प्राणोऽथ योगिनः ।

भवेत्क्रमात्सन्निरुद्धः सिद्धः प्राणोऽथ योगिना ।

क्रमेण सेव्यमानोऽप्यौ नयते यत्र चेच्छति ॥३९

हृठान्निरुद्धप्राणोऽय रोमकूपेषु नि सरेत् ।

देहं विदारयत्येष कृष्णादिजनयत्यपि ॥४०

इस दाहण काल के भयसे भीत होकर ही ब्रह्माग्नी प्राणायाम का सदा-  
 धरण करत हैं । योगीजन भली भाँति प्राण वायु का नियन्त्रण करके  
 ही गिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥३९॥ मन्द प्राणायाम उसे कहा जाता है  
 जो द्वादश मात्रा वाला होता है और मात्रा सप्त अक्षर वाली मानी गयी  
 है । मध्यम प्राणायाम इस मन्द से दुगुना अर्थात् चौबीस मात्रा वाला  
 होता है तथा उत्तम प्राणायाम त्रिगुना हुआ करता है । इसमें छत्तीस  
 मात्राएँ होती हैं । यह प्राणायाम क्रम से स्वेद—कम्प और विषाद  
 को उत्पन्न किया करता है । प्रथम में स्वेद पर जय प्राप्त करे । द्वितीय  
 से घेषु (कम्पन) को जीते और तीसरे से विषाद पर जय प्राप्त  
 करे तभी योगी का प्राण सिद्ध होता है । योगी के द्वारा क्रम से सन्नि-  
 रुद्ध प्राण गिद्ध हुमा करता है । क्रम से इसका सेवन किया जावे तो  
 यह सेव्य भाव होकर यही पर योगी को पहुँचा दिया करता है वहाँ भी  
 यह जाना चाहता है । दूर से निरुद्ध किया हुआ यह प्राणवायु रोगों के  
 छिद्रों से निकलने लगता है । यह फिर देह को विदीर्ण करत दिया  
 करता है और कुष्ठ आदि रोगों को भी उत्पन्न करा दिया करता  
 है ॥३७-४०॥

तत्प्रत्यायितव्योऽपी क्रमेणाऽरण्यहस्तिवत् ।

वन्यो गजो गजारिर्वा क्रमेण मृदुतामियात् ॥४१

करोनिशास्तृनिर्देश न च तं परिलङ्घयेत् ।

तथा प्राणो हृदिस्थोय योगिनाक्रमयोगतः ।

गृहोत सेव्यमानस्तु विश्रम्भमुपगच्छति ॥४२

पट्त्रिंशदगुलो ह्यस्य प्रयाण कुरुते वहिः ।

स व्यापसंब्रमार्गेण प्रयाणात्प्राण उच्यते ॥४३

पुद्धमेति यदा सर्वं नाडीचक्रमनाकुलम् ।

तदैव जायते योगा दस प्राणनिरोधने ॥४४



हृदासनो यथाशक्ति प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।

रेवयेदथ सूर्येण प्राणायामोऽग्रमुच्यते ॥४५

स्रवत्पीयूषधारौघं ध्यायंश्चन्द्रममन्वितम् ।

प्राणायामेन योगीन्द्रः सुखमाप्नोति नत्क्षणात् ॥४६

रविणा प्राणमाकृष्य पूरयेद्दीदरी दरीम् ।

कुम्भायत्वादानं पश्चाद्योगीचन्द्रेण रेचयेत् ॥४७

ज्वलज्ज्वलनपुञ्जाम शीलपन्नुष्पगु हृदि ।

धनेन याम्यायामेन योगीन्द्रः शर्मभारभवेत् ॥४८

हृत्स्यं मासत्रयाम्यासादुभयायामसेवनात् ।

सिद्धनाडीगणो योगी सिद्धप्राणोऽभिधीयते ॥४९

क्रम से ही इसका प्रत्यायन करना चाहिए जैसे जगनी हाथी को क्रम पूर्वक ही प्रस्थापित किया जाता करता है । वन में रहने वाला हाथी अथवा गज का शत्रु क्रम से ही मृदुता को प्राप्त हुआ करते हैं ॥४१॥ यह फिर अपने ऊपर शासन करने वाले के निर्देश किया करता है और फिर उसके आदेश का उत्तर नहीं किया करता है, ठीक उसी भाँति यह हृदय स्थल में स्थित रहने वाला प्राण वायु है जो योगी के द्वारा योग के अभ्यास से क्रम पूर्वक मृदुत होता है और जब सन् २ यह सेव्यमान हो आया करता है तो फिर पूर्ण विश्वास को प्राप्त कर लिया करता है । यह छत्तीस अंगुल के परिमाण वाला हृदय चाहिए प्रयाण किया करता है । सव्यापमध्य भाग से प्रयाण करने से ही यह प्राण कहा जाता करता है । जिस समय में सम्पूर्ण नाड़ी चक्र घनाकुल होना हुआ शुद्धि को प्राप्त होता है तभी उस समय में प्राण के निरोध करने में योग समय हुआ करता है । ध्यान पर हृदय से बँटकर यथा-शक्ति चन्द्र के द्वारा प्राण को पूरित करना चाहिए । सूर्यस्वर से प्राण वायु का रेचन करें—यही प्राणायाम कहा जाता है । योगीन्द्र को प्राणायाम के द्वारा स्रव करने वाले अमृत की धारा का सपूह चन्द्र से समन्वित का ध्यान करते हुए वह उसी क्षण में मुख की प्राप्ति किया करता है । सूर्य के द्वारा प्राणों का समाकषित करके उदर ही दरी को

पूरित करना चाहिए फिर कुम्भन करने अर्थात् पाण्ड्यासु को रोककर के बहुत ही धीरे २ पीछे योगी को चन्द्र के द्वारा अर्थात् तीसरे स्वर के द्वारा रेचन करना चाहिए । देखीप्यमान अग्नि के पुञ्ज की आभा के समान आभा वाले उष्णगु को हृदय में शीतन करते हुए इस याम्यायाम से योगेन्द्र ब्रह्माण का अधिकारी होता है । इस प्रकार से तीन मास के अभ्यास से उभय याम (प्रहर) तक संभन करने से जिसके नाडियो का गण सिद्ध हो जाता है वह योगी सिद्ध प्राण वाला कहा है ॥४२-४६॥

यथेष्टं धारण वायोरनलस्य प्रदीपनम् ।

नादाभिव्यक्तिरारोग्य भवेन्नाडी विशोधनात् ॥५०

प्राणोदेहगतोवायुराधामरतन्निबन्धनम् ।

एकश्वासमयीमात्रा प्राणायामो निरुच्यते ॥५१

प्राणायामेश्वमेधर्मः कम्पो भवति मध्यमे ।

उत्तिष्ठेदुत्तमे देहो बद्धपद्मासनो मुहुः ॥५२

प्राणायामैर्देहेदोपान्प्रत्याहारेण पातकम् ।

मनोधर्मं धारणया ध्यानेनेश्वरदर्शनम् ॥५३

समाधिना लभेन्मोक्ष त्यक्त्वा धर्मं शुभाशुभम् ।

आसनेन वपुर्दाढ्यं पङ्कजमिति कीर्तितम् ॥५४

प्राणायामद्विपट्वेन प्रत्याहार उदाहृतः ।

प्रत्याहारं द्वादशभिर्धारणा परिकीर्तितम् ॥५५

भवेदश्वरमद्भृत्यं ध्यान द्वादशधारणम् ।

ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते ॥५६

नाडियो के विशोधन से प्रिस तरह वायु के द्रष्ट का धारण हीना है और घनस का दीपन होना है, बाद की अभिव्यक्ति—धारोग्य होत है । प्राणवायु देह में गत होगा है उतका निबन्धन ही प्राय म होता है और एक श्वासमयी मात्रा प्राणायाम कहा जाता है । अथम प्राणायाम में धर्म होना है—मध्यम प्राणायाम से कम्प होता है और उतम प्राणायाम से षट् पद्मानत वाला यह देह बार २ ऊपर का उठता है । प्राणायामो ६ द्वारा दोषों को दग्ध करना चाहिए । प्रत्याहार के द्वारा

पातकों का दाह करें। धारणा के द्वारा मन को धर्म देवे और ध्यान के द्वारा ईश्वर का दर्शन करना चाहिए। समाधि के द्वारा मोक्ष प्राप्त करें और पुन तथा अशुभ धर्म का त्याग कर देवे। प्रासन के द्वारा शरीर की शक्ति होती है। इस प्रकार से यह षडङ्ग योग का वर्णन कर दिया गया है। बाहर प्राणायामों में प्रत्याहार उदाहृत किया गया है। बारह प्रत्याहारों से धारणा कही गई है। ईश्वर की शक्ति के लिये द्वादश धारणाओं का ध्यान होता है पर्याप्त ध्यान में बारह धारणाएँ हुमा करती हैं। बारह ध्यानों के द्वारा समाधि होती है। इसी को समाधि कहा जाता है ॥५० ५६॥

समाधिः परतो ज्योतिरनन्तं स्वप्रकाशकम् ।

तस्मिन्ष्टे क्रियाकाण्डं यातायातं निवर्तते ॥५७

पवने व्योमसम्प्राप्ते व्वनिकल्पयते महान् ।

घण्टादीनाम्प्रवाद्यानां ततः सिद्धिरदूरतः ॥५८

प्राणायामेन युक्तेन सर्वव्याधिसयो भवेत् ।

अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधिसमुद्भव ॥५९

हिक्काश्वामश्च कासश्च शिरः कर्णाक्षिवेदना ।

भवन्ति त्रिविधा दोषाः पवनस्य व्यतीकृमात् ॥६०

युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तञ्च पूरयेत् ।

युक्तं युक्तञ्च वध्नीयादित्यं सिध्यति योगवित् ॥६१

इन्द्रियाणां हि चरिता विषयेषु यदृच्छया ।

यत्प्रत्याहरणं युक्तया प्रत्याहारः न उच्यते ॥६२

प्रत्याहरति यः स्थानिकूर्मोज्ञानीवसर्वतः ।

प्रत्याहृति विधानेन सस्याद्विगत्कर्मणः ॥६३

समाधि से परे स्व प्रकाशक अनन्त ज्योति होती है और उस ज्योति के दर्शन प्राप्त कर लेने पर सन्नूर्ण क्रिया काण्ड और यातायात निवृत्त हो जाया करता है ॥५७॥ पवन के व्योम में सम्प्राप्त हो जाने पर महान् ध्वनि उत्पन्न हुण करती है। यह ध्वनि घण्टा आदि प्रवाहों की होती है फिर उससे निकट ही में तिष्ठि होती है ॥५८॥ युक्त प्राणायाम से मनस्त

व्याधियों का क्षय होजाता है किन्तु प्रयुक्त योग के अभ्यास याग से सब व्याधियों की नमुत्पत्ति हो जाया करती है ॥१२६॥ वायु के व्यतिक्रम के होने से हिकी, श्वास, धीमो, तिर दबे, कानो मे पीडा और आँसो का दहं ऐसे अनेक दोष हो पाया करते हैं ॥६०॥ युक्त युक्त वायु का त्याग करे और युक्त-युक्त ही दमको पूरित करना चाहिए तथा युक्त-युक्त ही दमका बन्धन करे, इसी प्रकार से योग के वेत्ता की मिद्धि हृषा करती है ॥६१॥ महब्दा से विषयो मे इन्द्रियो के सञ्चरण करने पर जो उनका युक्ति से प्रत्याहरण किया जाना है वही प्रत्याहार कहा जाता है ॥६२॥ जो अपनी समस्त इन्द्रियो को सभी ओर से बधुर के द्वारा अपने अङ्गो के समान प्रत्याहरण किया करता है और प्रत्याहरण के विधान मे जो वह प्रत्याहरण होता है । ऐसा प्रत्याहरण करने वाला पुण्य विगत कल्मष हा जाया करता है अर्थात् उसने सभी पाप क्षीण होजाते हैं ॥६३॥

नाभिशेषेवसेद्भ्रानुस्नालुदेशे च चन्द्रमा ।

वर्षस्यधोमुखश्चन्द्रोपसेदूर्ध्वंमुखोरधिः ॥६४

करगन्तच्चकर्तव्यं येन सा प्राप्यते सुधा ।

ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालुरुर्ध्वं भानुरधः शशी ॥६५

करणा विपरीताह्यमध्यासादेव जायते ॥६६

काकचञ्चुवदास्येन शीतलं शीतलं पिवेत् ।

प्राण प्राणविधानजो योगी भवति निर्जरः ॥६७

रसना तालुविवरे निघायोर्ध्वंमुखोऽमृतम् ।

धमद्विर्जरताङ्गच्छेदापन्नामास्र संशयः ॥६८

ऊर्ध्वंजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः ।

मासाधेन न मन्देहो, मृगमुञ्जयति योगवित् ॥६९

सम्पीठे रसनाग्रैण राजदन्तविल महत् ।

ध्यात्वा सुधामयी देवी पण्मासेन कविर्भवेत् ॥७०

नाभि देश मे भानु का निवास है ता हे और तालु देश में चन्द्रमा रहा करता है । चन्द्रमा परोमुख होकर वर्षा किया करता है और मूय ऊर्ध्वं मुख वाला होकर पसता है । उस कारण को करना चाहिए त्रिमते

सुधा की प्राप्ति को नापा करे । ऊर्ध्व में नाभि है और अधो भाग में चन्द्रमा है । विपरीताय करण अम्यास से ही हुआ करता है ॥६४-६६॥ काक (कोआ)की चक्षु के समान मुख से शीतल-शीतल प्राण का पान करे । प्राण के विधान का ज्ञाता योगी निजर ( देवता ) धर्षात् वृद्धता से रहित हो जाता करता है ॥६७॥ तालु के छिद्र में रसना को रखकर ऊर्ध्वमुख पाला होकर अमृत का चयन करते हुए निजरता को छै मास में ही प्राप्त हो जाता है, इसमें कुछ भी गन्ध नहीं है । जो ऊपर की ओर जिह्वा करके स्थिर होकर सोम का पान निमा करता है यह योग का वेत्ता अर्द्ध मास में ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लिया करता है, इस में लेश मात्र भी सन्देह नहीं है । महात् शोभित प्रखिल को रसना के अग्र भाग से सम्बोद्धित करके सुभामयो देवी का ध्यान करके छैमास में ही कवि होजाया करता है ॥६८-७०॥

अमृतापूर्णदेहस्य योगिनोर्द्वित्रवत्तरात् ।  
ऊर्ध्वं प्रवर्ततेरेतो ह्यणिमादिगुणोदयम् ॥७१  
नित्यं सोमकलापूर्णं शरीरं यस्य योगिनः ।  
तक्षकेणापि दृष्टस्य विष तस्य न सर्पति ॥७२  
आसनेन समायुक्तः प्राणायामेन समुतः ।  
प्रत्याहारेण सम्पन्नो धारणाभ्यन्त्राम्यसेत् ॥७३  
हृदये पञ्चभूतानां धारणं यत् पृथक् पृथक् ।  
मनसो निश्चलत्वेन धारणासाभिधीयते ॥७४  
हरितालनिभा भूमि सलकारा सवेधसम् ।  
चतुष्कोणा हृदि ध्यायेदेवास्यात् क्षितिधारणा ॥७५  
कण्ठेऽम्बुतत्त्रमर्धेन्दु निभ विष्णुसमन्वितम् ।  
वकारबीज कुन्दाभ ध्यात्तम्बुजयेदिति ॥७६  
तालुस्थमिन्द्रगोपाभ त्रिकोणरेफसयुतम् ।  
रुद्रेणाघिष्ठित तेजोऽप्यात्वार्वह्निजयेदिति ॥७७  
वायुस्तत्त्वं ध्रुवोर्मध्ये वृत्तमञ्जनसत्सिमम् ।  
यम्बीजमोशदेवत्य ध्यायन्वायुं जयेदिति ॥७८

योगाभ्यास करने वाले योगी के इस अगृह से परिपूर्ण देह का रेत ऊर्ध्व भाग को प्रवृत्त हो जाया करता है और फिर अणिमा आदि षट् सिद्धियों के गुणों का उदय हो जाता है ॥७१॥ जिस योगी का नित्य ही सोम की कल्प से परिपूर्ण शरीर होता है उसको यदि साक्षात् स्वयं तसक सर्प भी दशन करे तो भी उस में विष का सर्पण नहीं होता है । आसन से समायुक्त, प्राणायाम से संयुत, प्रत्याहार से सुमम्पन्न होता हुआ धारणाका अभ्यास करना चाहिए । हृदय में पाँचों भूतों का पृथक्-पृथक् जो धारण करना है और वह भी मन के परम निश्चलता के भाव से किया जाता है । इसीलिये इसको धारणा कहा जाता है ॥७२-७४॥ हरि ताल के तुल्य सलकार और सर्वप्रथम चतुर्कोण भूमि का हृदय में ध्यान करे, यही शक्ति की धारणा कही जाती है । कण्ठ में अर्ध चन्द्र के समान विष्णु से समन्वित अम्बु (जल) का तरव है । वरार उसका बीज है और वह कुन्द के पुष्प की आभा के सदृश आभा वाला है, इस भाँति अम्बु का ध्यान करना चाहिए । इसी से वह अम्बु के ऊपर जय प्राप्त करे ॥७५-७६॥ सालु में स्थित इन्द्र गोप के समान आभा वाला, त्रिकोण और रेफ किसी आभा से युक्त, रुद्र देव के द्वारा अधिष्ठित तेज का ध्यान करके वह्नि का जीतना चाहिए ॥७७॥ वायु तरव को दोनो माँहों के मध्य भाग में अञ्जन के सदृश घृताकार ध्यान करे त्रिमका सर्वोन्नत है और ईश देव से वह अधिष्ठित है—इसी रीति से ध्यान करते हुए वायु पर जय प्राप्त करे ॥७८॥

आकाशञ्चमरीचिवारिसदृश यद्ब्रह्मरुध्रस्थित  
 यथायेन सदाशिवेन सहित शान्त हकाराक्षरम् ।  
 प्राण तत्र विनीय पञ्चघटिकं चिन्तान्वित धारये  
 देवा मोक्षकपाटनपटुः प्राक्ता नभोधारणा ॥७९॥  
 स्तम्भनोप्लावनी चैव दहिनी भ्रामणीतथा  
 दामनीचमवन्त्येताभूतानापञ्चधारणाः ।  
 ध्यंचिन्तायां स्मृतो धानुश्चिन्तातत्त्वे मुनिश्चला  
 एतद्ध्यानमिह प्रोक्तं मगुण निगुंणद्विधा ॥८०॥

सगुणं वरुणं भेदेन निर्गुणकेवलममृतम् ।  
 समन्त्रं सगुणं त्रिविधं निर्गुणं मन्त्रवर्जितम् ॥८१  
 अन्तश्चेतो बहिष्कुरवस्थाप्य सुखासनम् ।  
 समत्वञ्चक्षरीरस्य ध्यानमुद्रात्सिद्धिदा ॥८२  
 नाश्रमेधेन तत्पुण्यं न च वै राजसूयत\* ।  
 यत्पुण्यमेकध्यानेन लभेद्योगी स्थिरासनः ॥८३  
 शब्दादीनाञ्च तन्मात्रा यावत्कर्णादिषु स्थिता ।  
 तावदेव स्मृतं ध्यानं स्यात्प्रमादिरतः परम् ॥८४  
 धारणा पञ्चनाडीका ध्यानं स्यात्पष्टिनाडिकम् ।  
 दिनद्वादशकेन स्यात्प्रमादिरिह भण्यते ॥८५

माकाश तत्त्व परीधि के बारि का बुत्य है जो ब्रह्म रन्ध्र में स्थित है जिसका नाम भगवान् सदाशिव है ऊँही के सहित वह रहता है । परम धान्त उसका स्वरूप है तथा हकाराक्षर उसका वाक्त्र है जिससे वह मनुज है । वहाँ पर पाँच घड़ी तक प्राण को लेनाकर ध्यान से पुक्क होता हुआ धारणा करे । यह मोक्ष के कपाड़ों के पाटन करने में परम कुशल नाम की धारणा कहो गई है ॥७६॥ इस रीति से तन्मनी, प्लावनी, दहिनी, भ्रामणी और क्षमनी नामो वाली मूर्तों की पाँच धारणाएँ हुआ करती हैं । ध्यं चिन्ता के अर्थ में धातु कहा गया है अतएव यह चिन्तन करने में सुनिश्चय होता है । इसीलिये यह ध्यान कहा गया है । यह सगुण का ध्यान और निर्गुण का ध्यान दो प्रकार का होता है ॥८०॥ सगुण ब्रह्मण भेद से कहा गया है और निर्गुण का ध्यान केवल माना गया है । सगुण ध्यान मन्त्र के सहित होता है और निर्गुण का ध्यान मन्त्र से वर्जित होता है । जित को प्रन्तमुख और चन्द्र को बहिर्मुख प्रवस्थापित करके सुखासन और क्षरीर का समत्व आ होता है यही ध्यान को मुद्रा अस्यन्त सिद्धि को प्रदान करने वाली होती है ॥८१-८२॥ उस पुण्य को अश्रमेध मन्त्र से तथा राजसूय यज्ञ से भी मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता है जिस पुण्य को स्थिर आसन धाला होकर एक ध्यान से ही प्राप्त कर लिया करता है

॥८३॥ शब्दादि की तन्मात्रा जब तक वर्णादि में स्थित है सभी तक उसको ध्यान कहा गया है । इसके पश्चात् तो फिर समाधि की अवस्था प्राप्त ही जाया करती है ॥८४॥ धारणा पञ्च नाडी वाली होती है और ध्यान साठ नाटियों वाला होता है । समाधि बारह दिन की होती है— यहाँ पर ऐसा ही कहा जाता है ॥८५॥

जलसन्धवयो . साम्य यथा भवति योगत- ।

तथात्ममनसोरंधयसमाधिरिहभण्यते ॥८६

यदासक्षीयते प्राणो मानसञ्च प्रलीयते ।

तदा समरसत्त्व यत्ससमाधिरिहोच्यते ॥८७

यत्सनत्त्वद्वयोरथ जीवात्मपरमात्मनोः ।

स नष्टसर्वसङ्कल्प समाधिरभिधीयते ॥८८

नाहमाननपर वेत्ति न शीत नोष्णमेव च ।

समाधियुक्तो योगीन्द्रो न सुखन सुखेतरत् ॥८९

काल्यते नैवकालेन लिप्यते नैव कर्मणा ।

भिद्यते न चशस्त्रास्त्रैर्योगीयुवत समाधिना । ६०

युवताहारविहारश्च युवतचेष्टोहि कमथु ।

युक्तनिद्रावबोधश्च योगीतत्त्व प्रपशति ॥६१

जिन प्रकार से जन और संश्लेष का साम्य योग से होता है उसी रीति से प्राण और मन का योग अर्थात् एकाता का हो जाता ही यहाँ पर समाधि कही जाती है ॥८६॥ जिन समय में प्राण क्षीण हो जाता है और मानस प्रलीन होजाया करता है उसी समय में समरसता होती है जिनको यहाँ पर समाधि कहा जाया करता है ॥८७॥ जो जीवात्मा और परमात्मा दोनों का यहाँ पर समत्व होजाना है और जिन में सभी संश्लेष नष्ट होजाया करते है उसी अवस्था का नाम यहाँ पर समाधि कहा जाता है ॥८८॥ समाधि में निरग हुआ योगी न तो आत्मा का ज्ञान उसे रहता है और न पर वो ही वह जानता है—शीत और उष्ण का भा उसे ज्ञान नहीं होता है । समाधि में युक्त योगी को सुख तथा दुःख का भी कुछ ज्ञान नहीं रहता करता है । वह समाधिस्थ योगी बाग से वात्स्यायमान



नही होता है और कर्म से भी लिप्त नहीं करता है । शस्त्रास्त्रों से भी उसका भेदन नहीं किया जा सकता है । समाधि से युक्त रहने वाले योगी का ऐसा ही अद्भुत प्रभाव होता है ॥५६-६०॥ जो योगी युक्त आहार और विहार वाला होता है तथा कर्मों में भी युक्त चेष्टाओं वाला रहा करता है एव युक्त निद्रा तथा उच्च बोध से युत है वही योगी तत्त्व का साक्षात्कार किया करता है ॥६१॥

तत्त्वविज्ञानम नन्दम्ब्रह्मब्रह्मविदोविदुः ।

हेतुदृष्टान्तरहित वाङ्मनोभ्यामगोचरम् ॥९२

तत्र योगी निरालम्बे निरातङ्गे निरामये ।

पङ्क्त्योगविधिना परेब्रह्मणि लीयते ॥९३

यथा घृते घृत क्षिप्तं घृतमेव हि तद्भवेत् ।

क्षीरेक्षीरं तथा योगी तत्रतन्मयता व्रजेत् ॥९४

धनसं जातपानीयंविदव्यादङ्गमदनम् ।

त्यजेत्कटुष्म लवणं क्षीरमोजी सदा भवेत् ॥९५

ब्रह्मचारी जितक्रोधो जितलोभो विमत्सरः ।

अब्दमित्यं सदाभ्यामात्म योगीति निगद्यते ॥९६

महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयानञ्जलन्धरम् ।

मूलबन्धन्तुयोवेत्तिसयोगीभोगसिद्धिभाक् ॥९७

शोधननाडीजालस्य घटनञ्चन्द्रसूर्ययोः ।

रसानां शोषणसम्बन्धमहामुद्राभिधीयते ॥९८

ब्रह्म के वेता लोग हेतु और दृष्टान्त से रहित, मन वाणों के अगोचर, विज्ञान और आनन्द स्वरूप ब्रह्म तत्त्व को जानते हैं वहाँ पर योगी निरालम्ब, निरातङ्ग, निरामय परब्रह्म में पङ्क्त्योग की विधि से लीन हो जाया करता है । जिस प्रकार से घृत में क्षिप्त हुआ घृत वह घृत ही हो जाया करता है कोई भी दोनो में भेद नहीं रहा करता है और इसी तरह से क्षीर में क्षिप्त क्षीर हो हुआ करता है और तन्मयता को प्राप्त हो जाया करता है । बिना घालस्य के जात जलो से प्रद्वों का योगी को मर्दन करना चाहिए । योगी को उष्ण, लवण का त्याग कर देना चाहिए और

सब क्षीर का भोजन करने वाला रहना चाहिए । जो सदा ब्रह्मचारी, क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला, लोभ को जीत लेने वाला, मत्सरता से रहित होकर एक वर्ष पर्यन्त सदा अभ्यास करने से यह व्यक्ति योगी कहा जाया करता है । जो महामुद्रा, नमो मुद्रा, उड्डीयान, जलन्धर और मूलबन्ध को मली-भक्ति जानता है वही योगी योग की सिद्धि का पूर्ण अधिकारी हुआ करता है । नाटियों के बाल का शोधन और चन्द्र-सूर्य दोनों का घटन, रसो का शोधण जिसमें हुआ करता है वही महामुद्रा कही जाया करती है ॥६२-६५॥

योनि वामाङ्घ्रिणाऽऽपीडय कृत्वा वक्षस्यले हनुम् ।

हस्ताभ्या प्रसृतम्पाद धारयेद्दक्षिण चिरम् ॥९९

प्राणेन कुक्षिमापूय चिरं सरेचयेच्छनैः ॥

एप्रोक्ता महामुद्रा महाघोषविनाशनी ॥१००

चन्द्राग्रे तु समम्यस्व सूर्याग्नि पुनरम्यसेत् ।

यावत्तुल्या भवेत्सस्या ततो मुद्रा विसर्जयेत् ॥१०१

नहि पथ्यमपथ्य वा रसाः सर्वेऽपिनीरसाः ।

अपिघोर विषम्पीतर्म्पःपूपमिवजीर्यंति ॥१०२

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ।

तस्य दोषाः क्षय यान्ति महामुद्राञ्चयौ भासेत् ॥१०३

कपालकुहरेजिह्वाप्रविष्टाविपरीतगा ।

भ्रुवोरुत्तगतादृष्टिमुद्रा भवति खेचरी ॥१०४

न पीडयते क्षरीषेण न च लिप्येत कर्मणा ।

वाध्यते न स कालेन यो मुद्रा वेत्ति खेचरोम् ॥१०५

शाम परण से योनि का सम्पीडन करके घोर वक्षःस्थल में ठोड़ी लगा कर दोनों हाथों से प्रसून दक्षिणा घोर को चिरकाल तक धारण करना चाहिए ॥६६॥ प्राण से कुक्षि को सापूरित करके चिरकाल पर्यन्त धरने, धरने मनो-भक्ति रेचन करे । इसी को महामुद्रा कहा गया है जो कि महान् अर्षों के मोघ का विनाश करने वाली होती है । इसी प्रकार से चन्द्रान्न में मनो-भक्ति अभ्यास करके फिर सूर्याङ्ग में अभ्यास करना

चाहिए । जब तक तुल्य संस्था हो तब तक करे फिर मुद्रा का विसर्जन कर देना चाहिए ॥१००-१०१॥ न तो कोई पत्थर ( हितकर भोजन) है घोर न कुछ अपघ्न्य ही है । सभी रस भी नीरस हो जाते हैं । घोर विष भी पिया जावे और उसे पीयूष की ही भाँति जीर्ण कर जाता है । क्षय, बुष्ट, उदावत्, गुल्म और अजीर्ण जिनमें प्रमुख हैं इन समस्त व्याधियों के दोष उस योग्यात्मि के क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं जो महामुद्रा का अभ्यास किया करता है । कपाल के कुहर में जिह्वा प्रविष्ट हुई हो घोर अधिपरोक्ष गमन करने वाली हो तथा दृष्टि दोनों भीर्णों के अन्तर्गत हो ऐसी इस मुद्रा को खेचरी मुद्रा करते हैं । जो इस खेचरी मुद्रा को प्राणता है वह सारों के समुदाय से पोटित नहीं होता है और न कर्म से ही लिप्त हुआ करता है, उसको काज के द्वारा भी बापा नहीं दी जाया करती है ॥१०२-१०५॥

चित्तं चरति चे यस्माञ्जिह्वा चरति खेगता ।  
 तेनैषा खेचरीनाम मुद्रासिद्धनिपेविता ॥ ०६  
 यावद्विन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ।  
 यावद् बद्धा नभोमुद्रा तावद् विन्दुर्नगच्छति ॥१०७  
 उड्डीनंकुक्षतेयस्वोदहोरात्रं महाखगः ।  
 उड्डीयानन्ततः प्रोक्तं तत्र बन्धो विधीयते ॥१०८  
 जठरेपश्चिमं ताननाभेरुध्वञ्चचारयेत् ।  
 उड्डीयानो ह्ययम्बन्धो मृत्योरपिभय त्यजेत् ॥१०९  
 वध्नातिहिशिराजालमघोगामिनभोजलम् ।  
 एपजालन्धरोबन्धः कण्ठेदुःखीघनाशनः ॥११०  
 जालन्धरे कृतेबन्धे कण्ठसङ्कोचलक्षणे ।  
 न पीयूषपतत्यग्नी न च वायुः प्रघावति ॥१११  
 पाणिभागेन सम्पीड्यपोनिमाकुञ्चयेद्गुदम् ।  
 अपानमूर्ध्वमाकुण्ठ्यमूलबन्धोविधयते ॥११२  
 अपानप्राणयोरैक्ये क्षयो मूत्रपुरीषयोः ।  
 युवापवतिवृद्धोऽपि सततममूलबन्धनात् ॥११३

खेचरी मुद्रा के सम्पादन करने वाले पुरुष का चित्त तो आकाश में संवरण किया करना है और आकाश में गई हुई जिह्वा भी संवरण किया करती है इसी कारण से इस मुद्रा का नाम खेचरी पड़ गया है और यह मुद्रा सिद्धों के द्वारा निवेदित हुआ करती है ॥१०९॥ जब तक दम देह में बिन्दु स्थित रहा करता है तब तक मृत्यु का भय कहीं है अर्थात् मौत का भय होगा ही नहीं है । जब तक नभोमुद्रा बद्ध होती है तब तक बिन्दु नहीं जाया करता है ॥१०७॥ जो महान् राग महोरात्र उड्डीन को किया करता है इसी कारण से इस मुद्रा को उड्डीयान नाम से कहा गया है । वहाँ पर बन्ध किया जाता है ॥१०८॥ गडर में पश्चिम भाग को प्रायः ऊर्ध्व भाग में धारण करना चाहिए । यही उड्डीयान बन्ध होता है जिसे मृत्यु के भी भय को त्याग देना चाहिए ॥१०६॥ प्रयोगामी नभो जल शिरासो के जल को बाँध लिया करता है । यही जालम्बर बन्ध होता है जो कण्ठ में दू गो के ओष का नाश करने वाला है ॥११०॥ कण्ठ के सङ्कोष लक्षण वाले जालम्बर बन्ध के करने पर न तो पीयूष अग्नि में गिरा करता है और न वायु ही प्रधावन करता है ॥१११॥ पार्श्व भाग से योनि का सम्बोधित करके गुद को आकुञ्चित करना चाहिए । अपान बाल को ऊर्ध्व भाग की ओर आकर्षित करना चाहिए । यही मूत्र बन्ध निहित किया जाता है ॥११२॥ अपान वायु और प्राण वायु इन दोनों की एकता हो जाने पर मूत्र तथा मल का शय हो जाया करता है । जो कोई भी वृद्ध हो जाता है तो वह मुखा होजाया करता है यदि निरन्तर इस मूत्र बन्ध के करने का ऐसा महात् प्रभाव होता है ॥११३॥

इतियोगः समाख्यातो मयातेद्विधिधो मुने !।

सपठ गः समुद्रश्च मूत्रतयैशम्भुभाषित ॥११४

यावन्नेन्द्रियव मलम्य यावद्वर्धाषर्न बाधते ।

यावत्कालविलम्बोऽस्ति तावद्योगरतो भवेत् ॥११५

समयीर्यागयोर्मध्येकानीपोतोऽयम्भूत्तम् ।

वाणीयोगमम्यस्यप्राप्नुयाद्योग मृशमम् ॥११६

आचिन्वाधिसहायिन्या जरया भृत्युलिगया ।

काल निकटतो ज्ञात्वा काशीनाथ समाश्रयेत् ॥१११॥

हे मुने ! इस प्रकार से मैंने यह योग दो प्रकार का घापको बतना दिया है । यही योग छँ बड़ो बाला होता है और उपयुक्त मृदाओं से भी समन्वित हुआ करता है । भगवान् दाम्भु ने इसी योग को मुक्ति की प्राप्ति करने के लिये कहा है ॥११४॥ त्रिम गमय तक इन इन्द्रियों में विकलता की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् ये विषयों के प्रदग्ग करने में असमर्थ नहीं होती है और जब तक इस शरीर को व्याधियों के द्वारा घापा नहीं होती है तथा जब तक कराल काल का वितम्ब है अर्थात् मृत्यु का समय प्राप्त नहीं होता है तभी तक मनुष्य को योग के अभ्यास करने में रत हो जाना चाहिए ॥११५॥ इन दोनों प्रकार के योगों के मध्य में यह काशी का योग श्रेष्ठतम होता है । इस काशी के योग का अभ्यास करके उत्तम योग की प्राप्ति करना चाहिए । आधि (मानसिक ध्या) और व्याधि (शारीरिक रोग) जिस की सहायता करने वाली है ऐसी वृद्धता (बुढ़पा) से जो कि मृत्यु के समये में होने का एक संकेत है अपने अन्त काल को प्रति निकट में ही जानकर भगवान् काशी के स्वामी श्री विश्वनाथ का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥११६-११७॥

### ५४— दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णन

गभस्तिमालिनि गते काशीं श्री लोकात्मोहिनीम् ।

पुनश्चिन्तामवापोच्चैर्मन्दरस्योमुनेहर ॥१॥

नाद्याप्यायान्ति योगिन्यो नाद्याप्यायाति तिमगु ।

प्रवृत्तिरपि मे काश्नाश्चित्रमन्यन्तदुर्लभा ॥२॥

किमन्नचिद्रं यत्काशी मदीयमपि मानसम् ।

निश्चलं चञ्चलयति गणना केतरेसुरे ॥३॥

वर्धाक्षिमहेकाम त्रिजगजिज्जस्वरं दृशा ।

अहो काश्यभिलापोऽग्रमामेवदुनुयात्तराम् ॥४॥

काशीप्रवृत्तिमन्वेन्दुं कम्वा प्रहिरगुयामितः ।

ज्ञानु क्त्वनिपुणो यतः स चतुराननः ॥५

इत्याह्वय विधानारं बहुमानपुर.सरम् ।

मत्रोपवेश्य श्रीरुषः प्रोवाच चतुराननम् ॥६

योगिन्य प्रं पिता.पूर्वंप्रेपितोऽथपहस्यगु ।

नञ्चापितेनिवर्तन्तेकाश्याः कमनसम्भव ॥७

भगवान् श्री स्कन्द ने कहा—हे मुनिवर ! प्रयोग्य को मोहित करने वाली काशी पुरी में गभस्ति माली भगवान् भास्कर के जाने पर मन्दरगिरि पर समवस्थित भगवान् हर पुनः बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे कि आज तक भी योगिनियों नहीं आनी हैं और अभी तक तिमगु भी नहीं आना है । बड़ी विचित्र बात है कि मेरी काशीपुरी की प्रवृत्ति भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥५-२॥ यहाँ पर यह क्या विचित्रता है कि यह काशीपुरी मेरे निश्चय मन को भी अचंचल बना रही है तो फिर दुमरे देवों की तो विचारों की गिनती ही क्या है ? मैंने तीनों जगतों पर विजय प्राप्त कर लेने वाले कामदेव को भी बहुत ही शीघ्र तोमरे नेत्र के द्वारा दग्ध कर दिया था । अहो ! यड़े आश्चर्य की बात है कि यहाँ पर यह काशी की अभिवादा मुझको ही अधिक गना रही है । इस काशी की प्रवृत्ति की आज करने के लिये यहाँ से मैं किस के पास जाऊँ । इसी ज्ञानने के लिये वीन ऐमा निपुण हो सकता है । हाँ, वह एक चतुरानन (ब्रह्म) ही हो सकते हैं । इस लिये उन्होंने विधाता का समाह्वान किया था । बहुमान पूर्वक ब्रह्माश्री को वहाँ पर बिठनाकर भगवान् श्री रुष ने चतुरान ब्रह्मा जी से पूछा था—हे भगवान् ! मैंने पहिले तो योगिनियों का भेजा था और इनके भेजने के पश्चात् महर्षीगु को प्रेषित वहाँ पर किया था । हे कमन से समुत्पत्ति वाले ब्रह्माश्री ! काशीपुरी से वे मन अभी तक भी बापिस लौटकर नहीं आये हैं ॥३-७॥

मागमृतमुक्येरकाशी लोकेन मममानगम् ।

प्राहनस्यजनस्यैव चञ्चलाशीषकाचन ॥८

मन्वरेऽप्र रतिर्मे न भृश सुन्दरकन्दरे ।  
 धनचन्द्रतुच्छपानोये नक्षत्र्येवास्मपत्तवले ॥१९  
 नावाविष्टतथामा न तापोहान्नाह्लोद्भवत् ।  
 काशीविरहजन्माऽत्र यथाभामतिवाघते ॥२०  
 शीतरश्मि' स्थिरस्थोऽपि वपेन्मीधूपसीकर' ।  
 काशीविश्लेषजतापनाहोगमधिनु प्रभुः ॥२१  
 विधेविधेहि मे काशं मायं धुयं महामते ।  
 याहिकाशीमितस्मूर्णं भवन्व व ममेहि ते ॥२२  
 ब्रह्म स्त्वमेव तपैत्सि काशीत्यजनकारणम् ।  
 मन्दोपिन तप्येत्काशीकिमुयो वेति किञ्चन ॥२३  
 वार्धवाकितगच्छेय काशीव्रतान्स्वमायया ।  
 दिवोदास स्वधर्मस्यं तसूस्लंयिनुमुत्सहे ॥२४

हे लक्ष्मण । वह काशी पुरी मेरे भी मन में धर्म वास्तुकाता समुत्पन्न किया करती है जैसे कोई चन्चल नेत्रों वाली स्त्री प्रकृति (माणरण) मनुष्य के हृदय को चञ्चल कर दिया करती है । इस सुन्दर कन्दराओं ने समन्वित इस मन्दराधम पर भी मेरे मन में अधिक रति नहीं होती है । जैसे मटमसे सुन्दर बाले छोटे पोखरो में नक्ष के मन को पूर्ण आनन्द भी प्राप्ति नहीं करती है । मैंने जो मायार मग्गन में निश्चले हुए हलाहत का पान किया या उसका ताप भी मुझे सतनी घाथा नहीं पहुंचाता है जैसा कि वह काशीपुरी के विद्योग से समुत्पन्न ताप मुझे अवधि मेरे मन को मरणात् मन्ताव दे रहा है । मेरे मस्तक पर धीतस किरणों वाला चन्द्र भी याकात् भिद्यनमान रहना है जो कि सदा पीयूष के सीकरों के द्वारा वृद्धि मेरे ऊपर करता रहता है किन्तु वह भी काशीपुरी के दिग्गु से उत्पन्न होने वाले सन्ताप का समन करने में शक्य नहीं हो रहा है ॥२०-२१॥ हे बिचाता । हे जामों मे परम श्रेष्ठ । याप ही महात् प्रति से मृद्यन्त है । इस समय मैं मेरे इस काम को कर हीनिए । यहाँ से याप काशीपुरी को चले जाइये और लवन्त ही घोष मेरे हित के सम्पादन करने के लिये बल कीशिका । हे ब्रह्मा !

कर्मों के त्याग का कारण आप ही भलो भीति जानते हैं । कोई मन्द से भी मन्द पुरुष काशी पुरी का त्याग नहीं किया करता है और जो कुछ भी उनकी महिमा का गाता है उसकी वो बात ही बया है अर्थात् वह तो कभी उसे त्याग ही नहीं सकता है । आज ही हमो भी हे ब्रह्मन् ! षषती माया से काशी को क्यों न गमन कर लूँ ? किन्तु अपने धर्म में स्थित दिव्योद्योग का उल्लंघन करने का मैं उत्साह नहीं कर पाता हूँ ॥१२-१४॥

विधेसर्वविधेयानित्वमेवविदधोस्तियम् ।

इतिचेनिचवक्तव्यत्वव्यपार्यमतोऽखिलम् ॥१५

अरिष्ट गच्छपन्थास्ते शुभोदको भवत्वलम् ।

आदायाऽज्ञा विधिर्मुं विन ययो वाराणसी मुदा ॥१६

मिनहपरथस्तूर्णं प्राप्यवाराणसी पुरीम् ।

कृन्कृत्यमिवात्मानममन्यत तदात्मभू ॥१७

हमयानफल मेऽथ वातं काशीमनागमे ।

काशीप्राप्तौयत प्रोक्ता अन्तरायाः पदे पदे ॥१८

द्विगिचातुरभूदद्यमदृदशौप्राप्यमान्वयः ।

स्वपृ दृष्टियथ प्राप्ता यदेपाऽऽनन्दवाटिका ॥१९

स्वयमिन्वतियामादिभ स्वाभि स्वर्गतरङ्गिणी ।

यप्रानन्दमुपाकृष्यायप्रानन्दमयाजना ॥२०

निर्विशन्ति सदा कोदया फलान्यानन्दवन्त्यपि ।

मर्दवानन्दभूः काशी मर्दवानन्ददःशिवः ॥२१

हे विधे । आप ही गमन करने के कर्मों को किया करते हैं इसी हेतु से आपकी सेवा में यह कहा जा रहा है, क्योंकि आपके विषय में सभी कुछ अरिष्ट अपार्य ही होता है । आप गमन कीजिए । आपका मार्ग शुभ कनशापक होवे । उस समय मैं ब्रह्माजी ने भ्रमवात् धन्वु की शान्ता का मन्त्र पर धारण करके बहुत ही प्रसन्नता के साथ ये वाराणसी पुरी की ओर गये थे ॥१५-१६॥ देवेन हृष का रय बहुत ही शीघ्र वाराणसी पुरी में प्राप्त हो गया था । उस समय में वाराणसी में पदार्थ कर



ब्रह्माजी ने अपने आपको परम कृत्य की ही भाँति माना था । ब्रह्माजी ने मन में विचार किया था कि मुझे इस हमों के यान का वास्तविक फल आज ही प्राप्त हुआ है कि मेरा इस काशी पुरी में सुन्दर समागम हो गया है क्योंकि इस काशी पुरी की प्राप्ति करने में कठम-कठम मे बहुत से विघ्न रहे गये हैं । यह दृष्टि धातु मेरे दृष्टि की मार्थकता प्राप्त करके ही ठीक मफम हुई है क्योंकि यह आनन्द की धाटिका आज स्पष्ट रूप से मेरी दृष्टि के मार्ग में प्राप्त हो गई है, अर्थात् मैंने अपने नेत्रों से काशी पुरी का दर्शन प्राप्त करके नेत्रों के पाने का फल एव साधक्य पा लिया है । यह वाराणसी ऐसी पुरी है जिसका स्वर्ग तरङ्गिणी एवम अपने परम पावन जल से सिञ्चन किया करता है । यह ऐसी नगरी है जहाँ पर सभी वृक्ष भी आनन्द से परिपूर्ण होते हैं और जहाँ पर याजन करने वाल भी आनन्दमय जीवन व्यतीत किया करते हैं । काशीपुरी में सदा आनन्द वाले भी फल विशेष रूप से प्रवेश किया करते हैं । काशी सदा ही आनन्द की भूमि है और सदा ही आनन्द के प्रदान करने वाले प्रभु शिव हैं ॥१७-२१॥

आनन्दरूपाज्जायन्ते तेनकाश्याहिजन्तवः ।

चरणी चरितुं धितस्तावेध कृतिनामिह ॥२२

चरणीविचरेतायो विश्वभर्तृपुरीभुवि ।

तावेव श्रवणी श्रोतुं सन्विदाते बहुश्रुती ॥२३

इहृथृत्तिमता पु सयाम्यां का तीयुतासकृत् ।

तदेवमनुतेसर्वमनस्विहमनस्विताम् ॥२४

येनानुमन्यतेचंपा काशीसर्वप्रमाणभूः ।

वृद्धिबुं ध्यति मा सर्वमिहबुद्धिमतां सताम् ।

ययंतदधूर्जंष्टेषामि ध्रुवं स्वविपयीकृतम् ॥२५

वरं तृणानि धान्यानि तानि वास्याहृतान्यपि ।

काश्यां यान्यापतन्तीह न जनाः काशमदर्शनाः ॥२६

अथमेसफलञ्चायुः परार्धद्वयसम्मिन्तम् ।

यस्मिन्सहिमयाप्रापिदुःप्रापाकाशिकापुरी ॥२७

अहोमेघमंसम्पत्तिरहोमेभाभ्यगौरवम् ।

यदद्वाक्षियमधाह काशी मुचिरचिन्तिताम् ॥२८

इसी कारण से जो आनन्द के स्वरूप वाले जन्तु होते हैं वे ही काशी पुरी में जन्म ग्रहण किया करते हैं । यहाँ पर परम पृथ्वी पुरुषों के ही धरण संचरण करने के अधिकारी होते हैं । इस विश्व के भर्ता को पुरी की भूमि में जो धरण विचरणा करते हैं वे ही धरण सार्थक हैं वे ही यथार्थता में धरण हैं और बहुश्रुत हैं जो काशी पुरी की महिमा का धरण किया करते हैं । जिन कानों से एक धार भी काशी का धरण किया है वे ही वास्तव में पुरुषों के सफल धारण हैं । यहाँ पर मनस्वियों का वह ही मन सब कुछ माना जाता है जिसके द्वारा यह सबका प्रमाण रूपी काशी मान्य समझी जाया करती है । बुद्धिमान सत्पुरुषों की वही बुद्धि सब कुछ समझती या जान रखती है जिसके द्वारा भगवान् धूर्जटि के इस धाम को अपने ज्ञान का निपम बनाया गया है । वे तृण और धान्य भी परम धन्य हैं जो वायु से समाहृत होकर यहाँ काशी में समावृत्तन किया करते हैं और वे कुछ भी नहीं हैं जिन्होंने इस काशी पुरी का कभी दर्शन तक भी नहीं किया है ॥२२-२६॥ आज ही मेरी यह परार्द्ध इय से समित आयु सफल हुई है जिसके होने हुए मैंने अपनी इस सम्बन्धी धरण्या में आज इस दुष्प्राप्य काशीपुरी को प्राप्त कर लिया है । प्रह्लादी ने अपने दिल में अपने श्रीभाग्य की तराहता करते हुए कहा कि ये धर्म का कितना विशाल संभव है और मेरे इस भाग्य का कैसा महान् गोचर है कि मैंने आज इस समय में विरकाल से चिन्तित काशी पुरी का दर्शन प्राप्त कर लिया है ॥२७-२८॥

अद्यमेस्वतपोनुक्षो मनोरथफलैरलम्

शिवभक्तपद्म्युनामिताः कलिनीऽतिवृहदारैः ॥२९

मयाभ्यधासियद्गुणा मृष्टि मृष्टिवितन्वना ।

परमन्यादृशी काशीस्वयविवेशनिमितिः ॥३०

इहि हृष्टमनावेधा दूष्ण वागणर्मा पुरीम् ।

युद्धप्राह्मणरूपेण राजानञ्चददर्शह ॥३१

जलाद्रक्षतपाणिश्चस्वस्त्युक्त्वापृथिवीभुजे ।

कृतप्रणापोराजाय भेजेतद्दत्तमासनम् ॥३२

कृतमानोनृपतिना सोम्युत्थानासनादिभिः ।

विप्रोव्यजिज्ञपद्भूपं पृष्टागमनकारणम् ॥३३

म् गालबहुकालीनोऽप्यहमत्रचिरन्ततः ।

त्वन्तुमानैवजानासिजानेऽघाहिरिपुञ्चतम् ॥३४

परञ्चनामयादृष्टाराजानोभूरिदक्षिणा ।

विजितानेकसंग्रामा यायजूकाजितेन्द्रियाः ॥३५

दिनिष्कृतारिषड्वर्गाः सुशीलाः सत्त्वशालिनः ।

श्रुतस्य पारदृश्वानो राजनीतिविचक्षणाः ॥३६

प्राज मेरे तप रूपी वृक्ष के मनोरथ रूपी फल परमांत रूप से प्राप्त हो गये हैं । यह तपोवृक्ष शिव की भक्ति रूपी जल से सिक्त होकर अति विशाल फलों से फलित हुआ है ! मैंने सृष्टि का विस्तार करते हुए अनक प्रकारों से समन्वित सृष्टि की रचना की थी किन्तु यह मन्याहरी काशीपुरी का निर्माण स्वयं भगवान् विश्वनाथ के ही द्वारा किया गया है । इस प्रकार से परम इषित मन वाले ब्रह्माजी ने उस वाराणसी पुरी का दर्शन करके एक भद्रवन्त वृद्ध ब्राह्मण के रूप से राजा को जाकर देखा था ॥-६-३१॥ जब से आर्द्र अक्षत हाथों में ग्रहण करने वाले उनने राजा को 'स्वस्ति'—यह कह कर आशीर्वाद दिया था और राजा के द्वारा किया हुआ प्रणाम प्राप्त करके इसको अनन्तर राजा के द्वारा दिने हुए आसन पर बैठ गए थे नृपति के द्वारा उनका बहुत अधिक सम्मान किया गया था और राजा ने स्वयं उत्थान करके आसन पादि इनको समर्पित किया था । जब विप्र से राजा ने आगमन कारण पूछा तो उन्होंने राजा को विशापित किया था ॥३२-३३॥ ब्राह्मण ने कहा—हे भूपाल ! मैं बहुत काल का हूँ और यहाँ पर मैं चिरकाल से निवास करने वाला हूँ । आप तो मुझको नहीं जानते हैं किन्तु मैं आपको भली भाँति जानता हूँ और उस रिपु को भी जानता हूँ । मैंने सँकड़ों से भी अधिक राजाओं को देखा है जो बहुत अधिक दक्षिणा देने वाले हुए

हैं और जिन्होंने अनेक सपामो मे विश्व प्राप्त की है तथा जो यात्रक घोर जितेन्द्रिय हुए हैं। ऐसे नृपो को मैंने देखा है जिन्होंने अपने काम क्रीड लोभ मोह मद मात्सर्य—इन ६ रात्रुओं को विनिष्कृत कर दिया है। जो परम मुशोन—सर्वशानो—धृत के पारदृष्टा और राजनीति के ज्ञान मे परम विचक्षण थे ॥३४-३६॥

दयादाक्षिष्पनिपुणाः सत्यव्रतपरायणाः ।

धामधाक्षमयातुल्यागाम्भीर्यजितसागराः ॥३७

जितरौघरयाभूरा सौम्यसौन्दर्यभूमयः ।

इत्यादिगुणसम्पन्ना सुगञ्चितयशोधना ॥३८

पर द्विधा पवित्रायेराजर्षे तव सद्गुणाः ।

तेष्वगु राजसु मम प्रायशो न दृश गताः ॥३९

प्रजानिजकुटुम्बस्त्व त्वन्तु भूदेवदेवतः ।

महातप सहायस्त्व यथानान्ये तथानृपाः ॥४०

धन्वीमान्योऽसि च सता पूजनीयोऽसि सद्गुणः ।

देवाभविदिवोदामा त्वत्प्रामात्र विमार्गेण ॥४१

किं न स्तुन्या तव नृपा द्विजा नामस्पृहावताम् ।

किं कुर्मस्त्वद् गुग्घ्रामा स्तावेकान्नः प्रकुर्वते ॥४२

हे राजन् । मैंने ऐसे भी बहुत से राजाओं को देखा है जो दया और दक्षिण मे निपुण थे—मरय शत के पालन मे परायण थे—पृथ्वी के समान सभा से युक्त थे और गम्भीरता तो उनमे ऐसी थी कि जिन्होंने अपने गाम्भीर्य गुण से सागर को भी जीत लिया था ॥३७॥ मैंने ऐसे नृपा को भी देखा है जिन्होंने रोष के वेग को भी जीत लिया था—परम दूरधीर थे—सौम्यता और सौंदर्य की भूमि थे। इत्यादि गुणो से सुगण्य और सभी मांति सम्पन्न पण स्वी धन वासे थे। हे राजर्षे ! किन्तु धारके ओ सद्गुण हैं बँसे को—नीन ही पवित्र सद्गुण थे। इन राजाओं में मेरी प्रायः दृष्टि नहीं गई थी। धार तो अपनी प्रजा को अपना कुटुम्ब ही मानने वाले हैं और धार तो इन भूमण्डल के देवता हैं। धार महातप की सहायता करते हैं और धार तो इन भूमण्डल के देवता हैं। धार

घाप है। आप परम श्रेय और मत्पुत्रों के माध्य एवं सदगुणों से पूजनीय हैं। हे दिवोदार ! शेषण भी आपके धान से विमार्य में समन करने वाले नहीं होते हैं ॥३८-४१॥ हे नृप ! आपकी स्तुति रखने वाले हमारे द्विज सदा स्तुति करने के योग्य हैं। बवा करें ! आपके पुत्रों के समुदाय आपको आपका स्तवन करने वाले बना रहे हूँ ॥४२॥

गोष्ठीतिष्ठत्विय तावत्प्रस्तुत स्तोमि सम्प्रतम् ।

यद्भुक्तमोश्म्यद् राजस्त्रा सहायमती वृणे ॥४३

त्वया राजन्वती शंपाश्वनिः सर्वधिमाजनम् ।

अह चारिदधनो राजन् ! न्यायोपात्तमहाधन ॥४४

इयन्चराज्यानी ते कर्मभूमाधनुतमा ।

यस्या कृतानाकार्याणां सम्प्रतर्त्सपि न सदाय ॥४५

मञ्चित पद्मन पुष्पिनैवमन्मायैंगामिमि ।

तत्काश्यां विनियुष्येत क्लेशापेशरथा भवेत् ॥४६

महिमान पर काश्या कांशिषेसन भूपते ।

श्रुतेष्वितयनाञ्छमोः सर्वज्ञानप्रदायित ॥४७

मन्ये धन्यतरोऽसि त्व बहुजन्मवतामितिः ।

मुकूर्तं पाति यत्काशी विश्वमनुः परा तनुम् ॥४८

यही पर यह गोष्ठी उक्त समय तक रहे में इस समय में जब उक्त आपका स्तवन करता हूँ। हे राजन् ! मैं स्तवन करने की इच्छा जाता हूँ प्रणव में आप की महामता का वरण करता हूँ। यह मुमि जो समस्त श्रद्धियों का राजन (आया) है वह आपकी के द्वारा राजन्वती है। हे राजन् ! आप न्याय से उपात्त महान् धन वाले हैं और मीन जो आपका बड़ा धन है। आपकी यह राज्यानी इस कर्ममुमि मूढव्य में परम श्रेष्ठ है जिस में किये हुए कर्मों का सम्बन्ध में भी कभी क्षय नहीं हुआ करता है। न्याय के मार्गों के पालन करने वाले पुत्रों के द्वारा जो धन संचित किया गया है उस धन का काशीपुरी में ही विनियोग करना चाहिए अन्यथा वह धन के लिए हुमा करता है ॥४९-४६॥ हे भूपते ! इस काशीपुरी को बहुत बड़ी महिमा है जिसकी कोई भी नहीं जानता

है। यदि कोई इसकी महिमा को जानते हैं तो केवल सम्पूर्ण ज्ञान के प्रदान करने वाले तीन नेत्रों के धारी शम्भु ही जानते हैं। मैं तो यही मानता हूँ कि आप अधिक धन्य हैं और आपके बहुत से संकटों जन्मों के अजित पुण्यों से ही यह सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ है कि आप भगवान् विश्वनाथ के दूमरे वपु के समान दस बाणों को सृष्टियों से परिपालित किया करते हैं ॥४७-४८॥

काशीत्रिजगतीसारखिवेदीसार एव वं ।

त्रिवर्गोत्तरसारश्च निर्णीतेति महर्षिभिः ॥४९

विश्वेशानुग्रहेर्षं व त्वयैषापाल्यतेपुरी ।

एकस्याप्यवनात्काश्यात्रंलोऽयमवितम्भवेत् ॥५०

अन्यच्च ते हितं वच्मि यदि ते रोचतेऽनघ ! ।

श्रीणनीयः सदैवको विश्वेश सर्वकर्मभिः ॥५१

अन्यदेव धिया राजन् विश्वेशं पश्य माक्वचित् ।

ग्रह्याविष्ण्वन्द्वन्द्वार्काः क्रीडेयन्तस्य घूर्जटेः ॥५२

विप्रैरुद्रकर्मिच्छद्भिः शिक्षणीया यतो नृपाः ।

अतस्तव हितं वृणोत किम्वा मे चिन्तयाऽनया ॥५३

इति जोष स्थितविप्र प्रत्युवाचनृपोत्तम ।

मवं मयाहृदिघृतयवयोक्तं द्विजोत्तम ॥५४

अहं पियथमाणस्य तव साहाय्यकर्मणि ।

दासोऽस्मि यज्ञसम्भारान्नय मे कोशतोऽखिलान् ॥५५

यदस्ति मेऽखिलन्तत्र सप्ताङ्गैऽपि भवान्प्रभु ।

यज्ञस्यैवप्रताग्रहान् ! सिद्धं मन्पस्व वाञ्छितम् ॥५६

यह बाणपुरी तीनो भुवनों का सार है, और तीनो वेदों का भी सार स्वरूप है और महर्षियों ने यह निर्णय किया है कि यह तीनो वर्गों का उत्तर सार है। यह भगवान् विश्वनाथ शम्भु का ही परम अनुग्रह है कि जिससे आपके द्वारा इन परम पावन पुरी का परिपालन किया जाता है। इन बाणपुरी में एक के भी प्रवन से सम्पूर्ण त्रैलोक्य ही प्रविष्ट हो जाता करता है। हे अनघ ! मैं एक और भी आपके हित

की बात कहना है यदि वह आपको पसन्द हो जावे। सदा ही समस्त कर्मों के द्वारा एक ही भगवान् विश्वनाथ की प्रसन्न करना चाहिए ॥४६-५१॥ हे राजन् ! दूसरे देवता की वृद्धि से कभी भी कहीं पर विश्वेश प्रभु को मत देखना। उस भगवान् चूर्वाटि के ही अन्दर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य क्रीडा किया करते हैं ॥५२॥ जो विप्र अपना अम्बुदय चाहने वाले हैं उनको चाहिए कि नृपी को शिक्षा देवें। इससे आपका हित स्थान होगा। मेरी इस चिन्ता से आपको क्या प्रयोजन है। यह कहकर फिर मौन धारण करने वाले स्थित विप्र से यह श्रेष्ठ नृप बोला— हे द्विजोत्तम ! जो भी आप ने कहा है वह सब मैंने अपने हृदय में धारण कर लिया है। राजा ने कहा—यजन करने की इच्छा वाले आपकी सहायता के कर्म में मैं आपका दाम हूँ। आप मेरे काश से समस्त यज्ञ के सम्मारे को ब्रह्मण कोषिए। जो भी है वह सभी वहाँ पर है। सप्ताङ्ग में भी आप प्रभु हैं। हे ब्रह्मन् ! आप एकचित्त होकर यजन करिए। आपका वाञ्छित सिद्ध ही मानिए ॥५३-५६॥

राज्यं करोमि यद् ब्रह्मन् ! स्वार्थं तत्तमनागपि ।

पुत्रैः कलत्रदेहेन परोपकृतये यते ॥५७

राज्ञां क्रतुक्रियाभ्योपि तीर्थभ्योपि समन्ततः ।

प्रजापालनमेवंकोशमर्मप्रोक्तो मनीषिभिः ॥५८

प्रजासन्तापजो वह्निवञ्जान्नेरपि दाहणः ।

द्विप्रान्दहति वज्राग्निः पूर्वं राज्यं कुलंतनुम् ॥५९

यदाऽवभृथसिस्नामुभवेयद्विजसत्तम ! ।

तदा विप्रदाम्भोमिर्त्तमिपेकं करोम्यहम् ॥६०

हवनं ब्राह्मणमुखे यत् करोमि द्विजोत्तम ! ।

मन्ये क्रतुक्रियाभ्योऽपि तद्विशिष्टं महामते ॥६१

अभिलाषेषु सर्वेषु जागर्त्यकोहदीह मे ॥६२

अद्यापि मार्गणः कोऽपि द्रष्टव्यः स्वतनोरपि ॥६३

हे ब्रह्मन् ! जो मैं यह राज्य करता हूँ उसमें मेरा पोड़ा सा भी स्वार्थ नहीं है। हे यते ! पुत्रों के, कलत्रों के और देह के द्वारा सभी

कुछ दूसरी के उच्चार करने के लिए किया जाता है ॥१७॥ राधाभी को श्वेतु की क्रियाओं से और समस्त तीर्थों से भी अधिक अपनी प्रजा का पालन करना ही मनीषियों ने एक ही धर्म बनताया है ॥१८॥ प्रजा के सन्ताप से उत्पन्न होने वाला वह्नि वज्र की घग्नि से भी अधिक पावण होता है । वज्र की घग्नि तो दो या तीन का दाह कर दिया करता है । और पहिली जो प्रजा के सन्ताप से उत्पन्न अग्नि पूरे राज्य कुल और तनु को दाह कर दिया करता है ॥१९॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जिस समय में प्रवृष्ट में स्नपन करने की इच्छा वाला मैं होता हूँ उस समय में, मैं विशेष के पद कमलो के जल से मैं अपना अभिषेक किया करता हूँ । हे द्विजोत्तम ! वाह्यण के मुख में जो हृदय किया करता हूँ उसको श्वेतु की क्रियाओं से भी विशिष्ट मैं हे महामत ! माना करता हूँ । सम्पूर्ण अभिलाषाओं के मेरे हृदय में यहाँ पर एक ही जागृक रहा करतो है कि आज भी कोई अपने तनु का मार्गण देलना चाहिए । प्रहो ! बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि बहुत से पुण्यों से मेरा यह मनोरथ फलित हो गया है कि हे द्विज ! आज माप कुछ प्रार्थना करने के लिये मेरे घर पर प्राप्त हो गये हैं ॥२०-२३॥

इति राजा महाबुद्धधर्मशीलस्य भाषितम् ॥२४

श्रुत्वा तुष्टमना स्तुष्टाक्रनुसम्भारमाहरत् ॥२५

साहाय्यप्राप्य राजपदिवोदात्तस्य पद्मभू ।

इयाजदशभिः काश्यापश्वमेधैर्वहामसे ॥२६

अद्यापि होमधूमौर्ध्वं दृष्ट्वाप्तंगगनान्तरम् ।

तदाप्रभृति न व्योमनीलिमानजहात्पदः ॥२७

तार्थं दशाश्वमेधाय भवित जगतीतले ।

तदाप्रभृति तत्राभीदाराणस्या शुभप्रदम् ॥२८

पुराद्वमरोनाम ततीषं कलशोद्भूव !

दशाश्वमेधिक पञ्चाजात विधिपरिग्रहात् ॥२९

स्वर्धुभ्यश्च ततः प्राप्त्वा नगीरपत्तमागमात् ।

अतीवपुण्यवजातमतस्तदौषं भूतमम् ॥३०



धर्म के शील स्वभाव वाले महान् बुद्धि से सम्पन्न राजा का इस प्रकार से यह भाषित सुनकर स्रष्टा बहुद ही सन्तुष्ट मन वाले हो गये थे और उन्होंने क्रतु के सम्पूर्ण सम्भारों का समाहरण किया था । उन राजपि दिवोदास भी पूर्ण सहायता प्राप्त करके पद्मसू ब्रह्माजी ने काशी पुरी में दश महामल अश्वमेधों के द्वारा यजन किया था । उन यज्ञों की होम की धूमों से आज तक भी वहाँ के आकाश का अन्तर व्याप्त होरहा है । उन्हीं से लेकर यह पगनान्तर नीलिमा का त्याग नहीं किया करता है । उसी समय से इस जगती तल में यह दशाश्वमेध नामक तीर्थ विख्यात होगया था और तभी से यह धुमों का प्रदाता तीर्थ बाराणसी में स्थित है । हे कललोद्भव । पहिले वह तीर्थ रुद्रसर इस नाम से प्रसिद्ध था । फिर पीछे विद्याता के परिग्रह से दशाश्वमेधिक हो गया था । फिर राजपि प्रवर भगोरथ के समागन वही पर स्वधुं नी गगा भी प्राप्त होगई थी । इसीलिये यह महा तीर्थ अतीव पुण्यशाली एव उत्तम होगया था ॥६४-७०॥

विधिर्दशाश्वमेधेशं लिङ्गं संस्थाप्य तत्र वै ।

स्थितवान्गतोऽद्यापि क्वापि काशी विहाय तु ॥७१

राज्ञो धर्मरतेस्तस्यच्छिद्रनावापकिञ्चन ।

अत पुरारे पुरतो अजित्वा किं वदेद्विधिः ॥७२

क्षेत्रप्रभाव विज्ञाय ध्यायन्विश्वेश्वर शिवम् ।

ब्रह्मेश्वरं च संस्थाप्य विधिस्तत्रैव संस्थितः ॥७३

परा हनुरियं काशी विश्वेशस्येति निश्चितम् ।

अस्याः ससेवनाच्छम्भुर्न कुप्यति पुरो मयि ॥७४

काः प्राप्य काशी दुर्मेषाः पुनस्त्यक्नुमिहेहते ।

अनेकजन्मजनितकर्मनिर्मूलनक्षमाम् ॥७५

विश्वसन्तापसंहतुः स्थाने विश्वपतेस्तनुः ।

सन्ताप्यतेतरा काश्या विश्लेषजमहाग्नना ॥७६

प्राप्य काशी त्यजेद्यस्तु समस्ताघौघनाशिनीम् ।

नृपशुः स परित्तो महासीह्यपराङ्मुखः ॥७७

निर्वाणतक्ष्मी यः काङ्क्षेत्पक्त्वा संसारदुर्गतिम् ।

तेन काशी न सन्त्याज्या यद्याश्वत्थानुप्रहात् ॥७८

वहाँ पर भी ब्रह्माजी ने दशाश्वमेधस नामक एक शिवविष्णु की संस्थापना की थी और स्वयं आप भी उस काशीपुरी का त्याग करके वहाँ भी न जाकर वहाँ पर स्थित हो गये थे जोकि आज तक भी वही पर विराजमान रहने हैं ॥७१॥ धर्म में रति रखने वाला राजा का कुछ भी सिद्ध प्राप्त नहीं किया था कि भगवान् पुरारि के समक्ष में उपस्थित होकर उसके सम्बन्ध में क्या कहते । उस क्षेत्र के महान् प्रभाव को जानकर विश्वेश्वर प्रभु शिव का ध्यान करते हुए ब्रह्मेश्वर की संस्थापना करके ब्रह्माजी वही पर मस्थित हो गये थे ॥७२-७३॥ यह निश्चित है कि यह काशीपुरी भगवान् विश्वनाथ का दूसरा एक परमोत्तम वपु ही है । इसके भक्तों की सेवा करने से मुझ पर कभी भी कोप नहीं करेगा ॥७४॥ बोन-मा ऐसा दृष्ट बुद्धि वाला है जो इस महापावन काशीपुरी को प्राप्त करके फिर त्याग करने की इच्छा किया करता हो जो कि प्राक्तन अनेक जन्मों में समुत्पन्न ब्रह्मों के निर्मूलत करने में समर्थ हो । इस विश्व के सम्पूर्ण सन्तानों का सहार करने वाले प्रभु के स्थान में विश्वपति का तनु काशीपुरी में विश्वेश से समुत्पन्न महान् भक्ति से अत्यन्त ही सन्तुष्ट होना है ॥७५-७६॥ इस समस्त प्रकार के पापों के समुदाय का विनाश करने वाली काशीपुरी को प्राप्त करके हीत इनका त्याग करेगा ? भर्षान् फिर वहाँ पहुँच कर कोई भी इस पुरी को नहीं छोड़ना चाहना है । यदि कोई इस पुरी का त्याग करना भी है तो वह महान् सोख से पराङ्मुख होने वाला मनुष्यो में साक्षात् पशु के ही समान होता है ॥७७॥ जो निर्वाण सद्गमों की इच्छा करता है और समार की दुर्गति को त्याग देता है उस पुण्य की इस काशीपुरी का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए यदि वह भगवान् ईश के परमानुग्रह से प्राप्त होजाये ॥७८॥

५५—त्रिलोचनाविभविदर्शन

श्रुत्वोङ्कारकृपामेतां महापातकनाशिनीम् ।  
 न तृप्तोस्ति विदासाय ब्रूहि त्रिविष्टपीं कथाम् ॥१॥  
 कथं च कथिता देव्यं देवदेवेन पणमुत्त ॥  
 भाविभू तिमंहाबुद्धे ! पुण्यान्न लोचनीपरा ॥२॥  
 आकर्ण्य मुने ! वच्मि कथां श्रमनिवारिणीम् ।  
 यथा देवेन कथितां त्रिविष्टपसमुद्भवाम् ॥३॥  
 विरजास्यं हि तत्पीठं तत्रलिङ्गं त्रिविष्टपम् ।  
 तत्पीठदर्शनादेव विरजा जायते नरः ॥४॥  
 तिस्रस्तु सङ्गतास्तत्र स्रोतस्विन्यो घटोद्भव ॥  
 तिस्रः कल्मषहारिण्यो दक्षिणे हि त्रिलोचनात् ॥५॥  
 स्रोतोमूर्तिधराः साक्षात्लिङ्गस्नपनहेतवे ।  
 सरस्वत्यथ कालिन्दोनमंदाचातिशमंदा ॥६॥  
 तिस्रोपि हि त्रिसन्ध्यन्ताः सरितः कुम्भपणयः ।  
 स्नपयन्ति महाधाम लिङ्गं त्रिविष्टपम्बहत् ॥७॥

महा महर्षि प्रवर प्रगक्ष्य जो ने कहा—मैंने आपके द्वारा वर्णित  
 ओंकार की कथा का श्रवण कर लिया है जो कि बड़े २ महात् पातकों  
 का विनाश करने वाली है किन्तु मेरी पूणतया तृप्ति नहीं हुई है अब आप  
 कृपा करके त्रिविष्टपी कथा का श्रवण कराइये । हे पण्मुख ! देवों के  
 देव ने देवी जगदम्बा की यह कथा कैसे कही थी । धाव तो महती बुद्धि  
 वाले हैं । यह भाविभूत परम पुण्यमयी त्रिलोचनी है ॥१-२॥ भगवान्  
 स्कन्द ने कहा—हे मुने ! मैं उस घम के निवारण करने वाली कथा को  
 कहता हूँ । अब धाव मुनिये । जिस रीति से त्रिविष्टप के समुद्भव वाली  
 कथा देव ने कही थी ॥३॥ एक विरजा नाम वाला उनकी पीठ स्थल  
 है । वहाँ पर त्रिविष्टप नामधारी शिव है । उस पुण्यमय पीठ के केवल  
 दर्शन कर लेने ही से मनुष्य विरजा हो जाया करता है । हे घटोद्भव !  
 वहाँ पर तीन स्रोत स्विनी संगत हुई हैं । त्रिलोचन प्रभु से दक्षिण भाग  
 में ये तीनों ही नदियों के हरण करने वाली हैं । शिव क स्नपन कराने

के कारण से ये मातात् स्रोत की मूर्तियों की धारण करने वाली हैं । ये तीनों में सरस्वती बालिन्दी और बलयाणु प्रदान करने वाली नर्मदा हैं । ये तीनों ही गरिष्ठार्थे तीनों कालों में हाथों में कमला ग्रहण करके महाधाम उस त्रिविष्टप महान् लिंग का स्तवन किया करती हैं ॥४-७॥

लिंगानि परितस्ताभिः स्धनाम्ना स्थापितान्यपि ।

सेषा सन्दर्शनात्पुंसा तासां स्नानफल भवेत् ॥८॥

सरस्वतीश्वरं लिंग दक्षिणेन त्रिविष्टपात् ।

सारस्वते पद दद्याद्दृष्ट स्पृष्टञ्च जाटघहृत् ॥९॥

यमुनेशमप्रतीच्याञ्च नरैर्भक्त्या समचितम् ।

अपि किल्विषवदिमश्र यमलोक निवारणम् ॥१०॥

दृष्टं त्रिलोचनात्प्राच्या नर्मदेश सुशर्मदम् ।

तल्लिंगार्चनतो नृणां गर्भवासी निषिध्यते ॥११॥

स्नात्वा पिलपिलातीर्थे त्रिविष्टपमभापना ।

दृष्ट्वा त्रिलोचन लिंग किं भूय. परिशोचति ॥१२॥

त्रिविष्टपस्य लिंगस्य स्मरणार्दापि मानवः ।

त्रिविष्टपपतिभूंयान्तात्रकायां विचारणा ॥१३॥

त्रिविष्टपस्य द्वष्टारः स्रष्टारः स्युर्नर्संशयः ।

कृतफृदयाएन एवात्र त एवात्र महाधियः ॥१४॥

उन तीनों के द्वारा मय और घपने २ नामों से लिंगों की स्थापना की गई है । उन लिंगों के दर्शन करने से ही मनुष्यों को उन सरिताओं के स्नान करने का पुण्य पल प्राप्त हो जाता करता है ॥८॥ सरस्वती-स्वर नाम काया लिंग त्रिविष्टप से दक्षिण दिग्भाग में है । यह लिंग ऐसा प्रभाव काया है कि दृग्वा दर्शन और स्पर्शन करने पर जड़ता का हरण कर सरस्वत पद प्रदान किया करता है । यमुनेस्वर नामक लिंग पश्चिम दिशा में है जो मनुष्यों के द्वारा भक्ति भाव से समर्पित होता है । इस लिंग की अर्चना से जो विस्विय वाले हैं उनके भी यम लोक का निवारण हो जाता करता है । भगवान् त्रिलोचन से पूर्व दिशा में धर्म प्रशस्त मर्मदेश प्रभू हैं । इनकी अर्चना करने से मनुष्यों का मोक्ष

होता है और फिर जननी के उदार में गर्भराम कभी नहीं हुआ करता है । त्रिविष्टप के समीप में जो पिलपिला तीर्थ है उसमें स्नान करके और भगवान् त्रिलोचन लिंग के दर्शन करके फिर क्या धिता का विषय रह जाता है घर्षात् कुछ भी नहीं रहा करता है ॥६-१२॥ त्रिविष्टप लिंग के केवल स्मरण कर लेने से भी त्रिविष्टप का स्वामी हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए । त्रिविष्टप के दर्शन करने वाले स्रष्टा हो जाया करते है—इसमें सशय नहीं है । ये ही लोग कृतकृत्य हैं और ये ही लोग महा पुण्डमान हैं ॥१३-१४॥

आनन्दकानने लिंगं प्रणतयैस्त्रिविष्टपम् ।

त्रिलोचनस्य नामापिर्यः श्रुतं शुद्धबुद्धिभिः ॥१५

सप्तजन्माजितात्पापात्ते पूता नात्र सशयः ।

पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषु दृष्टेषु यत्फलम् ॥१६

तत्स्यत्रिविष्टपेदृष्टे काश्यां मन्येततोधिकम् ।

काश्यां त्रिविष्टपे दृष्टे दृष्टं सर्वं त्रिविष्टपम् ॥१७

क्षणान्निघूर्तपापोसौ न पुनर्गर्भभाग्भवेत् ।

सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वाविभूयवान्त च ॥१८

यो वै पिलपिलातीर्थे स्नात्वोत्तरवहाम्भसि ।

सरित्त्रयं महापुष्पं यत्रसाक्षाद्दसेत्सवा ॥१९

तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा गयाया किं करिष्यति ।

स्नात्वा पिलपिलातीर्थे कृत्वा वै पिडपातनम् ॥२०

दृष्ट्वा त्रिविष्टपं लिंगं कोटितीर्थफल लभेत् ।

यदन्यत्राजितं पापं तत्काशीदर्शनात्त्रजेत् ॥२१

आनन्द कानन में जो लिंग है उसको जिन्होंने प्रणाम किया है और त्रिलोचन प्रभु का त्रिविष्टप नाम वाले लिंग को जिन शुद्ध बुद्धि वालों ने सुना है वे अपने किये हुए सप्त जन्मों के पापों से भी पवित्र हो जाया करते है—इसमें लेशमात्र भी सशय नहीं है । इन पृथिवी में जितने भी संस्थापित लिंग हैं उन सबके दर्शन का जो पुण्य फल होता है वही त्रिविष्टप के दर्शन से हो जाया करता है और मैं ऐसा मानता हूँ कि काशी

पुरी में स्थापित विश्वनाथ लिंग के दर्शन से इससे भी अधिक पुण्य फल होता है। काशी में त्रिविष्टप के दर्शन करने पर सभी त्रिविष्टप दर्शन का पुण्य होता है। दाएँ भर में ही वह निर्धूत पापों वाला हो जाता है और यह पुनः गर्भ का धाम प्राप्त नहीं करता है। उसको ऐसा पुण्य होता है कि मानी नमने सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और सभी प्रवभूषों वाला हो गया है। जो पुरुष उत्तराम्यग में अर्थात् उत्तर की ओर बहने वाले जल में पिनापिला तीर्थ में स्नान कर लेता है उसको तीनों सरिताओं के स्नान का फल प्राप्त हो जाता करता है क्योंकि इन तीनों सरिताओं का पुण्य वहाँ पर तदा साक्षात् निवासा किया करता है। वहाँ पर थ्याड आदि जिमने कर लिया है उसको गया आदि में थ्याड करने को कुछ भी आवश्यकता नहीं रहा करती है। क्योंकि गया में हमने अधिक गया हमके घराघर भी पुण्य नहीं होता है। पिलपिला तीर्थ में स्नान करके वहाँ विष्टप पानन करे और फिर भगवान् त्रिविष्टप लिंग के दर्शन करे तो एक करोड़ तीर्थों का फल प्राप्त होता है। जो कहीं दूसरी जगह पर पापों का अत्रेन किया है वह सब काशीपुरी के दर्शन से मिट जाता करते हैं ॥१५०२॥

काश्या तु यत्कृतं पापं तत्पेशात्त्रयप्रदम् ।

प्रमादात्पातकं कृत्वा शम्भोरानन्दकानने ॥२२

दृष्ट्वा त्रिविष्टपं लिङ्गं तत्पापमपि हास्यति ।

सर्वेस्मिन्नपि भूपृष्ठे श्रेष्ठमानन्दकाननम् ॥२३

सप्राज्ञपि गयेतीर्थानि ततोऽप्योङ्कारभूतिका ।

अकारादपि सल्लिङ्गान्मोक्षवर्त्मं प्रकाशयान् ॥२४

अतिश्रेष्ठतरं लिङ्गं श्रेयोरूपं त्रिलोचनम् ।

तेजस्विपुषपा भानुदंशेषु च यथा काशी ॥२५

तथा लिङ्गेषु सर्वेषु परं लिङ्गं त्रिलोचनम् । २६

त्रिलोचनायकानना मा पदवी न दधीयसी ।

परं निर्माणपद्माया महामौह्यकशेवधेः ॥२७

एतद्विप्रलोकनार्चानो यच्छ्रेयः समुपाज्यते ।

न तदाजन्म गम्भूज्य लिङ्गान्यन्यानि सम्यक्ते ॥२८

व्यशीपुरी में जो भी कुछ पाप किया जाता है वह प्रसाध पद का देने वाला होता है । भगवान् राम के हम मानन्द कानन से प्रसाध से पापक करने त्रिविष्टप त्रिभ के दशंत करने से सब पाप का क्षय किया करता है । इस समस्त भूमण्डल के पृथ पर यह मानन्द कानन परमाविपरम श्रेष्ठ है । वहाँ पर भी सम्पूर्ण तीर्थ है और उससे भी अधिक अक्षर भूमिका है । इस मोक्ष के मान के प्रसाध करने वाले मन्त्रिण अक्षर से भी प्रतिश्रेष्ठ नरसिंह धर्मस्वरूप बाना त्रिलोचन है । जिस तरह से तेजस्वियों में भाव है और देखने के योग्यों में अन्तर्गत है उसी तरह से सभी जगों में परमाधिक श्रेष्ठ जिस त्रिलोचन है ॥२२-२६॥ इन त्रिलोचन जिन को समर्थन करने वालों को यह पदवी कुछ दूर या कम नहीं है जो महा सौम्य की एकशेषत्रि निर्माण पञ्चा का परम पद होता है । एकबार में ही त्रिलोचन प्रभु की अर्चना में जिस परम श्रेष्ठ श्रेष्ठ का अनुपार्वन किया जाता है यह मानन्द अक्षर जगों के पूजन से भी शान नहीं हुआ करता है ॥२७-२८॥

कादया त्रिलोचन त्रिगं येऽर्चयन्ति महाधिप ।

त्रेऽर्थास्त्रिमुवनोकोनिर्ममप्रीतिमभीप्सुभि ॥२९

कृत्वाश्रयि सर्वसन्दास कृत्वा पाशुपतग्रनम् ।

त्रियमेभ्य स्वलित्वापि कृतो विभ्यति मानवाः ॥३०

विद्यमाने महासिगे महापापोषहारिणि ।

त्रिविष्टपे पुण्यराशौ मोक्षनिक्षेपसयनि ॥३१

समभ्यर्च्य महासिगं सकृदेकमिलाचनम् ।

मुच्यते कल्पे सर्वैरपि जन्मशतजितैः ॥३२

ब्रह्महापिसुरापोवान्तेयी वा गुरुतल्पगा ।

तत्सयोमपि वा वर्ष महापापी प्रकीर्तितः ॥३३

परदाररतश्चापि परहिंसारतौपि वा ।

परापवादशीलोपि तथा विघ्नम्भषात्रक ॥३४

कुनध्नोऽपि भ्रूणहाऽपि वृषलीपतिरेव वा ।

मातापितृगुरुदागी वह्निदोगरदोऽपि वा ॥३५

जो महान् बुद्धिमान् लोग काशी पुरी में त्रिनोषन लिङ्ग का दर्शन किया करते हैं वे त्रिभुवन में रहने वाले और मेरी प्रति के चाहने वाले लोगों के द्वारा पूजा के योग्य हुआ करते हैं ॥२६॥ सबका भयो भक्ति त्याग करके भी और पाशुपत व्रत को करके भी तथा नियमों से स्तमित होकर भी मानव क्यों ठहरा करते हैं ? ॥३०॥ महालिङ्ग के विभ्रमान होने पर तथा महान् पापों के समूह के हरण करने वाले परम पुण्य के राशि और भोग रूपी निषेध का आलय भगवान् त्रिविष्टप के रहने हुए मानवों को कोई भी भय नहीं होना चाहिए । इन महालिङ्ग की भली भाँति धरना करने और देखना एक ही बार भगवान् त्रिलोचन का यजन करके भी जन्मों में अधिक किये हुए समस्त कर्मों से मनुष्य मुक्त हो जाया करता है । ब्रह्मा ( ब्राह्मण को हत्या करने वाला ) सुरा का पान करने वाला—लैयी ( चारों करने वाला )—गुरु पत्नी के साथ सहवास करने वाला तथा उन सबके साथ एक वर्ष पर्यन्त संयोग एवं सम्पर्क रखने वाला पुरुष भी महापापी कहा जाता है । दूररे की स्त्री में रति रखने वाला—दूररे की हिमा (सरोर और मनको ठेक या हानि पहुँचाने का ही हिमा कहा जाता है केवल वर को ही नहीं कहा जाता) में रति रखने वाला—दूररे के धरवाद ( घुराई या निन्दा ) करने के स्वभाव वाला—धरवाद देकर फिर उसका घात करने वाला—दृष्टान् प्रर्षान् अपने साथ किये हुए उपकार को न मानने वाला—भ्रूण को हत्या करने वाला ( गर्भ में स्थित बच्चे को भ्रूण कहते हैं ) कृपणों (बेधिया या दूध भक्ति की लक्ष्मी ) का पति—माता—पिता और गुरु का श्राग कर देने वाला—प्रतिन सगाने वाला और विध देने वाला पुरुष भी घोर पापी होते हैं किन्तु वे भी सब भगवान् त्रिमोचन के लिङ्ग को नमस्कार करके ही पापों से निवृत्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥३१-३३॥

गोघ्न. स्त्रीघ्नोऽपि शूद्रघ्न कन्यादूषयितापि च ।

क्रूरो वा पिशुनो वापि निजधर्मं रराट्, मुखः ॥३६॥

निन्दको नास्तिरको याऽपि क्रूटसादपप्रथादकः ।

अमरुभदको याऽपि यथाऽऽक्रोऽविक्रो ॥३७॥



इत्यादिपापशीलोऽपि मुदत्वैकं शिवनिन्दकम् ।

पापान्निष्कृतिमाप्नोति तत्त्वालिगं त्रिलोचनम् ॥३८

शिवनिन्दारतो मूढः दिवशास्यविनिन्दकः ।

तस्य नो निष्कृतिर्दृष्टा क्वापि शास्त्रेऽपि केनचित् ॥३९

आत्मघाती स विज्ञेयः मदा त्रंलोकघातकः ।

शिवनिन्दां विधत्ते यः सोऽनाभाष्योऽघमाघमः ॥४०

शिवनिन्दारता ये च शिवभक्तजनेष्वपि ।

ते यान्ति नरके घोरे यावच्चन्द्रद्विवाकरौ ॥४१

शैवाः पूज्याः प्रयत्नेन काश्यां मोक्षमभीप्सुभिः ।

तेष्वर्चितेऽपि शिवः प्रीतो भवत्यमशयः ॥४२

गाय के हनन करने वाला—स्त्री का वर करने वाला—गूर जाति वाले पुरुष को मार देने वाला—किसी कन्या को दूषित कर देने वाला—महात् क्रूर ( निर्दयी )—पिगुन ( पीछे से बुराई या चुगनी करने वाला )—घरने घर्म से पराङ्मुख अर्थात् घर्म विरुद्ध आचरण वाला—निन्दा करने वाला—नास्तिक अर्थात् ईश्वरीय सत्ता को न मानने वाला—बूट साधक अर्थात् भूछी गवाही का प्रवादक ( अनर्गल बोलने वाला—जो भक्षण करने योग्य नहीं है या वास्तव प्रौर सदाचार जिसके भक्षण करने का नियम करता है उसको खाने वाला—जो वस्तु विक्री करने के योग्य नहीं हैं उनको बेचने वाला इत्यादि बहुत से पापों के करने के स्वभाव वाला भी पुरुष इन किये हुए पापों से त्रिलोचन शिवा को नमन करके छुटकारा पा जाता करता है । केवल भगवान् शिव की निन्दा करने वाला पाप मुक्त नहीं होता है । जो शिव की निन्दा में रति रचना है ऐसा मूढ और जो शिव के शास्त्र की विशेष निन्दा करने वाला है उसकी तो कही पर भी निष्कृति देखी ही नहीं गयी है । किसी से भी किसी भी शास्त्र में शिव निन्दक के पाप से छुटकारा पाना नहीं देखा है । ऐसे पुरुष को तो आत्मा का ही हनन करने वाला और सदा त्रिलोक्य का घातक ही समझना चाहिए जो भगवान् शिवकी निन्दा किया करता है उससे भावण कभी भी नहीं करना चाहिए क्योंकि वह तो घमम से भी

महान् प्रथम होता है । जो मनुष्य भगवान् शिव की निन्दा में रति रखने वाले हैं और शिव के भक्तों को भी निन्दा करते हैं वे महान् घोर नरक में गिरा करते हैं और जब तक चन्द्र-सूर्य स्थित रहते हैं तब तक नारकीय मातनाएँ नोगते हैं । जो मनुष्य मोक्ष को प्राप्ति के इच्छुक है उन्हें काशी में शंखों की पूजा प्रथम पूर्वक करनी चाहिये । उनके समकित होने पर भगवान् शिव परम प्रसन्न हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३६-४२ ॥

### ५६—व्यासमुजस्तम्भवर्णन

शृणु सूत ! महाबुद्धे ! यथा स्कन्देन भाषितम् ।

भविष्यं मम तस्याग्रे कुम्भयोनेर्महामतेः ॥ १

निशामय महाभाग ! त्वं मैत्रावरुणे ! मुने ॥

पाटाशर्षो मुनिवरो यथा मोहमुपैष्यति ॥ २

व्यस्य वेदान्महायुद्धिर्नानाशालाप्रभेदतः ।

अष्टादशपुराणानि सूतादीन्परिपाठय च ॥ ३

श्रुतिस्मृतिपुराणानां रक्षस्ययस्स्वचीकरत् ।

महाभारतसंस्कृच्च सर्वलोकामनोहरम् ॥ ४

सर्वपापप्रशमन सर्वशान्तिकरम्परम् ।

यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याविनश्यति ॥ ५

एकदा स मुनिः श्रीमान्मयं तन्पृथिवीतले ।

सम्प्राप्तो नैमिवारण्यं यत्र सन्ति मुनीश्वराः ॥ ६

थष्टानीतिसहस्राणि क्षीनकाद्यास्तपोधनाः ।

त्रिपुण्ड्रितमहाभालालमद्बुद्धादामालिनः ॥ ७

विभ्रुतिभारणो भक्त्या यद्भक्तजपप्रियात् ।

लिगाराधनसतक्तादिशयनामकृतादरान् ॥ ८

महा महिम श्रुति श्रेष्ठ श्रीग्याग देवभो ने बडा—हे गुरु ! पाप तो घट्यन् अधिक मुझि वाले है त्रित प्रचार से मेरा भविष्य महा मति वाले

कुम्भ पानि से भगवान् स्कन्द ने कहा था उसी को आप अब ध्वजा कीजिए । भगवान् स्कन्दजी ने कहा था—हे महाभाग । हे मंत्रा वरुण । हे मुनिवर ! अब पराशर के पुत्र मुनिवर जिस तरह से मोह को प्राप्त होंगे उसे मुनिव । प्रत्येक क्षासा प्रशाखाओं के भेद से वेदों का विस्तार करके महान् बुद्धि वाले व्यास देव ने सूत्र आदि लिपियों को मदारह पुराणों को बना दिया था । सृति-स्मृति और पुराणों का रक्ष्य किन्हीं सष्ट कर दिया था और महानारत्त नामक महान् विशाल ग्रन्थ की रचना की थी जो कि समस्त लोकों में एक परम मनोहर ग्रन्थ है और सभी तरह के पापों का प्रथमम करने वाला सभी तरह की परम शान्ति का करने वाला है जिसके केवल ध्वजा करने ही से ब्रह्म हत्या निवृत्त हो जाया करती है । एक समय की बात है कि श्रीमान् यह मुनिवर इस दुष्वी पर बन्धन कर रहे थे और घूमते-घामते वे तैमिरारण्य में सम्प्राप्त हो गये थे जहाँ पर कि बहूत-से मुनीन्दर निवास किया करते हैं । जिनका केवल एक तप ही धन है ऐसे अटकासी हजार शौनकादि मुनि जहाँ पर रहते थे जो अपने विशाल भाग पर त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए थे और उन के कण्ठ में इन्द्राक्ष की मानाएँ शोभित थीं । वे सभी लोष विभूति धारी थे और भक्ति भाव से रुद्र सूक्त के आप में प्रेम करते थे । ये मय लिङ्ग की आराधना करने में संलग्न पति बान्धे थे और सभी भगवान् शिष्य के नाम से परम सवाहर करन वाले थे ॥१-८॥

एकवह्नि विश्वेशो मुक्तिवो नान्य एव हि ।

इति ब्रुवाणान्सततं परिनिश्चित मानमान् ॥६

विनोक्च सन्मुनिर्व्यासस्तान्सर्वान् गिरिशात्मन ।

उत्सिष्य तर्जनीमुच्चैः प्रोवाचेदं वचः पुनः ॥१०

परिनिमथ्य वारजालं मुनिश्चित्यासकृदुच्छु ।

इदमेक परिशास सेष्य सर्वेश्वरो हरिः ॥११

वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते ।

आदिमध्यावमानेषु हरिरेकोऽय नापरः ॥१२

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं त्रिसत्यं न मृषा पुनः ।  
 न वेदात्परं शास्त्रं न देवोऽञ्जुततः परः ॥१३  
 लक्ष्मीशः सर्वदोनान्यो लक्ष्मीशोऽप्यपवर्गदः ।  
 एकएवहिलक्ष्मीशस्ततोऽध्येयोनचापरः ॥१४

उन सबकी ऐसी परम दृढ़ धारणा थी कि एक ही भगवान् विशेष भुक्ति देने वाले हैं और दूसरा कोई भी देव ऐसा नहीं है। वे सभी यही निरन्तर बोलते थे और उनके मन में इसका ठोस निश्चय हो गया था। भगवान् व्यास देव ने गिरीश के स्वरूप में स्थित उन सबको देवदत्त प्रदत्तो लक्ष्मीश को ऊँचा उठाकर यह वचन बोले—१६-१०। मन्थुणुं वाग्नाय का पच्छी तरह से मन्थन करके घनेक बार बहुत कुछ भरी भाँति निश्चय करने मैंने यही एक ध्यान को गमक लिया है कि एक सर्वेश्वर श्री हरि का ही सेवन करना चाहिए। वेदों में—रामायण में—पुराणों में और भारत में प्रादि—मध्य और पश्चिमान में एक श्रीहरि ही है दूसरा कोई भी धन्य नहीं है। यह सत्य पुनः सत्य है और हीगरी बार भाँ गाय है। हममें तनिक भी मिथ्या नहीं है। वेदों से परे कोई भी शास्त्र नहीं है और भगवान् प्रभुन से बड़ा अन्य कोई देव नहीं है। भगवान् लक्ष्मी के स्वामी सभी कुछ प्रदान करने वाले हैं अन्य कोई नहीं है। लक्ष्मीश भगवान् भयणुं के भी प्रदाना हैं। अतएव सेवन एक लक्ष्मीश प्रभु का महा ध्यान करना चाहिए दूसरे किसी भी देवता का नहीं ॥११-१४॥

भुक्तेभुक्तेरिहान्प्रभनान्योदाताजनादेनात् ।  
 तस्मान्प्रभुमुं जेनित्यं सेवनाय। मुनेष्पुभिः ॥१५  
 विहाय केशवादन्यं ये सेवन्तेऽल्पमेधमः ।  
 सगारचक्रे गहने से विनान्ति पुनः पुनः ॥१६  
 एक एवहि सर्वेशो ह्यगोकेसाः परात्परः ।  
 स सेवमानः सतत सेवस्त्रि जगतां भवेत् ॥१७  
 एको धर्मप्रदो विष्णुस्त्वेको बह्वर्षदो हरिः ।  
 एकः कामप्रदश्चक्रेस्वेको मोक्षप्रदोऽञ्जुतः ॥१८

पारगिरामे परित्यज्य देवमन्यमृपासते ।  
 तेमद्भिस्त्ववहिष्कार्या वेदज्ञोना यथा द्विजाः ॥१६  
 श्रुत्वेत्तिवाक्यं व्यामस्य नमिपारथ्यवासिनः ।  
 प्रवेपमानहृदयाः परिप्रोचुर्गिदं वच ॥२०

भगवान् अनार्यन से भतिरिक्त अन्य कोई भी देव इस लोक मे मुक्ति  
 और मुक्ति दोनों का प्रदान करने वाला नहीं है । इसी सिधे सुख की  
 इच्छा रखने वाले पुष्यों के द्वारा चतुर्भुज भगवान् को गित्य सेवा करनी  
 चाहिए । जो धर्म बुद्धि वाले लोग भगवान् केदाव को छोड कर अन्य देव  
 का सेवन किया करते हैं वे इन गहन सवार शक्र में पुनः पुनः प्रवेदा श्रिया  
 करते हैं । सर्वेश हृषीकेश एक ही पर से भी पर देव हैं । निरन्तर उनका  
 सेवन करते हुए पुष्य तीनों जगतो का सेव्य हो जामा करता है । भगवान्  
 विष्णु एक ही धर्म के प्रदान करने वाले है और यह हरि एक ही बहुत से  
 अर्थों के दाता हैं । भगवान् शक्र धारी प्रभु कामनाधों के दाता हैं और  
 अश्रुत प्रभु एक ही मोक्ष के प्रदान करने वाले हैं । जो साङ्ग' धनुष के  
 पारण करने वाले प्रभु का छाडकर अन्य देव की उपासना किया करते  
 है उनका सम्पुत्रो के द्वारा बहिष्कार कर देना चाहिए बिना तरह बेदो से  
 होम द्विजो का बहिष्कार किया जाता है । नमिपारथ्य के तिवासी मृनि  
 मे श्रीव्यास देव के इस वाक्य का प्रवाण करके वे सब प्रकम्पित हृदय  
 वाले हो गये थे और उन्होंने यह वचन कहा था ॥१३-२०॥

पारासमभुने । मान्यस्त्वमस्माक महामते ॥  
 यतो वेदान्त्वया व्यस्ता. पुराणान्यपि वेत्सि यत् ॥२१  
 यतश्च कर्ता त्वमसि महतो भारतस्य वै ।  
 धर्मार्थं काममोक्षार्णा विनिश्चयकृतो ध्रुवसु ॥२२  
 तत्पुत्र.कोपरश्चाश्रयसाः सरयवती सुत ।  
 भवतायदप्रतिज्ञात मिद्विचरयोत्क्षिप्य तर्जनीम् ॥२३  
 अस्मिन्माणवकास्तत्र परिभ्रष्टते नहि ।  
 प्रतिज्ञातस्यवचमस्तवश्रद्धामवेत्तदा ॥२४

पदाऽऽनन्दवने शम्भोः प्रतिजानासि वै वच. ॥२५

गच्छ वाराणसी व्यास ! यत्र विश्वेश्वरः स्वयम् ।

न तत्र युगधर्मोऽस्ति न च लग्ना वसुन्धरा ॥२६

इति श्रुत्वा मुनिर्व्यास किञ्चित्कुपितवद्दृष्टि ।

जगाम तूष्णीं सह हितः स्वशिष्यैरयुतोन्मितै ॥२७

ऋषियो ने कहा— हे पाराशर्यं मुनिवर ! घाप तो महती मति वाले हैं और हम सबके परम मान्य हैं वयो कि घापने वेदों का विस्तार किया था और घाप सभी पुराणों को भी जानते हैं । आप महा भारत जैसे महा विशाल ग्रन्थ की रचना करने वाले भी हैं । घापने तो धर्म-धर्म-काम और मोक्ष का विशेष निश्चय भा प्रवश्य हो कर लिया है । हे सत्यवती के पुत्र ! दूसरा कौन है जो आप से भी अधिक तत्त्वों का ज्ञाता हो । घापने जो घपनी तर्जनों अगुलि ऊंचा उठाकर और पूर्ण निश्चय करके प्रतिज्ञा करके कहा है इसमें जो माणवक ( बालक ) हैं वे अच्छी तरह से बढा नहीं करते हैं । आपके हम प्रतिज्ञा किये हुए वचन को धडा तो तभी हो सकती है जब कि भगवान् शम्भु के वचन को आनन्द वन में प्रतिज्ञा को आप जान लेंगे । हे धी व्यास देवनी ! आप स्वयं वाराणसी पुरी में भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ पर भगवान् विश्वेश्वर स्वयं विराजमान रहा करते हैं । वहाँ पर उस विश्वनाथ भगवान् की पुरी की ऐसी अद्भुत महिमा है कि वहाँ पर युग के धर्म का भी कोई प्रभाव नहीं है और न वहाँ पर वसुन्धरा ही सग्न है । यह श्रवण करके महापुनि व्यास क्रुद्ध घपने हृदय में कुपित से हुए थे और बहुत ही क्षोभ अपने दत्तो सहस्र शिष्यों के महिष वहाँ पर गये थे ॥२१-२७॥

प्राप्य वाराणसी व्यासः स्नात्वा पञ्चनदेह्लदे ।

श्रीमन्माधवमभ्यर्च्य यदी पादोदकं ततः ॥२८

यत्र स्नानादिकं कृत्वा दृष्ट्वा चैवादि वेदावम् ।

पञ्चरानं ततः कृत्वा वेण्णर्वरभिनन्दितः ॥२९

अग्रता पृष्ठतः शङ्खं वाद्यमानैः प्रमोदित ।

अपविष्णो हृषीकेश गोविन्दमधुमूदनः ॥३०

अच्युतानन्तर्धकुण्ठमाघवोपेन्द्र ! केशव ॥  
 त्रिविक्रम गदापाणे शार्ङ्गपाणे जनार्दन ॥३१  
 श्रीवत्सवक्षः शोकान्त पीताम्बरमुरान्तक ।  
 कंटभारेवल्लिखसिन्धुसारेकेषिसूदन ॥३२  
 नारायणाश्रुररिषो कृष्ण शीरे ! चतुर्भुज ॥  
 देवकोहृदयानन्द ! यशोदानन्दवर्धन ॥३३  
 पुण्डरीकाक्ष ! दंष्ट्यारे वामोदरबलप्रिय ।  
 वल्लरात्रिस्तुत हरे ! वामुदेव ! वसुप्रद ॥३४  
 विष्वक्त्रमूस्तादयंरथन वमालिन्नरोत्तम ।  
 अधोक्षत्र क्षमाधार पद्मनाभजलेक्षय ॥३५

मुनिवर ध्यास देवजी ने वाराणसी पुरी में पहुँच कर वहाँ पर पञ्च  
 नख हृद में स्नान किया था और धीमान् माघव देव का प्रभ्यर्चन करके  
 फिर वे पादोदक पर चले गये थे । जहाँ पर स्नान प्रादि सब करके आदि  
 केशव भगवान् का दर्शन किया था । वहाँ पर रात्रि तक निवास  
 किया था जिसको वहाँ पर स्वतः भैष्णवा ने बहुत ही अभिनन्दित किया  
 था । वहाँ पर घागे और पीड़े सभी घोर वाद्यमान ( बजाये गये ) उल्ला  
 की ध्वनि के साथ धोव्यास देव अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान्  
 के अनेक पुत्र नामों का उगुचनारण किया था—यथा—हे विष्णो ! आपकी  
 जब हो, हे हृषीकेश—हे गोविन्द । हे मधुसूदन । हे अच्युत ! अनन्त !  
 बंधुष्ठ ! माघव, उपेन्द्र, हे केशव ! त्रिविक्रम ! गदा हाथ में धारण करने  
 वाले ! हे शार्ङ्गपाणे ! जनार्दन, श्री वत्सवक्ष, धोकान्त, पीताम्बर,  
 मुर मसुर क प्रन्त करने वाले ! हे कंटभारे ! जलि विष्वसिद् ! कंसारे !  
 हे कंठी दंष्ट्य क वध करने वाले ! नारायण, प्रसुरो के स्त्रि—हे श्रीकृष्ण  
 शीरे, चतुर्भुज, हे देवकी देवी के हृदय का प्रानन्द प्रदान करने वाले  
 यशोदा माता के अलन्द को बढ़ाने वाले ! हे पुण्डरी के समान नेत्रों  
 वाले ! हे दंष्ट्यों के अरि—वामोदर—बलप्रिय—वल्लरात्रिस्तुत—हे हरे  
 वामुदेव, हे वसुप्रद । विष्वक्त्र—तादयंरथ—वनमालिन्द—हे नटों में

सर्वोत्तम ! हे प्रमोदज ! हे क्षमाभार-पपनाम-जल मे क्षयन करने वाले । ॥२८-३५॥

नृसिंह यज्ञवाराह ! गोपगोपालवल्लभ ! ।  
 गोपीपते गुणातीत गरुडध्वज गोत्रभृत् ॥३६  
 जय चाणूरमयन ! जयश्रंलोचधरक्षण ! ।  
 जयानाद्य जयानन्द जयनीलोत्पलद्युते ॥३७  
 कौस्तुभोद्भूषितोरस्कपूतनाघातुशोषण ।  
 रक्ष रक्षजगद्रक्षामणे ! नरकहारक ॥३८  
 सहस्रशीर्षंरूप पुरुहूतसुम्नप्रद ।  
 यद्भूत यच्च भाष्य वैतत्रंकः पुरुषोमवान् ॥३९  
 इत्यादिनाममालाभि सस्तुदन्वनमालिनम् ।  
 इत्यच्छन्दसीसयागायन्नृत्यश्चपरयामुदा ॥४०  
 ध्यामी विश्वेशभवनं ममायात, सहृष्टवत् ।  
 ज्ञानवापीपुत्रोभागे महाभागवर्त, मह ॥४१  
 विराजमानमत्कण्ठस्तुलसीवरदामभि, ।  
 स्वयं तामघरो जात स्वयं जात सुनतं कः ॥४२

हे नृसिंह ! हे यज्ञ वाराह ! हे गोपों और गोवालों के परम प्रिय ! गोपीपते ! हे गुणों से धृतीत, गरुडध्वज गोत्रभृत्—हे चाणूर के मन्त्रण करने वाले ! आपका जय हावे । हे क्षम सम्पूर्ण त्रिनोत्री की रक्षा करने वाले । आपका जय हो । हे प्रनाद्य, हे आनन्द ! हे नील कमल के गमाम श्रुति वाले । आपका मदा जय हो । हे कौस्तुभ मणि से विभूषित यज्ञ स्वयं वाले ! हे पूतना की घातुओं के शोषण करने वाले ! हे रक्षा मण्डी ! इन समस्त यज्ञों की रक्षा कीजिए, इन का परिचाण करिये । आप ही नरकों के हारक हैं । आप ऐसे महा पुरुष हैं जो सहस्र शीर्षों वाले हैं । हे इन्द्र की सुम्न प्रदान करने वाले ! जो भी हो चुका है और जो कुछ भी होने वाला है वही सभी स्थितियों में आप एक ही पृथ्व है । इत्यादि अनेक प्रभु के शुभ नामों की मन्त्रार्थों के द्वारा बनवाली प्रभु



का संस्तवन करने हुए—स्वच्छन्द लीला से गान करते हुए और परमानन्द पूर्वक नृत्य करते हुए श्री व्यास देवजी परम हर्षित होते हुए भगवान् विश्वनाथ के भवन में समायाप्त हो गये थे । वहाँ पर ज्ञानवापी के आगे के भाग में महा भागवतों के साथ व्यास देवजी विराजमान हो गये थे । तुलसी जी सुन्दर मासामो से जिनका सुन्दर कण्ठ शोभित था । वे स्वयं वहाँ पर भी तालधर होकर स्वयं ही भगवान् विष्णु की भक्ति के भावावेश में मग्न होकर नृत्य करने वाले हो गये थे । १३६-४२॥

वेणुवादनतत्त्वज्ञः स्वयं श्रुतिधरोऽभवत् ।

नृत्यं परिसमाप्येद्यं व्यासः सत्यवतीसुतः ॥४३

पुनरुर्ध्वं भुजं कृत्वा दक्षिणशिष्यमध्यगः ।

पुनः पपाठ तानेव श्लोकान् गायन्निबोधकैः ॥४४

परिनिमंथ्य बाग्जाल सुनिश्चित्याऽपकृद्बहु ।

इदमेकं परिज्ञातं सेव्यः सर्वेश्वरो हरिः ॥४५

इत्यादिऽश्लोकसङ्घातं स्वप्रतिज्ञाप्रबोधकम् ।

यावत्पठति स व्यासः सव्यमुत्क्षिप्य वै भुजम् ॥४६

तस्तम्भ तावत्तद्बाहुं सशलादिः स्वलीलया ।

वाक्स्तम्भश्चाऽपि यस्यासीन्मुनेर्व्यासस्य सन्मुने ॥४७

यतो गुप्तं समागम्य त्रिष्णुर्व्यासमभाषत ।

अपराद्धं महत्त्वाऽत्र भवता व्यासनिश्चितम् ॥४८

तर्तदपराधेन भीतिर्मोऽपि महत्तरा ।

एक एव हि विश्वेशो द्वितीयो नास्ति कश्चन ॥४९

श्री व्यास देव वेणु वादन के तत्त्वों के परम ज्ञाता थे, वे स्वयं ही श्रुतिधर हो गये थे । इस प्रकार से सत्यवती के पुत्र व्यास देव ने अपने भगवत्प्रेममय नृत्य को समाप्त करके फिर अपने शिष्यों के मध्य में स्थित होकर अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर उठाकर उन्होंने फिर भी बहुत ही ऊँचे स्वर से गायन करते हुए उन्हीं श्लोकों को पढ़ा था कि मैंने समग्र बाग्जाल का मयन करके और बहुत ही अनेक बार अच्छी तरह से निश्चय करके यही एक सार की बात का ज्ञान प्राप्त किया है कि सर्वेश्वर श्रीहरि

का ही मेहन करना चाहिए । इत्यादि घनेक श्लोको के समुदाय को जो कि अपनी प्रतिज्ञा का प्रबोधक थे ज्यों ही श्री व्यास देव अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर उठाकर पढ़ रहे थे वैसे ही उनकी उम भुजा को अपनी ही लीला से सर्गलादि ने स्तम्भित कर दिया था । उनकी महामुनि व्यास देव की वाणी का भी हे मुने ! उसी समय में स्वप्न हो गया था । उसी समय में वहाँ पर भगवान् विष्णु गुप्त रूप से समाप्त हो गये थे और वे ध्यात देवजी से बोले थे कि हे व्यास ! आपने निश्चित रूप से यहाँ पर यह एक अत्यन्त महान् अपराध किया है । आपके इस अपराध से मुझे भी बहुत बड़ा भय समुत्पन्न हो गया है । हे ध्यात ! विशेष ही एक सर्वोपरि विराजमान देव है । अन्य इनसे ऊपर दूसरा कोई भी नहीं है ॥४१-४६॥

तत्प्रसादाद्दहृच्छक्री लक्ष्मीशस्तिप्रभावतः ।

त्रं लोचनपरक्षासामर्थ्यं दत्तं नैव शम्भुना ॥५०

तद्भवत्पापरमं श्वर्यं मया लब्धं वरात्ततः ।

इदानीं स्नुहि तं शम्भुं यदि मे शुभमिच्छसि ॥५१

अन्यदापि नवं कार्याभवताशेमुपीदृशी ।

पारशम इति श्रुत्वा सञ्ज्ञया व्याजहार ह ॥५२

भुजस्तम्भः कृतस्तेन नन्दिना दृष्टिमात्रतः ।

याक्स्तम्भस्तद्भवत्पाणजातः स्पृश मे कण्ठकन्दलीम् ॥५३

यथास्तोनुम्भवानीश प्रभवामि भवान्तकम् ।

मस्पृश्य विष्णुस्तत्कण्ठं गुप्तमेव जगाम ह ॥५४

ततः सत्यवतीसूनुस्तथा स्तम्भितदोर्जतः ।

प्रारब्धवान्महेशान परिष्टोतु मुदारधी ॥५५

मैं भी उन्हीं विशेष की महिमा के प्रभाव से चक्रवारी बना हुआ हूँ तथा लक्ष्मीन का पद प्राप्त करने वाला हो गया हूँ । उन्हीं भगवान् शम्भु ने मुझे यह श्रेयोव्यय की रक्षा एवं परिपालन की शक्ति प्रदान की है । उनकी भक्ति से ही मैंने वरदान के द्वारा यह परम ऐश्वर्य प्राप्त किया है । जो कृप्य किया तो किया जब आप उन्हीं शम्भु भगवान् का मस्तकन करो यदि आप भगवान् गुप्त चाहते हो । मैं यह भी बतलाय देता हूँ कि फिर भी कभी

अन्य समय तथा स्थान में मापको ऐसी अपनी बुद्धि नहीं करती चाहिए । पराशर के पुत्र व्यास देव के होश में आकर यह धारण करने लगा—उन नन्दी ने अपनी दृष्टि मात्र से ही मेरी इस मुद्रा का स्तम्भन कर दिया है और मेरी धातु का स्तम्भन उन मय से ही हो गया है । अत एव हे प्रभो ! आप मेरे ब्रह्म की कन्दली का स्पर्श करिये ॥४०-४३॥ अभी मैं यवामो कं पति का सस्तवन करने के लिये समर्थ हो सकता हूँ जो कि इस समस्त ससार के भक्त करने वाले हैं । भगवान् विष्णु ने व्यास देव के कण्ठ का सस्पर्श किया था और गुप्त रूप से ही ऐसा करने में मने गये थे । इस के अनन्तर सत्यवती के पुत्र श्रीव्यास देव ने स्तम्भित मुद्रा बना ही रखी हुए आप को उदार बुद्धि से महेशान प्रभु का सस्तवन करने का आरम्भ कर दिया था ॥४४-४३॥

एको रुद्री न द्वितीयो यतस्तद्  
 ब्रह्मैकं नेह नामास्ति किञ्चिद् ।  
 मद्यप्यन्य कोऽपि वा कुत्रचिद्वा  
 व्याचष्टान्तश्च स्य शक्तिर्मदमे ॥५६

य क्षीराब्धेमन्दरायातजातो  
 ज्वालामाणा कालकूटोऽप्रतिमीम ।  
 स भोक्तु वा कोऽपरोऽभून्महेशा  
 यन्कोत्तमि, कृष्णतामापबिष्णु ॥५७

यदवाणोऽमून्नीपतिर्यस्य यन्त्रा  
 लोकेशो यत्स्यन्दनम्भू, ममस्ता ।  
 वाहा वेदा यस्य येनेषुपात  
 दृग्वा प्राभान्त्र्यपुरास्तत्समः कः ॥५८

य कन्दर्पो द्यौक्षमाण, ममान  
 देवेरन्यैर्भस्मजात, स्वयं हि ।  
 पौष्यैर्वाजै, सर्वैर्विश्वकसेता  
 को वा स्तुर्य, कामनेसुस्ततोऽन्यः ॥५९

यं वं वेदो वेद नो नैव विष्णु  
नोवा वेधा नो मनो नैव वाणी ।

त देवेश मादृशः कोऽल्पमेधा

याथात्म्याद्धै वेत्स्यहो त्रिष्वनाथम् ॥६०॥

धीव्यास देव ने कहा—इस विज्ञान विश्व ब्रह्माण्ड में एक ही स्व  
देव सब के समुच्च देव हैं यमो कि ब्रह्म एक ही है और वह अनेक न हो  
कर ही एक विभिन्न रूपों में रहता है । यद्यपि कहीं पर भी अन्य कोई  
वस्तुलाया भी गया है और जिसको शक्ति मेरे आगे हैं वह वही महेश हैं  
॥१६॥ जो भन्द्रराघव के प्रायात से क्षीर सागर में ज्वालानों की भासा  
वाला—प्रत्यन्त भयानक बाल बूट उत्पन्न हुआ था उसको सहन करने के  
लिये अन्य कौन समर्थ हुआ था । श्री महेश ही असी सामर्थ्य वाले थे  
जिनोंने उसे कण्ठ में धारण कर लिया था जिसकी लीलाओं से भगवान्  
विष्णु भी कृष्णता को प्राप्त हो गये थे ॥१७॥ श्रीमति जिसका कारण हुआ  
था—जिसका प्रस्ता लोकेश थे—जिसका स्पर्दन अर्थात् रथ यह सम्पूर्ण  
भूमि थी—जिन के सहन करने वाले वेद से ऐसे जिन भगवान् महेश्वर से  
शेपुर रामो को प्राणों के पात्र से दण्ड कर दिया था उन देवेश्वर के  
समान अन्य कौन देव हो सकता है ॥१८॥ जिस देवेश्वर को यह बन्दर्प  
( कामदेव ) अन्य देवों के ही समान देखता हुआ स्वयं ही ब्रह्म हो गया  
था । यह कामदेव अपने पुण्यो के ही कारणों के द्वारा समस्त विश्व पर  
विजय प्राप्त करने वाला था उस कामदेव को जीत देने वाले से अन्य  
कौन देव स्तुति करने के योग्य हो सकता है अर्थात् उनसे अन्य ऐसा  
कोई भी देव है ही नहीं । जिन महेश्वर देव को ब्रह्म भी नहीं जान पाये  
हैं—न विष्णु भगवान् ने उनको समझ पाया है—ब्रह्मा भी उनके स्वरूप को  
नही पहिचान सके हैं तथा मन और वाणी उनको नहीं जान सकी हैं उन  
देवेश्वर विश्वनाथ को मुझ अज्ञा प्रत्य बुद्धि वाला कैसे जान सकता है  
उनकी यथात्मता मेरी बुद्धि के बाहर ही वस्तु है ॥१९०॥

यदिमन्सर्वं महनु शयं न सर्वो

यो वं पतौ योऽविता योऽप्रहता ।

नोऽस्यादिर्यः समस्तादरेको  
 नोऽस्याऽन्तो योऽन्तकृत्त नतोऽस्मि ॥६१  
 यस्यैकाख्या वाजिमेघेन तुल्या  
 यस्या नत्या चैकपालपेद्रुक्ष्मी ।  
 यस्य स्तुत्या लभ्यते सत्यलोक  
 यस्यार्चातो मोक्षलक्ष्मीरदूरा ॥६२  
 नान्यं देवं वेदम्यहं श्रीमहेश  
 न्नान्यं देवं स्तौमि शम्भोऽर्चनेऽहम् ।  
 नान्यं देवं वा नमामि त्रिनेत्रा  
 त्सत्यं मत्यं मत्यमेतन्मृषा न ॥६३  
 इत्यं यावत्स्तौति शम्भुं महर्षि  
 स्तावन्नन्दी शाम्भवाददृक्प्रमादात् ।  
 तद्दोस्तम्भं त्यक्तवाञ्छाऽश्वभाषे  
 र्भाषं स्मायं ब्राह्मणेभ्यो नमो वः ॥६४  
 इदं स्तवम्महापुण्यं व्यासते परिकीर्तितम् ।  
 यः पठिष्यति मेघावी तस्य तुष्यति शङ्करः ॥६५  
 व्यासाष्टकमिदम्प्रातः पठितव्यं प्रयत्नतः ।  
 दुःस्वप्नपापशमनं शिवसन्निध्यकारकम् ॥६६

जिसमे यह समस्त चराचर विश्व ब्रह्माण्ड रहता है जो सर्वत्र विराजमान है—जो इसके सृजन का करने वाला है—जो इस जड़-जङ्गम जगत् का परिपालन संरक्षण करने वाला है तथा अन्त में जो स्वयं ही इसका संहार करी है । जिसका कोई भादि नहीं है, जो समस्त का एक ही स्वयं भादि है, जिसका भन्त भी नहीं है और जो इस जगत् का भन्त करने वाला है उन्ही प्रभु विश्वेश्वर को मैं नमन करता हूँ ॥६१॥ जिसके एक ही शुभ एवं पावन नाम के सच्चाराण का पुण्य—फल एक वाजिमेघ यज्ञ के तुल्य होता है, जिसके लिये एक ही बार प्रणाम करने के पुण्य फल के भागे इन्द्र की ऐश्वर्य लक्ष्मी भी प्रत्यन्त स्वल्प होती है, जिसकी स्तुति करने का पुण्य फल ऐसा होता है कि सत्य लोक की प्राप्ति

की जाया करती है और जिम विश्वनाथ भगवान् की समर्चना से मोक्ष लक्ष्मी भी समीप में रहा करता है ॥६२॥ मैं तो श्री महेश देव से अन्य किसी भी देव की नहीं जानता हूँ । मैं भगवान् शम्भु के बिना अन्य किसी भी देव का स्तवन नहीं करता हूँ । मैं त्रिनयन को छोड़कर अन्य देव की नमन भी नहीं करता हूँ—यह मेरा कथन सर्वथा सत्य है—एत प्रतिशत सत्य है और पूर्णतया सत्य है—इसमें शेष मात्र भी मिथ्या नहीं है ॥६३॥ इस प्रकार से जब तक व्यास देव शम्भु की स्तुति कर रहे थे तब तब शम्भु की दृष्टि के प्रसाद से नन्दी ने उन महर्षि की बाहु के स्तम्भन का त्याग कर दिया था और बारम्बार मुस्कराहट करते हुए कहा था आप ब्राह्मणों के लिये नमस्ता है ॥६४॥ नन्दिनेश्वर ने कहा—हे व्यास । यह स्तव महान् पुण्यमय है जो आपने अभी किया है । जो भी कोई भेधावा इस स्तोत्र को पढ़ेगा उससे भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न होंगे । यह व्यास के द्वारा रचित पद्य है । इसको प्रयत्न पूर्वक अवश्य पढ़ना चाहिए । यह दुःस्वप्नो और पापी के प्रथमन का करने वाला तथा भगवान् शिव की सन्निधि में पहुँचा देने वाला है ॥६५-६६॥

---

काशीखण्ड समाप्त

# स्कन्द पुराण

## भवन्ती खण्ड

५७—महाकालवन प्रशंसा वर्णन

स्रशरोपि प्रजानां प्रबलभवभयाद्यं नमस्यन्ति देवा-  
यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनां च ।  
लोकःनामादिदेवः स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा ;  
विभ्राणः सोमलेखामर्हिवलययुतं व्यक्तलिङ्गं कपालम् ॥१  
पृथिव्या यानि तीर्थानि पुण्याश्च सरितस्तथा ।  
कथ्यतां तानि यत्नेन श्राद्धं येषु प्रदीयते ॥२  
स्निलोकेषु विख्याता गंगात्रिपथगानदी ।  
सेवितादेवगन्धर्वैर्मुनिभिश्चनिषेविता ॥३  
तपनस्यमुतादेवी यमुनालोकपावनी ।  
पितृणांवल्लभादेवि ! महापातकनाशिनी ॥४  
चन्द्रभागावितस्ताच नम्मदाऽमरकण्टकम् ।  
कुह्लेत्रं गया देवि ! प्रभासं नमिषन्तथा ॥५  
केदारं पुष्पकरञ्चैव तथा कायावरोहणम् ।  
तथा पुण्यतमन्देवि महाकालवनं शुभम् ॥६  
यत्रास्ते श्रीमहाकालः पापेन्धन हुताशनः ।  
क्षेत्रं योजनपर्यन्तं ग्रहहत्यादिनाशनम् ॥७  
शुक्तिदं मृक्तिदं क्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम् ।  
प्रलयेऽप्यक्षयं देवि दुष्प्रापं त्रिदशैरपि ॥८

आरम्भिक भगलाचरण का श्लोक है—प्रजापों के शुभ्रन करने वाले भी देव जिन्हको महान प्रथम भय से नमस्कार किया करते हैं जो परम प्रवहित मन वाले प्रौर ध्यान में युक्त प्रारमाप्नो वाले लोगों के चित्त में भली प्रीति प्रविष्ट हुआ रहा करता है । समस्त लोको का आदि देव चन्द्रमा के लेश प्रौर व्यक्त लिंग वाले कपाल को तथा सर्पों के घनप को धारण करने वाले भगवान् श्री महाकाल नाम वाले वह प्रभु हैं उनकी सदा जय होवे । जगज्जननी श्री उमादेवी ने कहा—हे देवेश्वर । इस भू मण्डल में जो भी तीर्थ रूप हैं तथा परम पुण्यमयी सरितायें हैं उनको पाप प्रयत्नपूर्वक कहिए अिनमें धादों का प्रदान किया जाया करता है । श्री ईश्वर ने कहा—समस्त लोको में परम विशिष्यत विषयगा यद्वा नदी है जो देवो—गन्धर्वों प्रौर मुनियो के द्वारा सेवित और उपासित होती है । हे देवि ! गविनादेव को पुत्री लोको को पावन करने वाली यमुना हैं जो पितृगणों की बहुत ही अधिक प्यारी है और बड़े से बड़े पातलों के विनाश कर देने वाली है ॥१-४॥ हे देवि ! चन्द्रमागा, वितस्ता और नर्मदा सरिताएं भी हैं तथा अमरकण्ठक—कुहरोत्र—गया—ब्रह्मस क्षेत्र—नीमिषारण्य—केशर—पुंकर—वापावरोहण—महान् पुण्यतप एवं शुभ महाकाल वन है जहाँ पर पापों के ईष्यन के लिए भस्म करने वाले प्रणि के तुर्य श्री महाकाल बिराजमान रहते हैं । यह एक योजन पर्यन्त क्षेत्र है जो ब्रह्म हत्या आदि महान् पातलों का भी विनाश कर देने वाला है । यह सम्पूर्ण सुधी के उपभोगों के प्रदान करने वाला तथा शगर के जन्म मरण के आवागमन से छुटकारा देने वाला क्षेत्र है और सभी कलियुग के कर्मों का विनाशक है । हे देवि ! यह प्रलय काल में भी जबकि सभी का विनाश हो जाया करता है अदाय ही रहा करता है प्रौर देवों के द्वारा भी दुःस्वप्न होना है ॥५-८॥

प्रभायः कथ्यतां क्षेत्र । क्षेत्रस्याग्र्य महेश्वर ।।

यानि तीर्थानि पिच्छन्ते यानि लिगानि सन्ति वै ॥९

तान्यहं श्रीनुमिच्छामि पर कोतूहल हि मे ॥१०



शृणु देवि प्रयत्नेन प्रभावं पापनाशनम् ।

क्षेत्रमाद्यं महादेवि ! सर्वपापप्रणाशनम् ॥११

श्रीमेरोस्तस्त्रिधाने यच्छिखरं रत्नचित्रितम् ।

चैराजभवन नाम ब्रह्मणः परमात्मनः ॥१२

तत्र दिव्यांगनागीतमधुरस्वरनादिता ।

पारिजाततच्छम्रमञ्जरीदामशोभिता ॥१३

बहुवाद्यममुत्पन्नसुमहास्वरनादिता ।

लयतानयुतानेक गीतवादित्रनादिता ।

विन्यस्ता कोटिभिः स्तम्भनिर्मलःधराशोभिता ॥१४

अप्सरोनृत्यविन्यास विलासोल्लासशोभिता ।

ममाकान्तिमतीनाम्नी देवाना हृपदायिका ॥१५

ब्रह्मणा उमा देवी ने कहा—हे देव ! आप तो परम महान् ईश्वर

हैं। कृपया इस क्षेत्र का प्रभाव मुझे प्रवण कराइये। जो भी तीर्थ  
विद्यमान रहते हैं और जो भी त्रिष है उन सभी का मैं सुनना चाहती  
हूँ। मेरे चित्त में इनके प्रवण करने का बड़ा भारी कीतूहन हो रहा  
है ॥१६-१०॥ श्री महादेवजी ने कहा—हे देवि ! यदि तुम्हारी ऐसी ही  
इच्छा है तो पापों के नाश करने वाले प्रभाव को सुनिए। हे महादेवि !  
यह सबसे प्रादि में होने वाला क्षेत्र है और सभी प्रकार के पापों का नाश  
कर देने वाला है ॥११॥ श्री मेव पर्वत के मुनिघान में जो रत्नों से चित्रित  
शिखर है वह परमात्मा ब्रह्मा का चैराज भवन नाम वाला है। वहाँ पर  
एक काण्ठि से सुमम्पन्न और कान्तिमती ही नाम वाली सभा है जो  
दिव्याङ्गनाओं के गीतों के परम मधुर स्वर से शब्दायमान रहा करती  
है। जो पारिजात वृक्ष की श्वेत मञ्जरियों के फालाओं से लोभा वाली  
है। जहाँ पर बहुत प्रकार के उत्तमोत्तम वाद्यों के उत्पन्न सुन्दर समुत्पन्न  
धनियों से निरादिन रहा करती है। जो लय और तानों में युक्त बहुत  
से प्रकार के गीत और वादियों की ध्वनियों वाली है। जिसमें परम  
स्वच्छ धादशों (दशमों) से शोभित करवाँ ही स्तम्भ बने हुए हैं और  
जो अप्सराओं के नृत्यों से एक दिव्याओं के उतनासों एवं विलासों से

शोभा वाली है। यह देवों को बहुत ही हर्ष के प्रदान करने वाली है  
॥१२-१५॥

तस्या निविष्ट वागीश शङ्कराराधने रतम् ।  
सनत्कुमारं ब्रह्मपि ब्रह्मणो मानस सुतम् ॥१६  
मुनिमध्यात्समुत्थाय कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।  
पराशरमुतो ज्यारः प्रणिपत्य यथाविधि ॥१७  
कृताञ्जलिपुटोभूत्वा भवभवरथानुभावितः ।  
पप्रच्छपरयातुष्टया हविता गुरुदाननः ॥१८  
महाकालस्य माहर्ष्यं प्राणिनां मोहनाशनम् ।  
भगवन् ! क्षेत्रमाहात्म्यं महाकालस्य कथ्यताम् ॥१९  
महाकालवनकस्मात् प्रोच्यते सर्वतोवरम् ।  
कथं गुह्यवनं प्रोक्तं पीठं सऊपरन्तथा ॥२०  
फलं यथास्यक्षेत्रस्य मृत्नानाञ्च गतिर्यथा ।  
स्नानेन यद्भवेत्पुण्यं दानेनापि च यत्फलम् ॥२१  
कथमेतच्छमशानञ्च क्षेत्रं प्रोक्तं यथातथा ।  
पृष्टोमेशङ्कुरेभक्तिं ब्रूहि त्वं शास्त्रकोविद ॥२२

उम सभा में निविष्ट—वागीश श्री शंकर भगवान् के समाराधना में  
रति रहने वाले—ब्रह्माजी के मानस पुत्र—ब्रह्मपि सनत्कुमार मुनि को  
गमरुत मुनि मण्डली के मध्य से उठकर पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन  
ध्याम जी ने यथा विधि प्रणाम किया था ॥१६-१७॥ भगवान् भव की  
भक्ति से अनुभावित होकर दोनों अपने हाथों को जोड़कर परम मुष्टि से  
हविता गुरुदानन ने पूछा था कि इन महाबाल का क्या प्रभाव है जो  
प्राणियों के मोह के नाश कर देने का होता है। क्या देव ने कहा  
था—हे भगवन् ! आप इन महाकाल के क्षेत्र के प्रभाव एवं माहात्म्य  
को कहिये। यह सबसे परम श्रेष्ठ महाकालवन कैसे कहा जाता है ?  
यह मऊपर पीठ गुह्यवन क्यों कहा गया है ? जिस प्रकार से इस क्षेत्र  
का फल होता है और जहाँ पर मृत् मानवों की गति ठीका करती है  
तथा जो यहाँ दान देने से पुण्य होता है एवं यहाँ स्नान करने से जो फल

प्राप्त होता है वह भी बतलाइये । इस क्षेत्र को इमशान कैसे और क्यों कहा गया है ? मेरे द्वारा पूछे गये आप भगवान् शङ्कर में भक्ति को भी बतलाइये क्योंकि आप तो सभी शास्त्रों के महान् मनीषी हैं ॥१८-२२॥

क्षीयते पातकं यस्मात् तेनेदं क्षेत्रमुच्यते ।

यस्मात्स्यानञ्च मातृणा पीठन्ते तत्रकम्यते ॥२३

मृताः पुनर्जायन्ते तेनेदमूपरं स्मृतम् ।

गुह्यमेतत्प्रियन्नित्य क्षेत्रं शम्भोर्महात्मनः ॥२४

यस्मादिष्ट हि भूताना इमशानमतिवत्सलम् ।

महाकालवन यच्च तच्चैवापि विमुक्तिकम् ॥२५

एकाग्रक भद्रकाल करवीरवनन्तथा ।

कोलागिरिस्तथा काशीप्रयागममरेश्वरम् ॥२६

भरतञ्चैव केदारं दिव्य रुद्रमहालयम् ।

दिव्यइमशानान्येतानि रुद्रस्येष्टानि नित्यशः ॥२७

रमते भगवानेषु सिद्धिक्षेत्रेषु सर्वदा ।

पृथिव्यान्नेमिपंतीर्थमुत्तम तीर्थेषुष्करम् ॥२८

भगवान् भगवान् जो ने कहा—जिससे पातकों का क्षम हो जाना करता है ? इसी कारण से इसका नाम क्षेत्र यह पढ गया है और क्षेत्र कहा जाया करता है । क्योंकि यह मातृगण का स्थान है इसी कारण से इसको पीठ कहा जाता है । इनमें अपने प्राणों का परित्याग करने वाले फिर दूसरी बार जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं इसी से इसको ऊपर कहा गया है । यह महान् आत्मा वाले प्रभु शम्भु का परम गोपनीय और निरय ही अतिशय शिव क्षेत्र है । इस कारण से समस्त भूतों का यह इष्ट है और अत्यन्त वत्सल इमशान है और जो महाकाल वन है वह भी विमुक्ति के प्रदान करने वाला है । एकाग्रक—भद्रक—करवीर वन—कोलागिरि—काशी—प्रयाग—अमरेश्वर—भरत—केदार यह दिव्य रुद्र महालय हैं । ये भगवान् रुद्र को अत्यन्त ही नित्य इष्ट दिव्य इमशान हैं । भगवान् शम्भु इन सिद्धि के क्षेत्रों में सर्वदा रमण किया करते हैं । इस पृथ्वी में परमोत्तम नैमिष तीर्थ और पुष्कर तीर्थ हैं ॥२३-२८॥

त्रयानामपिलोकानां कुरुक्षेत्रं च शस्यते ।  
 कुरुक्षेत्राद्दशगुणा पुण्यवाराणसीमता ॥२९  
 तस्माद्दशगुणं व्यास ! महाकालवनोत्तमम् ।  
 प्रभासाद्यानि तीर्थानि पृथिव्यामिहयानितुः ॥३०  
 प्रभासपुत्तमं तीर्थं क्षेत्रमाद्य पिनाकिनः ।  
 श्रीशंखमुत्तमं तीर्थं देवदारुवनं तथा ॥३१  
 तस्मादप्युत्तमा व्यास ! पुण्या वाराणसी मता ।  
 तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं सर्वतीर्थोत्तम यत् ॥३२  
 महाकालवनं गुरुं सिद्धिभेत्त तयोपरम् ।  
 किञ्चिद् गृह्यान्न्ययान्यानि श्मशानान्पराणि च ॥३३  
 सर्वतस्तु समाख्यात महाकालवनं मुने !  
 श्मशानमूपर क्षेत्रं पीठन्तु वनमेव च ॥३४  
 पञ्चैकत्र न लभ्यन्ते महाकालपुरादृते ॥३५

इन तीनों लोकों में कुरुक्षेत्र परम प्रशस्त माना जाता है । कुरुक्षेत्र से दस गुणा तथा परम पुण्य स्वरूपा वाराणसी मानी गई है । हे व्यास ! यह महाकाल वन उत्तम वन उत्तमे भी दस गुना महत्त्व वाला है । यहाँ पृथ्वी में जो भी प्रभास घाटि तीर्थ हैं उन सबमें यह प्रभास सबसे उत्तम तीर्थ है और शंख मुनिपिनाकी का यह आद्य क्षेत्र है । श्री शंख भी परमोत्तम तीर्थ है तथा देवदारु वन भी श्रेष्ठ तीर्थ है । हे व्यास ! इससे भी उत्तम एवं पुण्यमयी वाराणसी को माना गया है । उसने भी दशगुना सब तीर्थों में उत्तम महाकाल वन ही कहा गया है । परम गुरु एवं सिद्धि का क्षेत्र है तथा ऊपर भी इसी प्रकार का यहिमा वाला है । इसी प्रकार से कुछ गुरु अन्य जो श्मशान तथा ऊपर है । हे मुने ! इन सबसे महाकाल वन समाश्वास है । श्मशान—ऊपर क्षेत्र— पीठ और वन ये पाँचों एक ही स्थान में महाकाल पुर से अतिरिक्त वहाँ भी प्राप्त नहीं हुआ करते हैं ॥२९-३५॥

५८—अग्नि आविर्भाव वर्णन

कपमग्निः समुत्पन्नो योनिः शर्वेणधारितः ।

विस्तरेणसमाचक्ष्व भगवन्मुनिवन्दितः ॥१

अव्यस्तादीन्ससर्जादावर्षं ह्यिदं दद्यात् ।

जज्ञं षोडशवर्षाभ्यो ब्रह्मलोकपितामहं ॥२

स्वयम्भूः स तपस्तपसा दिव्य वर्षं घत महत् ।

सन्तस्थो व्याजहाराऽथ भूमिं च स्वर्गं त्रिभुक्तिः ॥३

श्रुतिबोधात्तु मनसा पश्चादग्निजायत ।

अधोमुखः पपाताऽग्निः पृथिवीनिर्दहन् यदा ॥४

पाणिभ्याः ब्रह्मणा सोऽग्निभूमेरुर्ध्वं निवेशितः ।

ततो दक्षिणहस्तेन वेशामग्निं प्रणीयते ॥५

पूरापतन्नधोऽम्बालरुर्ध्वं च्वालोयतोऽधुतः ।

उत्तानञ्चकृतोयस्माद्ब्रह्मणानिमित्तस्त्रिधा ॥६

ज्वालाभिः प्रज्वलन्नुर्ध्वं सर्वशब्दः स्फुलिङ्गवान् ।

हिरण्यवर्णं ब्रह्माणं स उवाचाऽग्निरुत्कटम् ॥७

महामुनि व्यासदेव जी ने कहा—हे मुनियों के द्वारा महावर्णित भगवन् । यह सबका योनि भगवान् समुत्पन्न के द्वारा धारण किया हुआ अग्नि कैसे समुत्पन्न हुए थे ? आप इसको विस्तार से ज्ञानवाच्ये । भगवान् सनत्कुमारजी ने कहा—मनसे प्रादि काल में अव्यक्तादि का मूलन किया और वह षष्ट समुदाश्र हुआ था । सुवर्ण के समान भाभावात्ता लोको के विनामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे ॥१-२॥ उक्त भगवाद् स्वयम्भू ने दिव्य सौ वर्ष तक महान तप का सन्तपन किया था । इसके अनन्तर 'भूमि'दः स्वर्—इस श्रुति का कल्पन हुआ । इसके पीछे श्रुति के योग से मन से अग्नि की समुत्पत्ति हुई थी । यह अग्नि नीचे धोर मुख धाना होकर गिर गया था । जब वह पृथिवी का दाह कर रहा था तब ब्रह्माजी ने दोनों हाथों से उस अग्नि की मूर्ति के ऊपर निर्देशित कर दिया था । इसके दाहिने हाथ से बेसी में वह अग्नि प्रणीत किया जाता है ॥३-५॥

दहिने यह नीचे की ओर ज्वाला बाला होकर गिरा या फिर ऊर्ध्व ज्वाला बाला इसे धारण किया गया था । इस प्रकार से ब्रह्मा जी के द्वारा यह तीन प्रकार से निमित्त किया गया था । ज्वालाओं से ऊर्ध्व भाग की ओर प्रज्वलित हुआ हुआ—सर्वशब्द बाला—स्तुतिज्ञो से युक्त यह अग्नि हिरण्य के समान दण्ड वाले ब्रह्मा जी से उल्टा बोला—॥६-७॥

किमर्थं तु मत्ता देव भूमिभक्ष्यं निवारितम् ।

बुभुनयाहमाविष्टाहा रोमेप्रदीयताम् ॥६

एवमुक्तोऽग्नये ब्रह्मा स्वरोमाणि जुहावतः ।

कृशाञ्चलादग्निस्तु नवंरोमाणि ब्रह्मणः ॥७

ब्रवीच्च नमेतृप्तिर्न च मे देहनिवृत्तिः ।

त्वच जुहाव ब्रह्मा त चलादाग्निस्तमेव च ॥१०

अब्रवीत्तं ततो वह्निस्तृप्तिर्नास्ति ममंश हि ।

जुहाव स्वानि मासानि त्वचो कृत्य प्रजापति ॥११

अब्रवीच्च नमेतृप्तिर्न च मे देहनिवृत्तिः ।

जुहाव ब्रह्माचास्थीनि तान्यश्नन्त बुभुक्षितः ॥१२

ततो ब्रह्मा हुताग्नेन कृतो देही विधातुकः ।

तम देहमपो वह्निर्ब्रह्मापमवदच्च मः ॥१३

बहो ब्रह्मन् नमेतृप्तिर्न च मे देहनिवृत्तिः ।

कुड्ढेन ब्रह्मणा लोऽग्निर्हं स्वारिण द्विधा कृतः ॥१४

अग्नि ने कहा—हे देव ! मेरे द्वारा भूमि का भक्षण आपने किस कारण से निवारित कर दिया है । मैं तो बुभुक्षा (भूख) से पीड़ित हूँ । मुझे आप आहार प्रदान कीजिए ॥६॥ इस तरह से अग्नि के द्वारा बड़े गये ब्रह्मा जी ने उस अग्नि के लिए अपने रोमों का हवन किया था । उस वृत्त अग्नि ने ब्रह्मा जी के समस्त रोमों को खा लिया था और फिर वह अग्नि बोना—मेरी तृप्ति नहीं हुई है और मेरे देह की निवृत्ति भी नहीं हुई है । फिर ब्रह्मा जी ने अपनी त्वचा का हवन किया था । अग्नि ने उसे भी खा लिया था । और फिर उस अग्नि ने कहा था—मेरी तृप्ति भी अभी भी नहीं हुई है । तब उस प्रजापति ने त्वचा से उठाकर अपने

मांस की पेशियों का हवन किया था । फिर भी उस अग्नि ने यहो कहा था—मेरी श्रम भी वृत्ति नहीं हुई है और न मेरे इस देह की ही निर्धत्ति हुई है । इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपनी अस्थियों की आहुतियाँ उसे दे दी थी । उनको भी खाते हुए वह मुखा ही रहा था । इसके पश्चात् उस अग्नि ने ब्रह्मा जी को विधानुक देह बनाना कर दिया था । फिर वह अग्नि बिना देह वाले ब्रह्माजी से बोला—यहो ! हे ब्रह्मन् ! मेरी वृत्ति नहीं होती है और मेरे देह की निवृत्ति भी नहीं हो रही है तब तो ब्रह्मा परमन्त फुट्ट हो गये थे और उन्होंने अपनी हुड्डार के द्वारा उस अग्नि के दो भाग कर दिये थे ॥१-१४॥

आहूतूरुदतावर्गी आहारार्थं प्रजापतिम् ।

हुड्डारेणपुनर्ब्रह्मा द्विचर्ककचकार वं ॥१५

श्रमस्तेषां हृदन्तिस्म हृदमेकीहि सश्रितः ।

कृद्धेनब्रह्मणाभ्यास हुड्डारेणोत्रताडितः ॥१६

रोस्यमाणे चाग्नौ तु पुनर्ब्रह्मा कृपान्वितः ।

आह कामामिभूताना मुञ्चस्व त्व देहधातवः ॥१७

ते काले लब्धकामस्य साकृत्तिः सम्प्रकल्पिता ।

अकाराग्नि सन्निविष्ट हृष्टा ममसि मानमम् ॥१८

अकाराग्निः प्रजउधाल किमेतदितिचाश्रवीत् ।

ब्रह्माउमाहृत्वमपि यथेशकृत्तिमाश्रय ॥१९

देवमध्वेवहिर्वापि मुनीनामाश्रयेषु च ।

इत्येवमुक्ततेनाऽऽणु वृत्तिमेतामरोचयत् ॥२०

अहमेव प्रदास्यामि पुनापुनरुवाच ह ।

यन्मादेपद्वितीयोऽग्निर्हुड्डारात्समजायत ॥२१

ये दो भागों में हो जाने वाले अग्नियों ने रुदन करते हुए प्रजापति से अपने आहार के लिये कहा था । फिर ब्रह्माजी ने उन दोनों भागों को एक—एक करके तीन भागों में कर दिया था । वे तीनों भाग रुदन करते थे । उनमें से एक भाग ने हृद देव का संशय ग्रहण कर लिया था । हे म्याम ! कृद्ध हुए ब्रह्माजी ने फिर हुड्डार के द्वारा उस अग्नि को आदि

क्रिया था । वे दोनों अग्निपौरो रो रहे थे तब पुनः ब्रह्माजी को उन पर दया आ गई थी और वृषा से समन्वित होकर ब्रह्माजी ने अग्नि से कहा—जो पुरुष काम से अभिभूत हो उनके देहों की धातुओं का तू प्रक्षालन किया कर ॥११५-१६॥ उन्होंने काल में सब काम की बहू वृत्ति तत्प्रकल्पित करली थी । मन में मानस अकाराग्नि को तन्निविष्ट देकर प्रकाराग्नि प्रक्षालित हुआ और यह क्या है—ऐसा बोला—ब्रह्माजी ने उस से कहा—तू भी यथेष्ट वृत्ति का समाश्रय ग्रहण करले । देह के मध्य में— बाहिर भी घोर मुनियों के आश्रमों में अपनी वृत्ति ग्रहण करो । इस प्रकार से कहे हुए उग अग्नि ने इस वृत्ति को बहुत प्रसन्न कर लिया था । यद्यो कि यह दूसरा अग्नि दुष्कार से समुत्पन्न हुआ है मैं इस प्रकार से दूँगा— यह पुन पुनः कहा था ॥१९-२१॥

साभिमानोऽपमानो वा हुंवारो यत्र कथ्यते ।

साच वृत्तिर्ममादेशाद् बुभुधा शान्तये तव ॥२२

इकाराग्निं समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ।

भयतोऽग्नेरियं वृत्तिरन्नभुक्त दहेरिति ॥२३

उकाराग्निं समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ।

यत्पृथिव्या महस्थान भगवस्तस्यमाश्रय ॥२४

अहं तव विधास्यामि स्थानमाहारमेव च ।

इत्युक्तः सुततेनाग्निर्यः पृथिव्याशिलानयः ॥२५

यतोऽग्निर्व्यासतेनोतो गिरीदुर्गमहामुने ।

उकाराग्निं गचाप्येप समुद्रेऽब्रामुगं ॥२६

सोर्षि भिन्नः समाहूयो ब्रह्मणा स्थानलिप्सया ।

त्वञ्चक्षुः सर्वलोकस्य ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥२७

तस्मात्त्व ससृता यानी द्विजातीना प्रकाशय ।

दंवी पुण्याससृताच आयुष्यहस्यससृता ॥२८

अभिमान के या अपमान के साथ जहाँ पर भी दुष्कार को बढ़ा जाता है, वह वृत्ति मेरे आदेश से तुम्हारी भूय शान्ति के लिये है ॥२२॥ यकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजी ने यह वचन बोला था—अग्नि आपकी



मह हृति हाँसे कि ओं श्री अन्न स्थाप्य गया हो उधे आप वाय कर वा ॥२३॥ फिर उकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजी ने कहा—ओं श्री इस पृथिवी में मत्स्यस्त हो, हे भगवन् ! वहाँ पर धार घटना आग्नि समाह्वये में आपके लिये स्थान और भाँडार की कस्यवा ! इस वाग्नु से ब्रह्माजी के द्वारा बड़े हुए उस अग्नि से पृथिवी में ओं श्री शिवाजी का समुदाय वा, हे महामुने । ध्यान । उनके द्वारा कहे हुए अग्नि ने मिटि में —दुर्ग में स्थिति श्री ओर वहाँ पर वह उकाराग्नि हो स्थित होकर है । समुद्र में पड़वा मुस अग्नि है । वह श्री ब्रह्माजी के द्वारा स्थान की शिवा से शिवा ब्रह्माजी के द्वारा समाह्वय किया गया था । ब्रह्माजी ने उधे कहा—आप एमस्त लोक की बसु हैं । इस लिये प्राय द्विजातिय की परम मत्स्य वाली को प्रकाशित करेव । बाणी दंकी—पुण्या और उम्कृत ही होनी चाहिए । जो वाणी बिना संस्कार वाली होती है वह वायुय्य का हनन किया करती है ॥२४-२५॥

तस्माद्द्विजादेर्विज्ञेया बाणी पुण्याप्रकाशिता ।  
 वाक्चमाताद्विजातीनां मुखे सा सम्प्रतिष्ठिता ॥२६॥  
 अनृताक्षरविन्यासात्सङ्गत्प्राह्यसंस्कृता ।  
 वक्ता रहन्त्यतोस्त्यग्निः गदासस्कृतवाग्निव ॥२७॥  
 आहूयभूपोऽकाराग्निं प्रजापतिरचभुपम् ।  
 तां देववाणीमवदत्सोऽपि स मौलितेक्षण ॥२८॥  
 ब्रह्माणमाह्वयस्मिन्नु वाचोऽह्नुस्वमास्महे ।  
 स्थानं ममपयच्छस्व सचंतेजोवर परम् ॥२९॥  
 ब्रह्मात्माह्वयस्मास्वतेष्व.स्थानसमीहसे ।  
 तस्मात्तेजोमयस्यै रविस्थानं भविष्यति ॥३०॥  
 यस्मात्प्रयतेते जग्जुर्भवन्ति दुर्वलम् ।  
 तस्मात्त्वातेऽसायुक्तं परयेदनिमिषच्छक ॥३१॥  
 इकारमयसमिन्नमग्निमाह्वयितामह ।  
 सौम्यदृष्टयानुसह्याणं समुद्वीक्ष्यह्युपागतः ॥३२॥

इस कारण से द्विजाति की वाणी पुण्या और प्रवाशिता जाननी चाहिए । द्विजातियों की वाक् माता है और वह मख में सम्प्रतिष्ठिता होती है ॥२६॥ मिथ्या से युक्त अशरो के विन्यास से—प्रमाङ्गस्य से असम्भृत वाणी बोलने वाले का अग्नि हनन किया करती है । अतएव द्विज को सदा ही मुगःशृत वाणी बाला होना चाहिए ॥३०॥ फिर अकाराग्नि को बुला कर जो कि अचक्षुष या, प्रजापति ने उस देव वाणी को कहा था कि वह भी समीक्षित ईक्षण बाला हो गया था । वहि ने ब्रह्मा जी से कहा था—हम मृत की वाणी हैं—आप समस्त तेज से परम श्रेष्ठ स्थान मुझे प्रदान कीजिए । ब्रह्माजी ने उससे कहा—वयो कि आप तेज का स्थान चाहते हैं इसीलिये परम तेजोमय तेरा रवि का स्थान होगा । जिनसे तेज बला जाता है वह क्षु दुर्बल हो आया करता है । इसी लिये तेज से युक्त प्राणों अग्निमिष बोन देखता है । इस के परधात् मंभिर इकार प्राग्नि को ब्रह्माजी ने कहा था । वह अग्नि भी परम सौम्य दृष्टि से ब्रह्माजी को देगकर समुपस्थित हुआ था ॥३१--३५॥

यन्माच्छीघ्र महामत्स्य ! सौम्यदृष्टिरहागत ।

तस्मादास्याम्यह स्थान सर्वभूतमनोरमम् ॥३६

त्व मित्तात्मा श्वेतरश्मिश्चन्द्रमास्त्वं भविष्यसि ।

सर्व तेजोऽधिको दिव्यः सौम्यः परमभासुरा ॥३७

तत्रस्य सर्वं तेजाग्नि तेजसाऽग्निभविष्यति ।

दशयुक्त्वा त विसर्ज्याऽथ उक्तराग्निमथाऽह्वयत् ॥३८

इहैह्येहीतिगिरग्नि गमादायन्यवेशयत् ।

तत्रस्यः पञ्चमयमत्रमूर्ध्वं मेतदजायत ॥३९

एतएव सपवह्निरकाराग्नि प्रतिष्ठितः ।

तस्मादग्निश्चसूयंश्च रुद्रावेतीविनिदिशेत् ॥४०

भवाग्निरूपः परमो ब्रह्माणमिदमश्रवीत् ।

ममाग्निरुचिरं स्थान प्रमच्छस्वपयातथम् ॥४१

ब्रह्मातमाहनतमत् स्थान तेरोचतेतले ।

अग्निरतुप्रश्रुयापेदस्थानं यथयमेपरम् ॥४२

स्थानं नैवास्ति नो भव्य ततो ह्येवं भविष्यति ।

अत्र त्वास्थातुमिच्छामि यदि सरोचते त्व ॥६३

ब्रह्माजी ने कहा—हे महासत्त्व ! क्यों कि प्राय यहाँ पर परम सौम्य दृष्टि से प्राप्त हुए हैं इसी कारण से मैं आपको समस्त प्राणियों का मनोरम स्थान दूँगा । प्राय तित्त स्वल्प बाले—श्वेत किरणों से समस्त चन्द्रमा होये । समस्त तेलों से अधिक—द्विगुण—सौगुण—परम भागुर वहाँ पर स्थित रहने वाले हूँगी जो अपने तेल से समस्त तेलों को अभिभूत कर देगा । यह कहकर ब्रह्माजी ने उसको विदग्धित कर दिया या धीरे इसके पदचात् उकाराग्नि को समाहूत किया था ॥६६-६८॥ आयो—आयो—यह कहकर उसे लेकर शिर में निवेशित कर दिया या वहाँ पर स्थित होने हुए ऊर्ध्व में पाँचवाँ मुख समुत्पन्न हो गया था ॥६९॥ इस प्रकार से यह उकाराग्नि स्वल्प धाना बह्नि प्रतिष्ठित हो गया था । इस लिये घग्नि और मूष्य ये दोनों को हृदयनिदिष्ट करने चाहिये ॥७०॥ परम भवानि रूप ने ब्रह्मा जी से यह कहा था—मुझे भी कोई अत्यन्त रुचिर स्थान ठीक—ठीक प्रदान कीजिए ॥७१॥ ब्रह्माजी ने तबसे कहा—आपको कौत 'सा स्थान इस भूमि में पसन्द है ? अग्नि ने उत्तर दिया कि मुझ से आप परम सुन्दर स्थान नकलवाइये । हमारा कोई भी स्थान ऐसा भव्य नहीं है सो ऐसा ही होगा कि यहाँ पर मैं आपको स्थित करने की बात चाहता हूँ यदि आपको यह वसन्द हो जाता है ॥७२-७३॥

### ५६—महाकालवननिवासविधिवर्णन

भगवन्केतविधिना महाकालवनेऽमरं ।

रुद्रलोकमभीष्टदिभवं स्तव्य क्षेत्रवाग्निभिः ॥१

किमनुष्यैरुतस्त्रीभिः सिद्धयह्याश्रमान्वितं ।

वसदिभक्किमनुष्ठेय तन्सर्वं प्रस्रदोहिनः ॥२

नरःस्त्रीभिश्चवस्तव्यं वर्णभ्राश्रमवासिभिः ।

स्वधर्माचारनिरतैर्दम्भमोहविघर्जितं ॥३

किंकुर्वाणं नरं कर्म रद्रभक्तिं श्रवीहि नः ।  
 त्रिावधाकथिताह्य न मनोवाववायसम्भवा ॥४  
 लौकिकी वैदिकी चान्दा भवेदाध्यात्मिकी तथा ।  
 ध्यानधारणया वृद्धया रुद्राणा स्मरण हि यत् ॥५  
 रद्रभक्तिकरीचंपा मानसीभक्तिरुच्यते ।  
 व्रतोपवाननिष्टमंजितेन्द्रियनिरोधिनाम् ॥६  
 रद्रस्य कायिकीभक्तिर्ज्ञानध्यानस्वर्गमिणाम् ।  
 गोघृतक्षीरदधिभिर्गन्धरक्तकुशोदकैः ॥७

महामहर्षि प्रवर ध्याम देवत्रो ने कहा—हे भगवान् ! जिस विधि से  
 रद्र लोक की इच्छा करने वाले श्रेष्ठ वामी धर्मो के द्वारा महा काल वन  
 में वाम करना चाहिए ? क्या मनुष्यो—स्त्रियो तथा सिद्धि—आधमो से  
 समन्वितो के द्वारा निवास करते हुए क्या करना चाहिए यह सब आप  
 कृपा करके हमको बतनाइये । पुरुषो और स्त्रियो के द्वारा वाम करना  
 चाहिए । समस्त वर्णों वाले—मर आधमों में रहने वाले—धर्म  
 और पापार में निरत रहने वाले—दम्भ, मोह से वजित रहने वाले  
 मनुष्यो को क्या कर्म करते हुए भगवान् रद्र की भक्ति होवे—वह हमको  
 आप बतनाइये । मन्त्रुमारजी ने कहा—तीन प्रकार की भक्ति बही गयी  
 है जो मन—वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाली है ॥१-४॥ दूसरे भी  
 इनके तीन प्रकार होने हैं वे लौकिकी—वैदिकी और अध्यात्मिकी हैं ।  
 ध्यान और धारणा की बुद्धि से जो रद्रों का स्मरण है या रद्र की भक्ति  
 करने वाली मानसी भक्ति बही ज्ञाना करती है । अपनी इन्द्रियो को  
 जोडकर निरोध करने वाली की वन—उपवास और नियमो के द्वारा  
 जो भगवान् रद्र की जो भक्ति की जाती है वह कायिकी भक्ति बही  
 जाती है । ज्ञान और ध्यान से त्रिपन धर्म वालों की जो वा घृत-क्षीर-  
 दधि से तथा गन्ध रक्त—कुशोदको से ॥५-७॥

गन्धमात्यं विविधैर्धानुभिश्चोपपादिता ।

घृतमुग्धुलुघूपेदच कृष्णागुरमुगन्धिभिः ॥८

भूषणैर्हैमरत्नाना चित्राभिः सग्भिरेव च ।  
 वासःप्रतिसरस्तोत्रैः पताकाव्यजनादिभिः ॥६  
 नृत्यवादित्रगीतैश्च सर्वप्रत्युपहारकैः ।  
 भक्ष्यभोज्यानुपानैश्च यापूजाचाक्षरैर्नरैः ॥१०  
 महेश्वरं पुरस्कृत्य भक्तिः सालोकिकी मता ।  
 देवमन्त्रैर्हृदियोगैर्वा क्रिया वैदिकी मता ॥११  
 दर्शचर्पाणामास्यांवा कर्तव्य चाग्निहोत्रकम् ।  
 प्राशनं दक्षिणादानं पुरोडाशश्चरुक्रिया ॥१२  
 इष्टिवृत्तिः सोमपानं याज्ञिकंसर्वं कर्मव ।  
 ऋग्यजुस्सामजाप्यानि सहिताध्ययनानि च ॥१३  
 क्रियन्ते रुद्रमुद्दिश्य सा भक्तिर्वैदिकी स्मृता ।  
 अग्निभूम्यनिलाकाशनिशाकरदिवाकरान् ॥१४  
 समुद्दिश्य कृतकर्मैस्सर्वदैवतं भवेत् ।  
 आव्यात्मिकी तु त्रिविधा रुद्रभक्तिः स्थितामृते ॥१५

गन्ध माल्य और घनेक घातुओं से उपपाकित घृत—गुग्गुलु—घुषों से  
 —कृष्ण गुह सुगन्धियों से—हैम और रत्नों के मूषणों से—विचित्र  
 प्रकार की मालाओं से—निवास कर प्रतिमुर तथा स्तोत्रों से—पताका और  
 व्यजन आदि से—नृत्य वादित्र और गीतों के द्वारा—सर्व प्रत्युपहारों से  
 —भक्ष्य भोज्यों के अनुपानों से प्रक्षतो से जो मनुष्यों के द्वारा महेश्वर  
 भगवान् को आये करके पूजा की जाती है वह लौकिकी शिव भक्ति कही  
 गयी है । वेद मन्त्रों के द्वारा और योगों के द्वारा जो हृदय की क्रिया है वही  
 वैदिक पूजा मानी गयी है ॥६-११॥ दर्श में—चर्पाणामो में अग्नि होत्र  
 करना चाहिए—प्राशन—दक्षिणादान—चरु क्रिया—इष्टिवृत्ति—सोमपान  
 सम्पूर्ण याज्ञिक कर्म, ऋक्, यजु और सामवेद के जाप तथा सहिताओं  
 का अध्ययन जो भगवान् छेद का उद्देश्य लेकर किये जाते हैं वही वैदिकी  
 भक्ति कही गयी है । अग्नि, भूमि, अनिल, आकाश, निशाकर, दिवाकर,  
 इनका उद्देश्य ग्रहण करके किया हुआ कर्म देवत कर्म कहा जाता है ।

हे मुने । अध्वारिमकी रुद्र की शक्ति तीन प्रकार की स्थित मानो गयी है ॥१२-१५॥

साङ्ख्या च योगिको चान्वा विभागन्तत्र मे शृणु ।

चतुर्विदातितत्त्वानि प्रधानादीनि सङ्ख्यया ॥१६

अचेतनानियोजयति पुरुषः पञ्चविंशकः ।

चेतनं पुरुषोभोक्ता न कार्यतस्य कर्मणा ॥१७

रुद्र पञ्चविंशकः कर्ता सर्वज्ञश्चेतनः प्रभुः ।

अजन्मनित्यमव्यक्तमधिष्ठानात्प्रयोजकः ॥१८

पुरुषोऽव्यक्तं नित्यं स्वात्कारणञ्च महेश्वरः ।

तत्त्वसर्गोभवेत्पूर्वं भूतसर्गश्च तत्त्वतः ॥१९

सख्यया परिमर्गयि प्रधानं त्रिगुणात्मकम् ।

साधर्म्यं मात्म्यमेश्वर्यं प्रधानं वैधिधर्मिव ॥२०

कारणतच्च रुद्रस्य काम्यत्वमिदमुच्यते ।

मवंतकनृता रुद्रे पुरुषे चाप्यकनृता ॥२१

अचिन्म्य प्रधाने च तच्च तत्त्वमिदं स्मृतम् ।

तत्त्वान्तरेण मुच्येते कार्यकारणमेव च ॥२२

साख्या और योगिक दूसरी होती है । वही पर विभागों को अथवा प्राय मुक्त से धरणा करो । सख्या के द्वारा गणना करने पर प्रधान आदि शीरोत तत्त्व हाते हैं । ये सब अचेतन योग्य किये गये हैं । चेतन एक पुरुष है जो पञ्चोसर्वा होता है । चेतन पुरुष ही भोक्ता होता है उसका कर्म से कुछ भी करने के योग्य नहीं है ॥१६-१७॥ भगवान् रुद्र एतन्वीसर्वे हैं जो कर्ता, सर्वज्ञ और चेतन प्रभु हैं । यह अजन्मा, नित्य, अव्यक्त, अधिष्ठाना, प्रयोजक है । पुरुष अम्यक्त, नित्य और कारण महेश्वर है । पहिले तत्त्वों का सर्ग होता है और तत्त्वों से भूत सर्ग हुआ करता है । संख्या से परिमर्ग के लिये प्रधान त्रिगुणात्मक अर्थात् शरव, रज और तम इनके स्वरूप बान्ना होता है । प्रधान साधर्म्यं, आत्म्य, ऐश्वर्य और विधिमि होता है । और यह रुद्र का कारण है । यह काम्यत्व भी कहा जाता है । रुद्र में सर्वत्र कनृता है और पुरुष में भी अकनृता होती है । प्रधान में अचिन्म्य है

घोर वह यह तत्त्व कहा गया है । तत्त्वान्तर से कार्य कारण होते है  
॥१८-२२॥

प्रयोजके च वै जात्यं त्रात्वातत्वस्य सङ्ख्याया ।  
संख्याऽस्तौत्युच्यतेप्राज्ञं रुद्रतत्त्वायचिन्तकः ॥२३  
इति तस्यतत्त्वभावं तत्त्वसङ्ख्या च तत्त्वतः ।  
रुद्रतत्त्वाधिकञ्चापि ज्ञानतत्त्वं विदुर्वुधाः ॥२४  
सांख्ये ततो भक्तिरेषा सद्भिराध्यात्मिकी मता ।  
योगिकीमपिमे भक्त्या शृणु भक्तिं महामुताः ॥२५  
प्राणायामपरोनित्यं व्यायेत नियतेन्द्रियः ।  
धारणा हृदयेधृत्वा ध्यायते यो महेश्वरम् ॥२६  
हुत्कञ्चर्णिकासीनं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।  
शशांकद्योतितजट व्यालावृतकटीतटम् ॥२७  
श्वेतं दशभुजं भद्रं वरदाभयहस्तकम् ।  
योगजामानसीध्यास रुद्रभक्तिः परास्मृता ॥२८

तत्त्व की संख्या से प्रयोजक मे जात्य का ज्ञान प्राप्त करके संग है,  
यह रुद्र के तत्त्वार्थ के चिन्तक प्राज्ञो के द्वारा कहा जाता है ॥२३॥ इस  
प्रकार से उसके तत्त्व भाव को घोर तात्त्विक रूप से तत्त्वो की संख्या  
घोर जिस मे रुद्र तत्त्व अधिक है ऐसे ज्ञान तत्त्व को बुद्धजन जानते हैं ।  
सांख्ये मे यह भक्ति सत्पुरुषो के द्वारा आध्यात्मिकी भक्ति मानी गयी  
है । योगिकी भी भक्ति को अब मुक्त से प्राप्त ध्वज कीजिए । जो यह  
भक्ति महान् स्वर वाली होती है । जो कोई पुरुष नियत इन्द्रियों वाला  
होकर हृदय मे धारणा करके नित्य ही प्राणायाम परायण होता हुआ  
ध्यान करे घोर महेश्वर प्रभु का ध्यान क्रिया करता है । ध्यान में महेश्वर  
प्रभु के स्वरूप का ऐसा चिन्तन करता है कि वे मेरे हृदय रूप कमल की  
कर्णिका मे समासीन हैं, उनके पाँच मुख हैं तथा तीन नेत्र हैं, चन्द्रमा की  
प्रभा से उनकी जटाएँ द्योतित हैं घोर कटि-तट व्यालों से समावृत है, उनका  
एक दम श्वेतवर्ण है, दश भुजाएँ है, परम भद्र और वरद तथा अमय  
हाथों से प्रदान करने वाले हैं । इस प्रकार से जिस मे रुद्र की भक्ति की

जाया करतो है वही योगजा मानसी रत्न भक्ति होता है । हे ध्यात देव । यह भक्ति परम भक्ति कही गयी है ॥२४-२८॥

यएवं भक्तिमान् रुद्रे रुद्रभक्तः स उच्यते ।

विधिन्तु शृणु मे व्यासयः स्मृता क्षेत्रवासिनाम् ॥२९॥

स्वयं रुद्रेण विहितो ब्रह्मादीना समागमे ।

कथितो विस्तारात्पूर्वं पूर्वपातत्रयमग्निधौ ॥३०॥

निर्ममा निरहङ्कारा निस्सङ्गानिष्परिग्रहाः ।

बन्धुवग च निस्नेहाः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥३१॥

भूतानाकर्मभिनित्य त्रिविधैरभयप्रदाः ।

साह्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः ॥३२॥

यजन्ते विधिर्धर्मज्ञैर्विप्राः क्षेत्रवासिनः ।

महाकालवनेतेषां मृतानायत्फल शृणु ॥३३॥

यजन्त्येव सुदुष्प्रापं ब्रह्मसामुज्यमक्षयम् ।

सम्प्राप्य न पुनर्जन्म लभन्ते मोक्षमक्षयम् ॥३४॥

पुनरावर्तनं हित्वा विधिं माहेश्वरं स्थिताः ।

पनरावृत्तिरन्येषां प्रपञ्चाश्रमवासिनाम् ॥३५॥

गाहस्थ्यविधिमासाद्य पट्कर्मनिरतास्सदा ।

वेदोक्तविधिना सम्यग्मन्त्रस्तोत्रनियन्त्रिताः ॥३६॥

जो इस प्रकार से रुद्र में भक्तिमान् होता है वह रुद्र का परम भक्त कहा जाया करता है । हे व्यास । उसकी विधि भी आप मुझ से सुनिये जो क्षेत्रवासियों के लिये कही गयी है । ब्रह्मादि देशों के समागम में स्वयं ही रुद्र प्रभु ने किया है । वहाँ पर पूर्व गुरुओं की सन्निधि में पहिले विस्तार से कही गयी है । समता से रहित, अहङ्कार से शून्य, राग से हीन, बिना परिग्रह वाले, अपने बन्धुवर्ग में भी स्नेह से रहित, मिट्टी के टुकड़े और गुबारों दोनों की समान भाव से समझने वाले, अपने अपने क प्रकार के कर्मों के द्वारा प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले, साहस्य योग की विधि के ज्ञाता, धर्म के तरबूतों को जानने वाले और ऐसे जिनके सभी मनोद्वन्द्व हो गये हैं ऐसे विधि प्रचार के यज्ञों के द्वारा क्षेत्रवासी विप्र



यजन किया करते हैं। महाकाल वन में उनके मृत होने पर जो उन्हें फन प्राप्त होता है उसका श्रवण करो। वे लोग परम दुष्प्राप और अक्षय ब्रह्म मायुज्य को ही सीधे गमन किया करते हैं वहाँ सम्प्राप्त होकर अक्षय मोक्ष उनका ही साक्षात् है कि वे पुनर्जन्म नहीं प्राप्त किया करते हैं। गार्हस्थ्य विधि में स्थित होते हुए ये पुनरावर्तन का एक क्षण त्याग कर दिया करते हैं। जो श्रवणदाश्रम के ब्रह्मो लोग हुआ करते हैं ऐसे अन्य जनों का ही पुनरावर्तन हुआ करता है। गार्हस्थ्य धाद्यम की विधि को प्राप्त करके मदा जो पट्ट कर्मों में निरत रहा करते हैं वे पुरुष वेदोक्त विधि के द्वारा भली भाँति मन्त्रों और स्तोत्रों में निर्गमित रहते हैं ॥२६-३६॥

### ६०—विद्याधरतीर्थं माहात्म्यवर्णन

कथं तीर्थमिदं क्षेत्रं जातमत्र महामुने ।

प्रसादाद् ब्रूहि मे ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥१

विद्याधरपतिः कश्चिदासीद्द्रूपधर. पुरा ।

अथिता पारिजातस्य मान्ना तेन मनोरमा ॥२

गृहोत्वा स च ता माला गतोवातव चेशमनि ।

नृत्यन्तीवासवस्याग्रे दृष्टा तेन च मेनका ॥३

दत्ता तस्पर्दातेन सा माला नृत्य समदि ।

सा मेनका तु तत्स्वाने मालया मोहिता सती ॥४

कोपाविष्टेन शक्रेण शप्तो विद्याधरस्तदा ।

पृथिव्या गच्छ पापिष्ठ ! नृत्यमङ्गस्त्यया कृतः ॥५

विद्याधरपद त्यक्त्वा मम शापाच्च साम्प्रतम् ।

एवमुक्तस्तु शक्रेण वाक्यं विद्याधरोऽब्रवीत् ॥६

महर्षिवरिष्ठ श्री व्यासजी ने कहा—हे महामुने ! यहाँ पर यह क्षेत्र तीर्थ कौंसे हो गया है ? हे ब्रह्मन् ! मायकी महती दया होगी आप इसको मुझे बतला दीजिए। मैं इस समय में यहाँ श्रवण करने की उत्कट भूमि-लापा रखना हूँ। श्री सनकुमारजी ने कहा—पहिले परम पुरातन काल में

कोई रूपकारी विचारर पति था । उसने पारिजात के पुष्पो की एक परम सुन्दर माला का प्रपन किया था । वह उस माला का ग्रहण करके इन्द्र देव के गृह में गया था । उसने वहाँ पर इन्द्र देव के समझ में मेनका नाम वाली अम्बरा को नृत्य करती हुई देखा था । उन नृत्य सभा में वह परम मनारम माला उसने उस अम्बरा को देदी थी । वह मेनका अम्बरा उठी स्थान में उस माला से परम मोहित हो गई थी । उस समय में इन्द्र को बहुत अधिक क्रोध हो गया और उसने क्रोध विष्ट होकर उस विद्याधर को शाप दे दिया था—हे पापिष्ट ! तुम पृथ्वी पर बने प्राणो नयो कि तुमने आज हमारी इस सभा में अतीव सुन्दर नृत्य का मङ्गल कर दिया है । तुम अभी इस विद्याधर के पद का त्याग करके मेरे शाप से भूमि वासी बन जाओ । इस तरह से इन्द्र के वाक्य को श्रवण करके वह विद्याधर बोला—॥१-६॥

अजानतामयानत्य अपराधः कृतोऽपुना ।

अनुग्रहमनो देव कुरु मे त्वं प्रसादतः ॥७

एवमुक्तस्तस्यक्रोवं विद्याधरमुवाच ह ।

गच्छावन्ती त्वमद्यैव यत्रास्तेगाङ्गटोगुहा ॥८

तस्याश्चोत्तरभागे तु विद्यते तीर्थमुत्तमम् ।

एतत्त्रिपुलोकेषु नाम्ना विद्याधरं शुभम् ॥९

भक्त्या तत्र कृते स्नाने विद्याधरपतिर्भवेत् ।

अतस्त्वमपि तत्रैव कुरु स्नानं प्रयत्नतः ॥१०

एवमुक्तः स शक्रेण आगतोऽश्वन्ति मण्डले ।

स्नानं कृत्वा तत्रैव तीर्थे तस्मिन्मनोरमे ॥११

प्रभावात्तस्य तीर्थस्य स विद्याधरपोऽभवत् ।

एव व्यास ! ममाख्यात तीर्थे विद्याधरं शुभम् ॥१२

तत्र पुष्पाणि चो दद्याच्चन्दनञ्च विलेपनम् ।

लभेत्समस्तभोगान्म इहलोके परत्र च ॥१३

हे देव ! प्रज्ञान के बंध में घाबर पाए इस समय में मैंने यह अरथाप

कर दिया है । अत्राल मेरे ऊपर प्रसन्नता करके प्राण अनुष्टुप् करिये ॥१॥

अब इस तरह से प्रार्थना की गई तो इन्द्र देव उस विद्याधर से बोले—  
 बाप भाग ही अक्वन्ती पुरी में चले जाओ जहाँ पर गाङ्गटो गुहा विद्यमान  
 है । उसके उत्तर दिशा के भाग में यह उत्तम तीर्थ विद्यमान है । यह तीर्थ  
 त्रितोकी में नाम से परम शुभ विद्याधर प्रसिद्ध है । भक्ति भाव से वहाँ  
 पर स्नान करने से मनुष्य विद्याधरों का स्वामी बन जाता करता है ।  
 इस लिये तुम भी वहाँ पर प्रयत्न पूर्वक स्नान करना । इस रीति से इन्द्र  
 देव के द्वारा कहे गये उस विद्याधर ने अक्वन्ती मण्डल में समागमन किया  
 था । उसने उन परम तीर्थ में स्नान भी किया था । उस तीर्थ के महान्  
 प्रसाद से वह विद्याधरों का पति हो गया था । हे व्यास ! इस प्रकार से  
 यह परम शुभ विद्याधर तीर्थ समाख्यत हुआ था । वहाँ पर जो भी कोई  
 पुण्यो का समर्पण किया करता है तथा चन्दन और बिल्वपत्र अर्पित करता  
 है वह इस लोक में समस्त प्रकार के सुखों का उपभोग प्राप्त किया करता  
 है और परलोक में सद्गति पाता है ॥८-१३॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि मर्कटेश्वरमुत्तमम् ।

तत्र तीर्थं च विख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ॥१४ .

तस्मिन्स्तीर्थे नराः स्नात्वा गाशतस्य फल लभेत् ।

विस्फोटना प्रदान्त्यथ दाक्षानाञ्चैव कारणे ॥१५

मागण मिथितान्कृत्वा मसूरास्तप कुट्टयेत् ।

शीतलायाः प्रभावेण वालाः सन्तु निरामयाः ॥१६

ये पश्यन्ति नरा भवत्या शीतलान्दुरितापहाम् ।

न तेपा दुष्कृत किञ्चिन्न दारिद्र्य द्विजोत्तम ॥१७

न च रोगभय तेषा ग्रहपीडा तर्था व च ॥१८

महायात्रे शीतलकुमारजी ने कहा—अब मैं उत्तम मर्कटेश्वर के विषय  
 में प्रार्थना करूँगा । वहाँ पर विख्यात तीर्थ है जो सभी कामनाओं के प्रदान  
 करने वाला है । उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके एक ही गौरी के दान  
 करने का पुण्य—फल प्राप्त किया करता है । विस्फोटों ही प्रशांति के  
 लिये और वालों के कारण से सर्दों के साथ मिथित करके वहाँ पर मसूरों  
 को कुटना चाहिए । इसका यह प्रभाव होता है कि शान्त होकर देवी के

प्रभाव से नीरोग एवं स्वस्थ हो जाया करते हैं । हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य भक्तिभाव से दुस्ति के उपहरण करने वाली शीतला देवी का दर्शन किया करते हैं उनको कुछ भी दुष्कृत नहीं हुआ करता है और कभी भी उन्हें दरिद्रता नहीं सताया करता है । उनको कभी किसी भी रोग का भी भय नहीं होता है तथा यही की पीडा नहीं हुआ करती है । सभी षट् पान्त हो जाया करते हैं ॥१४-१८॥

### ६१—दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णन

दशाश्वमेधिकेस्नात्वा दृष्ट्वा देव महेश्वरम् ।  
 दशानामश्वमेधाना फल प्राप्नोति मानव ॥१  
 मनुनामानवेन्द्रेण राज्ञा चैव ययातिना ।  
 रघुणोशनसाचैव लोमशेन महर्षिणा ॥२  
 अत्रिणा भृगुणा चैव दत्तात्रेयेण धीमता ।  
 पुरुवमापृष्येन नहुषेण नलेन च ॥३  
 अत्र स्नाने संप्राप्त दशाश्वमेधिकं फलम् ।  
 संप्राप्ते द्वापरस्वान्ते राज्ञा यात्कलिना तथा ॥४  
 दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्त द्विजोत्तम ॥  
 शृण्वणवर्णं तथा लिङ्गं पूजित भक्तितः सदा ॥५  
 दृष्ट्वास्पृष्ट्वा च तं देव प्रागुक्तं लभते फलम् ।  
 चैत्रेमासिसिताष्टम्या देव संपूज्य भक्तितः ॥६  
 प्रदद्य दद्याच्च विप्राय गुरुप चगुणान्वितम् ।  
 यावन्ति तस्य रोमाणि गणयन्ते सट्स्थया द्विज ॥७  
 तावद्धर्मं सहस्राणि निषलोके महीयते ।  
 पिय लोकार्परिभ्रष्टः सार्वभौमो भवेद् भुवि ॥८

श्री तनरुमार जी ने कहा—अधिक भाग में दशाश्वमेध घाट पर गंगा आनीरपी में स्नान करके महेश्वर देव के धर्यानु वाराणसी में भगवद् श्री विश्वनाथ जी के दर्शन करके मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञ के

करने का फल प्राप्त कर लिया करता है । इस प्रकार के फल प्राप्त करने के अनेक उदाहरण दिये जाते हैं—मानवों में परम शिरोमणि मनु राजा ने—ययाति ने—रघु—उशना और महर्षि लोमश ने—भृषि ने—भृगु ने—धीमान् दत्तात्रेय ने—परम पवित्र पुरूरवा ने—नहुष ने—तथा राजा मल ने यहाँ दसान्वमेघ पर स्नान करने के द्वारा दान अश्व मेघ यज्ञों के करने का फल प्राप्त किया था । हे द्विजोत्तम ! द्वापर के मन्त के प्राप्त होने पर राजा कलि ने दस अश्वमेघ यज्ञों का पुण्य-फल प्राप्त किया था । तथा कृष्ण वर्ण वाले लिंग को सदा भक्ति भाव से पूजित किया था । उस देव का दर्शन और स्पर्शन करके पहिले बताया हुआ फल प्राप्त करता है । शत्रु मांस की सुबल पशु की अष्टमी तिथि में भक्तिभाव से देव की भली भाँति पूजा करके विप्र के लिए सुन्दर रूप वाले गुण गण से युक्त अश्व का दान करे । हे द्विज ! उसके जितने भी सख्या में रोम होते हैं उतने ही सहस्र वर्ष पर्यन्त वह शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है । शिव लोक से परिभ्रष्ट होकर इस भू मण्डल में सावं भोम (सन्नाट) हुआ करता है ॥१-८॥

### ६२—महाकालयात्रामाहात्म्यवर्णन

अथ यात्रां प्रवक्ष्यामि महाकालस्य यत्नतः ।  
 शिवश्रेयस्करी पुण्यां पुण्यलोकप्रदायिनीम् ॥१  
 स्नात्वा सरसि रुद्रस्य दृष्ट्वा कोटीम्बरं शिवम् ।  
 नमस्कृत्य ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् ॥२  
 गन्धं पुष्पैर्नमस्कारैः सम्पूज्य त्रिदशेश्वरन् ।  
 प्रणिपत्य ततो गच्छेद्द्वैवं कपालमोचनम् ॥३  
 तत्र वै देवदेवेशः कपालं न्यस्तवान्धितौ ।  
 कपाले तत्क्षणान्धस्ते तत्राभूत्लिङ्गमुत्तमम् ॥४  
 कपालमोचनं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ।  
 तत्र वै स्तपनं कुर्याद्विज्यं पलशतन्तु वै ॥५

तदर्धाधिनंपादेन वित्तशाठ्य विवर्जितः ।

काले पूर्णं स विप्रेन्द्र ! शिवलोके महीयते ॥६

ममस्कृत्य ततो गच्छेत्कपिलेश्वरमुत्तमम् ।

दर्शनात्तस्यदेवस्य मुच्यते ब्रह्मघातक ॥७

महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर यत्न पूर्वक महाकाल की यात्रा की कईगा जो शिव और ध्ये के करने वाली—पुण्यपूर्ण और पुण्य लोक के प्रदान करने वाली है ॥१॥ भगवान् रुद्र के सरोवर में स्नान करके तथा कोटीश्वर शिव का दर्शन करके और नमस्कार करके इसके पश्चात् सनातन महावाल को गमन करना चाहिए ॥२॥ गन्ध और पुष्पों से तथा नमस्कारों से त्रिदशेश्वर का समर्थन करके तत्पश्चात् प्रणिपात करके फिर कपाल मोक्षन देव की ओर यात्रा करे ॥३॥ यहाँ पर देव देश ने भूमि पर कपाल को न्यस्त किया था । कपाल के विग्नस्त करने पर उसी क्षण में वहाँ पर उत्तम लिंग हो गया था ॥४॥ यह कपाल मोक्षन नाम वाला तीर्थ सभी पापों का नाश करने वाला है । यहाँ पर स्नान करावे और गो पल घृत ले करावे ॥५॥ उससे प्राया पाद ले करावे हिन्दु वित्त की शक्तता से रहित होकर करावे । हे विप्रेन्द्र ! काल के पूर्ण होने पर यह शिवलोक में महिमान्वित होता है ॥६॥ फिर उत्तम कपिलेश्वर की प्रणाम करके वहाँ से गमन करे । उनके दर्शन से ब्रह्म पापक भी पापों से मुक्त हो जाता करता है ॥७॥

हनुमत्केश्वर देव ततो गच्छेत्समाहितः ।

ऐश्वर्यमनुलं ध्यास ! दर्शनादस्य जायते ॥८

ततो गच्छेन्महादेव पिप्पलादं सनातनम् ।

यस्य दर्शनात्प्रायेण मुक्तिः स्याद् द्विजसत्तम ! ॥९

स्यज्जेश्वरं ततो गच्छेत्कृत्तिथ्युदा समन्वितः ।

दर्शनादस्यदेवस्य दुःखयत्नञ्च विनश्यति ॥१०

ततो गच्छेन्महादेवमीशान विश्वनोमुत्तमम् ।

यस्य दर्शनं प्रायेण विश्वरूपेण पतिर्भवेत् ॥११

सोमेश्वरन्ततो गच्छेज्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।

कुष्ठरोगादि दोषेभ्यो दशनादस्यमुच्यते ॥१२

वंश्वानरेश्वरं व्यास ततो गच्छेत्समाहितः ।

तस्य वृद्धिस्सदा लोके जायते तस्य दशनात् ॥१३

बीजापूरकहस्तन्तु लकुलीयान्ततो व्रजेत् ।

रुद्रत्वं दशनात्तस्य जायते नात्रसशयः ॥१४

वहाँ से परम सावधान होकर हनुमत्केश्वर देव को जाना चाहिए । हे व्यास ! इनके दर्शन से अतुल ऐश्वर्य हो जाता है ॥१२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! फिर सनातन पिप्पलाद महादेव को जावे जिसके दर्शन मात्र से ही मुक्ति हो जाया करती है ॥१३॥ भक्ति और श्रद्धा के भाव से युक्त होकर फिर स्वप्नेश्वर को गमन करे । उस देव के दर्शन से दुःस्वप्न विनष्ट हो जाता है ॥१०॥ फिर विश्वतोमुख ईशान महादेव को गमन करे जिसके केवल दर्शन ही से पूर्ण विश्व का स्वामी हो जाता है ॥११॥ क्रोध को जीतकर और इन्द्रियो को बश में करके सोमेश्वर को गमन करना चाहिए । इनके दर्शन से कुष्ठ रोगादि के दोषो से मुक्त हो जाता है ॥१२॥ हे व्यास ! वहाँ से फिर समाहित होकर यश्वानरेश्वर को जावे । उनके दर्शन से लोक मे उसकी वृद्धि सदा होती है ॥१३॥ वहाँ से बीजा पूरक हस्त और लंकुलीय को जावे । उनके दर्शन से रुद्र का स्वरूप प्राप्त कर लेता है— हममें बिल्कुल सशय नहीं है ॥१४॥

ततो गच्छेन्महादेव गणपेश्वरमुत्तमम् ।

यस्य दर्शनमात्रेण जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥१५

अभ्यर्चितस्सदा देवैः पूजितस्सिद्धिकारणात् ।

तेनाभ्यर्चितपूरोष्यं विख्यातो विघ्ननायकः ॥१६

वयोवृद्धं ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् ।

न रोगो न जराव्याधिर्दशानान्नात्र सशयः ॥१७

विघ्ननाश ततो गच्छेत्प्राणीषां देवमुत्तमम् ।

स्नानं शतघटैस्तस्य कुर्याद्भूषत्या समाहितः ॥१८

तस्य चैव कृते स्नाने लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः ।  
 स्वर्गश्चापि सदा व्यात ! दर्शनादस्य जायते ॥१९॥  
 मार्गगतमनुल्लङ्घ्य दण्डपाणिं ततो व्रजेत् ।  
 यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकोत् दृश्यते ॥२०॥  
 पुष्पदन्तं ततो गच्छेद्भक्तिश्रद्धा समन्वितः ।  
 यस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकं ॥२१॥

इसके पदवाच उत्तम गणपेश्वर महादेव को और गमन करे जिसके केवल दर्शन से ही समस्त सिद्धियाँ हो जाया करती हैं ॥१९॥ सदा देवों के द्वारा प्रमथ्यता की गई है और सिद्धि प्राप्त करने के कारण से उनकी प्रार्थना भी की गई है । इसी से यह विष्णो के स्वामी प्रमथ्यता को पूरी करने वाले विख्यात हो गये हैं ॥१६॥ वहाँ से सनातन महाकाल यमोन्मत्त भी गमन करे । इनके दर्शन से रोग नहीं होता है और बुढ़ापे की व्याधि भी नहीं होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥१७॥ इसके अनन्तर विष्णु नाग उत्तम देव प्राणीय की ओर गमन करे । भक्ति से समाहित होकर सौ घण्टे से उसे स्नान करावे ॥१८॥ उसके स्नान करने पर सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है । हे व्यास ! इनके दर्शन से सदा स्वर्ग का वास भी हो जाया करता है ॥१९॥ मार्ग में रहने वाले का उत्त्वघन न करके वहाँ से दण्डपाणि को जावे जिसके केवल दर्शन से ही यमलोक नहीं दिससाई देता है ॥२०॥ फिर वहाँ से भक्ति श्रद्धा से युक्त होकर पुष्प दन्त को जावे जिसके दर्शन मात्र से ही समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥२१॥

गुह्यञ्चैव महाकालं ततो गच्छेत्समाहितः ।  
 यस्य दर्शनमात्रेण गुह्यपापैः प्रमुच्यते ॥२२॥  
 ततो गच्छेत्समाधिस्थो दुवसिञ्चरमुक्तमम् ।  
 यस्य दर्शनमात्रेण कृतघ्नस्यो नरो भवेत् ॥२३॥  
 श्वागावरोपन कृत्वा दुर्वासस्य समीपतः ।  
 गीरो गत्वा महादुर्गां त्यजेच्छ्या समनन्तर ॥२४॥



तत्रोच्छ्वासो विमोक्तव्यस्तामर्चत्सु समाहितः ।

कालेश्वरं ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥२५

यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकं न पश्यति ।

वधिरेश ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥२६

यस्य दर्शनमात्रेण वधिरत्वं न जायते ।

यात्रेश्वरन्ततो गच्छेद्यात्रा पूर्णफलप्रदम् ॥२७

कीर्तयेदात्मनो नाम स्थानं गोत्रञ्च तत्र वै ।

न कीर्तयेद्यदानाम सा यात्रा विफली भवेत् ॥२८

इसके पश्चात् सावधान होकर गुह्य महा काल को घोर जावे जिसके केवल दर्शन से ही गुह्य पातको से प्रमुक्त हो जाता है ॥२२॥ फिर समाधि में स्थित होकर उत्तम दुषसिस्वर को भजन करे जिसके दर्शन से मनुष्य कृन्कृत्य (सफल) हो जाया करता है ॥२३॥ दुर्गाम के समीप में श्वास का अवरोध करे और महा दुर्गा गौरी के समीप जाकर वाद में श्वास का श्वास करे ॥२४॥ वहाँ पर उच्छ्वास का विमोचन करना चाहिए और उस देवी का सावधान होकर भजन करे । इसके उपरान्त वहाँ से देवी के देव महेश्वर कालेश्वर को गमन करे ॥२५॥ जिसके केवल दर्शन से ही यमलोक को नहीं देखता है । फिर देवदेव महेश्वर वधिरेश को जावे ॥२६॥ जिसके दर्शन मात्र से ही बगिरत्न नहीं होता है । फिर यात्रा के पूर्ण फल को प्रदान करने वाले यात्रेश्वर को जावे ॥२७॥ वहाँ पर अपने नाम-स्थान और गोत्र का कीर्तन करे । यदि नाम प्रादि का कीर्तन नहीं करता है तो वह यात्रा विफल हो जाया करती है ॥२८॥

देवस्याग्रं ततो व्याम ! उपविश्य समाहितः ।

भक्तियुक्तः स्तुतिं ब्रूयान्नमस्कृत्वा पुनः पुनः ॥२९

मया समर्पिता यात्रा त्वत्प्रसादान्महेश्वर !

समारतागराद् घोरान्मामुद्धर जगत्वते ॥३०

अलेन विधिना यस्तु महाकालं प्रदक्षयेत् ।

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तदीपा वमुन्धरा ॥३१

गोलक्षं द्विजवर्याय दस्वाल्लभते य फलम् ।  
 तत्फलदेवदेवस्य सकृत्कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥३२  
 भक्त्या परमयायुक्ता महाकालं प्रदक्षयेत् ।  
 पदे पदे यशफलमिति मे शङ्करोऽब्रवीत् ॥३३  
 पष्टिकोटिनहस्ताणि पष्टिकोटिशतानि च ।  
 पूजितानि भवन्त्यत्र यात्रेश्वर समर्चनात् ॥३४  
 य एव कुरुते यात्रा शिवध्यानपरायणः ।  
 स वस्यन्दक्षिणा दद्यात्तस्य पुष्पफल शृणु ॥३५

हे व्याम । फिर देवता के सामने समाहित हांकर बैठ जावे प्रीर  
 भक्ति से युक्त होकर बारम्बार नमस्कार करके स्तुति बोले ॥३२॥ हे  
 महेश्वर । मैंने अपनी यात्रा समर्पित करदी है । आपके प्रसाद से हे  
 जगत्पते । इस घोर संसार मागर से मेरा उद्धार करो ॥३०॥ जो इस  
 विधि से महाकाल की प्रदक्षिणा करता है उसने सात द्वीप से युक्त वसुन्धरा  
 की परिक्रमा करली है ॥३१॥ द्विज को एक लाख गौशो का दान करने  
 से जो फल प्राप्त होता है वही देवों के देव की एक बार प्रदक्षिणा करने  
 से प्राप्त होता है ॥३२॥ परम भक्ति से युक्त होकर महाकाल की प्रदक्षिणा  
 करे । भगवान् शङ्कर ने कहा है कि मेरी परिक्रमा से पद-पद में सप्त  
 का फल हांता है ॥३३॥ यहाँ पद यात्रेश्वर के समर्पण से साठ हजार  
 करोड़ धोर गाठ सी करोड़ पूजित होते हैं ॥३४॥ जो शिव के ध्याम में  
 परायण होकर इस प्रकार से यात्रा करता है और वस्य के सहित दक्षिणा  
 देता है उसका पुण्य फल श्रवण करो ॥३५॥

मप्तजन्मकृतात्पापान्मुञ्चतेनात्र मग्नः ।

एव यात्रा समाप्याऽथ गत्वा च स्वगृहं नरः ॥३६

यात्रार्थेन सह्यान्वं पष्ट्विंशति द्विजोत्तमान् ।

भोजयेच्छिवभवनं च शिवध्यानपरायणान् ॥३७

गवस्त्रां दक्षिणां दत्त्वा प्राप्यामुक्षां विमर्जेयेत् ।

यात्राक्रमेण चैकं तीर्थान्तरमनुप्रजेत् ॥३८

धर्मोपदेशकेपश्चात् सर्वोपस्कारसंपुताम् ।

धेनुस्वयस्विनीं वद्याद्वित्तशाठ्यं चित्रांगितः ॥३९॥

भुञ्जीत यं स्वयं उद्याम । सर्वभृत्यसमन्वितः ।

दीनानाथ दरिद्रान्ध विकलाश्वापि भोजयेत् ॥४०॥

यवन्नफलमृद्दिष्टं तद्वदाम शृणुष्व मे ।

कुलानां दातमुद्घृत्य मातापित्रोस्समाहितः ॥४१॥

कल्पकोटिमहेशाणि शिवलोके स मोदते ॥४२॥

आत जन्मों में किए हुए पाप से मनुष्य छुटकारा पा जाता है—  
इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इस प्रकार में यात्रा को समाप्त करके इसके  
अनन्तर मनुष्य अपने घर जावे ॥३६॥ यात्रा के देवों की संस्था के  
अनुसार छब्बीस परम भ्रष्ट-शिव के भक्त और शिव के ध्यान में परायण  
दिवों को भोजन करावे ॥३७॥ बहनों के सहाय दक्षिण देकर उनसे  
यात्रा प्राप्त करके उनको विद्या करना चाहिये । यात्रा के क्रम से एक  
एक अन्न तीर्थ में जावे ॥३८॥ उसके पीछे किसी धर्म के उपदेश करने  
वासे दिव को सभी उपकरणों से युक्त दूब देने वाली धेनु को दत्त (धन)  
को घण्टा से रहित होकर दान करना चाहिए ॥३९॥ हे व्यास ! फिर  
सभी भृत्यों से युक्त स्वयं भोजन करे और जो दीन—अन्धे—अनाथ—  
दरिद्री और दुर्निद्रियों से विकल मनुष्य हो उनकी भी भोजन करना चाहिए  
॥४०॥ जो जो हम में दुष्म-कर उद्दिष्ट है उसे हम बतलाते हैं । उसको  
मुफ्तें प्रायश्चित्त करो । वह यात्री अपने ही कुलों का उद्धार करके  
माता पिता का भी उद्धार समाहित होकर कर देना है और महर्षीं करोड़  
कल्पों तक शिवलोक में निवास करता हुआ मोक्ष प्राप्त किया करता है  
॥४१-४२॥

६३—वाल्मीकेश्वरमहिमावर्णन

वाल्मीकेरीश्वर व्यास ! भवत्या देवं प्रपूजयेत् ।

मौनी ध्यानपरी भूत्वा मुकवित्त्वमवाप्नुयात् ॥१॥

कथमत्र समुत्पन्नो को वाल्मीकेश्वरः प्रभुः ।  
 यस्य दर्शनमात्रेण कवित्वमुपजायते ॥२  
 आसीद्व्यास पुरा विप्रः सुमतिर्भृंगुवशजः ।  
 रूपयौवन सम्पन्ना तस्य भार्याऽप्य कौशिकी ॥३  
 तस्य पुत्रः समुत्पन्नस्त्वग्निशर्मतिनामतः ।  
 सपित्राप्रोच्यमानोऽपि वदाम्यास न मन्यते ॥४  
 ततो बहुतिथे काले अनावृष्टिरजायत ।  
 तदापि बहवश्चाऽऽसी दश्रिणामाश्रितोदिशम् ॥५  
 ततोऽपि सुमतिविप्रः सभार्यं समुत्तथा ।  
 विदिश कानन प्राप्त कृत्वाचाश्रममाश्रितम् ॥६  
 आभीरदंस्त्युभिः साद्धं सङ्गोऽभूदग्निशर्मणः ।  
 आगच्छन्नि यथा तेन यस्त हन्ति स पापकृत् ॥७

महर्षि मन्तरुमार बोले—हे व्यास ! वाल्मीकि के ईश्वर देव को  
 भली भाँति पूजा करनी चाहिए । मौनी और ध्यान में परायण होकर  
 पूजा करने से वह मनुष्य सुकवि होने का पद प्राप्त कर लिया करता है  
 ॥१॥ व्यासजी ने कहा—यह वाल्मीकेश्वर प्रभु कीर्ति हैं घोर बंसे यहाँ  
 पर समुत्पन्न हुए हैं जिसके दर्शनमात्र से ही कवित्व हो आया करता है  
 ॥२॥ श्री मन्तरुमार जी ने कहा—हे व्यास ! प्राचीन समय में एक भृंगु  
 के घर में जन्म लेने वाला सुमति विप्र था । रूप तावन्व से युक्त उसकी  
 कौशिकी भार्या थी ॥३॥ उनका एक अग्नि शर्मा नामक पुत्र उत्पन्न  
 हुआ था । वह पिता के द्वारा बहुर गवा मी बेशो के अम्प्रास को नहीं  
 मानता था ॥४॥ उसके अन्तर्गत बहुत सम्ये समय तक वहाँ अनावृष्टि हो  
 गई थी । उस समय में भी बहुत से लोग और यह दक्षिण दिशा का  
 आश्रय माता हो गया था ॥५॥ फिर यह सुमति विप्र पुन और भार्या के  
 सहित विदिश पन म प्राप्त होगया था और आश्रम बनाकर वहाँ पर ही  
 समाश्रित होगया था ॥६॥ उस अग्नि शर्मा का अद्भूत और दस्तुओं के  
 साथ सङ्ग होगया था । उस मार्ग से जो भी आता था उसको वह पाप-  
 बारी मार दिया करता था ॥७॥

स्मृतिर्नं श्रामतावेदा गतं गोत्रं गताध्रुतिः ।  
 कस्मिन्दिचदय काले तु तीर्थं यात्रा प्रसङ्गतः ॥८  
 सप्तपथैः पथा तेन सुव्रता समुपस्थिताः ।  
 अग्निशर्माश्रितान् दृष्ट्वा हन्तुकामोऽब्रवीदिदम् ॥९  
 ब्रह्माणीभार्ग्विमुञ्चस्व छत्रकोपानहोतथा ।  
 हन्तव्याहिमयायूयं गन्तारोपमसादने ॥१०  
 तस्पतद्वचनं श्रुत्वा अविर्वचनमश्रयीत् ।  
 अस्मत्पीडनजं पापं कथं सैहृदिदवर्तते ॥११  
 वयं तपस्विनी भूत्वा तीर्थं यात्राकृतोद्यमाः ।  
 ममास्ति माताऽथ पिता सुतो भार्गव गरीयसी ॥१२  
 पोषयामि सदातांस्तु एतन्मे हृदि संस्थितम् ।  
 पित्रादीननुपृच्छत्यं स्वकर्मोपाजितं प्रति ॥१३  
 यद्युपमदर्थं क्रियते पापतत्कस्यकथ्यताम् ।  
 चेन्नतेकथयान्तिस्ममामृषाप्राणिभोवघोः ॥१४

इसको सम्पूर्ण स्मृति नष्ट होगई थी—वेदों को भी खो चुका था—  
 गोत्र नष्ट हो गया और ध्रुति भी चली गयी थी । किसी समय में  
 वहाँ तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से उसी मार्ग में मुचन सप्तपि शृन्द समुपस्थित  
 होगये थे अग्निशर्मा ने उनको देखकर उन्हें मार डालने को इच्छा बाला  
 होकर उनसे यह बोला—१८-९। इन वन्धों को तथा छत्र एवं जूतों को यही  
 पर छोड़ दो । मेरे द्वारा आप लोग मारे जाओगे और यमपुर को आप  
 घब डाने वाले होंगे ॥१०॥ उनके इस वचन को सुनकर अत्रि ऋषि ने  
 यह वचन कहा—हमारी पीडा का उत्पन्न होने वाला पाप तेरे हृदय में  
 कैसे विद्यमान हो गया है ॥११॥ हम लोग तो तपस्वी हैं और तीर्थयात्रा  
 करने के लिये उद्यत हुए हैं । अग्नि शर्मा ने कहा—मेरी माता है—  
 पिता—सुख और बड़ी भार्गव है ॥१२॥ मैं उनका सदा पोषण करता  
 हूँ—यही मेरे हृदय में स्थित है । अत्रि ने कहा—तू अपने पिता आदि  
 से अपने इस कर्म के द्वारा उपाजित किये हुए धन के विषय में पूछ ले  
 ॥१३॥ मेरे द्वारा यह पाप कर्म आप लोगों के पोषण के लिए ही किया

जाता है । वह पातरु किमका है—यह कहो । क्या उन्होंने यह नहीं कहा था कि धर्म प्राणियों का बंध मत करो ॥१४॥

नवादाचिन्मयात्तेतु सपृष्टाईदृशवचः ।

मुष्माकंवचसामेऽथ प्रतिबोधः प्रवर्तते ॥१५॥

गत्वा पृच्छामि तान्मर्वाण् कस्य भावश्च कीदृशः ।

यूपमत्रैव तिष्ठच्च यावदागमनं मम ॥१६॥

इत्युवत्वाताञ्जगामाशुपितरं स्वमुवाचह ।

धर्मस्यप्रतिघातेन प्राणिनापीडनेनच ॥१७॥

सुमहद्दृश्यतेपाप कस्यैतत्कथ्यतामम ।

पिताप्राहाणतन्माता नापुण्यमावयोरिह ॥१८॥

स्वजानासिकुरूपे यत्कृतं भोग्यपुनस्त्वया ।

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा भायविवनमब्रवीत् ॥१९॥

तयाप्युक्तं नमेपाप पापमेतत्तव वसु ।

तद्वाक्यमब्रवीत्पुत्रं बालोऽहमिति सोऽब्रवीत् ॥२०॥

तज्ज्ञात्वाभाषितंतेपा चेष्टितञ्चैवतस्वतः ।

नष्टोऽहमिति मन्दानः शरणमेतमस्विनः ॥२१॥

अग्नि वर्मा ने कहा—मेरे तो इत प्रकार से उनसे कभी नहीं पूछा है । आज आपका बचन से ही मुझे यह प्रतिबोध हो रहा है ॥१५॥ मैं जाकर उन गणों से पूछना हूँ और देखना हूँ कि इस विषय में किसका क्या भाव है । आप लोग यहीं पर ठहरिये जब तक मैं वापिस लौट कर यहीं पर आता हूँ ॥१६॥ यह कह कर वह उनके पास गया और अपने पिता से बोला कि यह धर्म जो मैं खाना हूँ वह धर्म का प्रतिघात करके और प्राणियों को पीडा देकर ही खाता हूँ ॥१७॥ यह एक महान् पाप दिखाने देना है सो यह मुझे बतवाओ कि यह पाप किमको होता है । तब उगरे माता और पिता ने कहा कि हममें हम दोनों का यह कुछ भी पाप नहीं है ॥१८॥ तू ही हमें जानता है क्या करता है । जो तू करता है वह मुझे हो भोगना भी है । उन दोनों के बचन को सुनकर उमरी भार्या ने यह बचन कहा था ॥१९॥ उसने भी यही कहा कि मुझे इसका

कृष्य भी पाप नहीं है। यह तो तुम्हारा ही पाप है। यही वचन पुत्र से कहा तो वह बोला—मैं तो बच्चा हूँ ॥२०॥ उन सबके कथन को जान-कर और उनके चेष्टित को तात्त्विक रूप से समझ कर वह यह मानता हुआ कि मैं तो विनष्ट ही हो गया था तो मेरे रक्षक वे तपस्विगण ही हैं ॥२१॥

शिष्योऽथलकुट कृष्णयेन ध्वजन्तवो हृताः ।

प्रकीर्यं केशास्त्वरितोऽश्रुपीशामप्रतः स्थितः ॥२२

प्रणम्य दण्डपातेन ततो वचनमब्रवीत् ।

न मे माता न च पिता न भार्या न च मे सुतः ॥२३

सर्वे स्तः परित्यक्ताः भवनाशरणागतः ।

सुष्ठु पदेशदानान्मानं रकात्प्राप्तुमर्हसि ॥२४

एव त वादिनं दृष्ट्वा श्रपयोऽत्रिमया ब्रुवन् ।

भवतो वचनादस्य प्रतिबोधस्तस्मागतः ॥२५

भवताऽग्रमनुप्राह्य शिष्यो भवतु ते मुने ! ।

तथेत्युक्त्वा यत्तत्प्राह इमं ध्यानं समाचर ॥२६

अनेन ध्यानयोगेन पापपुञ्जं प्रणाशय ।

संस्थितो वृक्षमूले त्वं परासिद्धिं गतिष्यसि ॥२७

इत्युक्त्वा ते ययुस्तव सकामः सोऽर्पितं तत्र व ।

तद्ध्यानस्योऽभवन्नो गी वत्सराणि त्रयोदश ॥२८

हे कृष्ण ! इसके अनन्तर उस लाठी को फेंक कर जिससे बहाना—वे जन्तुओं को मारा था, कैदों को फँसा कर छोड़ा ही वह श्रपियों के सामने स्थित हो गया था। दण्ड के समान गिर कर प्रणाम किया और इसके पश्चात् वह वचन बोला—मेरी माता नहीं है और न पिता—भार्या और कोई सुत भी है। मैं उन सबके द्वारा परित्यक्त हूँ और प्राणको धारणागति में हूँ। बहुत अच्छा उपदेश का दान करके मेरी नरकी से रक्षा करो ॥२२-२४॥ इस प्रकार से इसके कहते हुए देख कर श्रुति गण धर्म से बोले—आपके ही वचन से इसको प्रतिज्ञाव प्राप्तया है। हे मुने ! आपके शपथ इस पर अनुमति करना ही चाहिए यह आपका शिष्य ही जावे।

ऐसा ही होगा-यह कह कर इसके पनन्तर उमसे कहा कि इस ध्यान का समाचरण करो ॥२५-२६॥ इस ध्यान के योग से पर्वोके समूह का विनाश कर । इस वृक्ष के मूल में स्थित होकर ही तू पर सिद्धि को प्राप्त हो जायगा ॥२७॥ यह कर के सब चले गये थे । रामनाम से युक्त वह भी उसी ध्यान में स्थित त्रयोदश वर्ष में योगी होगया था ॥२८॥

निवृत्तास्तुयथातेन गुनयस्तत्प्रशुश्रुषुः ।  
उदीरितध्वनिन्तेनवल्मीकेविस्मयान्विताः ॥२९  
ततस्तु दृष्ट्वा वल्मीक काष्ठीभूतोदशंशुभिः ।  
त दृष्ट्वात्थापयामामुमंनयो नयस्युतम् ॥३०  
नमश्चक्रेश्यतान्सर्वान् समुनिमुनिपुङ्गवान् ।  
तान्प्राहप्रणतोभूत्वातपसादीप्ततेजसः ॥३१  
प्रसादाद्भुवतामद्य ज्ञानं लब्धंमयाशुभम् ।  
दीनोऽहमुद्धृतस्वैर्मंग्नोऽहपापकर्ममे ॥३२  
श्रुत्वा तस्येति तद्वाक्यमूचुः परमधार्मिकाः ।  
वल्मीकेऽस्मिन् स्थितः पुत्र ! गतस्त्वमेकचित्ततः ॥३३  
याल्मीकिरिति ते नाम भुवि ख्यातं भविष्यति ।  
इत्युक्त्वा मुनयोजग्मुः स्वां दिशा तपसान्विताः ॥३४  
गतेषुमुनिमुख्येषु याल्मीकिस्तपताम्वरः ।  
पुत्रस्यत्यागमयागम्य समाराध्यमहेश्वरम् ॥३५  
तस्मात्कवित्वमामाद्य चक्रे काव्यं मनोरमम् ।  
रामायणञ्च यत्प्राहुः पद्यासु प्रथमं स्थितम् ॥३६  
सतः प्रभृति देवेशो याल्मीकेश्वरसञ्ज्ञकः ।  
ख्यातोऽनन्त्यां ततो ध्यास ! कवित्वदायको नृणाम् ॥३७

द्विग प्रहार में उमके द्वारा निवृत्त हुए थे उन मुनियों ने उग मुद्र-  
वण किया था । उमने वल्मीक में स्थित नहीं थी । मुनिगण विस्मय से  
युक्त हो गये थे । इसके पनन्तर ऊह पशुपती से बाह के गरज हुआ  
वल्मीक को देखा था ॥२९॥ उगको देण कर जो तब से पूर्ण पतुन था



मुनिगण ने उसको उठाया था ॥३०॥ उसने उन सब मुनियेशो को नम-  
स्कार किया था और पद्म प्रण रत होकर तप से दोस्त तेज होने वाले  
उन से बोला—॥३१॥ मापके प्रसाद से मैंने आज्ञा शुभ ज्ञान प्राप्त किया  
है । मैं बड़ा दौन हूँ, मैं पापों के बंध में मग्न(कैसा) हुआ था आप सब  
ने मेरा उद्धार कर दिया है ॥३२॥ उसके इस वचन को सुनकर परम  
धर्म के ज्ञाता उन ऋषियों ने कहा—हे पुत्र ! इस बल्मीक में एक बिल  
होकर घाप स्थित रहे थे । इसलिए भूमिफल में तेरा नाम 'बाल्मीकि'  
यह प्रसिद्ध होगा । यह कह कर मुनिगण तत्रार्था से युक्त हुए अपनी  
ज्योतिष दिशा की ओर चले गये थे । ३३-३४॥ उन प्रमुख मुनियों के चले  
जाने पर तपस्वियों में थोड़ा बाल्मीकि ने कुन स्वामी में समणान होकर  
महेश्वर की उपासना की थी । उस से कवित्व प्राप्त करके उनने एक  
परम सुन्दर काव्य की रचना की थी जिसको रामायण कहते हैं और जो  
कथाओं में प्रथम स्थित है ॥३५-३६॥ तभी से लेकर बाल्मीकेश्वर नाम  
के देवेश भवन्ती पुरी में विद्यमान होगये थे । हे व्यास ! यह मनुष्यों को  
कवित्व प्रदान करने वाले हैं ॥३७॥

### ६४— गणेशमाहात्म्यवर्णन

लङ् दुर्कैश्चततोदेवीविघ्ननायस्समचित् ।  
तदाप्रभृतिविख्यातो विघ्नेशो लङ् दुर्कप्रियः ॥१॥  
यस्मिन् चैथलेभक्त्या तस्यविघ्न नभायने ।  
तस्मै ददाति मन्तुष्टस्मर्वकामान् विनायकः ॥२॥  
नत्ताहारश्चतुर्ष्यां च स्नात्वा शिप्राविशेषतः ।  
रक्ताम्बरधरो मूत्वा रक्तपुष्पैर्विनायकम् ॥३॥  
रक्तचन्दनसौयेन मन्त्रस्तनपनपूर्वकम् ।  
चन्दनेनापिरक्तेन तविलेप्य प्रपूजयेत् ॥४॥  
धूपदद्यात्तथा दिव्य सुगन्धलङ् दुर्कप्रियम् ।  
नैवेद्ये लङ् दुर्काद्यां भाज्यस्रण्डपरिप्लुता ॥५॥

नतस्यजायतेध्यास भयंविघ्नं कदाचन ।

लभतेचतयाभीष्टं मृतश्शिवपुरं ब्रजेव ॥६॥

भवतीर्णं. ५ नलोकं जायते वसुधाधिप. ।

मतिमान् पुत्रवाञ्छूरो नात्रकार्याविचारणा ॥७॥

महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा—इसके अनन्तर लड्डुक देवों के द्वारा विघ्नो के नाश की अर्चना की गयी थी तभी से लेकर विघ्नेश लड्डुक प्रिय विख्यात हो गये थे ॥१॥ जो भक्तिभाव से इसकी पूजा करता है उसको विघ्न कभी नहीं हुआ करता है । उस अर्चन को परम सन्तुष्ट होकर विनायक सभी कामो को दे दिया करते हैं ॥२॥ चतुर्थी तिथि में रात्रि को एक बार ब्राह्मण करे विशेष रूप से शिवा में स्नान करे । स्वयं रत्न वस्त्र धारी होकर रत्न ही पुष्पो से घोर लाल चन्दन जल से मन्त्रो के द्वारा स्नान कराये फिर रत्न चन्दन से गणेश के घटीर पर विलेपन करे और विनायक की पूजा करे १,३-४॥ इसके उपरान्त लड्डुक प्रिय को परम सुगन्ध-सम्पन्न धूप का आभ्यास करना चाहिए । नैवेद्य में घृत घोर साँड से खूब परिष्कृत लड्डू देने चाहिए ॥१॥ हे ध्यास ! उम अर्चना करने वाले मनुष्य को भय और विघ्न कभी भी नहीं होते हैं और वह अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति किया करता है मृत्यु होने पर वह सीमा निवृत्त गमन करता है ॥६॥ फिर लोक में जन्म लेकर राजा होता है, बुद्धिमान्, पुत्रवान् और गूर होता है, इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥७॥

### ६५—सोमवतीतीर्थमाहात्म्यवर्णन

तीर्थंमोमयतीनाम लिङ्गसोमेश्वरं तथा ।

अभूदेतत्कृष्णनाम श्रोत्रुमिच्छामितस्त्वतः ॥१॥

शृणुध्यासयथोत्पन्नं सोमतीर्थं सुशोभनम् ।

सोमेश्वरं तयालिंगमेतत्सख्ययामिते ॥२॥

यो देवो भगवान्मोमो लोरुस्वाप्यनं परम् ।

आनीतस्य पुरा ध्यायन् । पिता विप्रो महातपाः ॥३॥

अवन्त्याञ्च महाभागो योऽग्निनामातपोनिधिः ।

वर्षाणां त्रीणि दिव्यानि सहस्राणि तपो महत् ॥४

ऊर्ध्वंवाहुस्तसर्वतेपे ब्रह्मध्यानपरायणः ।

ऊर्ध्वगत ततोव्यास ब्राह्म तेजोमहात्मनः ॥५

नेत्राम्पांतस्यसुस्त्राथ काशयंश्चदिशोदश ।

तेजस्तत्सहसादृष्ट्वा ततोवेशोद्भवं स्वतः ॥६

दिशश्च तद्यदा व्यास ! सर्वान्घृतुं भगवनुवन् ।

सुस्त्राव च तदा दिग्भ्यस्तद्धितेजोऽतिदुस्तहम् ॥७

महर्षि व्यासजी ने कहा—तीर्थ का नाम सोमवती तथा लिङ्ग का नाम सोमेश्वर हुआ था—यह कैसे हुआ—यह मैं उत्त्तिक रूप से सुनना चाहता हूँ ॥१॥ सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास ! जिस तरह से सुशो-भन सोमतीर्थ सभुरनन्न हुआ तथा सोमेश्वर लिङ्ग हुए—यह सभी प्रापको सरय बतलाता हूँ ॥२॥ जो भगवान् सोमदेव हैं जो कि लोक को परम वृत्ति करने वाले हैं । हे ध्यान ! पहिले उमका महान् तपस्वी विश्व पिता था ॥३॥ अकन्ती पुरी में जो महान् तपस्वी महाभाग अग्नि नाम वाला था । उसने दिव्य तीन हजार वर्ष तक महान् तप किया था ॥४॥ ब्रह्म के ध्यान में तत्पर होते हुए उसने ऊर्ध्वबाहु होकर तप किया था । हे व्यास ! तब उम महात्मा का ब्रह्म तेज ऊर्ध्व को चना गया था ॥५॥ दशों दिशाओं में प्रकाश करता हुआ उसका तेज नेत्रों से स्रवित हुआ था । सम्पूर्ण देश में स्वतः उत्पन्न हुए उम तेज को सहसा देखकर हे व्यास ! जब दिशाएं सबको धारण करने में असमर्थ हो गईं थी तो वह अत्यन्त दुस्तह तेज दिशाओं से स्रवित हुआ था ॥६-७॥

लोकांश्चभामयन्सर्वान् धरण्यावंपपातह ।

सोमोजातस्ततस्तेनशीताशुश्चजनप्रियाः ॥८

सरित्सोनाममुत्पन्ना व्यासतेनैवतेजसा ।

प्रविष्टासा नदीशिप्राममृतेनाति पूरिता ॥९

ततस्सोमवती शिप्रा विख्याता ह्यतिपुण्यदा ।

सोमयुक्ता नदी शिप्रां दृष्ट्वा पापं व्यपोहति ॥१०

स्याताचत्रिपुलोकेषु पापिनापुष्यदायिनी ।  
 ब्रह्महावासुरापोवास्तेयोवागुरुतल्पग ॥११  
 चत्वारोऽप्यत्रपापेन मुच्यन्तेदर्शनाद्घ्रुवम् ।  
 अमासोमीपदायुक्ती सोमवत्यां तदामुने ॥१२  
 स्नान दान चयोधीमाञ्जपहोमं समाचरेत् ।  
 अक्षयंतस्यत्तसर्वं यावच्चन्द्रदिवाकरी ॥१३  
 तिलोदकप्रदानेनपिण्डदानेनकालिज । ।  
 अकालेकालिकीर्तृप्ति पितृणाञ्चययोदिता ॥१४

समस्त लोको मे प्रकाश करता हुआ वह तेज फिर भूमि मे गिरा था ।  
 उससे सोम समुत्पन्न हुआ उससे वह दीतल किरणों वाला और जनो का  
 परम प्रिय था ॥१॥ हे व्यास ! उमो तेज से एक सोमा नदी समुत्पन्न हुई  
 थी वह अमृत से घटितूरित नदी शिवा नदी मे प्रविष्ट हो गई थी ॥६॥  
 तभी से फिर अरपन्त पुष्य देने वाली शिवा सोमवती विश्वान हो गई  
 थी । सोम से युक्त शिवा के दर्शन करके मनुष्य पापो मे छुटकारा पा  
 जाता है ॥१०॥ तभी से वह नदी तीनों लोको मे पापियो का पुष्य प्रदान  
 करने वाली विश्वात हो गई थी । चाहे कोई ब्राह्मण की हत्या करने  
 वाला हो अथवा गुरा पीने वाला हो—धोर हो या गुण शय्या पर गमन  
 करने वाला हो ॥११॥ ये चारो ही महा पातकी यहाँ पर केवल दर्शन से  
 ही निश्चय ही पाप से मुक्त हो शाय करते हैं । हे मुने ! अमावस्या ओर  
 सोम जब दोनों युक्त हो तो यह सोमयनी होगी है उसमे ॥१२॥ जो  
 भीमान् स्नान—दान—जप—होम का समाचरण करता है उगवा यह तभी  
 अक्षय हो जाता है और यह जब तक षण्ठ धोर मूर्ध स्थित है रहा करता  
 है ॥१३॥ हे कालिज ! तिलोदक दान से—पिण्ड दान से अकाल मे  
 कालिकी तृप्ति और पितृणों की जैमी बहो गयो है ॥१४॥

सर्वं त्रदुर्लभाशिवा सोमस्नोभयहस्तथा ।

सोमेश्वरस्तोमवारस्मकाराः पञ्चदुर्लभाः ॥१५

शिप्रामोमजलंध्याम गोटितीर्थफलप्रदम् ।

अमामोमगमायोगेवितृनीर्धंसमस्मृतम् ॥१६

अमायांसोमवारश्च दध्यतीपातोयदाभवेत् ।  
 षतगुणगयायास्तुसोमवत्यांप्रकीर्तितः ॥१७  
 एवमसोमवतीतीर्थं जातमयमहामुने ! ।  
 सोमदृष्ट्वाथपतित क्षितौब्रह्माजगद्गुरुः ॥१८  
 रथे तं स्थापयामास लोकानां हितकाम्यया ।  
 स तु वेदमयो व्यास ! धर्मसस्त्यसद्ग्रहः ॥१९  
 युक्तोवाजिसहस्रेण ब्रह्मणाप्रेरितस्तदा ।  
 दृष्ट्वासोमंनतोदेवा रथे त ब्रह्मणायुतम् ॥२०  
 तुष्टुबुस्सर्वभावेन हृष्टः सर्वे समाहिताः ।  
 तस्य सस्तूयमानस्य तेजससोमस्य भास्वरम् ॥२१

सर्वत्र शिप्रा दुर्लभ है । सोम—सोमग्रह—सोमेश्वर और सोमवार  
 ये पाँच प्रकार दुर्लभ होते हैं ॥१५॥ हे व्यास ! शिप्रा का सोमजल  
 फरोड तीर्थों का पुष्प—फल प्रदान करने वाला है । अमा का और सोम  
 का योग होने पर—पितृ तीर्थ के सदृश कहा गया है ॥१६॥ अमा में  
 सोमवार और जब यदि व्यतीपात होवे, गया से सौ गुना सोमवती में कहा  
 गया है ॥१७॥ हे महामुने ! इस प्रकार से यहाँ पर सोमवती तीर्थ हुआ  
 था । जगद् के गुरु ब्रह्माजी ने भूमि पर पड़े हुए सोम को देखा था ।  
 ॥१८॥ लोकों के हित को कामना से उसको रथ में स्थापित कर शिप्रा ।  
 हे व्यास ! वह तो वेदों से परिपूर्ण—सत्य सग्रह वाले और धर्म के ज्ञाता  
 थे ॥१९॥ उस समय में एक सहस्र अश्वों से युक्त और ब्रह्माजों के द्वारा  
 प्रेरित था । रथ में ब्रह्मा से युक्त सोम को देवों ने देखा था ॥२०॥ उनमें  
 सर्व भाव से परम प्रसन्न और सायधान हाँकर सदाने स्तवन किया था ।  
 संस्तूयमान उस सोम का तेज परम भास्वर हो गया था ॥२१॥

आप्यायमानं श्रील्लोकान् पापतघरणीतले ।  
 ब्रह्मातेनरथेनाथ सागरान्तावमुन्वाराम् ॥२२  
 मिः सप्तकृत्वोतिशयाच्चकारसप्रदक्षिणम् ।  
 तस्ययत्पतिसंतेजो व्याससोमस्यशीतलम् ॥२३

तदेवोपययो दिव्या जाता भुवि मुनिर्मला ।  
 याभिर्वाप्यो ह्ययं लोकः प्रजाश्चैव चतुर्विधा ॥२४  
 तुष्टोऽथ भगवान्सोमो जगतस्मर्वंदोमुने । ।  
 दशवयंसहस्राणि तेषेऽतिदृस्सहंतपः ॥२५  
 ततस्तस्मै ददौ स्वाम्यद्रह्यलोकपितामहः ।  
 वीजोपधीना विप्राणा नोमोरजावभूवह ॥२६  
 सप्तविंशतिमोमाय दाक्षायण्यो महाव्रता ।  
 पत्न्यप्राचेतसो दक्षो ददौ नक्षत्रमळकान् ॥२७  
 मतत्प्राप्य महद्वाज्य सोमो भार्यायुतस्तदा ।  
 समारेभे राजसूय सहस्रशतर्दक्षिणम् ॥२८

हीनो लोको की कृति करने वाला वह परलौकिक तल पर गिर गया था । दक्षायणी ने उस रथ से नागरो के सहित वसुधरा की दशकीस बार घटिदय से प्रदक्षिणा की थी । उसका जो तेज हे व्यास । सोम का शीतल गिरा पद के ही परम दिव्य मुनिर्मल प्रोपधिया भूमि में उत्पन्न हो गई थी अतएव यह लोक चार प्रकार की प्रजा धारण करने के योग्य हो गया था ॥२२-२४॥ हे मुने ! जगत् की सब बुद्ध देने वाला भगवान् सोम परम तुष्ट हो गये थे और दश हजार वयस्यन्त अतीव दुस्साह तप किया था ॥२५॥ इसके अनन्तर ब्रह्म लोक के पितामह दक्षायणी ने उसको स्वामि पद प्रदान किया था । सोम बीजोपधियों का विप्रों का राजा हो गया था ॥२६॥ प्राचेतस दक्ष ने उस सोम के लिये दक्षायणी—महान् वन वाली सत्तार्द्धम मन्त्र मंत्रा से सम्पन्न पत्नियों प्रदान की थी ॥२७॥ उस समय में भार्याओं से युक्त सोम ने उस महान् राज्य को प्राप्त करके गहम और गच्छ दक्षिणा वाला राजसूय यज्ञ का आरम्भ कर दिया था ॥२८॥

हीनापभगवानत्रिरघ्ययुं भगवान्भृगु ।

द्विरप्यगभंश्वोद्गाता ब्रह्माब्रह्मस्वमेपिवान् ॥२९

मदस्यो भगवान् विष्णुस्तनवादिमुसोषुंतः ।

ददौ स दक्षिणा मोषस्त्रील्लोवान्गुणसाहित ॥३०

सिनीवालीकुहूर्ध्वं व घृतिः पुष्टिः प्रभावसुः ।  
 कीर्तिघृतिश्च लक्ष्मीस्त देव्यो दिव्यास्मिपेवरे ॥३१॥  
 प्राप्यावभृथमन्मप्रस्सर्वदेवपिपूजितः ।  
 अतीवराजतेचन्द्रो दश प्रोद्भासयन्दिगः ॥३२॥  
 तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमं श्रयं मृपिसंकृतम् ।  
 विवन्नाम मतिर्व्यसि । तदामृतमवस्य च ॥३३॥  
 वृहस्पतेन्यदा भार्या तारा नाम्नी यक्षस्विनीम् ।  
 जहार तमसा साध्वीमवमान्याङ्गिरस्सुतम् ॥३४॥  
 वाच्यमानस्तदा सोमो देव देवपिभिस्तया ।  
 नैव ध्यसर्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसाय च ॥३५॥

उम यज्ञ में भगवान् अत्रि होथा हुए थे—भगवान् मृगु अक्षरपुं थे—  
 हिरण्य गर्भ उद्गाता थे और ब्रह्मन्व का पद स्वयं ब्रह्माजी ने प्राप्त किया  
 था ॥३१॥ सनकादि प्रमुखों से समावृत्त भगवान् विष्णु सदस्य थे ।  
 उनसे सुमनाहित होते हुए तीन लोक सोम को दक्षिणा दी थी ॥३०॥  
 सिनीवाली—कुहू—घृति—पुष्टि—प्रभावसु—कीर्ति—घृति और लक्ष्मी  
 इन दिव्य देवियों ने उसकी सेवा की थी ॥३१॥ भवमृत को प्राप्त कर  
 समस्त देवपियों के द्वारा वन्दित हुआ अत्यन्त अधिक सोमा सम्पन्न हो गया था ॥३२॥  
 हे ध्यात ! ऋषियों के द्वारा सत्कार किया हुआ वह दुष्प्राप्य ऐश्वर्य  
 प्राप्त करके उसकी बुद्धि जो कि भ्रमृत मम या विन्नान्त ही गयी थी  
 ॥३३॥ उस समय में अङ्गिरा के पुत्र का अपमान करके वृहस्पति की  
 भार्या परम यक्षस्विनी तारा नाम वाली का जो कि अत्यन्त ही साध्वी  
 थी प्रन्धकार से इसने हरण कर लिया था ॥३४॥ उस समय में देवी  
 और देवपियों के द्वारा कहा गया भी था किन्तु सोम ने उस आङ्गिरस के  
 लिये उस तारा को नहीं विमज्जित किया था ॥३५॥

वृषस्पतेस्तत पक्षं शक्कोजप्राहकोपतः ।

महिगिष्योमहातेजाः हितुः पूर्वं वृहस्पतेः ॥३६॥

ततोयुद्धमभूत्तत्र सुघोरशक्रसोपयोः ।  
 देवानां दानवानाञ्च ध्यासप्रासद्वरं महत् ॥३७  
 सर्वभीतास्ततो देवा ब्रह्माणं शरणं गताः ।  
 अप्रतो ब्रह्मणो युद्धं कथितं सोमशक्रयोः ॥३८  
 देवानावचनं श्रुत्वा साद्वदेवैः पितामहः ।  
 क्षागत्य युद्धसमयेऽवारयद्देवदानवान् ॥३९  
 वारितास्ते स्थितास्तत्र युद्धं त्यक्त्वा सुरासुराः ।  
 तारामादाय स तदा ददावाङ्गिरसे द्विज ॥४०  
 साञ्चमप्रसवां दृष्ट्वा आह भायवृहस्पति ।  
 भग्यदीपो न ते योन्या गर्भो गाय कथञ्चन ॥४१  
 उत्ससर्जत तस्वारा कुमारं देवरूपिणम् ।  
 ऐषिकास्त्रं नमादाय उवलन्तमिव पावकम् ॥४२

इसके उपरान्त बौर से इन्द्र ने वृहस्पति के पास को प्रहण किया  
 वह पहिले वृहस्पति के पिता का शिष्य था ॥३६॥ इसके पश्चात् इन्द्र घोर  
 चन्द्र का अतीव भयानक युद्ध हुआ था । हे व्यास ! वह युद्ध देवों को और  
 दानवों को भी महान् भय समुत्पन्न करने वाला अत्यन्त भयानक था  
 ॥३७॥ उस उग्र युद्ध से सभी देवता डर गये थे और फिर वे श्रीब्रह्माजी  
 की शरण में प्राप्त हुए थे । ब्रह्माजी के समाने सोम और शक्र के युद्ध को  
 कहा था ॥३८॥ देवों के इस कवन का श्रवण कर पितामह देवों के पास  
 ही युद्ध के समय में आकर उन्होंने देवों और दानवों का रोग शिवा था  
 ॥३९॥ रोते हुए सुर-समुर युद्ध का त्याग करके वहाँ पर स्थित हो गये  
 थे । उनमें उग्र समय में तारा की साबर घाङ्गिरस ( वृहस्पति ) को  
 द्विज ( सोम ) ने दे दिया था ॥४०॥ उस तारा को प्रसव से मुक्त देग  
 कर वृहस्पति मर्मा से बोले— दूगरे का गर्भ तेरी योनि में बभौ भी  
 पारण नहीं होना चाहिए ॥४१॥ इस कवन के पश्चात् तारा ने देविकास  
 सेवर ब्रह्मजी हुई अग्नि के समान देव रूपी कुमार को उत्पन्न कर  
 दिया था ॥४२॥



स तैजो जातमात्रोऽपि देवानामाक्षिपद्यशः ।  
 ततस्संशयभापन्ना ऊचुस्तारां दिवोकसः ॥४३  
 वस्वायं ब्रूहि सुभगे! सोमस्याय बृहस्पतेः ।  
 नाचक्षे देवतानां वेधाः पप्रच्छताम्पुनः ॥४४  
 यद्यसत्यं तद्ब्रूहि तारे! कस्यनुतो ह्ययम् ।  
 सा प्राञ्जलिह्वाचेदं ब्रह्माणं वरदं विभुम् ॥४५  
 सोमस्येति महानीम्यः कुमारो देवसन्निभः ।  
 सोमस्य तं सुतं ज्ञात्वा परिष्वज्य पितामहः ॥४६  
 बुवश्त्यकरोन्नाम तस्यपुत्रस्ववैतदा ।  
 परदारापहाराच्च यत्पापं तनुदुस्सहम् ॥४७  
 तेन सोमोऽभवत्कुण्ठीक्षयरोगयुतस्तदा ।  
 ततो राज्ये स्वकं पुत्रं स्थापयित्वा यथाविधि ॥४८  
 ज्वन्तीमाजगामाशु सोमो देवदिदृक्षया ।  
 सोमाहे सोमवत्याञ्च अमारोगेजितेन्द्रियः ॥४९

आत मात्र ही उस संशय ने देवों के यश को आक्षिप्त कर दिया था ।  
 तब तो संशय को प्राप्त हुए देवों ने तारा से कहा ॥४३॥ हे सुभगे ! यह  
 तो बताओ कि यह गर्भ किस का है सोम का है या बृहस्पति का है ?  
 देवों से उसने कुछ नहीं कहा था तब फिर ब्रह्माजी ने उससे पूछा था  
 ॥४४॥ हे तारे ! इसमें जो भी सत्य है वही बतला दो कि यह सुत किस  
 का है । उस तारा ने हाथ जोड़ कर वरद विभु ब्रह्माजी से यह कहा—  
 ॥४५॥ यह महान् सोम्य देवों के सदृश कुमार सोम का है । पितामह ने  
 उस पुत्र को सोम का जानकर समर्पित किया था ॥४६॥ उसी समय  
 उस पुत्र का 'बुध' यह नामकरण कर दिया था । पराई स्त्रियों का अपहरण  
 करने से जो पाप है वह शरीर से दुस्सह हुआ करता है ॥४७॥ उस  
 समय में उस पाप से सोम कीड़ वाला और क्षय से युक्त हो गया था ।  
 इसके अनन्तर राज्य पर अपने पुत्र को विधि पूर्वक स्थापित करके वह  
 जीध ही सोम देव की देखने की इच्छा से ज्वन्ती पुरी में प्रागया था ।

सोमवार और सोमवती अमावस्या के योग में उस इन्द्रियों को जीतने वाले ने स्नान किया था ॥४८-४९॥

स्नात्वा सम्पूजयामास सोमस्तोमेश्वरं ततः ।  
 तस्य भक्त्या च सन्नुष्टं प्राह सोमं महेश्वरम् ॥५०॥  
 मत्प्रसादाद्बभूवुः कान्तं तव सोम ! भविष्यति ।  
 सोमेश्वरमितिख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५१॥  
 एव तुष्टयासां तस्यैर्षं लिङ्गं चंवातिदुर्लभम् ।  
 कथितं तस्यभावेन मया तुष्टेन साम्प्रतम् ॥५२॥  
 श्रावणं प्राप्य यो मासं सोमनाथं जितेन्द्रियः ।  
 नित्यं पश्येन्नरोऽप्यासं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥५३॥  
 सौराष्ट्रे सोमनाथस्य पूजायाः प्रत्यहं फलम् ।  
 लभते न नरो व्यासं नात्र कार्या विचारणा ॥५४॥

स्नान करके फिर सोम ने सोमेश्वर प्रभु का भली भाँति पूजन किया था । उसकी भक्ति से परम तुष्ट हुए महेश्वर ने सोम से कहा था ॥५०॥ हे सोम ! मेरे प्रसाद में तेरा शरीर कांत हो जायगा । फिर वह सोमेश्वर इस नाम से विख्यात हो गया था जो भुक्ति और मुक्ति दोनों को देने वाला था ॥५१॥ हे स्याम ! इस प्रकार से वह तीर्थ और लिंग अत्यन्त दुर्लभ हैं । मैंने तस्य भाव से परम तुष्ट होने हुए भव तुम्हको बनता दिया है ॥५२॥ जो कोई जितेन्द्रिय होकर व्यास के महीना में यहाँ पहुँच कर नित्य ही सोमनाथ का दर्शन करता है उस मनुष्य का पुण्य — फल सुनो ॥५३॥ गौराष्ट्र में सोमनाथ की पूजा का प्रतिदिन फल होता है वह नर है व्यास ! प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए ॥५४॥

### ६६—सौभाग्यतीर्थमाहात्म्यवर्णन

तीर्थं सौभाग्यकेः स्नात्वा दृष्ट्वा सौभाग्यकेश्वरम् ।  
 मयंपात्रविनिर्मुक्तः सौभाग्यं परमं लभेत् ॥१॥

घृततीर्थेनरः स्नात्वा घृतेनस्नापयेच्छिवम् ।

घृतमग्नावथोहृत्वा रुद्रलोकेमहीयते ॥२

देवीयोगेश्वरीप्रार्च्य सुरापुरनमस्कृताम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः परं योगमवाप्नुयात् ॥३

शस्त्रावर्तनरः स्नात्वा सर्वपापविनिर्जितः ।

धनधान्यसमायुक्तो जायतेनिर्मलेकुले ॥४

शुद्धोदकेवनुदंश्या मुक्त्यर्थंस्नानवान्तरः ।

शिवसुरेश्वरं दृष्ट्वा ततोमोक्षगतिर्भवेत् ॥५

तथान्यत्सप्रवक्ष्यामि तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

किंपुनरिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥६

पूर्वनेतायुगेव्यास! सुनेत्रोनामर्वाद्द्विजः ।

तस्यपुत्रः समुत्पन्नोविश्वावसुरितिस्मृतः ॥७

महा महर्षि श्री सनत्कुमार जी ने कहा—सौभाग्य तीर्थ में स्नान करके और सौभाग्येश्वर का दर्शन करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर परम सौभाग्य को प्राप्त होता है ॥१॥ घृत तीर्थ में स्नान करके मनुष्य घृत से ही शिव का स्नान करावे । इसके अनन्तर अग्नि में घृत का हवन करे तो वह रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥२॥ मुर और धसुरों के द्वारा बन्दित योगेश्वरी देवी की अर्चना करके मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पाकर परम योग को प्राप्त किया करता है ॥३॥ शस्त्रावर्तन में मनुष्य स्नान करके सब पापों से रहित हो जाता है और धन-धान्य से समायुक्त होकर निर्मल कुल में समुत्पन्न होता है ॥४॥ अनुदंशी त्रिपि में शुद्धोदक में मनुष्य मुक्ति के लिए ही स्नान वाला होता है । फिर सुरेश्वर त्रिपि का दर्शन करके मोक्ष की गति जाना हो जाया करता है ॥५॥ एक अन्य त्रिलोकी में प्रसिद्ध तीर्थ को बतलाऊँगा और किंपुन इस नाम से विख्यात है जो कि ब्रह्म हत्या का विमोचन करने वाला है ॥६॥ हे व्यास ! पहिले त्रेता युग में एक सुनेत्र नामक द्विज था । उसका विश्वा-वसु नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥७॥

यवक्रीतस्य शापेन स पिता तेन घातितः ।  
 ब्रह्महत्यान्वितो व्यास! तीर्थातीर्थं परिभ्रमन् ॥८  
 तीर्थं किं पुनके स्नात्वा घाटातीर्थं गतो द्विजः ।  
 ततः कपिलधाराया चिन्तयित्वाऽऽत्मना स्वयम् ॥९  
 कथं मे ब्रह्महत्याया मायात्पापं प्रशान्तिताम् ।  
 एव हि चिन्तयन् सोऽथ पुनरायादवन्तिकाम् ॥१०  
 अत्र तीर्थं पुनः स्नाति पावद्वाणी ततोऽशृणोत् ।  
 किंपुनर्ध्यायसे ब्रह्मन् येन स्नातो द्विजोत्तमः ॥११  
 नतेऽस्ति ब्रह्महत्यायै तीर्थं स्नानेन नाशिता ।  
 गच्छशीघ्रं गृहं विप्र! पापहीनोऽयमासुखम् ॥१२  
 पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि पत्तनेश्वरमुत्तमम् ।  
 तत्रस्थित्वा महेशेन पुनःपत्तनमीक्षितम् ॥१३  
 पत्तनेश्वरइत्यारयो देवदेवो महेश्वरः ।  
 यस्तुगन्धंश्चपुष्पंश्च धूपं दीपं मनोरमं ॥१४

यव क्रीत के शाप से उरुने उस पिता को मार डाला था । हे व्यास !  
 वह फिर ब्रह्म हत्या से पुनः होकर तीर्थ से तीर्थ में परिभ्रमण करता था  
 ॥८॥ उस द्विज ने किंपुनरु तीर्थ में स्नान किया था, फिर घरा तीर्थ में  
 घना गया था, फिर कपिलधारा में उरुने स्वयं ही अपने माप चिन्तन  
 किया था ॥९॥ मेरी ब्रह्म हत्या का पाप कैसे शान्ति को प्राप्त होवे । इस  
 तरह से चिन्तन करता हुआ वह पुनः अश्वन्तोपुरी में आ गया था ॥१०॥  
 इस तीर्थ में जब वह पुनः स्नान करता है तो उरुने वाणी का धमका  
 किया था । हे ब्रह्मन् ! किंपुन का ध्यान करो । द्विजोत्तम जिसके द्वारा  
 स्नान किया हुआ हो ॥११॥ तुम्हें अब ब्रह्म हत्या नहीं रही है क्योंकि वह  
 उस तीर्थ के स्नान से नष्ट हो गई है । हे विप्र ! अब तुमपूर्वक पर जाओ  
 क्योंकि तुम पाप में हीन हो गये हो ॥१२॥ आगे फिर उत्तम एक अन्य  
 पत्तनेश्वर को बतलाता है । वहाँ पर स्थित हाथर मन्त्र ने पुनः पत्तन  
 को देगा था ॥१३॥ यह महेश्वर देवों के श्री देव पत्तनेश्वर इस नाम

घासे थे जिसको गन्ध-पुष्प और सुन्दर धूप तथा दीपों से पूजना चाहिए  
॥१४॥

भावयुक्तो नरो व्यास! पूजयेद्विविधवत्सदा ।  
यथावत्तिष्ठतेलिङ्गं वशच्छेदोनजायते ॥१५॥  
हं सयुक्ते नयानेन शिवलोकं सगच्छति ।  
तथान्यत्तं प्रवक्ष्यामि तीर्थं त्रिलोक्यविश्रुतम् ॥१६॥  
दुर्घं पंभिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ।  
पुरा दिवाकरो व्यास! चक्रे दुर्घं पंनामतः ॥१७॥  
तीर्थं मस्मिन्नदीतीरे विख्यातं सूर्यसंस्कृतम् ।  
तेजःपुञ्जोऽभवत्लिङ्गं गणगन्धर्वं पूजितम् ॥१८॥  
सप्तमशगववाष्टम्यासंक्रान्तौ रविवासरे ।  
तत्र स्नात्वा सुचिभूत्वा मुत्र रात्रिमुपोषितः ॥१९॥  
दृष्ट्वा महेश्वरं तत्र शिप्राकूले व्यवस्थितम् ।  
पूजयित्वा तु भावेन यत्फलं तच्छृणुष्व मे ॥२०॥  
पितृमातृकुलसर्वं समुद्धृत्य शिवं श्रजेत् ।  
तत्र यच्छ्रितियोदानं गोहेमादिविशेषतः ॥२१॥

हे व्यास ! भक्तिभाव से युक्त सदा मनुष्य विधिपूर्वक पूजन करे ।  
लिंग यथावत् स्थित है और भ्रंशक का बंधन छेद नहीं होता है ॥१५॥  
किर वह हंस से युक्त यान के द्वारा शिवलोक को चला जाता करता है ।  
जब एक और तीर्थ को कहूंगा जो कि त्रिलोक्य में प्रसिद्ध है ॥१६॥ यह  
तीर्थ दुर्घं नाम से विख्यात है और यह भी ब्रह्म हत्या के पाप से छुड़ाने  
वाला है । हे व्यास ! पहिले दिवाकर ने इसका दुर्घं नाम किया था  
॥१७॥ इस नदी में यह तीर्थ सूर्य के द्वारा संस्कृत होता हुआ विख्यात  
है । गन्धर्वों के गणों द्वारा पूजित यह लिंग तेज का पुञ्ज हो गया था  
॥१८॥ अष्टमो या नवमो दिवि में संक्रान्ति ये—रविवार में वहाँ स्नान  
करके शुद्ध होकर तीन रात्रि तक उपोषित रहे ॥१९॥ वहाँ पर शिप्रा  
के तट पर व्यवस्थित महेश्वर का दर्शन करे और भावपूर्वक पूजा करे ।  
इसका जो फल होता है वह मुझसे अवगण करो ॥२०॥ माता और पिता

के सम्पूर्ण कुलों का उद्धार करके वह प्रस्त में शिवलोक में गमन किया करता है । वहाँ पर जो गौ भोर सुवर्ण आदि का विशेष रूप से शान दिया करता है ॥२१॥

तावत्तदधर्यलोके यावच्चन्द्रदिव्यकरो ।

तथान्यत्सप्रवक्ष्यामि गोपीन्द्रं तीर्थं मुत्तमम् ॥२२

गीतमेनपुरायत्र इन्द्र शापाद्भृगीकृतः ।

भगव्रीढायुत शक्रः प्रविश्य वनमुत्तमम् । २३

अतोपयत्तदोप्रेण तपसा शङ्करम्पुरा ।

तुष्टेन शम्भुना विप्रः ये भगास्तच्छरीरगाः ॥२४

गोमहस्त्रीकृतास्तेन गोपीन्द्रमिति कथ्यते ।

तत्र स्नात्वा दिव याति शक्रतुल्यपराक्रमः ॥२५

येमृतास्तेपुनर्जन्मनाप्नुवन्तिमहीतले ।

गङ्गातीर्थं नर स्नात्वापुष्पप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥२६

ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु गङ्गायाः फलमादिशेत् ।

गङ्गातीर्थं नर स्नात्वा दृष्ट्वा पुष्कररण्डकम् ॥२७

पुष्पकैः शिविमानेन प्रयातिदिविमौदते ।

नरकाद्दुद्धरस्याणु नरः स्नात्वोत्तरेश्वरे ॥२८

उत्तमा वह दान तब तक प्रथम रहता है जब तक ये चन्द्र भोर गुरु स्थिर रहा करते हैं । अब एक अन्य उत्तम गोपीन्द्र तीर्थ की बतलाऊंगा ॥२२॥ जहाँ पर प्राचीन समय में गीतम के शाप से इन्द्र को भगो वासा कर दिया था । भगो के विन्हो से सज्जा से युक्त होकर इन्द्र ने वन में प्रवेश कर लिया था ॥२३॥ पहिले इन्द्र ने प्रत्यन्त उग्र तप से भगवान् शम्भु को मन्त्रुष कर दिया था । हे विप्र ! परम प्रगल्भ हुए शम्भु ने जा उगके शरीर में रहने वाले वन से उनको एक महत्त गौ कर दिया था जो गोपीन्द्र इम नाम से कहा जाता है । उसमे स्नान करने के इन्द्र के समान पराक्रम वाला होकर दिवतोष्ठ को चला जाया करता है ॥२४-२५॥ जो इम मही के तन में मृग हो गये वे फिर दूसरा जन्म प्राप्त नहीं किया करते हैं । गंगा तीर्थ में मनुष्य स्नान करके बटुन प्रथिा पुष्प की

प्राप्ति किया करता है ॥६॥ ज्येष्ठ मास की दशमी में गंगा का फल कहते हैं—गंगा तीर्थ में मनुष्य स्नान करके और पुष्कर रण्डक के दर्शन करे ॥२७॥ वह पुष्कर घिमान के द्वारा शिवलोक में चला जाता है और महान् प्रसन्न होता है । उत्तरेश्वर में मनुष्य स्नान करके शीघ्र ही नरक से उद्धार प्राप्त करता है ॥२८॥

इष्टभोगसमापन्नो यातिस्वर्गनसंशयः ।

भूतेश्वरेनरः स्नात्वा भूतेश्वरमथार्चयेत् ॥२९

गन्धपुष्पादिर्नैवेद्यमृतः सुरपुरं व्रजेत् ।

शिप्रायां तु नरः स्नात्वा कंलासं तु नमस्यति ॥३०

सूर्याहतं तमोयदत्तद्वत्पापं व्रणस्यति ।

अम्बालिकाञ्चयः पश्येत् समाधिनियमेन च ॥३१

समुक्ताः सर्वपापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ।

घण्टेश्वरं प्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिपूजितम् ॥३२

यत्रकूपोदकम्पीत्वा सौभाग्यमतुलं लभेत् ।

अर्चयेद्यस्तुदेवेशं गन्धपुष्पैरनुकृमात् ॥३३

शिवलोकेवसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुदश ।

पुण्येश्वरं तुयःपश्येच्छुचिःस्नातो जितेन्द्रियः ॥३४

समाणपत्यमाप्नोति यत्सुरैरपिदुलं भम् ।

लुम्पेश्वरेनरःस्नात्वासमम्यर्च्यमहेश्वरम् ॥३५

प्रसिद्ध भोगों से सुसम्पन्न होता हुआ स्वर्ग को चला जाया करता है—इसमें तेषामात्र भी संशय नहीं है । मनुष्य भूतेश्वर में स्नान करके इसके उपरान्त भगवान् भूतेश्वर की अर्चना करे और वह पूजा गन्ध पुष्पादि नैवेद्य के द्वारा करनी चाहिए । ऐसा मनुष्य मृत्यु प्राप्त करके सुरपुर में गमन किया करता है । मनुष्य शिप्रा में स्नान करके कंलास को नमस्कार करता है ॥-६-३०॥ जिस तरह से सूर्य से तम आहत होता है वसी भाँति उसका पाप नष्ट हो जाया करता है । जो समाधि के नियम से अम्बालिका का दर्शन करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है जैसे सर्प अपनी कञ्चुकों से मुक्त हो जाया करता है । अब परेश्वर के

विषय में वर्णन कलू गा जिनको सुरो ने भी पूजित किया है ॥३१-३२॥  
 वहाँ पर कूप का जल पीकर अतुल सोभाग्य को प्राप्त करता है जो गन्ध  
 और पुष्पों के द्वारा अनुक्रम से देवेश की अर्चना किया करता है ॥३३॥  
 वह उस समय तक शिव लोक में वास करता है जब तक षोडश इन्द्र  
 हुआ करते हैं । जो शुषि होकर पुष्पेश्वर का दर्शन किया करता है और  
 इन्द्रियों को जीतकर वहाँ स्नान करता है वह गणपत्य के पद को प्राप्त  
 करता है जो कि सुरो को भी बहुत ही दुर्लभ होता है । लुम्पेश्वर तीर्थ  
 में मनुष्य स्नान करके महेश्वर भगवान् का अर्घ्यर्पण किया करता है  
 ॥३४-३५॥

नयातिनरकमर्त्यं स्वर्गं लोकेमहोपते ।

तयान्यत्सप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥३६

पूजितं ब्रह्मणा पूर्वं स्थविरास्य विनायकम् ।

तत्र स्नात्वा शुषिभूत्वा पूजयेद्यो विनायकम् ॥३७

गन्धधूपैश्च पुष्पैश्च भक्ष्यैर्भोज्यं, फल शृणु ।

समीहिता भवेत्सिद्धिम् तं शिवसुरं प्रजेत् ॥३८

नवनद्या, समीपे तु पार्वतीम्पूजयेद्बुधः ।

गन्धपुष्पैश्चधूपैश्च सौभाग्यमजुलंलभेत् ॥३९

काशोदके नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कामं रतिप्रियम् ।

स्वर्गं च देवगन्धर्वैस्तृहणीयवपुर्भवेत् ॥४०

प्रयागेतुनरः स्नात्वा प्रयागेशसु पश्यति ।

सर्वलोकानतिक्रम्य शिवलोकेमहीयते ॥४१

वह मनुष्य कभी भी नरको में नहीं जाता करता है और स्वर्गलोक  
 में महिमान्वित हुआ करता है तथा अन्य भी बनसाऊगा जो कि देवो को  
 भी परम दुर्लभ है ॥३६॥ प्राचीन समय ब्रह्माग्नी ने स्थविर नाम वाले  
 विशाखरु की पूजा की थी । वहाँ पर स्नान करके पवित्र होकर जो विना-  
 यक की पूजा किया करता है ॥३७॥ वह पूजा गन्ध से—पुष्पों तथा  
 भक्ष्य-भोज्यों के द्वारा किया जाता है उसका पुण्यफल थबलु करो ।  
 उसको चाही हुई सिद्धि हाती है और मृत होकर वह शिवपुर की गमन



किया करता है ॥३८॥ बुध पुरुष को मय नदी के समीप में पार्वती देवी को पूजा करनी चाहिये और गन्ध पुष्पों तथा पूप से अर्चना करे तो वह प्रतुल सौभाग्य का लक्ष्य प्राप्त करता है ॥३९॥ कामोदक तीर्थ में मनुष्य स्नान करके घोर रति प्रिय काम का दर्शन करे तो वह स्वर्ग में देवों और गन्धर्वों के द्वारा स्पृहा करने के योग्य वपु वाला हो जाता करता है ॥४०॥ प्रयाग में मनुष्य स्नान करके जो प्रयागेश के दर्शन करता है वह सभी लोको का प्रतिक्रमण करके शिव लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥४१॥

### ६७—प्रतिकल्पाभिधानवर्णन

शृणुष्ववावहितोव्यास कथामेकाग्रमानसः ।

मयाव्यासमुखात्प्राप्ताकल्पभेदेकयाशुभा ॥१॥

गृह्याद्गुह्यतराश्रेष्ठादेयायस्यनकस्यचित् ।

नास्तिकायकृताघ्नायनाशिष्यायकदाचन ॥२॥

एपापुष्यतमाव्यास! कथापापहरापरा ।

पस्थाःश्रवणमात्रेण कल्पदोषो न वाधते ॥३॥

प्रमाणं कल्पपर्यन्तं ब्रह्मण परमेष्ठिनः ।

मन्वन्तरेषु सर्वेषु कल्पकल्पान्तरेषु च ॥४॥

यावत्सङ्ख्या परिमिता तावती शृणु सत्तम! ।

अहोरात्रं विभजते सूर्यो भानुपदःपदम् (भानुपदैवतम्) ॥५॥

तामुपादाय गणनां शृणु सङ्ख्यां द्विजोत्तम ।

निमिर्षःपञ्चदशभिः काष्ठास्त्रिशत्तु ता.कलाः ॥६॥

त्रिशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिशद्भिस्तमनीषिणः ।

अहोरात्रमिति प्राहुर्ब्रह्मन्द्रादित्यगतिस्तथा ॥७॥

महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—हे व्यास ! मन को एकाग्र करके परम सावधान होकर एक कथा का श्रवण करो । कल्प के भेद में यह बुध कथा मीने भी व्यास के मुँह से प्राप्त की थी । यह कथा परम गोप-

नीय से भी अधिक गोपनीय है जिम किनो को इसे नहीं देना चाहिए । जो नास्तिक हो—इतद्ग्न हो और शिष्य न हो उसे तो इसे कभी भी नहीं देना चाहिये ॥१-२॥ हे व्यास ! यह परम पुण्यतम है और यह तथा परम पापों के हरण करने वाली है । जिमके केवल भ्रमण कर सेने ही से कल्प का दोष बाधा नहीं दिया करता है ॥३॥ परमेश्वर ब्रह्माजी का सभी मन्वन्तरो मे और कल्प कल्पान्तरो मे कल्प पर्यन्त प्रमाण होता है ॥४॥ हे श्रेष्ठतम ! जितनी संख्या परिमित है उतनी का तुम भ्रमण करो । सूर्य भानुपदों के द्वारा पद की अहोरात्रों के द्वारा विभाजन किया करता है । पद मनुष्यों का और देवों का होता है ॥५॥ हे द्विजोत्तम ! उभी गणना का ग्रहण करके संख्या को सुनो । पन्द्रह निमित्तों की काशा है और तीस काशाओं की एक कला होती है । तीस कला का मूर्त होता है और मनीषी का तीस मूर्तों का एक अहोरात्र होता है तथा चन्द्र की और आदित्य की गति कही जाती है ॥६-७॥

रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषुनित्यश ।

तदहस्तु मनुस्याणां रात्रिश्चैवनुतादृशी ॥८

पथामासा ऋत्तुब्दमयनच प्रकीर्तितम् ।

पितृणाञ्चैव देवानां ग्रहणञ्च यथातथम् ॥९

यावत्सङ्ख्या समाहृता आयुरन्तश्च तादृशः ।

अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिराब्धितः ॥१०

पक्षी द्वौ तीक्ष्णोमासो मासोद्वावृनुद्व्यने ।

अपनतंस्त्रिभिः प्रोक्तमब्देद्वेऽयनेस्मृतः ॥११

दक्षिणं चोत्तरञ्चैव सङ्ख्यातत्रविशारदः ।

मानेनानेनयोमामः पक्षद्वयममन्विनः ॥१२

पितृणां तदहोरात्रमिति कानविदो विदुः ।

शुक्लपक्षस्तवहस्तेषां वृष्णपक्षान्पु शर्वरी ॥१३

वृष्णपक्षेतिदृश्यात् पितृणां वृत्तं ते सतः ।

भानुपेण तुमानेन योर्वसवगणस्मृतः ॥१४

इन सभी में नित्य ही विशेष रूप से रवि की गति होती है । मनुष्यों को वह दिन है और राती ही रात्रि है ॥५॥ पक्ष—मास—ऋतु—शब्द और अयन कहे गये हैं । ये पितृ गणों के—देवों के और ब्रह्मा के यथोचित रूप से हुमा करते हैं ॥६॥ जितनी संख्या कही गई है और वंसा ही आयु का मन्त होता है । पन्द्रह अहोरात्र ही पक्ष इस शब्द से कहा गया है ॥१०॥ दो सन्दों का एक मास होता है और दो मानों का एक ऋतु हुमा करता है । तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और वर्ष में दो अयन (दक्षिणायन—उत्तरायण) होते हैं ॥११॥ संख्या के सत्व पण्डितों ने दक्षिण ओर उत्तर कहा है । इस मान से जो मास होता है वह दो पक्षों से युक्त हुआ करता है ॥१२॥ पितृगण का वह एक अहोरात्र है—ऐसा ही काल के वेत्ता कहते हैं । जो शुक्ल पक्ष है वह दिन कहा गया है तथा कृष्ण पक्ष पितृगणों की रात्रि हुमा करती है ॥१३॥ यहाँ पर कृष्ण पक्ष में पितृगणों के प्राद्व हांते हैं जो मनुष्यों के मान से एक सम्बन्ध ही कहा गया है ॥१४॥

देवानां तदहोरात्रं दिवाचैवोत्तरायणम् ।

दक्षिणायनं स्मृतां रात्रिःप्राज्ञंस्तत्त्वार्यंकोविदः ॥१५

दिव्यमब्दंशतगुणमहोरात्रं मनोःस्मृतम् ।

अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्षउच्यते ॥१६

पक्षाद्दशगुणो मासो मासं द्विदशभिर्गुणैः ।

ऋतुर्मूनासम्प्रोक्तःप्राज्ञंस्तत्त्वातंदिशिभिः ॥१७

पद्भिस्तैर्वर्षं बाल्यातस्तेन सङ्ख्या निवध्यते ।

चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥१८

तावतीतु भवेत्सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।

त्रीणि वर्षं सहस्राणि त्रेतायाः परिमाणतः ॥१९

तस्याश्चतावतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।

तथा वर्षं सहस्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम् ॥२०

तस्यापि तावती सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।

कलिवर्षं सहस्रन्तु सङ्ख्यातोऽत्र मनीषिभिः ॥२१

तस्य नावतिका सन्ध्या सन्ध्यांशचतयाविधः ।

एषाद्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ॥२२

देवों का वही एक अहोरात्र होता है । देवों का जो उत्तराण है वही दिन होता है और दक्षिणायन को रात्रि सत्रार्थ के कोविदों प्राज्ञों ने कहा है ॥१५॥ एक गुण दिव्य सन्ध (वर्ष) मनु के एक अहोरात्र होते हैं । दस गुना अहोरात्र मनु का पक्ष कहा जाया करता है । पक्ष से दस गुना मास होता है । द्वादश मासों के गुणों से मनुष्यों का ऋतु कहा गया है । ऐसा तत्वों के ज्ञाता राजा लोगो के द्वारा ही बनलाया जाता है ॥१६-१७॥ उन छँ ऋतुओं से एक वर्ष कहलाया है उससे ही सख्या को निषद्ध किया जाता है । चार हजार वर्षों का ब्रह्मयुग (सत्ययुग) होता है ॥१८॥ उतनी ही उस युग की सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश होता है । परिमाण से तीन सहस्र वर्ष त्रेता के होने हैं ॥१९॥ उसकी भी उतनी ही सन्ध्या और उतनी तरह का सन्ध्यांश हुआ करता है । दो सहस्र वर्ष वा द्वापर युग कहा गया है ॥२०॥ उसकी भी उतनी ही सन्ध्या और बंसा ही सन्ध्यांश भी होता है । कलियुग का परिमाण एक ही सहस्र वर्ष की सख्या माना मनीषियों ने कहा है ॥२१॥ उसकी भी उतनी सख्या और बंसा ही सन्ध्यांश हुआ करता है । यह चारह सहस्रों की युगों की सख्या कही गई है ॥२२॥

दिव्येनानेनमानेन युगसंख्या निचोष ने ।

समजसपुनस्तात जगत्सर्वमिदततम् ॥२३

कृतं त्रेताद्वापरञ्च कलिञ्चैव चतुर्मुगम् ।

युगं तदेकमप्तस्या गुणितं द्विजसत्तमम् ॥२४

मन्वन्तरमितिप्रोक्तं स एषानार्थं विशारदैः ।

अथन चापि तत्प्रोक्तं दृश्यनेदशिणोत्तरे ॥२५

मनु-प्रतोर्यतेह्यत्र मन्प्राप्ते जगत प्रभो ।

ततापरोमनु-कालमेतावन्त भरद्गुन ॥२६

ममतीतेतुराजेन्द्रो प्रोक्तस्संवरपरस्सर्वं ।

सदेवपापनंप्रोक्तं मृनिनातत्त्वदर्शिता ॥२७

ब्रह्माणस्तदहःप्रोक्तः कल्पश्चेति समुच्यते ।

सहस्रयुगपय्यन्तं सानिशाप्रोच्यतेबुधैः ॥२८

इस तरह से मुझसे आप इस दिव्य मान से युगों की संख्या को समझ लो । हे तात ! फिर उसने इस विस्तृत सम्पूर्ण जगत का सृजन किया था ॥२३॥ कृतयुग—वेता—द्वापर और कलियुग ये चार युग हैं । इन चारों युगों की इह हत्तर चौकड़ी युगित होकर द्विसप्तम मन्वन्तर पहा गया है और यह संख्या के विस्तारदो ने गणना की है । दक्षिण और उत्तर दो अयन भी कहे गये हैं ॥२४-२५॥ हे प्रमो ! इस जगत् के समाप्त होने पर मनु का लय हो आया करता है । इसके अनन्तर फिर इतने ही काल तक दूसरा मनु हुआ करता है ॥२६॥ हे राजेन्द्र ! समतीत होने पर वही सम्बत्सर कहा गया है और वही अयन तत्त्वों के दर्शा मनु ने बताया है । ब्रह्मा का वह एक दिन कहा गया है और वह कल्प भी कहा जाया करता है । बुधों के द्वारा एक सहस्र युग पर्यन्त यह निशा (राशि) कहे जाती है ॥२७-२८॥

निमज्जत्यथ तत्रोर्वी सशंलवनकानना ।

तस्मिन् युगसहस्रे तु पूर्णे भरतसत्तम ॥२९

ब्राह्मे दिवसमयन्तं कल्पो निदशेप उच्यते ।

युगानि समतीतानि साप्राणि कथितानि ते ॥३०

कृतत्रैतानियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते ।

चतुर्दशतेमनव. कथिताः कीर्तिवद्धनाः ॥३१

वेदेषु स पुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः ।

प्रजानाम्पतयोध्यास धन्यमेपां प्रकीर्तितम् ॥३२

मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः ।

नशक्यमन्तस्तेषां वै वक्तुं वपशतैरपि ॥३३

दिसर्गश्च प्रजानां च संहारस्य च भारत ! ।

मन्वन्तरेषु संहारः श्रूयते भरतर्षभ ॥३४

यत्र तिष्ठन्ति वेदेवाः सर्वे सप्तपिभिस्तह ।

तपमा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च ममन्विताः ॥३५

हे भरत सत्तम ! उन एक हजार युगों के पूर्ण हो जाने पर पहाड़ घोर बन एवं जाननों से युक्त यह पृथ्वी उन समय में निमज्जित हो जाया करती है ॥२६॥ ब्राह्म में दिवस पर्यन्त में ही एक कल्प पूर्ण हो जाया करता है । अथ के सहित समस्त युगों को मीने तुम्हें बतला दिया है ॥३०॥ वृत्त घोर येना युग में निनुस्त मनु का प्रभार कहा जाता है । वे मनु शोधह कीर्ति की वृद्धि करने वाले बताये गये हैं ॥३१॥ हे व्यास ! वह वेदों में घोर समस्त पुराणों में प्रभविष्णु प्रजापति के पति है त्रिनका होना बहुत ही धन्य कीर्तित किया गया है ॥३२॥ मन्वन्तरो में संहार हाते हैं और संहारों के अन्त में अन्म सर्पात् उत्पत्तियाँ हैं । उनका अन्त ती वर्षों में भी कहा नहीं जा सकता है ॥३३॥ हे भारत ! प्रजापति का विस्मय घोर संहार का अन्त नहीं किया जा सकता है । हे भरत के वन में परम श्रेष्ठ ! मन्वन्तरो में संहार सुना जाता है ॥३४॥ त्रिमये मत्पियों के सहित समस्त देवपुत्र तन से, ब्रह्मवर्ष से घोर धृत से समन्वित होने हुए स्थिर रहा करते हैं ॥३५॥

पूर्ण युगनहस्त्रे तु कल्पो निश्मेष उच्यते ।

तत्र नर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिनि ॥३६

ब्रह्माणमप्रतः कृत्वा सहादित्यगर्णद्विजा ।

प्रधिगन्तिसुरश्रेष्ठ हरिनारायण प्रभुम् ॥३७

म खटामर्षभूताना कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।

अध्यतःशाभनोदेवस्तस्यमर्षमिदञ्जगन् ॥३८

म एव विद्यतेष्याम महेशविधिसमुत् ।

महाकालवनेरम्ये कामचक्रे म ईश्वरः ॥३९

प्रलयोत्तबाधने व्याभः महाकालवनीत्तमे ।

कल्पेकल्पेचर्षरम्या पुरीहमेपावुगम्यन्ती ॥४०

निरामया निरातच्छा निश्चिकारा युगे युगे ।

माषं श्रेयोपदिटानि कल्पानि मग्भवन्ति य ॥४१

अश्रेयन्वनेरम्ये ब्रह्मा लोवपितामहः ।

प्रजापता पतयो ये ते दशः प्राणिवमस्तथा ॥४२

एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर एक पूर्ण कल्प कहा जाता है । उसमें सूर्य की तीव्रतम किरणों से सब भूत दग्ध हो जाया करते हैं ॥३६॥ द्विजगण देवगणों के साथ ब्रह्माजी को प्रागे करके सुरों में परम श्रेष्ठ प्रभु हरि नारायण में प्रवेश किया करते हैं ॥३७॥ कल्पों के अन्त समयों में समस्त भूतों का वारम्बार सृजन करने वाला बहो है । वह देव अव्यक्त व शाब्दत है और उसी का यह संपूर्ण जगत् है ॥३८॥ हे व्यास ! महेश और विधाता से समन्वित वह ही विद्यमान रहा करता है । वह ईश्वर, परम रम्य महाकाल वन में निवास किया करता था ॥३९॥ हे व्यास ! परमोत्तम महाकाल वन में प्रलय की कोई बाधा नहीं हुआ करती है । यह कुशस्पती मुरम्य पुरी कल्प-कल्प में अतीव सुन्दर हो जाती है ॥४०॥ युग-युग में यह पुरी आमय (पीठा) से रहित, आतङ्क (भय) से हीन और धिकारों से दून्म होती है । पाकण्डेय ऋषि के द्वारा उपदिष्ट कल्प हुआ करते हैं ॥४१॥ इस परम सुरम्य वन में लोकों के पितामह ब्रह्माजी तथा दश और प्राचेतस जो प्रजाओं के पति हुए थे ॥४२॥

मरीचिः कश्यपोऽद्रोयेचान्ये भार्गवादयः ।

कल्पादीसृजतेलोकान्चराचरान्यथातथा ॥४३

एवमादौ पुराव्यास कल्पं कल्पान्तकंसदा ।

वाराहोवामनोविष्णुः पितृणां वंशर्षवच ॥४४

कल्पभेदास्समारुपाता महाकालवनेशुभे ।

चतुरशीतिकल्पानिसञ्जातानिद्विजोत्तम ॥४५

तावन्ति ज्योतिर्लिङ्गानि वने तिष्ठन्ति सत्तम ।

पुनर्जाता पुनर्नष्टा महीसागरपर्वताः ॥४६

पुनः पुनर्भविष्यन्तिहयेषाञ्चलास्मृता ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु सर्वलोकेषु गीयते ॥४७

प्रतिकल्पेति सञ्ज्ञा सा भुवि व्यास ! भविष्यति ।

यस्याञ्च मानवा दान्ताः स्नानदानादिकं तथा ॥४८

जपं होमं तथा श्राद्धं पितृनुद्दिश्यदीयते ।

नतेषाम्पुनरावृत्तिः कोटिकल्पशतैरपि ॥४८८॥

मरीचि, कस्यप घोर घम्य भार्गव आदि कल्प के आदि में यथा-सथा घर एवं अचर लोको का सृजन किया करते हैं ॥४८९॥ हे व्यास ! पहिले इस प्रकार से आदि में सदा कल्प आर करवान्तरक चाराह-वामन और विष्णु हुए थे और उसी प्रकार से पितृगणों के भी हुए थे ॥४९०॥ शुभ महाकाल यन में कल्पों के भेद समाप्त्यात हुए हैं । हे द्विजोत्तम ! चौरासी कल्प हुए हैं ॥४९१॥ हे द्विजोत्तम ! उतने ही उत यन में ज्येतिरिङ्ग स्थित है । यह भूमि सागर और पर्वतों के समुदाय सब पुनः समुत्पन्न हुआ करते हैं और पुनः विनष्ट भी हो जाया करते हैं ॥४९२॥ ये सभी धारम्बार होंगे किन्तु यह पुरी अचल करी गयी है । इसी कारण से सभी वालों में और समस्त लोको में इसका गान किया जाता है ॥४९३॥ हे व्यास ! भू मण्डल में यह प्रतिकल्पा यह संज्ञा होगी । जिसमें दमन धील मानव स्नान—दान आदि जप—होम और पितृगण का उद्देश्य करके धाढ दिया करते हैं उन की फिर सँकड़ो करोट कल्पों में भी यही पुनरावृत्ति नही हुआ करती है ॥४९८-५०॥

प्रतिकल्पामनुप्राप्य दृष्टादेव महेश्वरम् ।

यंशाक्षेपीर्णमास्यार्धं स्नापयेदेकवासरम् ॥५०॥

प्रनङ्गतो रज बलान्तो क्षिप्राम्भमि च मानवः ।

न तस्य दुष्कृत किञ्चिदधिष्णुलोक स गच्छति ॥५१॥

मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवामेनयत्फलम् ।

तत्फलं प्राप्नुयाज्जन्तुःप्रतिकल्प क्षणादपि ॥५२॥

प्रतिकल्पे च कल्पान्ते मदेवाऽऽसीम्पुरी शुभा ।

तस्मात्प्रयंजनैःस्याता प्रतिकल्पा द्विजोत्तमा ॥५३॥

य एतस्यां महाभागाः प्रीतिं पुर्वन्ति मानवाः ।

न तेषां पश्यभेदोऽयं स्वप्नयणजायते क्षणात् ॥५४॥

यः शृणोति कथां पुण्यां प्रतिकल्पोद्भूयां शुभाम् ।

श्रावयेद्वा प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां ध्यपोऽस्ति ॥५५॥



प्रतिकल्पा की प्राप्ति करके तथा महेश्वर देव का दर्शन करके वंशास्र मास में पूर्णमासी तिथि में एक दिन स्नान करावे । प्रसङ्ग से रज से श्वान्त मानव शिप्रा के जल में स्नान करे तो फिर उसको कुछ भी दुष्कृत नहीं रहता है और वह सीधा घिष्णु भगवान् के लोक में चला जाता है ॥५०-५१॥ सहस्रों मन्वन्तरों से काशी के वास से जो फल प्राप्त होता है वही पुण्य-फल प्रतिकल्प में क्षण भर में जन्तु प्राप्त कर लिया करता है ॥५२॥ प्रतिकल्पों और कल्यान्त में पुरी सदा ही परम शुभ थी । हे द्विजो-राम ! इसी कारण से वह सब जनों के द्वारा प्रतिकल्पा एवात् हुई है ॥५३॥ जो महान् भाग्य वाले मनुष्य इसमें प्रीति किया करते हैं उनको यह कल्प का भेद क्षण भर में स्वप्न की भाँति हो जाता करता है ॥५४॥ जो इस परम पुण्यमयी कथा का श्रवण किया करता है जोकि प्रतिकल्प से उत्पन्न हुई परम शुभ है । श्रवण प्रयत्न पूर्वक श्रवण कराता है वह ग्रह-हत्या का अपोह कर दिया करता है ॥५५॥



### ६८—शिप्रामाहात्म्य एवं ज्वरानुग्रह वर्णन

एवंव्यासपुरीरम्या नामभूतामनातनी ।  
युगेयुगेपथाजाता तथाख्यातामयानघ ॥१॥  
भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो वेदविदांवर ! ।  
शिप्रायाश्च कथा पुण्या पवित्रां पापहारिणीम् ॥२॥  
सुन्दरकण्ठं समाख्यातं पिशाचमोचनं तथा ।  
नीलगङ्गा इतिप्रोक्ता कर्कराजमतः परम् ॥३॥  
पुष्कराणिचसर्पाणि गयातीर्थं मनुत्तमम् ।  
गोमतीकण्डमाख्यातं नाम्नाधर्मसरस्तया ॥४॥  
स्यात्सङ्गमजंतीर्थं शनेर्जन्मकथाशुभा ।  
च्यवनाश्रमेचपावार्ताथानानालयेशुभे ॥५॥  
पुष्पोत्तममहिमानं कालेकेन कथं भवेत् ।  
एतद्वेदितुमिच्छामि यत्ते मनसि वर्तते ॥६॥

महर्षि सन्नन्नुमारजी ने कहा—इस प्रकार से हे व्यास ! सनातनी नाम होने वाली रम्यपुरी जो हे धनध ! युग-युग में जैसी हुई थी उसी प्रकार की मैंने बतला दी है ॥१॥ व्यासजी ने कहा—हे वेदों के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ ! मैं पुनरपि आप में प्रवण करने की इच्छा रखता हूँ जो कि शिप्रा नदी की परम पुण्यमयी—अत्यन्त पवित्र और पापों के हरण करने वाली कथा है ॥२॥ आपने एक मुन्दर वृण्ड बतलाया था तथा विशाच मोचन कहा था । आपने नील गङ्गा बही थी और इनके प्रागे परम बरक रात्र वर्जित किया था । जब वृष्कर और अत्युत्तम गया तीर्थ तथा गोमती वृण्ड का वर्णन किया था । उसी प्रकार में धर्मरत्न नाम का वर्णन किया था ॥३-४॥ गगम से समुद्रफन तीर्थ ख्यात किया था तथा सनि के शुभ जन्म की कथा का वर्णन किया । अथर्व श्रुति की जो वार्ता है वह तथा शुभ नागावय में जो वार्ता थी वह बरन्दाई थी ॥५॥ पुण्योत्तम की महिमा का वर्णन किया । किन्तु किस समय में क्रिा के द्वारा बंस यह सत्र हुआ—यही मैं जानना चाहता हूँ आपके मन में भी हो क्षपया बहिए ॥६॥

शृणुष्याम ! महाभाग कथापापहरापरासु ।

यस्मिन्काले यथा जाना महाकालवनेशुभे ॥७

नामित वरसु । महोषुष्ठे शिप्राया महशी नदी ।

यस्यास्तीरे दणान्मुक्तिः किञ्चिद्वरारमेवनेनव ॥८

वैकुण्ठे जायते शिप्राजवरघ्नीयमुरालये ।

यमद्वारे च पापघ्नी पातालेऽमृतसम्भवा ॥९

वाराहकल्पेऽप्रीक्ता यिष्णुदेहेति नामतः ।

शिप्रावन्त्या गमाशाना कामधेनुसमुद्भवा ॥१०

यिचित्रमिदमाश्यासु भगवन्पुत्रिणसुत ! ।

दशनुमहं गि शिप्रायाः सदासेन कर्षा शुभासु ॥११

ब्रह्मरूपमाश्यासु भिक्षाथं व्यचरन्महीसु ।

महादेवो यिष्णुदासमा गवँलोनेपुसधंतः ॥१२

अप्रान्तभिक्षोमिक्षार्थो वैकुण्ठमगमद्विसु ।

यतस्त्वातिथ्यवेलायांअमन्देवो यतस्ततः ॥१३

लोकनिन्दारः क्रुद्धः क्षुधितोबहुवासुरैः ।

भिक्षावेहीतिनोब्रह्मन् क्षुधितोऽहं समागत ॥१४

श्री मन्त्रुमारजी ने कहा—हे महाभाग क्यात । इत पाषों के हरण करने वाली परमोत्तम कथा का तुम अब श्रवण करो । यह कथा प्रथमत्त शुभ महाकाल वन में जिस समय में त्रिम रीति में हुई थी ॥१३॥ हे वरत ! इस महो मण्डल के पृष्ठ पर शिप्रा के समान अन्य कोई भी नदी नहीं है । जिसके तट पर कुछ ही उमोष में रहकर सेवन करने से सागुभर में ही मुक्ति हो जाया करती है ॥१५॥ यह शिप्रा वैकुण्ठ में उत्पन्न होती है और सुरालय में श्वरो का हनन करने वाली है । यमराज के द्वार पर पाषों का विनाश किया करती है और पाताल में अमृत सम्भवा होती है ॥१६॥ यह आराह कल्प में नाम से विष्णुदेहा कही गयी थी और प्रवन्ती में यह शिप्रा कामधेनु से समुद्रमय वाली बड़ी गई है ॥१७॥ महर्षि ध्यासजी ने कहा—हे ऋषि शिष्ट ! हे भगवन् ! यह तो आपने पति अवमुत्त बात बतलाई है । अब आप इन शिप्रा नदी की कथा मंत्रप में कहने का पाप्य होते हैं ॥११॥ महर्षि मन्त्रुमारजी ने कहा—विशुद्ध आत्मा जैसे महादेव प्रभु सब लोकों में सभी और ब्रह्म कपाल को लेकर निदा के निचे महो में विचरण करते थे ॥१२॥ भिक्षार्थी विभु निशा प्राप्त न करने वाले वैकुण्ठ में गये थे । देव जहाँ वहाँ अरण्य करते हुए पाठिष्य के समय में गये थे ॥१३॥ सींगो की निम्दा में तरपर बहुत दिनों से भूख और अत्यन्त क्रुद्ध थे और यही करते थे—हे ब्रह्मन् ! निदा दो, मैं मृता यहाँ पर आगमा हूँ ॥१४॥

कपालञ्चकरे कृत्वा इत्युवाचपुनःपुनः ।

गृह्यताहरनिशाते ददामीतिहरिस्तदा ॥१५

इत्युक्त्वाकरमुच्यम्प तर्जन्यंगुलिमदर्शयत् ।

तदारुद्रसमाध्मातस्त्रिगुलेनाहनद्रुपा ॥१६

तदांगुलिसमुद्भूतं बहुशुश्रावशोणितम् ।  
 पूर्णपात्रचतेनाशुशङ्करस्यकरेस्थितम् ॥१७  
 तदोद्वेलितपात्राद्वै धाराजातासमन्ततः ।  
 तप्तस्थानात्समुद्भूतादिप्राश्रृंगधारसम्भवा ॥१८  
 बंकुण्डाञ्जाभवत्सद्यो नदीत्रैलोक्यपावनी ।  
 एवंदिप्रासरिच्छ्रेष्ठा त्रिपुलोकेषुविश्रुता ॥१९  
 ज्वरघ्नी च यथा प्रोक्ता तथा ध्यास ! अवीम्यहम् ।  
 यदा वाणामुरोर्दृश्ये कृष्णेन सह सयुगे ॥२०  
 योषयामास दैत्येन्द्रोऽनिरुद्धकृतहेलनः ।  
 सहस्रबाहुभिर्वीरो नानाप्रहरणोद्यतः ॥२१

कपाल को हाथ में लेकर बारम्बार यही बोल रहे थे । उस समय में भगवान् हरि ने कहा था—हे हर ! भिक्षा ग्रहण करो । मैं आपकी भिक्षा देता हूँ । इतना कहकर हाथ को उचल करके तर्जना अंगुलि प्रदर्शित की थी । उस समय में समाप्तमान रुद्र भगवान् ने क्रोध से विमूल के द्वारा हनन किया था ॥११-१६॥ उस समय में अंगुलि में समुत्पन्न बहुत—सा रुधिर स्तब्धित हुआ था । उससे भगवान् शङ्कर के हाथ में स्थित पात्र गोप्त पूर्ण हो गया । उस समय में पात्र से उद्वेलित होकर चारों घोर धारा बन गई । वहाँ पर उगी स्थान से रुधिर की धार से समुत्पन्न दिप्रा प्रकट हुई थी ॥१७-१८॥ तुरन्त ही यह नदी बंकुण्ड से त्रैलोक्य पावनी हो गई । इस प्रकार ने यह त्रिप्रा नदी परम श्रेष्ठ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गयी थी ॥१९॥ हे ध्यास ! त्रिम प्रकार से यह ज्वरघ्नी हुई उसे मैं बननाता हूँ । त्रिम समय में वाणामुर दैत्य धाकृष्ण के माथे रणशेख में युद्ध कर रहा था । अनिरुद्ध के द्वारा त्रिमया भवमान हो गया ऐसा यह दैत्यरुद्र बदा घोर वा घोर महान् बाहुओं से अनेक आशुओं से तमस्वित वा ॥२०-२१॥

तस्मात्क्रुद्धोऽसामुदेयः चक्रमादायमत्वरः ।

विच्छेददोः सहस्रनुशुरप्रेणाशुमिगाना ॥२२

सतदाभग्नसंकल्पश्छिन्नदोषचरणादितः ।  
 युद्धात्पराङ्मुखो भूत्वा शंकरं शरणाय यौ ॥२३॥  
 तदागतं महादैत्यं समीपे भयविवहलम् ।  
 विलोक्य कृपया विष्टो गतः संग्राममूर्द्धनि ॥२४॥  
 छित्त्वा बाहुसहस्रं वै दैत्यराजस्य संयुगे ।  
 क्रुद्धः कृष्णो महाबाहुः परसेनान्तको वली ॥२५॥  
 स्थितो यथाचलोऽभ्यासगतस्तत्र महेश्वरः ।  
 वारयामास कृष्णवंशरोघाश्च समाकिरन् ॥२६॥  
 धन्योन्यंतौ समासाद्य युद्धं कृत्वा च दारुणम् ।  
 शस्त्रास्त्रैश्च महाघोरैः सर्वप्राणिभयंकरैः ॥२७॥  
 वैष्णवास्त्रं तदा कृष्णसन्दधे हरनिघांसया ।  
 पाशुपतञ्चनामास्त्रसर्वसंहारकारकम् ॥२८॥

इस कारण से परम क्रोध में भरे हुए वासुदेव ने धीमता से संयुक्त हो चक्र ग्रहण कर लिया और आशुगामी क्षुरप्र से उनके सहस्र बाहुओं का छेदन कर दिया था ॥२२॥ उस समय में अपने सङ्कल्पों को भग्न कर देने वाला वह कटे हुए बाहुओं वाला और चरणों से भी पीडित होता हुआ युद्ध से पराङ्मुख होकर भगवान् दाहुर की शरणगति में गया था ॥२३॥ उस समय में भय से अत्यन्त विह्वल समीप में समागत महादैत्य को देखकर कृपा से समाविष्ट होकर संग्राम स्थल में सब से आगे पहुँच गये थे ॥२४॥ युद्ध में दैत्यराज की सहस्र बाहुओं का छेदन करके महाबाहु श्रीकृष्ण क्षत्रु की सेना का हनन करने वाले बलवान् अधिक क्रोधित हुए थे ॥२५॥ हे ध्यास ! श्रीकृष्ण जहाँ पर अब स्थित थे धीर अचल थे वही पर महेश्वर गये थे । बहुत से शत्रु के समूहों को समाकीर्ण करते हुए श्रीकृष्ण का शरित किया था ॥२६॥ उन दोनों ने परस्पर में प्राप्त होकर और परम दारुण युद्ध करके जो कि समस्त प्राणियों के लिये महान् भयक्षुर तथा अत्यन्त घोर शस्त्रास्त्रों से किया गया था ॥२७॥ उस समय में महादेव को मारने की इच्छा से श्रीकृष्ण ने वैष्णवास्त्र

का सन्धान किया और शिव ने सबका मंहार कर देने वाला अपना पानु-  
पत्र नाम वाला अस्त्र नैचाना था ॥२८॥

मन्दधैवैतदाराम्भुः कृष्णप्राणहरोत्सुकः ।  
हाहाकारस्तदाजातः सर्वलोकेषु श्रूयते ॥२९॥  
मोहनास्त्रंपुन कृष्णोहरोपरिमुमोचह ।  
तेनास्त्रेणनदागम्भुर्भोहिनीदेवमापया ॥३०॥  
जृम्माणः स्थितः संरये किञ्चित्कालं मुहुर्मुहुः ।  
सव्यसन्नः पुनर्जातो यदा रद्रो महाहवे ॥३१॥  
तदाक्रोधाभिभूतेन कृतोमाहेश्वरोज्वरः ।  
ललाटफलकात्तद्यो वीरभद्रो महाबलः ॥३२॥  
प्रिनेप्रस्त्रिनिरोह्लस्वस्त्रिपादोवक्ररुद्रकृतिः ।  
धुशोर्जटिलभस्माङ्गोमहावगाधिर्दुरत्ययः ॥३३॥  
कृष्णसेनानमामाद्य महादेवेन प्रेरितः ।  
प्राणिनाकदनचक्रे सर्वेषांकृष्णसङ्घिनाम् ॥३४॥  
परामृग परामग्नाज्वराभिघात पीडिता ।  
वभूव महता व्यास । सेना कृष्णेनपालिता ॥३५॥

उम समय में श्रीकृष्ण के प्राणों का हरण करने के लिये अस्तुत्सुक  
शिव ने उम समय में पानुपत्र का सन्धान कर लिया था । उस समय  
में हा हा कर मच गया था जो कि गभी सोहों में सुना गया था ॥२९॥  
पुनः श्रीकृष्ण ने हर के ऊपर मोहनास्त्र का परिमोचन किया । उम अस्त्र  
से उम समय में देव माया से गम्भुर्भोहिनी हो गये थे ॥३०॥ कुछ समय  
तक मुड रूप में बारम्बार से जंभाई भेते हुए स्थित हो गये थे । उम  
महा मुड में जिन समय में पुनः गंगा ( होश-रुवान) प्राप्त करने वाले हो  
गये थे ॥३१॥ उम समय में क्रोध में अन्निभ शिव ने माहेश्वर उज्वर  
समुत्पन्न किया । ललाट के फलक में तुम्हें महा वक्रबान् वीरभद्र उत्पन्न  
हुआ । वह वीरभद्र तीन नेत्री वाला-तीन मस्तकों वाला—छोटा बड़  
बाबा—तीन चरणों में तुम्हें—बर्बर बी आहृति वाला—गुड-बटापारो-  
अङ्गों में अस्त्र लेवन करने वाला—महान् व्याधि से गणविधत् भीर

दुरत्यय वा ॥३२-३३॥ श्रीकृष्ण की सेना को प्राप्त कर महादेव के द्वारा उसे प्रेरित किया गया था । अपने श्रीकृष्ण के साथी सह प्राणियों का विनाश किया था ॥३४॥ हे व्यास । श्रीकृष्ण के द्वारा धनिज सेना सहजा ही पराङ्मुख—परमन—ज्वर के अधिपान से पीड़ित हो गई थी ॥३५॥

तथाभूनाऽमालोऽयजुर्ममाणा इनादिताम् ।

स्वसेनाभग्नसकल्पांमाहेश्वरपीडिताम् ॥३६

मसर्जवेषणवंत्राप कृष्ण. परमकोपन. ।

तेनसहवेषणवन्ध माहेश्वरज्वरेणच ॥३७

अन्योन्यमभक्ष्युद्धं धोरं धोरनरं महत् ।

सग्राम बहू ऋक्त्वा भग्नोमाहेश्वरोज्वर ॥३८

मर्वलोकेषु गत्वा वं न शान्तिं प्रतिजग्मिद्वान् ।

महाकालवने रम्ये प्राप्नुस्तेनानिपीडित् ॥३९

निभग्नदक्षिप्रया ततःशान्तिपराययो ।

दृष्टुमाहेश्वर शान्तं ज्वर परमकोपनम् ॥४०

वेषणवोऽपिसमासाद्य तस्या मज्जनमाचरत् ।

तस्याः प्रभाववन्नष्टी ज्वरौ हरिहरोद्भवौ ॥४१

तस्मात्सर्वेषु कालेषु शारथी साऽभवदक्षणात् ।

ज्वराभिभूता ह्यासाद्यजनसः परमदुःखिना ॥४२

निभग्नजन्तिक्षिप्रया वसन्ति च समाहिता ।

नतेपांवाघते पीडाज्वरोद्भूताकदाचन ॥४३

सहस्रमुक्तं तदाव्यास ब्रह्मन्हरिहरेणच ।

येश्चुषवन्तिक्रिया विवर्षी नराश्चैकाग्रमानसा ॥

न तेषां जायते किञ्चिज्ज्वरसंज्ञापज भयम् ॥४४

ज्वर से पीड़ित वस प्रकार की अपनी सेना को देखकर परम कोप वाले श्रीकृष्ण ने वैष्णव ताप का गृहण किया था । उस वैष्णव ताप का माहेश्वर ज्वर के साथ परस्पर में परम धीर धीर उभरते ही अत्यन्त धीर

महान् युद्धं हुषा या । बहुत सप्राप्त करके माहेश्वर ज्वर भग्न हो गया  
 या ॥३६-३८॥ समस्त लोको में जाकर भी कहीं पर शान्ति प्राप्त नहीं  
 की थी । उससे अभिपीठित होकर रम्य महाकाल वन में प्राप्त हुआ  
 ॥३९॥ इसके पश्चात् वहाँ पर शिवा में निमग्न हो गया और शीघ्र ही  
 परम शान्ति को प्राप्त हुआ । परम क्रोध युक्त माहेश्वर ज्वर को शान्त  
 देखकर वैष्णव भी वहाँ आकर उस ने भी उसी नदी में मग्न किया ।  
 या । उसके प्रभाव से दोनों हरि और हर से उत्पन्न ज्वर नष्ट हो गये थे  
 ॥४०-४१॥ इसी लिये सभी समयों में वह क्षणभर में ज्वरघ्नी हो गई ।  
 ज्वर से अभिभूत परम दुःखित मनुष्य वहाँ प्राप्त होकर शिवा में निमग्न  
 किया करते हैं और समाप्ति होकर वाप किया करते हैं । फिर कभी भी  
 उनको ज्वर से होने वाला पोहा बाधा नहीं दिया करती है ॥४२-४३॥  
 हे ब्रह्मन् व्याम । उस समय में हरि और हर ने सत्य कहा था । जो  
 एकाग्र मन वाले मनुष्य हम दिव्य कथा का श्रवण किया करते हैं उनको  
 ज्वर के संसार से शून्य बाधा कुछ भी भय नहीं हुआ करता है ॥४४॥

### ६६—विष्णु स्तोत्र और ध्यान

विष्णुभक्तिः परा नित्या सर्वातिदुःखनाशिनी ।

सर्वं पापहरा पुण्या सर्वसुखप्रदायिनी ॥१॥

एषा शान्ती महाविद्या न देया यस्य यस्यचित् ।

कल्पनाय ह्यशिष्याय नास्ति कायानुताय च ॥२॥

ईर्ष्याय च सहाय कामिकाय कदाचन ।

सद्गतं सर्वं विघ्नन्ति यत्तद्वर्षं सनातनम् ॥३॥

एतद्गुह्यतमं नास्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ।

पवित्रं च पवित्राणां पावनानां च पावनम् ॥४॥

विष्णोर्नामसहस्रं च विष्णुभक्तिकरं शुभम् ।

सर्वमिदिकरं नृणां मुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥५॥

ॐ अस्य श्रीविष्णुमह्यनामस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेयऋषिः ।

विष्णुदेवताअनुष्टुप्छन्दामर्वकामावाप्ययोजयेविनियोगः ॥६॥



सज्जनकन्दनीलं दक्षितोदारकीलं,  
करतलघृतशैलं तेषुबाद्यं रसालम् ॥७  
व्रजजन्कुलपाकं कामिनीकेलिकोसं,  
तन्मत्तुलामिमालं नौबि गोपालवालम् ॥८

महर्षि माहर्षिभ्य जी ने कहा—ममवात् विष्णु की भक्ति परम प्रदान है जो निम्ना और सभी दुःखों की घाति का निदान करने वालो है। यह समस्त पापों के हरण करने वाली—पुष्पमयी और सब सुखों के प्रदान करने वाली है ॥१॥ यह बाह्यी महा विद्या है। इसको चाहे किम किसी को नहीं देना चाहिए। जो छुपाने हा—मघिष्य ही—नास्तिक हो तथा मूडा हो उसे कभी न देने ॥२॥ जो ईर्ष्यालु हो—क्या हो और कामुक हो उसे भी इन विद्या को नहीं देना चाहिए। अपने रहने वाले सब का विध्य कर देगी है—यही मन्दातर धर्म है ॥३॥ यह परम गोपनीय धाम्प है जो सब पापों का नाशक है यह पवित्रों में परम पवित्र है और पापनों में वरम पावन है ॥४॥ ममवात् विष्णु के सख नाम परम शुभ विष्णु की भक्ति के करने वाले हैं। मनुष्यों की समस्त मिद्धियों के के करने वाले तथा भृक्ति और मुक्ति दोनों ही में प्रदान करने वाला है ॥५॥ इस विष्णु सख नामक स्थोत्र मन्त्र का पाकेंद्रंग श्रेयि हैं—विष्णु देवता है—प्रगुष्टुप् छन्द है—समस्त कामनाओं को प्राप्ति के लिये ही, नष्ट में विनियोग है ॥६॥ ध्यान—ब्रह्म से परिपूर्ण मेघ के समान श्लोदिव्यु का नीला बलुं है—उदारता और ओम से दक्षित स्वल्प है—हाथ पर ध्वन को पारण करन वाले है—रामयी वेणु का वादन करने वाले है—व्रजवासियों के कुल के मनुष्यों का सब परिपालन करने वाले हैं—कामिनीयो की केलि में प्रतीव चचन है—उषण बुद्धि की माना को धारण करने वाले गोपाल के वान करुण्य को में प्रणम करता है ॥७-८॥

अविद्या विष्णुह पावताः सदात्मा सबभावनः ।

सर्वं वा सर्वं रोनायो भूतपानाःश्लयाशयः ॥६

अनादिनिघनो देवः सर्वज्ञः सर्वसम्भवः ।  
 सर्वध्यापी जगद्धाता सर्वशक्तिधरोऽनघः ॥१०॥  
 जगदधीज जगत्स्रष्टा जगदीशो जगत्पतिः ।  
 जगद्गुरुजगन्नाथो जगद्धाता जगन्मया ॥११॥  
 सर्वाऽऽकृतिधरः सर्वविश्वरूपी जनादेनः ।  
 अजन्मा शाश्वतो नित्यो विश्वाधारो विश्वु प्रभुः ॥१२॥  
 बहुरूपैकरूपश्च सर्वरूपधरोऽहम् ।  
 कालाग्निप्रभवो वायुप्रलयान्तकरोऽक्षयः ॥१३॥  
 महार्णवो महामेषो जलबुद्बुदसम्भवः ।  
 सस्कृतो विकृतो मत्स्यो महामत्स्यस्तिमिङ्गिला ॥१४॥

धन विष्णु के सहस्र नामावली का प्रारम्भ होना है—विश्व स्वरूप धारण करने वाले—विषयेन्द्रियों के स्वामी—सबके प्राप्ता—सब पर कृपा करने वाले विष्णु हैं । सबत्र गमन करने वाले—सर्वरी के स्वामी—भूतपामो के धारण करने वाले धारण हैं ॥१०॥ धारण और अन्त से रहित है । देव—सभी बुद्ध के ज्ञाता, सबकी समुत्पत्ति करने वाले हैं । सर्वत्र सब में ध्यापक—इस जगत् के धारण—सभी प्रकार की शक्तियों के धारण करने वाले तथा निष्ठाप हैं ॥१०॥ इस जगत् की उत्पत्ति के योत्र स्वरूप हैं—जगत् के गृहण करने वाले—जगत् के स्वामी और इस जगत् की रक्षा करने वाले हैं । जगत् को जान देने वाले गुरु—जगत् के नाथ—जगत् के धारण और समूर्ण जगत् के स्वरूप धारण हैं ॥११॥ सभी प्राकृतियों के धारण करने वाले—समूर्ण विश्व के स्वरूप धारण तथा जनों की पीडा को दूर करने वाले हैं । सभी जगत् न धारण करने वाले—निरन्तर स्थित रहने वाले—नित्य—विश्व के धारण—ध्यापक और वस्तुमकतुमभयावस्तु समर्प प्रभु हैं । अर्थात् करने न करने और विरहित करने की शक्ति से समन्वित समर्प है ॥१२॥ बहून से स्वरूपी से समुत्पन्न—एक ही रूप धारण करने वाले—गवता स्वरूप धारण करने वाले—हर—कालाग्नि के समुत्पन्न करने वाले—वायु—प्रलय के अन्त करने वाले और क्षय से रहित हैं ॥१३॥ महान् गागर—महान् मैव—जत्र के बुनबुने से समुत्पन्न—

संस्कार सम्पन्न—विचार युक्त—मत्स्य—महात् मत्स्य स्वल्प और  
तिमिङ्गल हैं। सदाका भक्षण करने वाली सागर में एक परम विद्यान  
मछली को विमिङ्गल कहते हैं ॥१४॥

अनन्तोवासुकि.शेषोचराहोषरणीधरः ।

पयः क्षीरविवेकाढयोहंसोहैमगिरि स्थितः ॥१५॥

ह्यग्रोवो विशालाक्षो ह्यकर्णो दयाकृतिः ।

मन्यतो रत्नहारी च कूर्मो धरधराधरः ॥१६॥

विनिद्रो निद्रितोनन्दी सुनन्दोनन्दनप्रियः ।

नाभिनालमृणालीच स्वयभूदचतुराननः ॥१७॥

प्रजापतिपरो दक्षः सृष्टिकर्ता प्रजाकरः ।

मरीचिः कश्यपोदक्ष सुरामुरगुह कविः ॥१८॥

वामनो वाममार्गी च वामकर्मा बृहद्वपुः ।

श्रेलोक्यकर्मणो दीपो वलियज्ञ विनाशन ॥१९॥

यज्ञहर्ता यज्ञकर्ता यज्ञशो यज्ञमुग्धिवुः ।

महस्राशुभंगो भानुर्विचस्वानरविरंशुमान् ॥२०॥

अनन्त (शेष)—वासुकि—शेष—धरणी को धारण करने वाले—वराह  
हैं। दूध और जल के विवेचन से सुसम्पन्न हस हंसगिरि पर स्थित रहने  
वाले हैं ॥१५॥ ह्यग्रोव—विशाल खोचनो वाले—हय के समान कर्णों  
वाले—और धनुष के सदृश आकृति वाले हैं नभवा दया के आकार से  
युक्त हैं—मन्यन करने वाले—रत्नों का हरण करने वाले—कूर्म—धरा को  
धर धर धारण करने वाले हैं ॥१६॥ निद्रा से रहित—परम निद्रा वाले—  
आनन्द स्वल्प—सुनन्द और नन्दन प्रिय हैं। नाभि के कमल ताल के  
मृणाल वाले हैं—स्वय ही समुत्पन्न (प्रज्ञा) और चार मुत्रो वाले हैं।  
धर्मान् प्रज्ञा भी विष्णु भगवान् का ही एक स्वरूप है ॥१७॥ परम प्रजा-  
पति—दक्ष—सृष्टि के करने वाले—प्रजाधों को समुत्पन्न करने वाले—  
मरीचि—कश्यप—दक्ष—सुरों के गुरु तथा असुरों के गुरु हैं। धर्मान्  
सब प्रजापतियों और ऋषियों का स्वल्प ही विष्णु का स्वरूप है ॥१८॥  
वामन—वाम मार्ग वाले—वाम कर्म करने वाले तथा बृहन् शरीर से

समन्वित है । तीनों तीर्थों में संक्रमण करने वाले—दीप भस्मति प्रकाश  
दाता और राजा यज्ञि के यज्ञ का विनाश करने वाले हैं ॥१६॥ यज्ञों के  
हरण करने वाले—यज्ञों के करने वाले—यज्ञों के स्वामी—यज्ञों में भोग  
द्रव्य करने वाले—ध्यायक—सहस्र क्रियाओं से युक्त (गुरु) —भग-मानु  
विदस्वान्—भगमान्—रवि हैं ॥२०॥

तिग्मतेजाश्चाल्पतेजाः कर्मसाधी मनुयंम ।

देवराजः सुरपतिर्दानवारिः शचीपतिः ॥२१

अग्निर्वायुस्तस्रो वह्निर्वैरुणा यादसापतिः ।

नेत्रं तोनादनोऽनादीरक्षपञ्चोधनाधिपः ॥२२

फुपेरोऽत्रित्तवान्वेगो वसुपालो विलासकृत् ।

अमृतसखणः सोमः सोमपानकरः सुधीः ॥२३

सर्वोपधिकरः श्रीमान्निराकरदिवाकरः ।

विपारिविपहर्ता च विषकण्ठघरोगिरिः ॥२४

नीलकण्ठी वृषी रुद्रो भालगन्द्रो ह्यभापतिः ।

शिवः शान्तो वशी वीरो ध्यानी मानो च मानदः ॥२५

कृमिक्रीटो मृगध्यापी मृगहा मृगलाञ्छनः ।

यदुको भैरवो बालः कपाली दण्डविग्रहः ॥२६

श्मशानस्थानी मांसाशा दुष्टनाशी वरान्तकृत् ।

योगिनीश्रासको योगी ध्यानस्थो ध्यानवानन ॥२७

तीर्थग तेज से युक्त—स्वल्प तेज वाले—भरते किये हुए कर्मों को  
देने वाले—मृ-यम-देवों के राजा—मुरों के राजा—दागवों के राजा—  
दण्डाणी के पति—अग्नि—वायु के मया—वह्नि—वहन—यादवों के  
पति—नेत्रं—नादन—धनार्थि—रक्षपञ्च और कुवेर हैं ॥२१-२२॥  
कुपेर—विश्रुत नामें—वैश्व स्वल्प—वसुपाल—और विद्यापी के करने  
वाले हैं । अमृत के रखन करने वाले—सोम—सागरत का पीने वाले—  
गुपी हैं ॥२३॥ मण्डूकं धीपथिषों के करने वाले, धी मण्डूक निताहर  
(भ-इला) और दिवाहर (गुरु) हैं । विष के शत्रु, विष के हरण करने

धामे, विष (गरल) को कण्ठ में धारण करने वाले—गिरि हैं ॥२४॥  
 नीलकण्ठ—वृष वाले—छद्र—नाल में चन्द्र को धारण करने वाले, दमा  
 के स्वामी—विष—शान्त स्वरूप—पशु में रहने वाले—वीर—ध्यान में  
 भग्न—भानयुक्त और दूसरो को मान के देने वाले हैं ॥२५॥ कृमि शीट-  
 मृगो के ध्याय—पशुओं के हनन करने वाले—मृग के चिह्न वाले  
 (चन्द्रमा)—बटुक वान स्वरूप भंरव (शिद के प्रधान गण) नाल-  
 कपाल धारी और दण्ड के विषह वाले हैं ॥२६॥ इमनाम में निवास करने  
 वाले—गर्भ क्र प्रदान करने वाले—दुष्टों के नाशक—वरो के अन्त करने  
 वाले हैं । योगियों को भासदाता—योगी-ध्यान में स्थित और ध्यान  
 प्राप्त हैं ॥२७॥

सेनातीः सेनदः स्कन्दो महाकालो गणाधिपः ।

आदिदेवोगणपतिविघ्नहा विघ्ननाशनः ॥२८

ऋद्धिसिद्धिप्रदोदन्ती भालचन्द्रोगजननः ।

नृसिंह उग्रयंष्ट्रन नखी दानवनाशकृष् ॥२९

प्रह्लादपोषकर्ता च सचंदैत्यजनेश्वरा ।

शालभः सागरः साक्षी कल्पद्रुमविकल्पकः ॥३०

हेमदो हेमभागी च हिमकर्ता हिमाचलः ।

भूषरो भूमिदोमेहः कैलासशिखरो गिरिः ॥३१

लोकालोकान्तरो लोकी विलोकी भुवनेश्वरः ।

दिवपालो दिवपतिदिव्यो दिव्यकायो जितेन्द्रियः ॥ २

विष्णो रूपवान् रागी नृत्यगीतविशारदः ।

हाहा हूहूश्चिप्ररथो देवर्षिनरिद्धः सखा ॥३३

विश्वेदेवाः माध्यदेवा घृताशीश्च चलोऽचलः ।

कपिलो जल्पको वादी दत्तो हैहय संह्वराट् ॥३४

सेनाती (सेना के अधिपति कासिकेय) —सेना देने वाले, स्कन्द, महा-  
 काल, गणों के स्वामी, आदि देव, गणपति (भरोध), विघ्नो के हनन करने  
 वाले, विघ्नों के नाशक हैं ॥२८॥ ऋद्धिओं और सम्पूर्ण सिद्धियों के  
 प्रदान करने वाले, दन्ती (एक दांतधारी), मस्तक में चन्द्रमा को धारण

करने वाले, गज के समान मुख-से संयुक्त, नृसिंह, उग्र दाहों वाले, नखों से  
 (विनाल एवं तीक्ष्ण नखों वाले) युक्त, शनयो के विनाशकारी हैं ॥२६॥  
 प्रह्लाद के पोषण करने वाले, समस्त देवयजनों के स्वामी, शत्रुभ, शागर,  
 साक्षी कल्प वृक्ष के विकल्प वाले अर्थात् समस्त मन्त्रोद्यो को पूरण करने  
 वाले कल्पद्रुम के ही सरदा हैं ॥२७॥ हेम के दाता, हेम के रागी, हिम  
 के करने वाले, हिमवान् पर्वत, भूधर, भूमि के दाता, सुमेरु, कंलाश वा  
 गिखर, गिरि हे ॥२८॥ लावालाक पर्वत के घन्तर, लोकी, विलोकन  
 करने वाला, भुवनो के स्वामी, दिशाओं के पात्रक, दिशाओं के पति, परम  
 उत्तम, उत्तम आकृति तथा वाया वाले और शिद्वियों को जीतने वाले हैं  
 ॥२९॥ विगत रूप वाले, परम सुन्दर रूप से सयुक्त, राग युक्त, वृष्य  
 ओर गीरी के महान् मनीषी हैं । हाहा हूह, चिन्मरण, दक्षिण मारद ओर  
 सदा हैं ॥३०॥ विन्देदेवा, साध्य देव, घृणाक्षी, बल, अचल (बहु ओ  
 बलाशमान न हो), वपिल, अस्वक, नादी, दत्त, दैह्य और सद्गुरु  
 हैं ॥३१॥

वसिष्ठो वामदेवश्च मत्पतिप्रवरो भृगुः ।

जामदग्न्यो महावीरः क्षत्रियान्तकरो ह्यपि ॥३५

हिरण्यकतिपुश्च बहिरण्यारो हरप्रियः ।

अगस्तिः पुलहोऽथः पौलस्त्यो रायणोऽथः ॥३६

देवारिस्तापमस्तापी विभीषण हरिप्रियः ।

तेजस्वी जदस्तेजो ईशो राजपतिः प्रभुः ॥३७

दामरथो राघवो रामो रघुवज्रधियधनः ।

नीतापतिः पति श्रीमान् ब्रह्मणो भक्त यत्नलः ॥३८

सन्नद्धः कवधो मङ्गी चौरवामा दिगम्बरः ।

किरीटी कुण्डलो चापी दाह्यचक्रा गदाधरः ॥३९

कौतल्यानन्दनोऽशरो भूमिदायी गृहप्रियः ।

गोमित्रो भरतो बालः शत्रुघ्नो भरताग्रजः ॥४०

लक्ष्मणा परवीरानः स्त्रीनहायः कपीश्वरः ।

दनुमान् शराजस्य गुणोद्योयालिनाननः ॥४१

दूतप्रियो दूतकारी हृषङ्गदो गदतां वरः ।

भनध्वंसी वनी वेगो वानरध्वजलांगुली ॥४२

वसिष्ठ, वामदेव और सप्तपियो मे परम श्रेष्ठ भृगु हैं । जामदग्न्य, महावीर और क्षत्रियो का अन्त करने वाले ऋषि परशुराम) हैं ॥१५॥  
हिरण्यकशिपु, हिरण्यशक्त-हर का प्रिय, अगस्ति, पुलह, दक्ष, पौनस्त्य, रावण, घर हैं ॥३६॥ देवारि, तावस, तापी, विभीषण और हरि के प्रिय, तेजयुक्त, तेज को देने वाले, तेभी, ईश, राजपति और प्रभु हैं ॥३७॥ दशरथ के पुत्र, राघव, राम, रघु के वश की वृद्धि करने वाले, सीता के पति, स्वामी, धीमान्, ब्रह्मप्य (ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले), भक्तो पर प्रेम करने वाले हैं ॥३८॥ सप्तद्व, कवच धारी, सङ्गयुक्त, घोरो के वस्त्रो वाले, दिगम्बर (नग्न), किरीट पहनने वाले, कुण्डलों को धारण करने वाले, वाय से युक्त, बाह्य और सुदर्शन चक्र कं धारी, गदा को धारण करने वाले हैं ॥३९॥ कौशल्या को आनन्द देने वाले पुत्र, उदार, भूमि पर शयन करने वाले, गृह के प्यारे, सुमित्रा पुत्र, भरत, बाल शत्रुघ्न और भरत के श्रेष्ठ भाई हैं ॥४०॥ लक्ष्मण, दूतरो के घोरो का हनन करने वाले, स्त्री को सहायता से युक्त, कपियो में ईश्वर, हनुमान्, रीछों का राजा जाम्बवान्, सुप्रोव और दालि का वच करने वाले हैं ॥४१॥ दूत प्रिय, दूतों के करने वाले, अङ्गद, बालने वालों में श्रेष्ठ, वनों का विध्वंस करने वाले, वनी, वेग और वानरों के ध्वज का सागुली हैं ॥४२॥

रविदंष्ट्री च लङ्काहा हाहाकारो वरप्रदः ।

भवमेतु भंहासेनुवद्धसेत् रमेश्वरः ॥४३

जानकीवल्लभः कामी किरीटो कुण्डली खगो ।

पुण्डरीक विशालाक्षो महाबाहुर्घनाकृतिः ॥४४

चञ्चलश्चपला कामी वामी वामाङ्गवत्सलः ।

स्त्रीप्रियः स्त्रीपरः स्त्रैणः स्त्रियो वामाङ्गवासकः ॥४५

जितवैरो जितकामो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।

शान्तो दान्तो दयारामो ह्येकस्त्री व्रतधारकः ॥४६

मात्त्विकः सत्त्वितस्थानी मदहा क्रोधहा खरः ।

बहुराक्षसनम्बीतः सर्वराक्षसनाशकृत् ॥४७

रावणारी रणक्षुद्रदशमस्तकच्छेद्रकः ।

राज्यकारी यज्ञकारी दाता भोक्ता तपोधनः ॥ ८

अयोध्याधिपतिः कान्तो वैकुण्ठोऽपुच्छविप्रहः ।

सत्यव्रतो श्री श्री शूरस्तपी सत्यफलप्रदः ॥४९

रवि के दृष्टाभा बाया, सद्गुण का हृत्न कर्ता, हा हा कार, वरदान के देने वाले, इत सभार से पार होने का सेतु, महान् सेतु भीर रत्ना (नरयो) के ईश्वर हैं ॥४३॥ शान्तों के प्रिय, कामी, क्रिरीट धारी, कुपल पहिने वाले, सभी अर्थात् गरुड पर मन्त्री करने वाले, पुण्डरीक के महान् विशाल नेत्रों से मनुज, बड़ी भुजाओं वाले, मेष के समान आकार वाले हैं ॥४४॥ परम अचल, अपन, काम युक्त, कामी वाले, कामार्थों के भागों पर प्रेम करने वाले, स्त्रियों के प्रिय, स्त्री पराधन, स्त्रियों में ही रहे रहने वाले, स्त्री के काम अङ्ग में काम देने वाले हैं ॥४५॥ वैश्यों को जीतने वाले, काम पर विजयी, क्रोध को पराजित करने वाले, इन्द्रियों को पन में रखने वाले, परम शान्त, समनशील, दयाराम धीर एक ही स्त्री के पन को धारण करने वाले हैं ॥४६॥ परम सार्विक, मरु के संस्थान वाले, मरु के कर्ता, प्रोच के हरण कर्ता, खर, बहूत, से राक्षसों में सम्बीत धीर ममस्त शस्त्रों के भाग करने वाले हैं ॥४७॥ रावण के शत्रु, रण में क्षुद्र दश मार्यों के धेदन करने वाले, राज्य करने वाले, यज्ञों के कर्ता, दाता देने वाले, भोग करने वाले धीर तप को ही पन मानने वाले हैं ॥४८॥ अयोध्या के स्वामी, बा ल (सुन्दर, वैकुण्ठ, अकुण्ठित विप्रह वाले, मरु के पन में ममशिव, अश्वपारी, गुर, तप करने वाले मरु पन के दाता हैं ॥४९॥

सर्वेसाशी स्वर्गं च सर्वप्राणहरोऽन्ययः ।

प्राणाश्वाथाप्यपानश्च व्यानीदाना समानकः ॥५०

मार्गः कृत्स्न कूर्मदन देवदत्तो धनञ्जयः ।

गर्वप्राणहिदो ध्यायी योगधारणधारकः ॥५१



तत्त्वविशतपक्षस्तत्सो सर्वतत्त्वविशारदः ।  
 ध्यानस्थो ध्यानशाली च मनस्वी योगयित्तमः ॥५२  
 ब्रह्मज्ञो ब्रह्मदो ब्रह्मशाताचक्रहासम्भव ।  
 आध्यात्मविद्विदोदीपो ज्योतिरूपो निरञ्जनः ॥५३  
 ज्ञानबोऽज्ञानहा ज्ञानी गुरुः शिष्योपदेशकः ।  
 सुशिष्यः शिक्षितः शाली शिष्यशिक्षाविशारदः ॥५४  
 मन्त्रदो मन्त्रहा मन्त्री तन्त्री तन्त्रज्ञमपिपः ।  
 मन्त्रमन्त्री मन्त्रविन्मन्त्री मन्त्रमन्त्रैकदञ्जनः ॥५५  
 मारणो मोहणो मोही स्तम्भोच्चाटनकृत्यलः ।  
 घट्टनापो विमायञ्च महामायादिमोहकः ॥५६  
 सहस्रीशः सहस्रपात्सहस्रबदनोज्ज्वलः ।  
 सहस्रनामानन्ताक्षःसहस्रबाहून्मोऽस्तुते ॥५७

सबके द्रष्टा—सबके गमनशील—सबके प्राणों का हरण करने वाले—  
 घण्टाप (नाथ रहित)—प्राप्त—अपान—ध्यान—उदात्त और समान है ।  
 ये शरीर में रहने वाली पाँच प्रकार की वायु है जो जीवन के आधार हैं  
 ॥५०॥ नाथ—शुक्ल—कृष्ण—द्वैत—घनउदय—( ये पाँच अन्व वायु  
 हैं )—सब के प्राणों के ज्ञाता—ध्यायी—योग के धारण करने वालों के  
 धारक है ॥५१॥ तत्वों का ज्ञान, तत्त्व प्रदान करने वाला, तत्त्व से समुत्प  
 न्न तत्वों के विगारक, ध्यान में स्थित, ध्यानवाली, मन को नियन्त्रित  
 रखने वाले और परम श्रेष्ठ योग के वेत्ता है ॥५२॥ ब्रह्म के ज्ञाता, ब्रह्म  
 ज्ञान के दाता, ब्रह्म को परिष्कारने वाले, ब्रह्म से सम्भव, अध्यात्म वेत्ताओं  
 के ज्ञाता, दीप स्वरूप, ज्योति रूप और निरञ्जन है ॥५३॥ ज्ञान के  
 दाता, ज्ञान से हर्षा, ज्ञान से मुक्त, अज्ञान के नाशक, शिष्यों को उपदेश  
 देने वाले, सुशिष्य, शिक्षित, शाली समुत्प और शिष्यों की शिक्षा के  
 विशारद ( महा पण्डित ) है ॥५४॥ मन्त्रों के दाता, मन्त्रों के हनन करने  
 वाले, मन्त्रों से समुत्प, तन्त्र युक्त, तन्त्र जनों के प्रिय, हस्त मन्त्रों वाले,  
 मन्त्रों के वेत्ता, मन्त्री और मन्त्र तथा मन्त्रा के एक ही मन्त्रन करती

वाले हैं ॥५५॥ मारण करने वाले, मोहन करने वाले, मोह युक्त, स्तम्भन और उन्वाटन करने वाले, खल, बहुत माया से समन्वित, बिना माया वाले और महा माया को मोह करने वाले हैं ॥५६॥ सहस्र नेत्रों वाले, सहस्र चरणों से युक्त, महस्र मुख वाले, अनीय उज्ज्वल, सहस्र नामों वाले, अनन्त नेत्रों से युक्त, और सहस्र बाहुओं से संपुत हैं ऐसे घापकी सेवा में नमस्कार समर्पित है ॥५७॥

विष्णोर्नामसहस्रं च पुराणं वेदमम्मतम् ।

पठित्व्य सदा भक्ते सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥५८

इति स्तवाभिद्युक्तानां देवानातत्र वेद्विज ।

प्रत्यक्षं प्राह भगवान्वरदा वरदाचित् ॥५९

त्रियता भोः सुरा ! सर्वैवरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ।

तत्सर्वं सम्प्रदास्यामि नाऽत्रकार्या विचारणा ॥६०

वरदोऽसि यदा विष्णो वरमेतं ददस्व न ।

अदितेर्गर्भसंभूत शक्रस्याऽप्यनुजोभव ॥६१

इति संप्राप्तितो देवैर्गर्भशक्रपुरोगमैः ।

तथैरयुवतश्च भगवास्तत्रैवान्तरवापत् ॥६२

ततः कतिपये काले भगवानदितिनन्दनः ।

विष्णुरुपधरोऽनन्तोवामनश्चाञ्चवामनः ॥६३

यह भगवान् विष्णु के नामों का सहस्र पुराण है तथा वेशों के द्वारा गमात है । इस सदा ही भक्तों को पढ़ना चाहिए । यह अमङ्गल से रहित सभी प्रकार के मङ्गल करने वाला है ॥५८॥ हे द्विज ! इस स्तव से युक्त देवों को बहों पर बरशों के द्वारा समन्वित वरदान देने वाले भगवान् ने प्रत्यक्ष रूप से कहा था ॥५९॥ श्री भगवान् ने कहा—हे सुर गण ! त्रियता भोः सुरा ! सर्वैवरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः । तत्सर्वं सम्प्रदास्यामि नाऽत्रकार्या विचारणा ॥६०॥ वरदोऽसि यदा विष्णो वरमेतं ददस्व न । अदितेर्गर्भसंभूत शक्रस्याऽप्यनुजोभव ॥६१॥ इति संप्राप्तितो देवैर्गर्भशक्रपुरोगमैः । तथैरयुवतश्च भगवास्तत्रैवान्तरवापत् ॥६२॥ ततः कतिपये काले भगवानदितिनन्दनः । विष्णुरुपधरोऽनन्तोवामनश्चाञ्चवामनः ॥६३॥ यह भगवान् विष्णु के नामों का सहस्र पुराण है तथा वेशों के द्वारा गमात है । इस सदा ही भक्तों को पढ़ना चाहिए । यह अमङ्गल से रहित सभी प्रकार के मङ्गल करने वाला है ॥५८॥ हे द्विज ! इस स्तव से युक्त देवों को बहों पर बरशों के द्वारा समन्वित वरदान देने वाले भगवान् ने प्रत्यक्ष रूप से कहा था ॥५९॥ श्री भगवान् ने कहा—हे सुर गण ! त्रियता भोः सुरा ! सर्वैवरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः । तत्सर्वं सम्प्रदास्यामि नाऽत्रकार्या विचारणा ॥६०॥ वरदोऽसि यदा विष्णो वरमेतं ददस्व न । अदितेर्गर्भसंभूत शक्रस्याऽप्यनुजोभव ॥६१॥ इति संप्राप्तितो देवैर्गर्भशक्रपुरोगमैः । तथैरयुवतश्च भगवास्तत्रैवान्तरवापत् ॥६२॥ ततः कतिपये काले भगवानदितिनन्दनः । विष्णुरुपधरोऽनन्तोवामनश्चाञ्चवामनः ॥६३॥

॥६१॥ देवों के द्वारा इस प्रकार से सम्प्रापित होते हुए जिन देवों में ब्रह्मा और इन्द्र पुरोगामी थे । तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होवे—यह कहकर भगवान् विष्णु वही पर प्रन्तर्हित हो गये थे ॥६२॥ इसके अनन्तर कुछ काल में भगवान् विष्णु स्वामी अदिति के पुत्र हुए थे । जो अनन्त थे तथा बौना होने से वामन नामधारी हुए थे ॥६३॥

वलिर्वैरोचनो व्यास वाञ्छिमेषशतेन च ।

इजि द्विजवरश्रेष्ठ! इन्द्रराज्यजिहीषया ॥६४

ऋत्विजं कश्यपं कृत्वा होतारं भृगुसत्तमम् ।

ब्रह्मा तत्राभवच्चैवस्वयमेवपितामहः ॥६५

अध्वर्युं भगवानत्रिर्व भूव मुनिसत्तमः ।

उद्गाता नारदश्चैव वसिष्ठश्च समासदः ॥६६

ये यत्र विहिताः सर्वे तत्र तत्र मुनीश्वराः ।

अलिस्तत्राऽभवद्वचास दीक्षितो राजसत्तमः ॥६७

एव प्रवर्तमानेषु यज्ञेषु मुनिसत्तम ।

हूयता मुज्यता चैव दीयतां धीयतां तथा ॥६८

इति वाचः शुभास्तत्र श्रूयन्ते च द्वितीत्तम ।

तस्मिन्काले सुचितेषु वामनोऽगाच्छुचिस्मितः ॥६९

हे व्यास ! विरोचन का पुत्र वलि भी वाञ्छिमेष यज्ञों के द्वारा यजन कर रहा था । हे द्विज वरो मे श्रेष्ठ ! इस वलि ने यह यजन इन्द्र के राज्य के हरण करने की ही इच्छा से किया था ॥६४॥ उस वलि ने यज्ञ में कश्यप को तो ऋत्विज नियुक्त किया था और भृगु षोष्ठ को होता बनाया था तथा पितामह ब्रह्माजी ही स्वयं उस यज्ञ में ब्रह्मा हुए थे ॥६५॥ भगवान् अत्रि उसमें अध्वर्युं थे जो कि परम षोष्ठ मुनि थे । नारद उद्गाता थे और वसिष्ठ समासद थे ॥६६॥ जो जहाँ पर विहित किए थे वही-वही पर सब मुनीश्वर अपना २ कर्म कर रहे थे । वहाँ यज्ञ में हे व्यास ! अष्टम राजा वलि दीक्षित हुआ था ॥६७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से यज्ञों के प्रवर्तमान होने पर "हूयतां, भुज्यतां, दीयतां,

धीमतां" अर्घ्यां आर्हृन्विद्यां शान्तां वा हवन करो, भोजन कराओ, दान दो, धारण करो—इस प्रकार ही कालिदास जो परम गुप्त थीं वहाँ पर मुनाई दे रही थीं । हे द्विजोत्तम ! उन्ही समय में उन कुबिन्दित्र यज्ञों में मुनिस्मित बाने धामन जा गये थे ॥६८-६९॥

पठमानो मुख्याग्नेन धानुर्वेदिकमन्त्रकाम् ।

द्वारे तिष्ठति राजेन्द्र धामनो द्विजसत्तमः ॥७०

प्रतिहारेण वै व्यासो सर्वो राज्ञेनिवेदितम् ।

उत्याय च महाराजोवन्निवरोचनिस्तदा ॥७१

अर्घ्यमादाय तत्सर्वं जगाम स्वैः सभासदैः ।

पूजयित्वा यथान्यायं धामन लोकभावनम् ॥७२

धानयित्वा सभामध्ये दत्त्वाऽऽमनपरिग्रहम् ।

शुनस्त्वागमनं ब्रह्मन्किन्तेऽभीष्टं ददामि वै ॥७३

राजराजाखिला सृष्टिर्भ्रंशणः परमेष्ठिनः ।

ततोऽहमागतो भूमन्गङ्गा चं व दिदृक्षया ॥७४

चरणस्य च यज्ञो वै दृष्टो मे वै पुराऽनघ ! ।

यक्षाधिपतेनूनं च यज्ञं वैदृष्टवानहम् ॥७५

धर्मस्यापि च यज्ञो मे प्रजापतेऽसत्तम ।

वायोयज्ञो महाराज दृष्टोमेविधिपूर्वकः ॥७६

राजर्षीणां च ये यज्ञा दृष्टास्तेऽपि महाश्रुत ! ।

यादृशं वै महाराज यज्ञं ते दृष्टवानहम् ॥७७

ईदृशो राजराजेन्द्र न भूतो न भविष्यति ।

तस्मादिहागतो राजन् ! याचनाप्यनराऽनघ ॥७८

बन्धुप्य बारी बेशी के मन्त्रों का गुप्त से पाउते हुए एक परम श्रेष्ठ द्विज, प्रहरी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस पर गथा हुआ है ॥७०॥ हे ध्याम ! प्रतिहारो ने धामनी श्राद्ध धामन के विषय में राजा बलि से निवेदन कर दिया था । उन्ही समय में विरोचन का पुत्र महाराज बलि ने उठकर अर्घ्य लेकर अपने सभासदों के साथ वे सबके सब वहाँ पर गये थे । नविधि पूरा करते अर्घ्यां सोशो पर हुआ करने बाने धामन देव की

अर्चना की थी ॥७१-७२॥ फिर उन वामन देव को समा के मध्य में  
 लिवाकर ले आये और आसन आदि निवेदित किया था । बलि ने पूछा—  
 हे ब्रह्मन् ! आपका प्रागमन कहाँ से हुआ है ? आपका क्रम पथीष्ट है  
 जिसे मैं आपकी सेवा में समर्पित करूँ ? ॥७३॥ वामन देव ने कहा—  
 हे राज राज ! हे भूमन् ! यह ममस्त सृष्टि परमेष्ठी ब्रह्म की है वही से  
 मैं इस यज्ञ के देखने की इच्छा से समागत हुआ हूँ ॥७४॥ हे अनघ !  
 मैंने पहिले घण्टा का यज्ञ देखा था और यज्ञों के अविपत्ति का भी निश्चय  
 ही मैंने यज्ञ का दर्शन किया था ॥७५॥ हे सतम ! मैंने घर्म का भी  
 प्रजापति का भी यज्ञ देखा था किन्तु हे राजन् ! मैंने जैसा यह आपका  
 यज्ञ देखा है । हे महाराज राज राजेन्द्र ! इस प्रकार का यज्ञ तो न कभी  
 पहिले हुआ और न होगा । हे राजन् ! हे अनघ । इसी कारण से आपसे  
 कुछ माचना करने के ही लिए मैं यहाँ पर आया हूँ ॥७६-७८॥

याचस्व त्वं द्विजश्रेष्ठ! किं तेऽभीष्टं ददाम्यहम् । ७९  
 देहि मे राजराजेन्द्र! पदानि त्रीणि मेदिनीम् ।  
 वासाय रोचते तेऽद्य यदि पार्थिवसत्तम! ॥८०  
 किमिदं याचितं विप्र! स्वल्पं ते नहि ते परम् ।  
 गजवाजिरथा. क्षोणी रत्नानि विविधानि च ॥८१  
 दासदासीव रारोहा. क्षियोनानावसूनि च ।  
 द्रव्याणिवाससीशुभ्रेयाचस्वत्वं द्विजोत्तम ॥  
 पात्रोऽसि कृतकृत्योऽसि वेदवेदाङ्गपारग! ॥८२  
 न मे किञ्चित्स्पृहा राजन्विद्यते भुवि मानद । ।  
 देहि त्वं त्रिपदां भूमि. यदि-श्रद्धाऽस्ति तेऽश्रुना ॥८३  
 ह्युक्ते वामनेनाय वलिव चनमद्रवीत् ।  
 गृहाण त्रिपदां भूमि. वासस्मार्यं हि मानद ॥८४

राजा बलि ने कहा—श्रेष्ठ द्विज ! आप माचना कीजिए । मैं आपके  
 अभीष्ट पदार्थ को दूँगा ॥७६॥ श्री वामन देव ने कहा—हे राज राजेन्द्र !  
 आप मुझे केवल तीन पद भूमि, दोजिए जो, मेरे निवास के लिए पर्याप्त

है । हे राजाओं मे परम ध्येष्ठ ! यदि यह आपकी शक्ति हो तो आज ही दे दीजिए ॥८०॥ बलि मे निवेदन किया—हे विप्र ! आपने बहुत थोड़ा सा यह क्या माँगा है । यह आपके लिए देना अधिक सुन्दर नहीं है । हे द्विजोत्तम ! मेरे समीप में दान देने के लिए आप जैसे ध्येष्ठ महा-नुभाव को अनेक पदार्थ हैं । गन्ध, द्रव्य, रत्न, भूमि, विविध प्रकार के रत्न दास, दासी, परम सुन्दरी नारिणी, नाना भाँति के घन, द्रव्य, सुम यस्त्र हैं । आप भी इनकी याचना कीजिए । आप तो समस्त वेदो और वेदो के अग शास्त्रो के पारगामी मनीषी हैं । आप सभी प्रकार के ज्ञान के समुचित पान हैं और ब्रह्मचर्य हैं ॥८१-८२॥ श्री वामनदेव ने कहा— हे मान के देने वाले ! हे राजेन्द्र ! हम भूगण्डल मे मुझे किसी भी पदार्थ के प्राप्त करने की स्पृहा नहीं है । यदि इस समय मे आपकी श्रद्धा हो तो मुझे केवल तीन पद परिमित भूमि ही दीजिए ॥८३॥ वामन देव के द्वारा ऐसा वचन करने पर बलि ने यह वचन कहा था—हे मानद ! अपने निवास के लिए तीन पद भूमि ग्रहण कीजिए ॥८४॥

इत्युक्त्या तत्र राजपिदंशुभूमिद्विजाय च ।

वारितोऽपितदाध्यासभृगुणादंवनोदितः ॥८५॥

दत्तमात्रे जलेतद्यो ब्रह्माण्डं चाक्रमदरिः ।

साधंपादद्वयं जाता सशंलवनकानना ॥८६॥

यमुपेयं तदा ध्यासत ! बलिना चार्पितं यमु ।

जिह्वाऽमुरगणान्तसर्वाग्राज्यं दत्त्वा शाकतोः ॥८७॥

पञ्चात्पुमुदृशी प्राप्तो विष्णुर्बामनरूपधृक् ॥८८॥

ऋद्विसिद्धपाश्र्वमे पुष्ये तीर्थे कृत्वाऽऽमसंभवम् ।

निवापमकरोऽपान तत्रैव स सुरोत्तम ॥८९॥

यह कहकर उस राजपि ने द्विज को भूमि के दान का वाचन कर दिया था । हे व्यास ! उस समय में देव के द्वारा प्रेरित हुआ राजा भृगु (सगराचार्य) के द्वारा निवारित भी किया गया था कि भूमि के दान का वचन मर हो । संस्कार के जल के देते ही श्री हरि ने तुरन्त ही तन्मूर्त्त ब्रह्माण्ड का आस्रमण कर दिया था । यह तन्मूर्त्त ब्रह्माण्ड त्रिगमे

घोल, वन प्रौर कानन सभी ये ढाई पद में हो नाप लिया गया था ॥८१-८६॥ उस समय में हे ध्याम ! राजा बलि के द्वारा समर्पित सम्पूर्ण वैभव जीतकर तथा सब असुरों को पराजित करके इन्द्र को सम्पूर्ण राज्य दे दिया था ॥८७॥ इसके पश्चात् वामन के स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु कुमुद्वती में प्राप्त हो गये थे ॥८८॥ उस ऋद्धि और सिद्धियों के परम पुण्यमय आश्रम में आत्म सम्भव अर्थात् अपने द्वारा उत्पन्न तीर्थ बनाकर हे ध्याम ! सुरोत्तम वामन देव ने वही पर प्रपना निवास किया था ॥८९॥

वामनेन कृतं तीर्थं वामनं कुण्डमुच्यते ।

भाद्रेमासिसितेपक्षेद्वादशाश्रवणान्विता ॥००

वामनद्वादशी प्रोक्ता हत्याकोटिविनाशिनी ।

अस्मिस्तोयं नरा स्नात्वा ह्यपोध्वंकादर्शी यदा ॥९१

राज्ञो जागरणं कुर्याद्ब्रह्मभूषाय कल्पते ।

द्वादश्यां वं विशेषेण महादानानिकुर्वते ॥९२

नतेषांदुर्लभं किञ्चित्त्रिपुलोकेषु विद्यते ।

एवं वं वामन तीर्थं पुरा प्रोक्तं महर्षिणा ॥९३

सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ।

प्राप्यते तेन सर्वं हि नाश्र कार्पाविचारणा ॥९४

वामन देव के द्वारा किया हुआ तीर्थ वामन कुण्ड कहा जाता है । भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष में दशम नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि वामन द्वादशी कहो गई है । यह करोड़ों हत्या के पापों का विनाश करने वाली है । इन तीर्थ में मनुष्य स्नान करके जब एकादशी का उपवास करे और रात्रि में जागरण करे 'तो वह ब्रह्म' भूय कल्पित होता है अर्थात् ब्रह्म के ही समान हो जाया करता है । इस द्वादशी में विशेष रूप से महान् दान करे उस पुरुष के लिए तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहा करता है । इस प्रकार से पहिले महर्षि ने वामन तीर्थ का वर्णन किया था । यह समस्त पापों के हरण करने वाला पुण्यमय सब कामनाओं

के बरों के प्रदान करने वाला है उस मनुष्य के द्वारा सभी कुछ प्राप्त कर लिया जाता है इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥६०-६४॥

### ७०—कुटुम्बेश्वरमाहात्म्यकथन

शृणुञ्चानपर तीर्थं भूविद्विष्यात्तमुत्तमम् ।  
 कुटुम्बेश्वरेतिविष्यातो नाम्नाचत्रमहेश्वरः ॥१॥  
 तस्यतीर्थं वर तीर्थं सर्वं तीर्थं फलप्रदम् ।  
 यस्मिंस्तोषेन्नरःस्नात्वा कुटुम्बीजायतेध्रुवम् ॥२॥  
 कुटुम्बायं तपस्तेपे पुरा दक्ष प्रजापतिः ।  
 नारदेन पुरा ध्यास पुत्रपण्डिविवासिता ॥३॥  
 प्रजाकामः स धर्मात्मा सुचिरं व्रतमाचरत् ।  
 सपत्नीको महातेजा निराहारो जितेन्द्रियः ॥४॥  
 अस्मिंस्तीर्थं शुचिः स्नातो जपग्रह्य सनातनम् ।  
 वर्षाणामयुतं ध्यास! तपस्तेपे सुदारुणम् ॥५॥  
 तेन तीर्थं प्रसादेन लभेत्स बहुलाप्रजाम् ।  
 प्रजापतिरितिष्यातोजातोदक्ष प्रतापवान् ॥६॥  
 ग्रहार्पि तत्र वं पश्चात्तप कृत्वा सुदुष्करम् ।  
 निष्कल कमलं रूपं प्राप्नयांस्तत्क्षणाद्विधिः ॥७॥

महामहर्षि सनतकुमार जो ने कहा—हे ध्यास ! भू मण्डल में धरमन प्रगिष्ठ उत्तरा घोर परम प्रधान तीर्थ के विषय में ध्वषण करो । यह तीर्थ कुटुम्बेश्वर विषयान है घोर नाम से बमहेश्वर है ॥१॥ उगका यह तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है जो ममस्त तीर्थों के फलों का प्रदान करने वाला है त्रिग तीर्थ में मनुष्य स्नान करके निदमय ही कुटुम्बी हो जाया करता है ॥२॥ पहिने प्रजापति दश में कुटुम्ब के लिए तपस्या की थी । हे ध्यास ! नारद ने पहिने साठ पुत्र विवासित कर दिये थे ॥३॥ प्रजा की कामना वाले उग पर्मात्मा ने बहुत बान पर्यन्त व्रत का समापरण किया था और अपनी परने को साब में खर, इन्द्रियों को औत्तर और आहार का



त्याग करके ही महान तेज वाले ने यह व्रत लिया था ॥४॥ हे व्यास ! इस तीर्थ में शुचि होकर स्नान किया था और सनातन ब्रह्म का जप करते हुए दस हजार वर्ष तक परम दारुण तपश्चर्यों की थी ॥५॥ उस तीर्थ के प्रभाव से हे व्यास ! उसने बहुत-सी प्रजाओं की प्राप्ति की थी । तभी से वह प्रजापति विख्यात हो गया था और दक्ष परम प्रताप वाला हो गया था ॥६॥ वहीं पर पीछे ब्रह्माजी ने भी सुदुष्कर तप किया था । विधाता ने उमी समय में निष्कल कमल का रूप प्राप्त कर लिया था ॥७॥

महादेवोऽपि तत्रैव प्राप्तवान्ब्रह्मणः पदम् ।

चतुर्मुखधरं लिङ्गं दृश्यतेऽद्यापिसत्तम ॥८

भद्रपीठधरा देवी भद्रकालीति विश्रुता ।

तत्रैव च सदा व्यास क्रोडतिस्म घृतव्रता ॥९

द्वारे तिष्ठति तत्रैव भैरवः क्षेत्रपालकः ।

पादेन सञ्जतांयातः पुरा दैत्यवरार्दितः ॥१०

पुत्रवत्पालितो देव्या सदा तिष्ठति तत्स्थले ।

ये ते देवगणाः सर्वे तस्मिंस्तीर्थे प्रविष्टिताः ॥११

ऋषयोऽपि महाभागाः सदा पर्वणिगर्वणि ।

आयान्ति चैव सन्ध्यायै बहुपुत्रप्रदेशरे ॥१२

अस्मिंस्तीर्थे सदाचाराः स्नानं कुर्वन्ति येनराः ।

नतेपांडुर्लभकिञ्चिज्जायतेजन्मजन्मनि ॥१३

महाबावामु घोरासु महामारीषु तत्परैः ।

हवनं क्रियते नित्यं सर्पैः राजिकैर्यवैः ॥१४

महादेव ने भी वही पर ब्रह्म के पद को प्राप्त किया । हे सत्तम !

आज भी चार मुखों का धारण करने वाला लिंग दिखलाई दिया करता है ॥८॥ भद्र पीठ धरा देवी जो भद्र काली इस नाम से विद्युत है । हे व्यास ! वहाँ पर सदा व्रत धारण करके क्रोड़ा किया करती थी ॥९॥

वहाँ पर द्वार पर क्षेत्र का पालन करने वाला भैरव स्थित रहा करता है । पहिले यह दैत्य वर के द्वारा अद्वित होकर एक पैर लँगटा हो गया

॥१०॥ देवी ने इसका पुत्र के ही भाँति पालन किया और वह सदा ही

उसके ही स्थल में स्थित रहता है । जो देवगण हैं वे सभी उस तीर्थ में प्रतिष्ठित हैं ॥११॥ ऋषि कृन्द भी महान् भाग वाले सदा ही पर्व—पर्व पर उस वहु पुत्रों को प्रदान करने वाले सर पर सन्ध्या के लिये प्राया करते हैं ॥१२॥ जो सदाचरण वाले इस तीर्थ में मनुष्य स्नान किया करते हैं उनको प्रति जन्म में कुछ भी दुःख नहीं होता है ॥१३॥ महान् घोर बाघाजों में घोर महाभारियों में तरुपर मनुष्य सर्पप ( सरनी ) यव ( जी ) और रात्रिक ( राई ) से नित्य हवन किया करते हैं ॥१४॥

पायसैर्विविधैर्भोगैस्तेषां दोषो न जायते ।

दुर्मिथो राज्यभ्रंशे च सग्रामे भृशदाहणे ॥१५

पूजयेत्क्षेत्रपालं च सर्वापदि समाहित ।

सर्वंदु सविनिमुक्तोजायतेनाश्रयसंशयः ॥१६

स्नात्वा कृदुम्बके तीर्थे पूजयित्वा महेश्वरम् ।

दानं कृत्वाण्डकं दद्याद् ब्राह्मणाय तपस्त्रिणे ॥१७

सीवणंमणिमुक्ताभिर्वासोऽलङ्कारसयुतम् ।

धनधान्यसमायुक्तः कृदुम्बी जायतेनरः ॥१८

फाल्गुने च मिते पक्षे या वै चतुर्दशी भवेत् ।

त्रयोदशीपुता ध्यास निवरात्रिस्तपोच्यते ॥१९

तद्दिने च नरा स्नात्वा रात्री जागरणं चरेत् ।

बिल्वोदकेन गन्धेन बहुनुष्पफलेस्तथा ॥२०

पूजंतींश्च नन्देद्यैर्वासोऽलङ्कारकादिभिः ।

पूजयेद्योनरो भवत्या गिरीशं गगणं परम् ॥२१

विविध भोगों व द्वारा तथा पायस से जिनके द्वारा हवन किया जाता है उनको कोई भी दोष नहीं होता है । दुर्मिथ ( घबारा ) में—राज्य के भ्रंश हो जाने पर—ग्राम में भीड़ को अत्यन्त दाहण समय ही उगमं तथा सभी तरु की भागति में समाहित होकर योनपान की पूजा करता है वह सभी दुःखों से मुक्तपारा पा जाता है—दामे' कुछ भी मलय नहीं है ॥१५-१६॥ कृदुम्बक तीर्थ में स्नान करके और महेश्वर का ध्यान

करके किमी तपस्वी ब्राह्मण को कूप्माण्ड ( पेठा ) का दान देना चाहिए ॥१७॥ वह मनुष्य सुवर्ण-मणि-मुक्ताओं से, वस्त्र और अलङ्कारों से संयुक्त होकर घन-धान्य से समन्वित होता हुआ कुटुम्बी हो जाया करता है ॥१८॥ फाल्गुन मास के मित पक्ष में जो चतुर्दशी तिथि होवे । हे ध्यास । त्रयोदशी तिथि से जो युक्त होता है वह शिवरात्रि कही जाया करती है ॥१९॥ उस दिन में मनुष्य को स्नान करके रात्रि में जागरण करना चाहिए । दित्व के पत्र तथा फन—जल—गन्ध—बहुत से पुण्य और फन—धूप, दीप, नैवेद्य तथा अलङ्कार आदि से जो मनुष्य भक्ति भाव से भगवान् गिरीश का गणो के सहित पूजन करता है ॥२०-२१॥

तस्य पापं क्षयं याति शिवलोके महीयते ।

द्वादशकादशीपुण्यं लभते भुवि मानवः ॥२२

अश्वमेधफलं तस्य जागरे च क्षणेक्षणे ।

ततस्तु प्रातरुत्थाय स्नानदानादिका क्रियाः ॥२३

कृत्वा तु विधिवद् ध्याम । शिवपूजाऽर्चनं तथा ।

विप्राश्च भोजयेत्सप्त तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२४

कपिलानां सवत्तानां सहस्राणि चतुर्दश ।

वाजपेयसहस्रस्य फलं प्राप्नोति नान्यथा ॥२५

उम मनुष्य के समस्त पाप क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं और फिर वह पवित्र होकर इस धर्मेण के प्रभाव से शिव लोक में जाकर प्रतिष्ठित होता है, भूमण्डल में मनुष्य बारह एकादशियों के उपवास का फल प्राप्त किया करता है । उसके एक-एक क्षण के रात्रि जागरण में अश्व-मेध यज्ञ का पुण्य—फल प्राप्त होता है । इसके उपरान्त प्रातः काल में उठकर धर्षात् जागरण का कृत्य समाप्त करके स्नान—दान आदि की क्रिया करे । हे ध्याम ! फिर विधि—दिवान के सहित भगवान् शिव की अर्चना करना चाहिए और सात विप्रों को सुन्दर सुस्वादु पदार्थों का भोजन करावे । इसका जो पुण्य—फल होता है उस का भी श्रवण करो ॥२२-२४॥ घत्सों के सहित कृत्वा गोत्रो का जो संख्या में चौदह सहस्र हों उनके दान करने का तथा एक सहस्र वाजपेय यज्ञों के करने का पुण्य

—फल वह मानव प्राप्त कर लेता है, इसमें अन्यथा लेश मात्र भी नहीं है ॥२५॥

### ७१—अखण्डेश्वरमहिमावर्णन

शृणु व्यास महापुण्यतीर्थं परम शोभनम् ।  
 देवप्रयागमाख्यानं सर्वं प पत्रणाशनम् ॥१  
 देवानां च पर स्थानं यत्र तीर्थं पर तप ।  
 सोमतीर्थोत्तरे भागे प्रयागस्य च दक्षिणे ॥२  
 शि ( क्षि ) प्रायाः पूर्वभागे च तत्र तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।  
 तत्र तीर्थं नर स्नात्वा पश्येच्चैव सुरोत्तमम् ॥३  
 देव माधवमित्याह्वय भुवि सर्वं फलप्रदम् ।  
 ददाति तस्य देवेन्द्रो वान्छितार्थं जगत्पतिः ॥४  
 आनन्दमंस्वस्तय क्षवं देवनमस्कृत- ।  
 यस्य दर्शनं मागेण सर्वपापक्षयो भवति ॥५  
 न तस्य जायते व्यास ! यातनाभरवीकदा ।  
 स्वर्गद्वारे नदा व्यामजायते निर्भयं पुमान् ॥६  
 ज्येष्ठे मासे मिते पक्षे दशम्यां बुध हस्तयोः ।  
 गरानन्देऽप्यनीपाते कन्याचन्द्रे वृषे रथो ।  
 दशाला जायते वरस ! गङ्गाजन्म परं शुचि ॥७  
 तद्दिने च नरा स्नात्वा सर्वतीर्थफलं लभेत् ।  
 अखण्डं च परं तीर्थं शृणु व्यास ! ह्यत परम् ॥८

महावि मन्तरुमारत्री ने कहा—हे व्यास ! सबसे अधिक मर्यादा महान् पुत्र वासे तीर्थ के विषय में मुनी । यह तीर्थ देव प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है और यह सभी तरुण के पापों का विनाश कर देने वाला है ॥१॥ हे परन्तप ! अहाँ पर यह तीर्थ है वह देवों का परम स्थान है । यह सोम तीर्थ के उत्तर भाग में और प्रयाग के दक्षिण में सदा तिथि नरी के पूर्व भाग में वहाँ पर ही यह तीर्थ प्रतिष्ठित है । वहाँ उक्त तीर्थ में मनुष्य

स्नान करके सुरोत्तम प्रभु का दर्शन करे ॥२-३॥ यह देव माघय नाम वाले हैं और भू मण्डल में समस्त फलो के प्रदाता हैं । जगत् के स्वामी देवेन्द्र उस मनुष्य को वाञ्छितार्थ प्रदान किया करते हैं ॥४॥ वहाँ पर आनन्द भँरव देव हैं जिनको सभी देवगण नमस्कार किया करते हैं और जिसके केवल दर्शन से ही सब पापों का क्षय हो जाया करता है ॥५॥ हे व्यास ! उसको कभी भी भँरवी यातना नहीं हुआ करती है । वह मनुष्य निर्भय होकर स्वर्ग के द्वार पर हे व्यास ! सदा पहुँच जाया करता है ॥६॥ ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि में जब कि बुधवार हो और हस्त नक्षत्र हो, गरानन्द मे, ध्यतीपात में, कन्या के चन्द्रमा में और वृष राशि पर स्थित सूर्य मे हे वत्स ! परम पवित्र गङ्गा का जन्म दशाला होता है । उस दिन में मनुष्य वहाँ पर स्नान करके समस्त तीर्थों का पुण्य — फल प्राप्त कर लिया करता है । हे व्यास ! इससे भी पर अखण्ड तीर्थ है उसके विषय में श्रवण करो ॥७ ॥

यस्य श्रवणमात्रेण व्रतभङ्गो न जायते ।

एक एव पुरा ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥९

धर्मशर्मतिविख्यातः सदाचाररतः शुचिः ।

बहुव्रतधरो दान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥१०

किञ्चिद्दोषप्रसङ्गेन व्रतपूर्तिर्न चाभवत् ।

एवं बहुतिथे काले नारदो देवदर्शनः ॥११

तस्य गेहागतो ब्रह्मन्नातिथ्यार्थं महातपाः ।

तदोस्याप द्विजां नित्यं बहुमानपुरः सरम् ॥१२

सत्कृत्य नारदं भूमन्विचिदृष्टेन कमणा ।

पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठ पप्रच्छ मुनिसत्तम ॥१३

भगवन्भवता सर्वं विदितं शानचक्षुषा ।

अस्माकं च परं दोषः किञ्चिज्जाता पुराङ्गघ ॥१४

येन पापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गोऽभवद्भ्रुवम् ।

कारणं ब्रूहि मे नाथ किं दोषोऽत्र तु गण्यते ॥१५

यह ऐसा तीर्थ है जिसके विषय में श्रवण करने ही से प्रतप्त का भंग नहीं होता है । हे ब्रह्मन् ! पहिले एक ब्रह्म वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ ब्राह्मण था । उसका धर्म शर्मा नाम विख्यात था । यह सदाचार में रति रखने वाला और परम पवित्र था । बहुत से व्रतों का धारण करने वाला, दमनशील तथा वेदों और वेदों के सम्पूर्ण अंग—शास्त्रों का पारगामी विद्वान् था ॥१६-१०॥ कुछ दोष के प्रसंग होने से इसके व्रत की पूर्ति नहीं हुई थी । इस प्रकार से बहुत-सा समय व्यतीत हो जाने पर देव दर्शन भगवान् नारदजी हे ब्रह्मन् ! उसके घर में जाये वे उस समय में महान् तपस्वी यह द्विज उनके आतिथ्य करने के लिये उठा था और नित्य ही बहुमान पूर्वक हे भूमन् ! विधि युक्त कर्म के द्वारा उमने नारदजी का सत्कार किया और हे मुनिसत्तम ! उम श्रेष्ठ द्विज ने पूजा करके उनसे पूछा था ॥११-१३॥ हे भगवन् ! आपने तो ज्ञान की धनु के द्वारा यह सभी ज्ञान लिया है । पहिले हे भगवन् ! हमको कुछ दोष उत्पन्न हो गया । जिस पाप के प्रसंग से प्रतप्त का भंग निश्चित रूप से हो गया । हे नाथ ! उमका कारण आप मतलाइये कि यहाँ पर क्या दोष गिना जाता है ॥१४-१५॥

श्रुत्वा भो द्विजश्रेष्ठ ! भवद्विमर्शच पुराकृतम् ।  
 महाराष्ट्रे मृविस्थातो ब्राह्मणो धनसञ्चकः ॥१६  
 ब्रह्मदत्तरथमी विप्रो वेदब्राह्मणनिन्दका ।  
 धनलोभी पराक्रान्तः सर्वधमबहिर्मुं स्तः ॥१७  
 नास्ति को देवर्तार्थेषु परद्रव्यापहारकः ।  
 परम्प्रीयु रतो नित्यं द्यूतवादी च तस्करः ॥१८  
 एवमायुः परिक्षाणो धनहीनोऽभवत्तदा ।  
 इतस्ततोऽभ्रमदभ्रशो नदीतीरे सुविह्वला ॥१९  
 गतश्रौचप्रमङ्गेन यानिकं महं सङ्गताः ।  
 किञ्चित्कालेषु दुःशीलो मृतिप्राप्तो रुजादित ॥२०  
 नीतः सयमिनो विप्रस्तखाल यमकिन्दूरैः ।  
 यमराजपुरं प्राप्तो बहूपापकरो द्विजः ॥२१

देवपि नारदस्यो ने कहा—हे द्वित्र ध्येष्ठ ! प्रापने जो पहिले किया था उसको सुनो । महाराष्ट्र में धन का सञ्चय करने वाला एक सुविस्मयात् प्राह्लाण था ॥१६॥ ब्रह्मदत्त यह विप्र वेदो और शास्त्रों की निन्दा करने वाला, धन का लोभी, पराक्रान्त, और सभी धर्मों से बहिर्मुख था ॥१७॥ देवों और तीर्थों के विषय में वह परम नास्तिक था और पराये द्रव्य का अपहरण करने वाला था । वह नित्य ही परार्थ-स्त्रियों में रत रहता था-घृण दादो और तस्कर था ॥१८॥ इस तरह से वह आयु से क्षीण हो गया था और उस समय में धन से हीन हो गया था । इधर—उधर धूमता रहता था, भ्रष्ट होकर नदी के तट पर सुविह्वल होकर पडूब गया था ॥१९॥ खोरी के प्रसंग से यात्रियों के साथ सद्गत होकर गया कुछ काल में रोग से पीडित होकर दुःशील वह मृत्यु को प्राप्त हो गया था ॥२०॥ उसी समय में धमराज के दूतों के द्वारा वह विप्र सयमनो ( दण्ड विधान का स्वयं ) पर ले जाया गया । बहुत अधिक पाप कर्म करने वाला वह द्वित्र रामराज को पुरी में प्राप्त हो गया था ॥२१॥

दृष्टोऽसौ धमराजेन तदा पापपरायणः ।

निरोक्ष्य सहस्रोवाच धर्मपूर्वमिदं वचः ॥२२

शृणुध्वं किकराः सर्वे यूयमेकाग्रमानसाः ।

अनेनाचरितं सर्वदुष्कर्मसर्वं किल्बिषम् ॥२३

गोदातीरे मृतः पापी तस्य नः कारणं नहि ।

तिस्रः क्रोटयोऽधंकाटिश्च यग्नि तीर्थान्यहर्निशम् ॥२४

आयान्ति गौतमीतीरे सिंहस्थेऽपि बृहस्पती ।

तेषां तु वायुसंस्पर्शा जाताऽऽस्यान्ते (न्त) कलेवरे ॥२५

तेनपुण्यप्रभावेणनोऽस्माकंकारणं क्वचित् ।

ग्राह्यो भवद्भिर्नैवायं मुच्यतांभोः पुराः सराः ॥२६

एवं तैर्मोचितो विप्रः पुनर्ब्रह्मगतिं गतः ।

तेन पापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गी गतो भुवि ॥२७

ब्रह्मन्केन प्रकारेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।

किं तपः किं च दानं च किं तीर्थं व्रतसेवनम् ॥२८

येन पुण्यप्रभावेण व्रत भङ्गो न जायते ॥२९

उस समय मे धर्मराज ने इसको देखा कि यह तो बड़ा ही पाप परायण है । उसको देखकर वह धर्म पूर्बक यह वचन महसा ही बोल उठे ॥२८॥ हे सब क्रिद्दुरो ! सुनिए और सभी एकाग्रमन वाले हो जाइये । हमने सभी पापों से पूर्ण दुष्कर्म्म दिये हैं किन्तु यह महापापी गोदावरी नदी के तीर पर मरा है वहाँ पर हमारा कोई कारण नहीं है । तीन करोड घोर घट्या करोड जे: भों तीर्थ हैं वे सब रात दिन वहाँ पर गौतमों के घट पर प्राया करने हैं । बृहस्पति के तिहरासि पर स्थित होने पर भी वे घाते हैं । उन सब तीर्थों की वायु का सत्परां हमके शरीर के चन्द्र में हुआ है ॥२९-३५॥ उस पुण्य के प्रभाव से हमारा कही पर कोई कारण नहीं है । पाप लोगों को यह ग्रहण नहीं करना चाहिए । पूर्व मे ही पाप लोग इसको छोड दो ॥२६॥ इस राति से उन धम के दूतों के द्वारा छोडा गया वह विप्र पुनः ब्रह्मपति को प्राप्त हो गया । उस पाप के प्रसंग से वह व्रत भंगो हो गया था ॥२७॥ ब्राह्मण ने कहा— हे प्रज्ञान् ! किम प्रकार से समस्त पापों का क्षय होता है ? क्या तप है, क्या दान है और क्या क्या तीर्थों तथा व्रतों का सेवन है ? किम पुण्य के प्रभाव से व्रत नग नहीं होता है ॥२८-२९॥

शृणु द्विजधर श्रेष्ठ ! महाकालमन स्मृतम् ।

यत्र रत्नमरः प्रोक्तमृषिणा तत्त्वदर्शना ॥३०

काटिकोटिसुतीर्थानि वसन्ति द्विजमतम ! ।

कोटितीर्थं त्रिविध्यात् तरमाद् द्विज । सनातनम् ॥३१

तस्मीयं श्योतरे भागे सुतीर्थं सर्वकामदम् ।

नाम्नाश्रयण्डसरः स्यात्तमलण्डेश्वरसन्निधौ ॥३२

यस्य दर्शनमात्रेण सर्वं यज्ञफलं लभेत् ।

उस्माद्भिः सद्यथा वत्सगच्छत् तत्रमाधिरम् ॥३३

इति तस्य वचः श्रुत्वा मद्विजोऽगारदुःसृष्टतोम् ।

स्नात्वाश्रयण्डमरे व्यास दृष्ट्वा दयं महेश्वरम् ॥३४



सद्यः पुण्यवतां लोकान्प्राप्तो वै द्विजसत्तमः ।

एव व्यास ! महातीर्थमखण्डेश्वरमुत्तमम् ॥३५॥

श्री नारद जी ने कहा—हे श्रेष्ठ द्विज गण ! सुनिए । महाकाल वन कहा गया है । जहाँ पर तत्त्व दर्शो ऋषि ने रुद्र सर कहा है ॥३०॥ हे द्विज सत्तम ! वहाँ पर करोड़ो-करोड़ों सुन्दर तीर्थ वर्तमान रहते हैं । हे द्विज ! इसी से वह सनातन कोटि तीर्थ नाम से विख्यात है ॥३१॥ उस तीर्थ के उत्तर भाग में समस्त मनोरथों का प्रदान करने वाला सुतीर्थ है । वहाँ पर ब्रह्मलेश्वर की सन्निधि में ब्रह्मण्ड सर नाम से एक सर प्रसिद्ध है ॥३२॥ जिसके केवल दर्शन से ही सम्पूर्ण यज्ञों के फलों का लाभ होता है इस कारण से हे वरस ! तुम वहाँ पर चले जाओ और अधिक विलम्ब मत करो ॥३३॥ इस उसके वचन को सुनकर वह द्विज कुमुदती को घला गया था । हे व्यास ! उसने अखण्ड सर में स्नान किया था और महेश्वर देव का दर्शन किया था ॥३४॥ वह द्विजों में श्रेष्ठ सुरन्त ही पुण्य वालों के लोकों को प्राप्त हो गया था । इस प्रकार से अबलेश्वर उत्तम महान् तीर्थ है ॥३५॥

### ७२—हनुमत्केश्वरमाहात्म्यवर्णन

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवांश्चिदशपूजितम् ।

हनुमत्केश्वर नाम मुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१॥

शंवेसरसियः स्नात्वा पश्येद्धनुमत्केश्वरम् ।

कल्पकोटिसहस्राणिवायुलोके समोदते ॥२॥

हनुमत्केश्वरोयस्तु ह्युक्तः पूर्वस्त्वयानघ ! ।

कथाकथय ह्येतस्य व्रतपूर्वास्सनातनीम् ॥३॥

त्रैलोक्यकण्ठकः पूर्वा रावणोर्नामराक्षसः ।

धिष्णुनारामरूपेण लंकायांविनिपातितः ॥४॥

घातयित्वातुतंदुष्टं सीतामादायजानकीम् ।

वानरैस्तहृष्टक्षिंच नगरींस्वामुपागतः ॥५॥

तत्रराज्यमनुप्राप्य ऋषिभिः परिवारितः ।  
 कथावसानेरामेण ह्यगस्त्योमुनिसत्तमः ॥६॥  
 पृष्टोऽधिकोद्वयोर्वापिशम्भुर्वातजयोऽस्तुकः ।  
 तदादाशरथिप्राहजगस्त्योमुनिसत्तमः ॥७॥

श्री सनातकुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर देवों के द्वारा समन्वित एक अन्य देव के विषय में बर्णन करूँगा जिनका नाम श्री हनुमत्केश्वर है और वह भुक्ति और मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं । राव सर में जो स्नान करके श्री हनुमत्केश्वर प्रभु का दर्शन किया करता है वह एक महत्करोड़ बत्ती तक वायु सांके में आनन्द का साभ प्राप्त किया करता है । श्री व्यास देव जी ने कहा—हे अनप ! आपने जो पहले हनुमत्केश्वर कहा था अब इसकी बस पूर्वक सनातनी कथा कहने की कृपा काजिए । श्री सनातकुमार जी ने कहा—पहिने होने वाला एक त्रैलोक्य का कष्टक स्वरूप अर्षान् दुःख दायी रावण नाम वाला राक्षस था । उसका विनिपायत श्रीराम रूपधारी भगवान् विष्णु ने किया था । उस दुष्ट रावण का वध करके और जनक महाराज को पुत्री लीला को लेकर समस्त वानर और रीक्षों के सहित वापिस अपनी नगरी भयोध्या में समागत हो गए थे । वहाँ अपना राज्यासन ग्रहण करके ऋषिगण से समावृत्त मुनियों में श्रेष्ठ भगस्त्य जी से कथा के अवसान में श्रीराम ने पूछा था कि भगवान् गङ्गा और वायुदेव इन दोनों से ममुराप्र होने वालों में अधिक कौनसा है । उस समय में मुनिश्रेष्ठ भगस्त्य जी ने महाराज दशरथ के पुत्र श्री राम से कहा था ॥१-७॥

अनीपम्योयथादेवो युद्धे शीर्यैमहेश्वरः ।  
 ज्योवापुमुनस्तद्वत्सत्यमेतदप्रकीर्तिते ॥८॥  
 एवञ्च त्वापहनुमान्यच्छिवेनोपमामम ।  
 कृतामुनिवरेणेह प्रत्यक्षं राघवस्वहि ॥९॥  
 गमित्येनगरीन्कां लिगमेक प्रयाचिनुम् ।  
 राशमेन्द्रं महाभाग विमोक्षणमकल्पयम् ॥१०॥

ततो गतस्सलंकायां विभीषणमुवाच ह ।  
 देहि मत्वं महाभाग लिङ्गमेकञ्च सो भनम् ॥११  
 उक्तञ्च राक्षसेन्द्रेण गृहाणैतद्यथा रुचि ।  
 एतानि पङ्क्वलिंगानि रावणस्थापितानि वै ॥१२  
 त्रैलोक्यविजयात्पूर्वं मम भ्रात्रामहात्मना ।  
 एतेषु यदभ्युद्यन्ते लिङ्गकथय सुव्रत ! ॥१३  
 तत्प्रयच्छामितेऽथैव सत्यमेतत्प्लवंगम ! ।  
 ततो जग्राह हनुमाल्लिङ्गं मौक्तिकमग्निभम् ॥१४

युद्ध में और धूरवीरता में महेश्वर देवता के समान प्रनुपम वायुमुनि को समझना चाहिए और यह वायु के ही समान है—यह मैं बिल्कुल सत्य आपको बतला रहा हूँ ॥२॥ इसके अनन्तर हनुमान् जी ने इस प्रकार से प्रवण करके कि मेरी शिष्य प्रनु के साथ उपमा वहाँ पर मुनिवर ने की है जो कि श्री राघव के प्रत्यक्ष में की गयी थी । मैं अब लड्डा नगरी में जाऊँगा और वहाँ पर एक लिङ्ग की याचना करूँगा और वह भी कल्पों से रहित राक्षसों के स्वामी महान् भाग वाले विभीषण से ही करूँगा । इसके उपरान्त वह लड्डा में गया था और विभीषण से बोला— हे महाभाग ! मुझे एक परम शोभन लिङ्ग दीजिए । उसी समय में उस राक्षसों के इन्द्र ने कहा—इसको आप अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण कीजिये । ये छँ लिङ्ग हैं जो कि रावण के द्वारा मस्थापित किये गये हैं । मेरे भाई महात्मा ने त्रैलोक्य विजय करने के पूर्व में ही इन लिङ्गों की स्थापना की थी । हे सुव्रत ! इन छँओ लिङ्गों में आप बतलाइये कौन-सा शिव लिङ्ग आपको प्रमंष्ट है ? हे प्लवङ्ग ! उसी को मैं आज ही आपको दिये देता हूँ—यह सर्वथा सत्य ही है । इसके पश्चान् हनुमान् जी ने एक जो मौक्तिक के सदृश लिङ्ग था उसी को ग्रहण कर लिया था ॥६-१४॥

यदेतद्दृश्यते वीर ! तत्प्रच्छमानय ।

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यमथोवाच विभीषणः ॥१५

दत्तमेतन्महावीर लिंगंपटकृतवानसि ।

धूमतेहिपुरावृत्तं लिंगमेतद्धनेश्वरः ॥१६

रुद्रभक्त्यासमायुक्तस्त्रिकालमप्यपूजयम् ।

रावणेनयदावद्धस्तदानींहिधनेश्वरः ॥१७

लिंगस्यास्यप्रभावेण विमुक्तस्समपद्यत ।

प्रसादात्तस्यलिंगस्य धनेशोधनरक्षकः ॥१८

गृहीत्वा तन्महालिंगं स्वस्थो जातोऽप्य वानरः ।

गृहीत्वा तु ततो लिंगं प्रस्थितो विमलेऽम्बरे ॥१९

सप्तमेदिवसेचैव मम्प्राप्तोऽवन्तिकापुरीम् ।

सस्याप्यरुद्रसरसस्तीरेस्नानमप्याकरोत् ॥२०

महाकालस्यपूजायं गमनंप्रत्यचिन्तयत् ।

उद्धतुं कामस्तल्लिंगमुद्धतुं नशशाकसः ॥२१

हे वीर ! जो यह दिग्गर्तई दे रहा है हे धनप ! उसे ही घाप मुझे प्रदान कर दीजिए । इस थी हनुमान् जी के वाक्य का प्रवण करके इनके पश्चान् विभीषण बोला—हे महावीर ! जिस लिंग को आपने पसन्द किया है वही मैंने प्राप्तो दे दिया है । इनके विषय में ऐसा पुराहित मुना जाता है कि रुद्र की भक्ति में ममायुक्त होकर धनेश्वर ने इसको तीनों कालों में पूजा की थी । रावण के द्वारा अब यह बद्ध हुआ तो उनी समय में धनेश्वर कृपेव इसी लिंग के प्रभाव से विमुक्त हो गया था । इसी लिंग के प्रभाव से धनेश्वर धन का रक्षक हुआ था । उग महालिंग को ग्रहण करते यह वानर हनुमान् परम स्वस्थ हो गये थे । श्री तनशुमार जी ने कहा—उम निवर्तित की घट्टी करके विमल अम्बर में उन्हीने प्रस्थान किया था । गानवे दिन में वे भवन्तिका पुरी में सम्प्राप्त हुए थे । रुद्र सर के तट पर उषकी मध्यापिन करते इनके पश्चान् उन्हीने वहाँ पर स्नान किया था । महाकाल भगवान् की पूजा के लिये उन्हीने गमन के प्रति गोषा था । उग लिंग के उद्धार करने की कामना वाले उन्हीने सभी सोचा था किन्तु वे उद्धार न कर गये थे ॥१५-२१॥

ततो व्यवस्थितो देवः प्राह तं वायुनन्दनम् ।  
 अस्मिन् क्षेत्रे हनुमंस्त्वं स्वाम्ना स्थाप्य पूजय ॥२२  
 हनुमत्केश्वरञ्चाथ लोकेख्यातं भविष्यति ।  
 शंखवच्चोन्नतं लिंगं स्थापितं वायुमनुना ॥२३  
 शनीपश्येन्नरोयस्तु हनुमत्केश्वरं शिवम् ।  
 तस्य शत्रुभयं नास्ति सग्रामेजयमाप्नुयात् ॥२४  
 नच चौरभयंतस्य नदारिद्र्यं न दुर्गतिः ।  
 तैलाभिषेकं यः कुर्याद्विष्णुमत्केश्वरं शिवम् ॥२५  
 तस्परोगाः प्रलीयन्तेग्रहपीडानजायते ।  
 ये पश्यन्ति नरा भक्त्यातेपां मोक्षो भविष्यति ॥२६

इसके अनन्तर व्यवस्थित देव ने उन वायु के पुत्र से कहा था—हे हनुमन् ! इसी क्षेत्र में प्राय अपने नाम से मेरी स्थापना करके मेरी पूजा करो ॥२२॥ इसके अनन्तर यह हनुमत्केश्वर—इस नाम से लोक में विख्यात होगा । फिर वायुमुत्त ने शंख के समान उन्नत उस लिंग की वहाँ स्थापना की थी ॥२३॥ जो मनुष्य शनिवार के दिन में हनुमत्केश्वर भगवान् शिव का दर्शन करता है उसको शत्रु का भय कभी नहीं हुआ करता है और वह संग्राम में जय की प्राप्ति किया करता है । उस पुरुष को कभी भी चोर का भय नहीं होता है—दारिद्र्यता नहीं हुआ करती है और कभी भी कोई दुर्गति नहीं होती है । जो कोई हनुमत्केश्वर शिव का तैल से अभिषेक किया करता है उसके समस्त रोग प्रलोन हो जाया करते हैं और उसे ग्रहों की पीड़ा कभी नहीं हुआ करती । जो मनुष्य भक्ति की भावना से उनका दर्शन किया करते है उनका निश्चय ही मोक्ष हो जाता है ॥२४-२६॥

शङ्करादित्यमाहात्म्यवर्णन

अवन्त्यामङ्गुपादाख्ये पश्येद्रामजनाद्दर्शनौ ।  
 मयोदंशनमात्रेण यमलोकं नपश्यति ॥१

कथं तावच्छ्रुत्पादास्ये यातावन्नमहामुने ।  
 नपश्येद्यमलोकं स यद्यपि ब्रह्महाभवत् ॥२  
 भारावतारणार्थाय देवीरामजनादनी ।  
 अवनीर्णोयशोवशेदिव्यरूपीमहाद्युतो ॥३  
 कंस हृत्पायचाणूरमुग्रसेनं नराधिपम् ।  
 अभिपिच्यस्त्रयं राज्ये यदुसिह उवाच तम् ॥४  
 किं क्रायते मया प्रूहि कतं व्यन्ते सुते हसे ।  
 एवमुक्तस्तराजावं उग्रसेनोऽब्रवीदिदम् ॥५  
 सर्वं सम्पत्स्यते कण्ठे भवतो हिनदुर्लभम् ।  
 विज्ञाताखिलविज्ञानी भवितारावुभावपि ॥६  
 गच्छेतामुज्जयिन्यावं कृतविद्यो भविष्यथ ।  
 ततस्मान्दीपनिविप्र जग्मतूरामकेशवी ॥७

श्री गनरदुमारजी ने कहा—अवन्ती में अश्रुपाद नाम वाले स्थान में राम जनादन दोनों का दर्शन करना चाहिए । जिनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य किंसे यम लोक को नहीं देखा करता है । श्री व्यास देव जी ने कहा—हे महापुने ! इस अश्रुपाद नाम वाले स्थान में ये दोनों वंश प्राप्त हुए थे । यद्यपि ब्रह्म हृत्पारा ही क्यों न हो तो भी इनके दर्शन का ऐसा प्रभाव होता है कि वह मनुष्य यमलोक का कभी दर्शन नहीं किया करता है ॥१-२॥ गनरदुमारजी ने कहा—भूमि के चड़े हुए भार को उतारने के लिए धीराम और जनादन दोनों देव प्रयत्नीय हुए थे धीर यदु के वश में महती छुनि से मध्यम दिव्य रूप वाले उन्होंने प्रवनार विद्या पा । मयुरा के राजा कर्म को मारकर धीर चाणूर का वा करके नराजि उग्रसेन का अभिषेक विद्या पा धीर फिर यदुओं से गिह के समान उन्होंने उगडे कहा था—अब दुष्ट पापके मृत के मार देने पर मुझसे आपका क्या कार्य होय रह गया है और मुझे अब क्या करना चाहिए—यह यज्ञाद्यो । इस प्रकार से जब उगडे कहा गया तो वह राजा उग्रसेन यह बोला—हे शृंग । धारमे गभी कृत्स्न हा आयगा, कुत्र भी दुर्द्वेव नरी है । गण्णुं विमान के जानने वाले पाप दारो हो होंगे । पर मां दोनों

हो उज्जयिनी पुरी में चले आइये वहाँ पर प्राण कृगविद्य भवार्त्त विद्या प्राप्त करते वाले होगे । इसके अनन्तर वे दोनों बलराम और केशव सान्दीपनि विप्र के समीप में चले गये थे ॥३०७॥

कण्ठस्थाश्चकृत्तुर्वेदानाचारमखिलञ्चतो ।

सरहस्यंघनुर्वेदं सप्त हारं तथैवच ॥८

अहोरात्रञ्चतु पष्टधातदद्भुतमभूद्विज ।

सान्दीपनिरसम्भाव्य तयोः कर्मानिमानुपम ॥९

विचिन्त्यतीतदामेनेप्राप्तौघन्द्रदिवाकरो ।

ततःकिञ्चित्सगोवाचस्नातुंतीयमथोपथौ ॥१०

शिष्यैस्तु संहितो त्रिप्रो महाकालमथाविशत् ।

शिष्यैस्मह प्रविष्टौ द्वौ तदा तौ रामकेशवौ ॥११

वन्द्यमानौमहाकालस्तदाकेशवमब्रवीत् ।

त्वयानाथेनदेवाना मनुष्यत्वेर्हितिष्ठता ॥१२

मुक्त्वामौषधसाधूनामज्ञानाञ्चसर्वदा ।

जनपीडाकराये तु सदा वा बलदपिता- ॥१३

युवाभ्यांतेहतास्त्वं कसप्रमुखतोनुपा ।

मुनिसिद्धसुरादीनांस्थितिकार्यात्त्वयानथ ॥१४

करिष्यामि तमित्युक्त्वा त नमस्यस्ततो ययौ ।

दृष्ट्वा सान्दीपनि शिष्या ऊचुरेव दिनेदिने ॥१५

दोनों ने चारों वेदों को कण्ठःप कर लिया था और सम्पूर्ण आधार

का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । रहस्य से समन्वित एवं महार के संहित घनुर्वेद को जान लिया था । यह समग्र ज्ञान चौंसठ अहोरात्र में ही प्राप्त कर लिया था । हे विज । यह एक परम अद्भुत ही घटना थी । उन दोनों बालकों का मनुष्य की शक्ति से बाहिर अव्यक्त कर्म के विषय में सान्दीपनि ने स्वयं बहुत कुछ किया था और वे इन दोनों को घन्द्र और सूर्य ही मानते थे । इसके पञ्चानु उसने कुछ भी नहीं कहा था और वह तीर्थ में स्नान करने के लिए चला गया था । वह विप्र अपने शिष्यों के संहित महाकाल के मन्दिर में प्रविष्ट हुआ था । उस समय में शिष्यों के

सहित वे दोनों राम और केशव भी प्रविष्ट हुए थे । वन्दना किये गए महाकाल ने भगवान् केशव से कहा था—देवों के स्वामी आपके इस मानसोद्य शरीर में स्थित रहकर विराजमान होने से साधु पुरुषों को परम सुख हुआ था और जिनकी ज्ञान नहीं था उनको भी सर्वदा सुख था । जो जनो को पीडा करने वाले थे अथवा सर्वदा अपने बल का घमण्ड रखते थे वे सभी कस आदि प्रमुख राजा आपके दोनों के द्वारा निह्न कर दिए हैं । हे धनध ! आपको मुनि, मिथ्य धीर, मुर आदि को स्थिति करनी चाहिए । उनको मैं इसे करूँगा, यह कहकर नमस्कृत हुए वह वहाँ से चले गये थे । शिष्यों ने सान्दीपनि को देख कर दिन-दिन में इसी प्रकार से कहा था ॥८-१५॥

कोपिनायद्दधत्तेपावचस्त्वत्यद्मुतयत ।

स्वयययीतनोदृष्टमाश्रयंगिष्यभापितम् ॥ १६

ततस्तथोत्थित शब्दः संश्लेषश्च तथा तयोः ।

तावागतौ गृह तत्र गुरुवचनमब्रवीत् ॥ १७

नचेशातोमयायीरोयदिवृष्णिकुलोद्भवो ।

तस्मान्दीपनिकृष्णः कृतकृत्योऽग्रवीद्वच ॥ ८

गुर्वथ किन्ददामीतमहरामेणहृषितः ।

तच्छ्रुत्वावचनं हृद्य गुरुः प्रोवाचहृषित ॥ १६

पुत्रामच्छाम्यहृत्वसोयोमृतो लयणाम्भसि ।

पुत्रएकोहिमेजातस्सचापितिमिनाहत ॥ २०

प्रभासेतीर्थयायाया त्वमेवतमिहानय ।

तथेतिचाग्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमतेगत ॥ २१

बोकि यह मतलब अद्भुत बचन था । इस पर कोई भी धट्टा नहीं करता था । इसके अनन्तर शिष्यों के हाथ बड़े हुए बचन को जो आश्चर्य मुक्त था देखने के लिए सभ ही घा गये थे । इसके अनन्तर उस प्रकार का उदर नलिन हुआ था और उन दोनों का मन्त्रेष्ट हुआ था । वहाँ पर वे दोनों गृह में समागत हो गए थे । तब श्री गुरुदेव ने यह बचन कहा



या—वृष्णि कुल में समुद्रमूत आप दोनों बोरों को मैंने नहीं पहिचाना है । इसके उपरान्त भगवान् कृष्ण कृत्स्न होते हुए सान्दीपनि से बोले—राम के सहित हृषित में श्री गुरुदेव को सेवा में क्या भेंट करूँ ! यह वचन सुनकर परम हृषित गुरुजी ने अतीव सुन्दर वचन कहा था ॥१६-१६॥ मैं तो जेबल आपसे अपने पुत्र को चाहता हूँ जो लवण सागर में मृत हो गया है । मेरे एक ही तो पुत्र उत्पन्न हुआ था वह भी तिमि के द्वारा निहत हो गया है । प्रमाम क्षेत्र की तीर्थ यात्रा में यह दुर्घटना हुई थी आप ही उस को यहाँ पर लाइये । हे गुरुदेव ! ऐसा ही किया जायगा, यह बलराम की अनुमति से श्रीकृष्ण ने गुरु को उत्तर दिया था ॥२०-२१॥

तं समुद्र उवाचे दैत्यः पञ्चजनो महान् ।  
 तिमिरूपेण तं बालं ग्रस्तवान्मधिसस्थितः ॥२२  
 ततः पञ्चजनं हृत्वा ग्राहरूप महाबलम् ।  
 तन्मध्यस्थं च जग्राह शङ्खं ग्रस्तो हियः पुरा ॥२३  
 जलमध्यस्थिते नवप्राहेणातीव लीलया ।  
 तस्योदरे यदा बालनददं जनार्दनः ॥२४  
 यमालयगतं मत्वा तदा बरुणमब्रवीत् ।  
 भगवन्त्यादस्तामीश रथो मे दीयताम् महान् ॥२५  
 येनाह वेहिताञ्जित्वा पश्येयं प्रेतपंथमम् ।  
 पुराजिरेह तदित्प्रादानवावलर्षितः ॥२६  
 मया येन रथेनाद्य समस्य दीयतां रथः ।  
 न्यासभूतो रथो यस्ते विधृतो परतेरणे ॥२७  
 मया धर्मपुरस्कृत्य दीयता सह्यपाप्मते ! ।  
 एतच्छ्रुत्वा प्रहृष्टात्मा ज्ञात्वा कार्यार्थिनं हरिम् । २८

समुद्र ने श्री कृष्ण से कहा था—एक महान् पञ्चजन दैत्य है उसने मेरे तिमि के स्वरूप से उम बालक को मेरे अन्दर स्थित होते हुए ग्रम लिया था । इसके अनन्तर समुद्र के मध्य में स्थित महान् बलशाली प्राह के रूप में उसे पञ्चजन का वचन करके शंख को प्राप्त किया था जो पहिले इस-

ने इस लिया था । यह पल के मध्य में स्थित अत्यन्त बल वाला प्राह  
 था । उसके उदर में जब जनार्दन प्रभु ने उस बालक को नही देखा था  
 तो यह मानकर कि वह यमालय को चला गया है । उस समय में यादवों  
 के स्वामी भगवान ने वरुण से यह कहा था कि मुझे एक महान् रथ दो ।  
 जिस रथ के द्वारा युद्ध में शत्रुओं को जीतकर मैं प्रेतों के स्वामी यम-  
 राज के समीप पहुँच सकूँ । पहिले र में बल से दपित दैत्य और दानव  
 निहत किये गये हैं और मैंने जिस के द्वारा युद्ध किया है वही रथ मुझे  
 हम समय में दो । रथ के उपरता ही जाने पर वह रथ न्यास के रूप में  
 आपके समीप में रखा हुआ है । हे धर्मापते । वही रथ मुझे दो जो मैंने  
 धर्म कार्य को पहले करके रखा था । यह वरुण करके वरुण परम प्रमत्त  
 आत्मा वाला हुआ और उसने श्री हरि को उस समय में भार्या सपत्नी  
 लिया था ॥२२-२८॥

ददौनुरथमक्षोम्य रणे तस्मिं सुरामुरं ।

स नो हरिस्समालोचय रथं रत्नपरिष्कृतम् ॥२९

द्वीपिचमंपरीधान वंयाप्रपरिवारितम् ।

नानाचित्रविचित्राङ्गं गण्डध्वजराजितम् ॥३०

समुक्तशैव्यसुग्रीवमेषपुष्पबलाहकैः ।

अजेयन्देवदेवेन्द्रदानवागुरराक्षसैः ॥३१

धनेकायुष्मम्पूष्णमणिविट्ममूषितम् ।

सहस्रसूयं प्रतिमनाश्वक्कंचतुयुग्मम् ॥३२

किष्टिणीतततोमादपं घण्टानामरनन्द्रिकम् ।

सवर्त्ताषारविषमं सगेन्द्रवरकेतनम् ॥३३

दृष्ट्वागुण्यस्स रामस्तु मुमुदे यौतविरमयः ।

प्रदक्षिणमुवागत्य देवताम्यः प्रणम्य च ॥३४

आरुरोह रथं विष्णुविमानं साग्रजोऽजतः ॥३५

वरुण देव ने तुम्हें ही वह रथ भगवान को समर्पित कर दिया था  
 जो रथ में गुरो और धरुओ के द्वारा अक्षोम्य या धर्यान् किगी के द्वारा  
 भी उसे कोई दोष नहीं दिया जाता था । इसके धनन्तर हरि ने रामों

से परिप्लुत उस दिव्य रथ का समदलोरुन किया था ॥२६॥ वह रथ हाथी के चर्म से मढ़ा हुआ था और व्याघ्रों के चर्म से परिवारित था । वह नागा प्रचार के चित्रों से विचित्र घंगो वाला था और बरुड की ध्वजा से लोभायमान था । शंख, मुञ्जोव, मैत्र पुत्र और बलाहकों से समन्वित था तथा देस देवेन्द्र, दानव, अशुर और राक्षसों के द्वारा प्रजेय था । वह रथ अनेक भासुओं से सम्पूर्ण था और मणियों तथा बिन्दुओं से विभूषित था । वह रथ एक महस्र सूषों के समान तेज युक्त था, चार बक और चार मुर्गा बाला था । वह भगवान् विष्णु के विराजमान होने वाला रथ संसृष्टों किङ्कणियों की शोभा से समन्वित था तथा घण्टा और घामरों की चन्द्रिका से समुत्त था । वह सम्बर्त्त आकार से विषम था तथा खपेन्द्र घोष के केतन (ध्वजा) वाला था । भगवान् श्री कृष्ण और श्री बलराम को विस्मय से रहित होकर बहुत ही प्रमत्तता हुई थी । प्रदक्षिण को समुदागत होकर और देवगणों को प्रणाम करके अपने प्रसन्न के सहित भगवान् विष्णु उस विमान रथ पर समास्य हुए थे ॥३०-३२॥

ततो जगाम स्परितो जनाद्दनो

जगन्निवासी यमजोरुमाश्रिताम् ।

दिशं सहस्रं किरणैर्दृताम्पुरी

वदशं सङ्घं परिगृह्य चाच्युत ॥३६

तत्रप्रध्मापयानास सङ्घं सङ्घनुधर ।

तैर्नित्येनविप्रस्ताः कृतान्तालयवासिनः ॥३७

नरकान्तगतामत्याः पापाचारपरायणाः ।

सुखमापुः प्रशान्ताश्रवह्लयः कृष्णदर्शनात् ॥३८

शस्त्राणि कुण्डलां प्रापुर्मेन्त्राणि त्रिविधानि च ।

विदीर्णानि तदा चाशु देवदेवस्य दर्शनात् ॥३९

यस्तिप्रवर्त्तनाम शीर्णपर्णमजायत ।

रौरवनामनरकमभैरवममृतदा ॥४०

सर्भैरवभैरवास्यं कुम्भीपाकमपाचिकम् ।

शृङ्गाटं शृङ्गसदृशं लोहमूध्यप्यमूचिका ॥४१

दुस्तरासुनराजा नदीवैतरणीनृणीम् ।

नरशान्तेतदाजातेगतेविश्वेश्वरेविभौ ॥४२

इसके अनन्तर जगत् के निवास अच्युत जनादंन भगवान् ने शाहू का परिग्रहण करके सहस्रों क्रूरणों से परिवृत्त यम लोक के समाश्रित दिशा वाली उन यमराज की पुरी को देखा था ॥३६॥ रांग और धनुष के धारण करने वाले प्रभु ने वहाँ पर उस अपने शत्रु को यत्राण । उस शत्रु की ध्वनि से यमराज के लोक के समस्त निवास करने वाले भय-भीत हो गये थे । जो लोग नरकों में घन्दर रहने वाले मनुष्य थे और पापों के समाचरण में तत्पर रहते थे उन्होंने परम गुण की प्राप्ति की थी । भगवान् धोकृष्ण के दर्शन से अग्निमाँ एक दम प्रशान्त हो गई थी । जितने भी राक्षस थे वे सब कुण्ठित दशा को प्राप्त हो गये थे और विविध भाँति के यन्त्र भी देवों के देव के दर्शन से बहुत ही सोझ उन समय में विदीर्ण हो गये थे ॥३७-३९॥ प्रतिपन्न धन नाम वाला जो नरक था वह शीघ्र पण हो गया था और उस समय में रौरव नाम वाला महा भीषण नरक उस समय में अर्धरथ हो गया अर्थात् उसकी भीषणता दूर हो गई थी ॥४०॥ अर्धरथ नाम वाला नरक अर्धरथ हो गया और कुम्भीपाक नाम वाला नरक अर्धरथ हो गया अर्थात् उसकी पाचन क्रिया समाप्त हो गई थी । जो शृगार नाम वाला नरक था वह शृग के समान था और सोहू सूबा जो बिना मूषियों वाला हो गया । जो वैतरणी नदी परम दुस्तर थी वह भी मनुष्यों के लिये सुतरा हो गई । उसी समय में जब कि नरकों के समीप विभु विश्वेश्वर पहुँचे तो उनकी सभी यान-मात्रों की श्रियाएँ समाप्त हो गई थी ॥४१-४२॥

पापशयात्ततस्सर्वे तेमुक्त्वा नरकान्नरा ।

पदमध्ययमासाद्य दृष्ट्वा विष्णुं तमोपहृत् ॥४३

विमानेषु महर्षेषु ह्यारदास्तसमन्ततः ।

ममीदयपुण्डरोकाशं मुक्तास्तेमर्षपातकात् ॥४४

ततश्चान्यमुनेजात सर्वानिरयमण्डलम् ।

दुर्गं नास्ति स्य देवस्य विष्णो विश्वरूपरूपिणः ॥४५

तसोद्भूताः कृतान्तस्यकृष्णञ्चयुद्धकारिणम् ।

धारयामासुरव्यग्रा विशन्तं नरकान्प्रति ॥४६

साधीरानेनमार्गेण रथमानयमानवाः ।

प्रयान्त्यधोगतिं पापात्परस्त्रीस्वापहारकाः ॥४७

यमादिष्टानराः पापाद्ये मोच्या वपंकोटिभिः ।

दृष्ट्वा तएवसद्यस्त्वा गतास्स्वर्गमघावृताः ॥४८

एतच्छ्रुत्वावचस्तेषा कूपयापीडितोभृशम् ।

पुनः प्रोवाचमघुहा मोक्षायाहमुपागतः ॥४९

पापों के लय हो जाने से फिर वे सभी नरक वासी मनुष्य नरकों से विमुक्त हो गये थे । मध्यय पद को प्राप्त करके और तम वा अपहरण करने वाले भगवान् विष्णु का दर्शन प्राप्त करके वे सभी और सहस्रो विमानों में समाखुड हो गये थे । भगवान् पुण्डरीकाक्ष के दर्शन प्राप्त करके वे नरकों में रहने वाले प्राणी सभी पापों से विमुक्त हो गये थे । हे मुने ! उसके पश्चात् तो ऐसा हुआ था कि वह सम्पूर्ण नरकों का मण्डल एक दम सून्य हो गया था अर्थात् वहाँ पर कोई भी रहा ही नहीं था । यह सारा प्रभाव विदव स्वरूपी भगवान् विष्णु देव के दर्शनों का ही था । इसके अनन्तर यमराज के दूतों ने युद्धकारी श्रीकृष्ण को नरकों में प्रवेश करने पर अव्यग्र होते हुए निवारित कर दिया था ॥४३-४६॥ यमराज के किकरों ने कहा था—हे चोर ! इस मार्ग से रथ को मत लाओ । जो परायें घन तथा परायी स्त्री का अपहरण करने वाले मनुष्य होते हैं वे ही अपने किये हुए पाप के कारण से इस मार्ग से प्रयोगति को जाया करते हैं । जिस नरक की यातना को भोगने के लिये मनुष्यों को प्रादेश दिये गये थे और जो करोड़ों वर्षों तक मोषन करने के योग्य थे वे भी आजका दर्शन प्राप्त करके अर्धों से आवृत भी तुरन्त ही स्वर्ग लोक को चले गये हैं । इस उनके वचन को सुनकर कृपा से अत्यन्त पीडित होकर मधुरिपु प्रभु ने पुनः यह कहा था—मैं तो उनके मोक्ष के लिये ही आया हूँ ॥४७-४९॥

सर्वेषास्वर्गदाताऽहं यमलोकनिवारकः ।  
 भञ्जसायमराह्दूता यमायास्यातमेव च ॥५०  
 एतच्छ्रुत्वाश्चोदूनास्सत्त्वरायममागताः ।  
 सर्वमात्रक्षिरेवृत्तं यथानारकमोक्षणम् ॥५१  
 ततोयमोरुपाविष्टः प्राहतान्यमकिङ्कुरान् ।  
 यः कश्चिदागतोमर्त्यो मर्षादाभेदकृन्नर ॥५२  
 तगत्वावारयध्वधं गृहीत्वानीयतामह ।  
 भयन्नरान्तकोयानु किङ्कुरस्महकिङ्कुरैः ॥५३  
 एवमुक्तो यमेनाथ किङ्कुरस्सनरान्तकः ।  
 गत्वातवारयामाम वाग्भिरुग्राभिरच्युतम् ॥५४  
 यदानवारितस्तस्यो तदाक्लृप्तोनरान्तकः ।  
 तदाशरैरतीवोर्ध्वस्ताडितस्तेनवेशयः ॥५५  
 बलदेवोऽपिस्तमरे ताडितोविविधंशरैः ।  
 तावुभ्रीताडितोघोरैः समन्ताद्यमकिङ्करैः ॥५६

मैं सभी को स्वर्ग के प्रदान करने वाला हूँ और यमलोक का  
 निवारण करने वाला हूँ । मुरन्त ही उन यमराज के दूतों ने यमराज से  
 जाकर यही कह दिया । यह वधन मुनकर यम के दूत बहुत ही तीव्रता  
 से यमराज के समीप में पहुँच गये थे और उन्होंने यह सभी वृत्त जिते कि  
 नारकियों का मोक्ष हुआ यमराज से निवेदन कर दिया । यमराज ने  
 कहा—यह नरान्तक बिबर घने निररो के गाय वहाँ पर चला आये  
 और वहाँ जाकर उनको रोक दो । उसे पकड़ कर यहाँ मेरे पास लाओ ।  
 इन प्रहार में यम के द्वारा बड़े हुए उन नरान्तक बिबर ने बहुत ही उग्र  
 वधनों से उन भगवान् अच्युत को रोक दिया । जब वह वारित बिये  
 जाने पर भी नहीं रोके तो वह नरान्तक बहुत क्रुद्ध हुआ था और उग्र  
 समय में बहुत ही उग्र शरों से उन नरान्तक ने भगवान् वेदाव पर प्रहार  
 किया । बलदेवों को अनेक शरों के द्वारा ताडित किया । ये दोनों ही  
 धीरुष्ण और बभराम परम शेर वालों ने शरों और छे यमराज के  
 बिबरों के द्वारा प्रताडित हुए थे ॥५०-५६॥

आदायघनुपीदिव्ये जघ्ननुयंमकिकरान् ।  
 चार्णरनेकसाहस्रं : क्रुद्धौरामजनार्दनौ ॥५७  
 नरान्तकोऽपिसमरे बलेनबलिनाहितः ।  
 पपात्तगदयाभिन्नो मूर्धनिनिर्गतलोचनः ॥५८  
 ततो नरान्तकेवीरे पतितेयमकिकरे ।  
 किकराणामभूत्संन्यमातरणपाङ्मुखम् ॥५९  
 तैद्रुतारामकृष्णाभ्यां हन्यमानाभयातुराः ।  
 यमायकथयामासुर्नरान्तकनिपातनम् ॥६०  
 ततोयमोयमोययोक्रुद्धः समन्तात्किकरैर्वृतः ।  
 तत प्राह यमः क्रुद्धोनोजितोऽहंपुरापरे ॥६१  
 ततोवादित्रघोर्यस्तु मुरजानकगोमुखैः ।  
 नानाडमरुकाद्यैश्चित्रगुप्तंचगच्छति ॥६२  
 देवाविद्याधरा सिद्धा द्रष्टुं प्राप्ता महाबलम् ।  
 कृतान्तस्थ रणेऽशोभ्यं कामपाल जगत्पतिम् ॥६३

तब तो बलराम और जनार्दन दोनों बहुत ही क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने सहस्रो बाणों से अपने दिव्य दिव्य घनुषो को प्रहार करके उन यमराज के किकरों का हनन कर दिया । वह नरान्तक भी उस समय स्थल में परम वनशाली बलरामजी के द्वारा खूब ही पीड़ित किया गया और गदा के प्रहार माये में भिदा हुआ वह निकले हुए नेत्रों पाला होकर गिर गया । इसके प्रसन्तर जब वह नरान्तक वीर यमराज का किकर युद्ध स्थल में गिर गया तो उसके पतन होते ही यमराज के किकरों की वह सम्पूर्ण सेना रण से पराङ्मुख हो गई । वे समस्त द्रुत राम कृष्ण के द्वारा हन्यमान होते हुए भयभीत होकर यमराज के पास पहुँचे और उन्होंने ने यमराज से उस नरान्तक के निपात होने का समाचार कह दिया । इसके उपरान्त यमराज अत्यन्त क्रुद्ध होकर सभी ओर से अपने किकरों द्वारा परिवृत्त होकर वहाँ पर गया और क्रोधाविष्ट होकर उमने कहा— पहिले आज तक मुझे कभी दूसरो ने नहीं जीता है । इसके पश्चात् वादित्रों

ही ध्वनियो से—मुरज—मानक और गोमुत्त के शब्द से तथा अनेक  
 डमरू आदि के घोषों के साथ चित्रगुप्त के जाने पर वहाँ पर समस्त देव  
 गए—विद्याधर और सिद्ध उस कृतान्त के युद्ध में महान् बलवान् जगत् के  
 स्वामी कामपाल को देखने के लिये प्राप्त हो गये थे जो कि अज्ञान्य थे  
 ॥१७-६३॥

ततस्तेकिकरा सर्वेचित्रगुप्तेननोदिताः ।

रथामावृत्यवाणीर्घः प्रवबाधुस्मन्ततः ॥६४

बलञ्चकेशव स रथे जघ्नतुस्तावुभाषपि ।

रणेचविविधेर्दार्णोश्चित्रगुप्तस्यपश्वतः ॥६५

विदायंचसहस्राणि किकराणासमन्ततः ।

कृतान्तानीकिनीमध्ये कृतान्तद्वकेशवः ॥६६

चचार रणदुद्धं कामपालेन पालितः ॥६७

ततश्चित्रगुप्तोरणे किं करोष

विदीर्णं निरीक्ष्यार्शनादंचकार ।

गरं पञ्चभिः कृष्णमायान्तमाजौ

जघानाष्टभिर्दक्षत्रदेशे सभिन्नः ॥६८

शरार्तोर्योपस्यजातीत्तदानी

समालोचयभिन्नं रणे नष्टमञ्जम् ।

रथ स्व गमादाय यातः कृतान्त

मन्तश्चित्रगुप्तेरार्तं प्रमुप्त ॥६९

रणे कीर्त्तनुप्तेभयक्षोभयुक्ताः

स्वर्मन्यंश्चयुक्ताभयार्तानियन्ताः ॥

प्रधानाश्च भग्ना विचित्राश्च भग्ना

स्ततश्चित्रगुप्तं निगम्याऽथ भग्नम् ॥७०

इसके अन्तर्गत चित्रगुप्त के द्वारा प्रेरित हुए वे गर विवर कृष्ण  
 वसराप के रथ को धारो ओर से घेर कर बाणों के समूह में प्रहार कर  
 रहे थे । उन्होंने उस युद्ध में जो वसराप और धीटाण दोनों के ही  
 द्वारा मर आयात किये थे । चित्रगुप्त के देखते हुए उस युद्ध स्थल में



अनेक प्रकार के बाणों के द्वारा हनन हो रहा था। उस समय में भगवान् केण्व ने साक्षात् कृतान्त के ही समान उस यमराज की सेना के मध्य में यमराज के किकरों में सभी ओर से सहस्रों को विशीर्ण करके कामपाल के द्वारा पालित वह रण में दुर्घर्ष होकर विचरण कर रहे थे ॥६४-६७॥ इसके परवात चित्रगुप्त ने उध घुड़ में अपने किकरों के एक बहुत बड़े समुदाय को विदोर्ण होते हुए देखा और ऐसी बुरी दशा उन अपने किकरों की देखकर चित्रगुप्त ने आर्तनाद किया था ॥६८॥ उसने पाँच शरों के द्वारा आते हुए श्रीकृष्ण पर हनन किया और वह भाट बाणों से मुक्त प्रदेश में भिन्न हो गया। उस समय में वह शरों से अत्यन्त आर्त होकर रथ के समीप में ही था। उसको रण में भिन्न तथा देहोश देखकर शरों से आर्त और चित्रगुप्त के प्रसुप्त हो जाने पर कृतान्त अपने रथ को लेकर स्वयं वहाँ पर समागत हो गया। रण में कीर्ति के नुत हो जाने पर भय और शोक से मुक्त तथा अपनी सेनाओं के सहित भय से आर्त एवं सब घंटे हुए थे। सभी प्रधान भग्न हो गये थे—विचित्र भी भग्न हो गये थे और फिर चित्रगुप्त को भी भग्न हुआ सुन लिया था ॥६९-७०॥

सकालस्तमायान्तमालोस्यदराद् ।  
 धरं सन्यमादाय देवारिशमुम् ।  
 विनाशाय युध्यद्युगान्ते प्रजाना  
 यथा वाडवो ज्यायवृद्धः प्रवृत्तः । ७१  
 तमायान्तमालोषय काल करालं  
 शरैरावृणोदन्तकं कालकल्पैः ।  
 स कालः करालं समादायदण्डं  
 मुमोचाच्युते पश्यतान्देवतानाम् ॥७२  
 ततः कालदण्डः प्रजानां विनाशो  
 हरेस्सन्निकायां समभ्याजयाम् ।  
 ततो देवगन्धर्वयक्षामुनीन्द्राः  
 परं विस्मयं प्रापूरन्वीक्ष्य रामम् ॥७३

उवलन्तञ्च जग्राह कालस्य दण्डं  
 स रामो वरं लीलयानन्तमूर्तिः ।  
 कालदण्डे गृहीते बलेनाहवे  
 मोक्षनुनामे पुनः कालनाशाय वै ॥७४  
 तूर्णमभ्येत्य तत्रान्तरे पञ्चजस्तं ।  
 रणे वारयामास कृष्णतदा ॥७५  
 मां मुञ्चेत्यग्रवीर्येणाः काल कालायुधं बलं ।  
 त्वयावलवतावीर चराचरघराधरा ! ।  
 धार्यंते शिरसादेव समारेतास्ति ते समः ॥७६  
 त्वया विदवपतिर्विष्णुस्तस्यै नसदो ह्यते ।  
 कोऽन्योऽस्ति स्वस्तमोरामयो जगद्ब्रह्मैश्वरः ॥७७

उस काल ने देवी के धरियो के शत्रु उसको पाते हुए दूर से ही  
 देवकर घट्टन अच्छी सेना लेकर उनके विनाश के लिये युद्ध करने लगा  
 जंमे प्रजाओं के घन्त करने में उदासाओं से प्रवृत्त पाद्व्य प्रवृत्त होता है  
 ॥७१॥ उस प्राते हुए करालकाल को देवकर काल के तुल्य शरों से उस  
 घन्तक को घायुत कर दिया । उस काल ने कराल दण्ड को लेकर देवताओं  
 के देवते हुए अन्तुत पर उसका प्रहार कर दिया । प्रजाओं का विनाश  
 वह काल दण्ड या जो कि श्रीहरि के समीप में आकर प्राप्त हुआ । इसके  
 घन्तर धीराम को देवकर देव—गण्यर्व—यज्ञ धीर मुनीन्द्र परम विस्मय  
 को प्राप्त हो गये थे ॥७२-७३॥ श्रीश्रवण मूर्ति उन धीवलराम ने सीला  
 ते ही परम श्रेष्ठ जागवस्थमान शप के दण्ड को घट्टन कर लिया । बलराम  
 जी के द्वारा उग मुद्ध में काल दण्ड के प्रहण करने पर पुनः काल के  
 विनाश करने के लिये उनके दण्डने को दृष्टा करने पर भगवान् ब्रह्माजी  
 उगी शेष में उस युद्ध स्थल में शीघ्र उपस्थित हुए थे धीर उग गमय में  
 उगहोने धीहृष्ण को निवारित कर दिया । ब्रह्माजी ने कहा—हे बल !  
 दण्ड कालायुध काल को मत छोड़ो । हे वीर ! बलवान् भाप के द्वारा  
 तो इस गमय पराशरों को धारण करने वाली द्रव्य भूमि को निर मे ही  
 धारण किया जाना है । दण्ड लकार में आप के तुल्य अन्य कोई भी नहीं

है । आपके द्वारा विश्व के प्रति भगवान् विष्णु सदा उल्लस के द्वारा धारण किये जाग करते हैं । हे राम ! जो जगत् के वह न करने में समर्थ हैं वंसा अन्य आपके समान कौन है । अर्थात् कोई भी नहीं है

॥७४-७७॥

जगत्स्रष्टाजगद्गोप्ताजगद्धर्ताजगत्पतिः ।

पाह्यसेयस्त्वयासोऽपि विष्णुर्विश्वकनायकः ॥७५

कस्ते स्तुतिकरोऽस्तीह को गुणान्वेत्सुमहंति ।

ततो वयं त्वदङ्गस्था विष्णुनाभिभवायनाः ॥७६

इत्प्रुवत्त्वावन्देयञ्च वासुदेवंपुनर्वचः ।

उवाच चतुरास्यस्तु स्तुतिपूर्ववृत्तस्सुरैः ॥७७

कृष्ण ! कृष्ण ! करालास्य ! कालस्थास्य कृपां कुरु ।

यतो भवन्तमायान्त्विष्णुं विश्वकनायकम् ॥७८

वेत्तिनायं जगन्नाय नरकारणवतारकम् ।

त्वयावंभगधनूर्वधमः सस्यापितः पदे ॥७९

नृणां दुष्कृतकृतृणां नरकाययमः प्रभो ! ।

तस्मादस्य जगन्नाय सम्यक्तापुरुषोत्तम ! ॥८०

विभो ! कृतापराधस्य तू हियते विवक्षितम् ।

एतच्छ्रुत्वाश्रवीकृष्णो घातः शृणुगुरोर्मम । ८१

मान्दीपनेस्समानो तस्सुतस्तेनागता विह ।

समर्प्यता गुरुश्रेष्ठ श्रेष्ठाय गुरुदक्षिणा ॥८२

इस समस्त जगत् के सृजन करने वाले—जगत् की रक्षा करने वाले—जगत् के धारण करने वाले धीर इस जगत् के प्रति—विश्व के एक ही नायक जो विष्णु देव हैं वे भी आपके ही द्वारा पालित होते हैं । यहाँ पर कौन स्तुति के करने वाला है धीर कौन गुणों को जानने को योग्य होता है । विष्णु के द्वारा अभिमवायन हम आपके ही अङ्ग में स्थित हैं—यह कहकर पुनः बलदेव और शसुदेव को सुरों से अथावृत्त ब्रह्माओं ने स्तुति पूर्वक कहा—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! आप तो कराल मुख वाले हैं—इस काल के उत्तर दृष्टा करिए । कारण यह है कि विश्व के एक नायक

विष्णु भगवान् आपकी प्राप्ति हुए यह नहीं जानता था कि आप समस्त जगत् के साथ घोर नरको के सागर से तारने वाले हैं। हे भगवन् । आपने ही पहिले इस यमराज को इस पद पर संस्थापित किया। हे प्रभो ! जो दुष्टृत करने वाले मनुष्य हैं उनका दण्ड देने के लिये ही इस यम को आपने यह पद प्रदान किया है। हे जगन्नाथ ! हे पुण्योत्तम ! इसी कारण से अब इनको आप क्षमा कर दीजिए। हे विभो ! इसमें कोई भी संदेह नहीं है कि हमने आपका अपराध किया है किन्तु अब उसके क्षमा पत्र के लिये आप ही बतलाइये कि आपका क्या विदधित है। यह गुनकर भगवान् धीहृण ने कहा—हे प्राणा ! आप मेरा कथन धरण कीजिए— मेरे गुरु सान्दीपनि का पुत्र यहाँ माया गया है। इसी लिये हम दोनों यहाँ पर आये हैं। हम अपने परम श्रेष्ठ गुरु देव के लिये गुण दिलाया समर्पित करे। हे विभो ! हम दानों ने प्रतिज्ञा की है कि हम गुरु सान्दीपनि के पुत्र को लाकर उन्हें देंगे इसी लिये उसका पालन कीजिए ॥७८-८२॥

आवाभ्या य प्रतिज्ञाता तस्मात्ता पाल्यतां विभो ! ।

एतत्पितामहः श्रुत्वा यम समरनिजितम् ॥८६

समाहूयाऽश्वीष्टिष्णुर्यद्वयधीति धुरध्व तत् ।

तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु विरश्चिर्वाभदमप्रयोत् ॥८७

भगवन्निश्चकृन्नोत्तेनपमार्गंन्द्रयाकृतः ।

यमलोकमनुप्राप्तः कायहीनः शरीरवान् ॥ ८

शरीरमहितोयाति नैतदत्रप्रपद्यते ।

तच्छ्रुत्वाहिपुनर्ब्रह्मा विश्वस्यास्यविभु स्वपम् ॥८९

विश्वकृद्विश्वहृद्यस्माद्यदिच्छति करोनु तत् ।

तस्मादर्पय पुत्र स्व मुनेस्तान्दीपनेभ्य वै ॥९०

पितामह ने यह गुनकर समर भूमि में निजित लिये हुए यमराज को बुलाकर कहा कि जो भगवान् विष्णु कोत रहे हैं उसे गुन समर्पित करो। यह गुनकर धर्मराज ने विरश्चि देव से यह कहा—हे भगवन् ! इस विश्व

सकरादित्यमाहात्म्यवर्णन ]

की रचना करने वाले मापने ही यह माणं निमित्त किया है कि वो हम यमलोक में प्राप्त हो जाया करता है वह भाग्य से रहित शरीर वाला होता है। जो शरीर के सहित होता है वही जाया करता है वो हम शरीर धारी यह प्राप्त ही नहीं होता है। यह धरण करके इस सम्पु विश्व के स्वयं विभु ब्रह्माजी ने पुना कहा था कि क्यों कि इस विश्व रचना करने वाले प्रौर इस विश्व के हृदय जो भी चाहते हैं वही करो। इस लिये मुनि सान्द्योपनि के पुत्र को तुम इनका समर्पित व

॥५६-६०॥

नरकाय पुनः कृत्वा तच्छानयमहामते ।  
 तच्छ्रद्धत्वाधर्मराजस्तु पृथंगान्दीपनेस्तथा ॥५१॥  
 ससर्जवातरूपञ्चतदारमानंतदुद्भवम् ।  
 धर्पयामासशृण्णाय धाररूपसमन्वितम् ॥५२॥  
 समक्ष देयतानाच तद्वदमुतमिवाभवत् ।  
 दतः प्राप्यगुरोः पुत्र प्रभु प्रीत प्रजापतिम् ॥५३॥  
 ग्राह प्राप्तो मया ब्रह्मन् स्वरूपो द्विजदारकः ।  
 अक्षप्रभृति लोकेन ! देशे मच्चरणाद्धिते ॥५४॥  
 अदन्त्यामं कपादारुये मृतानेधन्ति ते यमम् ।  
 महाकालोत्तरे देवमाद्यं वै पुरुषोत्तमम् ॥५५॥  
 विश्वरूपञ्च गोविन्द शङ्खोद्धारं च के शवम् ।  
 ये पश्यन्ति कुशस्थत्यामेतेशामूर्तिपञ्चकम् ॥५६॥  
 तेन रातगमिष्यन्ति विरञ्चेनिरयपत्रचित् ।  
 तथैवागमनादप्य मम रामस्य नारकाः ॥५७॥  
 विमुक्तास्ते त्वया घोरात् प्राप्नुवन्त्यखिलादिवम् ।  
 इत्युक्ते बचने वेधाः प्रोवाच प्रीतिमान्हरिम् ॥५८॥

हे महामते ! पुनः मनुष्य के शरीर की रचना करके उसको यहाँ पर लाओ। यह प्रवण करके धर्मराज ने सान्द्योपनि मुनि के पुत्र की रचना की थी जो कि बालक के रूप वाला उसी स्वरूप से मुक्त प्रौर उससे उद्वेग को प्राप्त करने वाला हो था। ऐसे बालरूपी उसको भगवान् श्री-

कृष्ण के लिये उप धर्मराज ने वह समर्पित कर दिया था ॥२१-६२॥  
समस्त देवताओं के समक्ष में वह एक भद्रमुन जैसी घटना घटित हुई  
थी । इसके अनन्तर प्रभु ने अपने गुरु के पुत्र को प्राप्त करने प्रजापति पर  
परम प्रसन्नता उनको हुई थी और उन्होंने कहा था—हे ब्रह्मन् ! मैंने  
ठीक सुन्दर स्वरूप वाला द्विज का वामक प्राप्त कर लिया है । श्रीकृष्ण  
ने कहा—हे लोकेश ! धाज से लेकर मेरे चरणों से प्रकृत देश में अथन्ती  
में अक्षयान नाम वाले स्थान में जो भृश पुरुष हैं वे धाकर धर्मराज का मुख  
नहीं देखेंगे । महाकालोत्तर में धाशदेव पुरुषोत्तम, विश्वरूप, गोविन्द और  
राघोद्वार केशव भगवान् का जो दर्शन किया करते हैं और कुशस्थली में  
इनकी पाँच मूर्तियों का ध्वजोत्थन करने हैं, हे ब्रह्मन् ! ये मनुष्य कभी  
भी नहीं पर नरक का दर्शन नहीं करेंगे । उसी भाँति यहाँ पर मेरे  
आगमन से तथा बलरामजी के आगमन से नारक लोग अर्थात् नरकों में  
निवाम करने वाले मनुष्य विमुक्त हो गये हैं । ये सब इस घोर नरक से  
जो आपने इहे दिया था विमुक्त होकर सब के सब दिव्यलोक को प्राप्त  
होने हैं । इस वचन के कहने पर ब्रह्माजी परम प्रीति वाले होकर श्री हरि  
से बोले—हे श्री कृष्ण ! आपने जो कुछ भी वचन कहा है वह सदा सफल  
होगा ॥६३-६५॥

यएवोक्तं वचः कृष्णतदस्तुसकलसदा ।

ये च स्वामादिपुरुष प्रथमं पुरुषोत्तमम् ॥६५

प्रणम्य ये च द्रव्यन्ति स्नात्वा शिवसरस्यपि ।

अघोऽज्वल महाकाल सोऽश्वमेधफलं सभेत् ॥६६

एवमुक्तो हरिः पुत्रमादाय बलेन ( हलिना ) सह (?) ॥६७

आपृच्छ अथैष संदेवमाहरोहरयंततः ।

गङ्गामापूरयामास कृतकार्यो जनाह्वनः ॥६८

मोक्षाय निरयस्थानं नृणां विपायकमंगाम् ।

ततस्ते गङ्गाद्येन स्मरणेनाच्युतस्य च ॥६९

दिव्यानि भानानाकृत्य दिव्यमेतानि प्रापताः ।

सूर्यान्तन्मण्डलं जातं नारायणसमागमे ॥७०

कालोऽपि दण्ड मामाद्य बलदेवात्पुरं पुरम् ।

प्रविवेश ततो घाता तत्रैवान्तरधीमन ॥१०५॥

जो मनुष्य प्रथम पुष्टपोषण आदि पुरुष अथवा प्रणाम काके और शिवमर में भी स्नान करके अथोज्ज्वल महाकास का दर्शन करे तो वे धनवैश्याय का फल प्राप्त करते हैं । इस प्रकार से कहे हुए श्री हरि वसुदेव जी के साथ द्विज पुत्र को लेकर और वेव सहस्रगो से अनुमति ग्रहण करके रथ पर समास्य हो गये थे । कुछ कार्य अनार्यन प्रभु ने शत्रु का नाश किया था । पाप बर्ष करने वाले मनुष्यों के निरम स्वयं के मोक्ष के लिए श्री ब्रह्म सत्त्व की ध्वनि की थी । इसके पश्चात् वे उस क्षण के क्षण से तथा अथवा अथवा के स्मरण करने से परम विद्व विमान पर चढ़कर वे सबके सब स्वर्ग लोक को गये गये थे । पशवान् नारायण के वहाँ पर समास्य होने से वह पुरुष मण्डल शून्य हो गया था ॥१०५-१०६॥ अतः नो दण्ड प्राप्त करके बलदेवजी के घाते २ प्रविष्ट हुमा पा और इसके पश्चात् घाता (महा) वही पर अन्तर्धान हो गये थे ॥१०५॥

कुष्णोर्ध्वपद्मनाम्नीरः प्राण्य उपजयितीपुरीम् ।

बलदेवसहायस्तुमरयेनाशुगामिता ॥१०६॥

ततस्तान्दीपनेः पृथमर्पयामासकेचिहा ।

कुरवेगत्प्रतिज्ञात एतस्मादनृभोज्ज्वलत् ॥१०७॥

एवं सान्दीपने पृथ दृष्ट्वाचपुनरागतम् ।

नगरास्तत्रराजाव विस्मयपरमययुः ॥१०८॥

तीवीगवचंयामासुर्मन्वादेवोत्तमोत्तमौ ।

सान्दीपनिस्वाधेद तीव्रगमजनाहनी ॥१०९॥

इह स्यात्सति व. कीर्तिर्वावदाभूतसम्भवम् ।

स्याने तु बधमेतस्मिन् स्यात्सामो यदूनन्दनौ ॥११०॥

नविशावीमयावीरो यदुवृष्णिकुलोद्भवौ ।

नरनारायणोदेवो देवकार्याधिमान्तौ ॥१११॥

नाल्लभमृत्युर्भवेत्तस्यनव्याधिर्नचदुर्गतिः ।

प्राप्नोत्यश्रचस्नातञ्चो तस्वर्गलोकेमहीयते ॥११२

भगवान् श्री कृष्ण भी बोर उज्जयिनी जी पुरी मे आ गये थे । ब्रह्मदेव जी भी उनके साथ में सहायक थे । वे शीघ्रगामी रूप के द्वारा वहाँ पहुँच गये थे और वेशी दैत्य के हनन करने वाले प्रभु ने सान्दीपनि मुनि को उनका पुत्र लाकर भक्षित कर दिया था । अपने गुरुजी से जो पुत्र को लाकर दे देने की प्रतिज्ञा की थी उस गुरु ऋषि से वे उन्मत्त हो गये थे । इस प्रकार से सान्दीपनि मुनि के पुत्र को जो मर गया था पुनः वापिस समागत हुआ देख कर वहाँ के सभी नगर निवासी लोग घोर रात्रा भी परम विस्मित हो गये थे । उन सबने उन दोनों श्री बलराम और श्री कृष्ण की धर्मा की थी और सभी ने उन दोनों को परमोत्तम देव मान लिया था मुनि सान्दीपनि ने उन दोनों श्री राम और जनार्दन से यह वचन कहा था—यहाँ पर लोक में आपकी यह शक्ति जब तक समस्त भूतों का सम्पन्न होगा स्थित रहेगी । हे यदुनन्दनी ! इस स्थान में हम लोग स्थित रहेंगे । यदु कृष्णि कुन मे उद्भव प्राप्त करने वाले आप दोनों दोरो को मीने नही पहिचाना था कि साक्षात् नर नारायण देव देवों के बापों की सुमध्यादिन करने के लिए ही इस लोक में समागत हुए हैं । यहाँ पर प्राप्त जो भी कोई होता है और यदि यहाँ स्नान कर लेता है तो वह कभी भी धन्य वायु में मरने वाला नही होगा । उसे कभी भी कोई व्याधि भी पीडित नही करेगी और न किसी प्रकार की उसको दुर्गति ही होगी । धन में इसका ऐसा प्रभाव होगा कि वह स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होता है ॥१०६-११२॥

मत्तिनं विश्वरूपञ्चामापवञ्चक्रिणतया ।

चत्वारिंशद्विष्णुक्षेत्राणि अकमादस्तुपञ्चनम ॥११३

एतां यात्रां प्रवक्ष्यामि यथा वार्ता मनीषिभिः ।

मन्दाकिन्या यूनस्तानी दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥११४

संजोद्धारे ननस्नात्वा प्रपदैद् धलरैःतदी ।

स्नानं कृत्वा ननः कुण्डे गोविन्दञ्च समन्वेत् ॥११५



षष्ठीणञ्चततोद्गृह्य विश्वरूपततोत्रजेत् ।  
 तस्याग्रतः कसीकुण्डेस्नानं कृत्वायथाविधि ॥११६॥  
 पुनस्त्वेन प्रकारेण प्रपश्येद् बलकेयवी ।  
 स्नानं कृत्वा तस्य कुण्डे गोविन्दश्च समसयेत् ॥११७॥  
 तथैव चकृहस्तां तौ दृष्ट्वा केजवमाग्रजेत् ।  
 शिप्राभ्रानि नर स्नात्वा ममरया सम्पूज्य केजवम् ॥११८॥

सही, विश्वरूप, पञ्च पाषव, घोर चक्री ये चार विष्णु श्रेय हैं  
 और पट्टपाद पाँचवीं सोत्र है । इनकी बाधा के विषय में मैं कर्तृवा किं  
 किस प्रकार से मनीषियार को बत करनी चाहिए । मन्दाकिनी में स्नान  
 करके श्रीराम ब्रह्मासन का दर्शन करके फिर शबोडार में स्नान करके  
 वनराम बार वैश्व भयनाम का दर्शन करना चाहिए । इसके पश्चात्  
 कुण्ड में स्नान करके श्री गोविन्द प्रभु का ममन करे ॥११६-११७॥ इसके  
 पश्चात् चक्री भयरात् मा वर्धन करे और इसके बाद में विश्व रूप की  
 सेवा में अवस्थित होना चाहिए । इनके बारे कस्ये कुण्ड में विपिपूर्वक  
 स्नान करे और फिर उसी प्रकार छ श्री बल घोर कथन का दर्शन  
 करना चाहिए । इसके पश्चात् कुण्ड में स्नान करके श्री गोविन्द प्रभु का  
 समर्पण करे ॥११६-११७॥ तयो मति से अऊ हाथ में रखने वाले का  
 दर्शन करके भगवान् केशव के समीप में गणन करना चाहिए । शिप्रा के  
 जल में मनुष्य का स्नान करने भक्ति की भावना से भगवान् केशव का  
 मतो-मति पूजन करना चाहिये ॥११८॥

परवृत्त्याः कपाटत् तां रात्रगमयेच्छुचि ।  
 प्रातर्वर्भोजयेत्तत्र पञ्चविप्रशुचमुन्नतान् ॥११९॥  
 गोवक्षिणादृष्टाग्निनेतु विदधहृपायवैहृय ।  
 गोविन्दाय गजः प्रोम्स्तम्बर्दद्याच्चकेशवम् ॥१२०॥  
 उपाप्य द्वादशीविप्रापाकपादसमर्चयेत् ।  
 गन्धपुष्पैश्चयूपैश्चमवेद्यं विविधं स्नया ॥१२१॥  
 श्राद्धं यं कुर्वन्तर्भं तस्यपुष्पफलं शृणु ।  
 कुम्भानां शतमुद्बृत्य विमानेऽसावकासिकैः ॥१२२॥

गीतनृत्यादिभोगैश्च वैकुण्ठे सूचिरं वसेत् ।

पुनर्लोकमिमंप्राप्य पवित्रे जायते कुले ॥१२३

प्राप्नोत्यनन्तसन्तानं विष्णुलोकं पुनर्व्रजेत् ॥१२४

य कषाद मे वापित सौटकर परम पवित्र होकर उस रात्रि मे वही पर निवास करे । श्रात. काल होने पर पर मुवन पाँच विप्रों को वही पर भोजन करावे दाँसो प्रमु को गौ की दक्षिणा विश्व रूप के लिए ह्य को दक्षिणा, गोविंद के लिये गज की दक्षिणा बतार्द गर्द है । बेशय भगवान के लिए सर्वस्व दक्षिणा मे देवे ॥११६-१२०॥ द्वादशी का उपवास करके विप्र के लिए य कषाद का समर्पन करना चाहिए । गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य और विवध प्रकार के अन्न उपचारों से समर्पन करना चाहिए । जो वही पर घाट करता है उसका सय पुण्य फल धवल करो । वह मनुष्य जो घाट वही पर किया करता है अपने सो कुसो का उद्धार करके समस्त जामनाओं से परिपूर्ण विमानों के द्वारा तथा गीत और मुख्य घाटि महान् गुप्तोपयोगों के द्वारा वह वैकुण्ठ लोक मे विरहास पर्यन्त निवास किया करता है । फिर सुवधि के अनन्तर इस लोक मे आकर किसी महान् पवित्र कुल में मनुत्पन्न हुआ करता है । यही पर वह मनुष्य अनन्त सन्ततियों वा गुण प्राप्त किया करता है और फिर भी वह विष्णु लोक में ही समन किया करता है ॥१२१-१२४॥

### ७४-रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि केदारेश्वरमुत्तमम् ।

प्रवरं सर्वतीर्थानां सर्वलोकेषु विद्युतम् ॥१

सप्रस्नात्वाणुचिभ्रूँत्वा यःपश्यतिमहेश्वरम् ।

केदारेश्वरपल्ल प्रोक्तं तदप्रापिसधेन्नरः ॥२

मयंपापविनिमुंक्तः स्वकीयकुलसमुत्तः ।

विमानेनाकंषणं शिवलोनेसमोदते ॥३

जटाशृङ्गेनरा स्नात्वा गुचिभ्रूँत्याजितेन्द्रियः ।

हृष्टा जटेश्वरं देवं ततःपापाद्भिमुच्चते ॥४

महास्नपनमाशौचं कृत्वागच्छेच्छिवम्प्रति ।  
 मातृक पीतृकं चैव कुलानां तारयेच्छतम् ॥५॥  
 इन्द्रतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वाचेन्द्रेभ्यश्च शिवम् ।  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सकललोके महीयते ॥६॥  
 कुण्डेश्वरं तु या पश्येच्छिवभ्यानपरायणः ।  
 लभते स नरो ब्रह्मात् शिवदीक्षाफलशुभम् ॥७॥

श्री मन्मथुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर मैं इत्यप वेदारेश्वर का दर्शन करूँगा जो सत्तार के समस्त तीर्थों में परम शक्ति है और सभी लोकों में प्रसिद्ध है । वहाँ पर स्नान करके परम पवित्र होकर जो मनुष्य महाेश्वर प्रभु का दर्शन किया करता है वह मनुष्य वेदार तीर्थ में जो पृथ्व-कण्य कहा गया है उसे यहाँ पर भी प्राप्त कर सिया करता है । अपने कुलों के सहित समस्त पापों से निर्मुक्त होकर सूर्य के सपान आभा वाले विमान के द्वारा शिव लोक में ब्रह्माण्ड का साम लिया करता है ॥१-३॥ जदा श्रु य नामक तीर्थ में स्नान करके जो मनुष्य पुत्रि होकर अपनी इन्द्रियों की नीति लेने काम्य अष्टेश्वर देव का दर्शन करता है वह फिर पाप से एक क्षण छुटकारा पा जाता करता है । यदि ये महा स्नान करके फिर भगवाद् शिव के मन्दिर में जाना चाहिए । ऐसा मनुष्य अपने मातृ कुल को और पितृ कुल की दोनों के सौ-सौ की शक्या में तार बिया करता है । इन्द्र तीर्थ में नर स्नपन करके फिर जो इन्द्रेश्वर शिव के दर्शन किया करता है वह भी सब तरह के अपने किए हुए पापों से विमुक्त होकर इन्द्रलोक में प्रसिद्धि हुया करता है । जो कुण्डेश्वर के दर्शन किया करता है, हे व्यास देव । वह मनुष्य शिव की दीक्षा के परम शुभ का फल ही प्राप्त पा जाता है ॥६-७॥

गोपतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वागोपेश्वर शिवम् ।  
 शिवलोकं सर्वं याति ह्यमृतामरोपया ॥८॥  
 स्नात्वा तु चिपिडातीर्थे शिवदेव प्रणम्य च ।  
 तिर्यग्गोमिनरी नैव प्रयाति मुनिः शुभम् ॥९॥

विजयेचनरः स्नात्वाजानन्देश्वरपूजनात् ।  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्लोके विजयी भवेत् ॥१०  
 अथान्य सम्प्रवक्ष्यामि कुरास्थत्या विनिमित्तम् ।  
 देवं रामेश्वरं ध्याम! भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥११  
 चित्रकूटाल्पुरारामो मैथिल्यालक्ष्मणेन च ।  
 अथरामं समागत्य पप्रच्छ मुनिसत्तमम् ॥१२  
 कानितीर्थानिपुण्यानि किवाक्षेय महामुने ।  
 यत्र गत्वानचाप्नोति वियोगः सहबान्धवैः ॥१३  
 अनेन वनवासेन मरणैः पितृप्रभो ।  
 भरतस्य वियोगेन प्रतप्येऽहं त्रिभिर्मने ॥१४

एक गोपीनीयं वहाँ है, उससे स्नान करके मनुष्य गोपेश्वर भगवान् शिव से दर्शन करता है वह गोपी शिव लोक में गमन किया करता है जैसे घृत के पान से भ्रमर हो जाता है । चिपिटा तीर्थ में स्नान करके घोर देवेश्वर शिव को प्रणाम करके हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ । वह मनुष्य फिर बन्धो भी निर्यग योनि को प्राप्त नहीं किया करता है । विजय नाम वाले तीर्थ में स्नान करके धीमान्देश्वर प्रभु के पूजन करने से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होता हुआ स्वर्ग लोक में पहुँच कर विजय वाता हुआ करता है । इसके अनन्तर मैं एक अन्य तीर्थ के विषय में बर्णन करता हूँ जो कुरास्थली में विनिमित्त तीर्थ है । वहाँ पर हे ध्याय देव । भुक्ति और मुक्ति इन दोनों के प्रदान करने वाले रामेश्वर देव विराजमान हैं । पहिले परम पुरातन समय में धीराम अपनी प्रिया मैथिली और भाई लक्ष्मण के साथ चित्रकूट से वहाँ पर समागत हुए थे घोर उन्होंने मुनियो में परम बरिष्ठ से पूछा था—धीराम ने कहा—हे महा मुनिवर ! वहाँ पर बोन-बोन से परम पुण्यवत् तीर्थ हैं और श्रेष्ठ हैं जहाँ पर मनुष्य अपने बान्धवों के साथ बन्धो वियोग ही प्राप्ति नहीं किया करता है । हे प्रभा । हे मुनिवर ! मेरा मन तो इन लम्बे वन के निवास से घोर पूज्य रिताओं के मरण हो जाने से तथा भरत जैसे परम प्रिय एवं श्रेष्ठ भाई के वियोग हो जाने से इन तीर्थों बाना से बहुत ही सन्तुष्ट रहा करता है ॥८-१॥

सद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वाविप्रपंभस्तदा ।  
 ध्यात्वात्तुसुचिरं कालमिदं वचनमब्रवीत् ॥१५  
 साधुपृष्टं स्वयाधीर रघूणां यशवर्धन ।  
 ममपिभ्राकृतं क्षेत्रं प्रयाच्यशिवमादरात् ॥१६  
 अवन्तीविषये राम पुरा तस्मिन् कुशस्यली ।  
 उज्जयिनीति वै नाम्ना ख्यातिं लोके गता विभो ! ॥१७  
 तस्यांगत्वादशरथं पिण्डदानेनतर्पय ।  
 सुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोभ्यवस्थितः ॥१८  
 देवः सदाशिवोराजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः ।  
 दृष्टेत्तस्मिञ्जगन्नाथे वियोगो नैवजायते ॥ ५  
 तत्र गच्छन्तियेविप्रा राजानोवैमहाबलाः ।  
 लभन्तेतेपरं स्थानं यत्र देवोमहेश्वरः ॥२०  
 तीर्थानामपि तत्तीर्थं भो विष्णोऽवन्तिमण्डले ।  
 आजगाम ततोऽवन्ती सा शिप्रा यत्र पुष्पदा ॥२१

उस समय में इस धीराघवेन्द्र प्रभु के द्वारा कहे हुए वाक्य का श्रवण करके विभो ने परम श्रेष्ठ ने चिरकाल पर्यन्त ध्यान करके इस वचन को कहा—हे धीर ! आपने बहुत ही अच्छी बात मुझ से पूछी है । आप तो रघु, के वश की वृद्धि करने वाले हैं । मेरे पिताजी ने भगवान् शिव से प्रकृत ह्मा से याचना करके वहे ही आदर से इस क्षेत्र को किया है । हे राम ! अपन्ती देश में पहिले एक कुशस्यली है । हे विभो ! यह उज्जयिनी—इस नाम से लोक में ख्याति को प्राप्त हुआ है । यहाँ पर जाकर आप महाराज दशरथ को पिण्ड दान के द्वारा सन्तुष्ट करिए । वहाँ सुर और असुरों के गुरुदेव साक्षान् महाकाल समवस्थित रहा करते हैं । हे राजन् ! यहाँ पर सदा शिव देव सभी वाञ्छित मनोरथों के फलों के प्रदान करने वाले हैं । प्रभु धीजगन्नाथ के दर्शन करने पर कभी भी वियोग नहीं हुआ करता है । जो विप्रणश्न वहाँ पर जाया करते हैं तथा महात् बलवान् राजा लोग गमन किया करते हैं वे परम श्रेष्ठ स्थान को

प्राप्त किया करते हैं जहाँ पर मरेश्वर देव विराजते हैं । हे विष्णो ! इस घबन्ती मण्डल में यह तीर्थ समस्त तीर्थों का भी एक तीर्थ होता है । इसके उपरान्त जहाँ पर परम पुण्यो के देने वाली शिरा समागत हो गई थी ॥१५-२१॥

तस्यास्नात्वात्तोरामस्तपयामासपूर्वजान् ।  
 महाकाल यदाद्रष्टुं प्रतस्थेरघुनन्दनः ॥२२  
 बाष्पाततोऽशरीरिण्या देवदेवेन भाषितम् ।  
 भोभोराघव ! भद्रन्ते स्वनाम्ना स्थापयस्व माम् ॥२३  
 अत्रस्थान मयादत्त मादिधारय राघव । ।  
 ततोद्दृष्टमनारामो लक्ष्मणवचनमब्रवीत् ॥२४  
 अनुगृहीत सौमिने देवदेवेनशम्भुना ।  
 तस्मात्स्थापयतीषंस्मिल्लिङ्गं रामेश्वरं शुभम् ॥२५  
 वाष्य लल्लक्ष्मण. श्रुत्वा स्थापयामास शङ्करम् ।  
 दृष्ट्वा देवं पुरो रामो लक्ष्मणं वाचयमब्रवीत् ॥२६  
 एहलक्ष्मणगीघ्रन्त्वं शिघ्रायाजलमानय ।  
 फरिष्यामियतोभ्रातर्देवस्यस्नपनं शुभम् ॥२७  
 लक्ष्मणस्त्वप्रवीढ्वावपं मीतयाकिकरिष्यामि ।  
 रामनाःहंमर्षकालदानभावं करोमि ते ॥२८

उममें इनके उपरान्त श्रीराम ने स्नान किया था और अपने पूर्वजों का तीर्थ किया । त्रिम समय में श्रीरघुनन्दन ने महाकाल भगवान् के दर्शन करने के लिये प्रस्थान किया उग समय में बिना शरीर वाली आबादा वाली के द्वारा देवों के देव ने कहा—हे राघवकेन्द्र ! आपका क्या हो । अब आप अपने ही शुभ नाम से मेरी यहाँ पर स्थापना कर दो । हे राघव ! यहाँ पर मेरे द्वारा दिया हुआ यह स्थान है । इनका कुछ भी विचार मत करो । इसके उपरान्त प्रसन्न मन वाले श्रीराम ने लक्ष्मण जी से यह वचन कहा—हे सौमिने । मैं देवों के देव शम्भु भगवान् के द्वारा अनुगृहीत हुआ हूँ । इस लिये यह तीर्थ में परम शुभ श्रीरामेश्वर शिव शिङ्ग की स्थापना करो । श्रीराम के उग व वय का अवगण करने लक्ष्मण

जी ने श्रीराघुर भगवान् को स्थापना की थी। श्रीराम ने अपने आगे देवेश्वर का दर्शन करके लक्ष्मण से यह वचन कहा—हे लक्ष्मण ! आप यहाँ पर शीघ्र भाइए और शिप्रा नदी का जल ले आओ । हे भाई ! क्योंकि मैं देवेश्वर का गुण स्तवन करूँगा । लक्ष्मण ने वाक्य कहा— सीताजी से क्या करेंगे । मैं राम नाम वाला हूँ । सभी कानों में मैं आप का नाम भाव करूँगा ॥२२-२८॥

इयंचपुष्टादृढा पीवराचमनाप्यतः ।

चद राघवसत्येन अनया किकरिष्यसि ॥२९

श्रुत्वापूर्वाहितवाक्यं लक्ष्मणेनप्रभाषितम् ।

विमनाराघवस्तस्थौ सीताचापिवरानना ॥३०

यदुक्तंलक्ष्मणेनाय तच्चसीताचकारह ।

स्नात्वाभुक्त्वाचतौवीरौ महाकालमुपागतौ ॥३१

नीत्वाविभावरौतत्र गमनायमनोदधे ।

उत्तिष्ठवत्ससौमित्रे ब्रजामोदक्षिणां दिशम् ॥३२

सौमित्रिरब्रवीद्वाक्यं नाहं गन्ताकथञ्चन ।

ब्रजत्वमनयासाद्धं भार्ययाकमलेक्षण ॥३३

नाहमग्रेवनं यामि नवायोध्यांकथञ्चन ।

एवं ब्रुवाणं सौमित्रिमुवाचरघुनन्दनः ॥३४

कथं पूर्वमयोध्याया निगतोसिमयासह ।

चने वसम्यहंरामनववर्षाणिपञ्चच ॥३५

हे राघव ! यह तो परम पुष्ट-मुष्ट और मुक्तों भी अधिक पीवर है । हे राघवेंद्र ! सत्यज्ञापूर्वक यह बतलाइये कि इससे आप क्या करेंगे ? ॥२९॥ प्रथम हितवाक्य का श्रवण करके लक्ष्मण ने यह भाषित किया था । श्री राघवेंद्र उदास होकर स्थित हो गये थे और वह आनन (मुण) वाली सीता भी स्थित हो गई थी ॥३०॥ जो लक्ष्मण ने कहा था वही सीताजी ने किया था । उन दोनों धीरों ने स्नान और भोजन करके दोनों महाकाल में सम्पादन हुए थे । यहाँ पर उस रात्रि की ध्यनीत करके फिर गमन

करने के लिये मन किया । हे गोमित्रे ! उठो, चलो दक्षिण दिशा की चले  
 सीमित्रि ( लक्ष्मण ) ने यह वाक्य कहा—मैं कैसे भी नहीं जाऊंगा । हे  
 कमल के समान नेत्रों वाले ! घाप ही इस भार्या के साथ गमन कीजिए ।  
 मैं न तो घासे वन में जाऊंगा और न अयोध्या ही को किसी भी प्रकार  
 से जाऊंगा । इस तरह से बोलते हुए लक्ष्मण से श्रीरामचन्द्र ने कहा—  
 पहिले मेरे साथ में घाप अयोध्या से कैसे निकल कर घासे हैं ? आपने  
 उम समय में तो मुझ से यही कहा कि हे राम ! मैं चौदह वर्ष तक वन  
 में निवास करूंगा ॥३१-३५॥

प्रसादाः क्रियतामह्य नयमापिराघव ।

इदानीत्वमर्द्धपथे कथं ग्यातासि राघुहन् ॥३६

लक्ष्मणस्त्वग्रधीद्वाक्य नाऽह गन्ता वन पुन ।

लक्ष्मण विवृत्त ज्ञात्वा रामो वचनमग्रवीत् ॥३७

मामनुब्रज सीमित्रे । एको यास्यामि वाननम् ।

द्वितीया च त्विय भीता उक्तो रामेण लक्ष्मणः ॥३८

धनु सगृह्यविमना उत्तस्थीलक्ष्मणस्तदा ।

प्राप्तीप्राकारमर्यादां क्षेत्रसीमां परन्तपो ॥३९

स्वनिवतस्वसीमित्रे मर्मर्षयचमेधनुः ।

रामराक्यमपथ्रुत्य सीतार्थं लक्ष्मणोऽग्रवीत् ॥४०

विमर्षं हि परित्यक्तः फोऽपराधं कृतो मया ।

रामेण च शिरवक्तः प्राणास्त्रयक्ष्णायमगयम् ॥४१

गमंततोऽग्रवीत्प्रोता किमर्थं लक्ष्मणस्त्यया ।

देवसन्त्यज्यतेघोरमुमित्रानन्दवर्धनः ॥४२

हे रामच ! मेरे ऊपर भाप प्रसाद कीजिए मुझ को भा वन में ले  
 चलिए । अब हय समय में आपे मार्ग में बीच में हा है राघुहन् । क्यों  
 स्थित हो रहे हो ? लक्ष्मण ने यही वाक्य कहा—मैं फिर वन में नहीं  
 जाऊंगा । इस प्रकार में लक्ष्मण को परम विवृत्त जान कर श्रीराम ने  
 यह बचन कहा—हे गोमित्रे ! मेरे पीछे गमन करो, मैं एक ही वन को  
 जाऊंगा, दूसरी यह गीता है । इस तरह में श्रीराम ने द्वारा लक्ष्मण से



कहा गया । उस समय मे धनुष ब्रह्मण करके लक्ष्मण उदास होकर स्थित  
हो गये थे । इस प्रकार से वे दोनों परस्पर प्राकार मर्वादा वाली ( पहार  
दिवारों से जिसकी हद बनी हुई थी ) क्षेत्र को सोमा पर प्राप्त हो गये  
थे । श्रीराम ने कहा—हे सीमिते ! मेरे धनुष को मुझे देवों और प्राण  
पापित लौट जाओ । श्रीराम के इस वाक्य का ध्वज कर लक्ष्मणजी ने  
सीताजी से कहा—मुझे किस लिये परित्यक्त किया गया है ? मैंने क्या  
घपराय किया है । श्रीराम के द्वारा परित्याग किया गया मैं निश्चय ही  
बह-क्षयने प्राणों का त्याग कर दूंगा । इसके प्रत्यक्ष सीताजी ने श्रीराम  
से कहा—हे देव ! प्राणों द्वारा परम और सुनिश्चि के मानन्द के बढ़ाने  
काले लक्ष्मण का परित्याग क्यों किया जा रहा है ? ॥३६-४२॥

राघवस्त्वक्ष्वीत्सीता नाऽह त्यक्ष्यामि लक्ष्मणम् ।

न कदाचिदपि स्वप्ने लक्ष्मणस्येहगप्रियम् ॥४३

श्रुत्वपूवन्नु सुश्रोणि। क्षेत्रत्याम्य विचेष्टितम् ।

अरिमन् क्षेत्रे न सौभ्राय सर्वो हि स्वायंततरः ॥४४

परस्परं न मन्यन्ते स्वायन्तिष्ठं कहेतव ।

न श्रुश्चान्तिपिसु पुत्रा-पुत्राणाञ्चतथापिता ॥४५

नन शिष्यो गुरोर्वाच्यं गुरुर्वा शिष्यकर्म च ।

अर्यानुबन्धिनी प्रीतिर्न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥४६

एवमुक्त्वाययौरामो लक्ष्मणो जानकीतया ।

लिग तत्रप्रतिष्ठाप्यास्वनाम्नारघुनन्दनः ॥४७

रामतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम् ।

विमुक्त्य सर्वपापेश्यो विष्णुलोकं स गच्छत् ॥४८

श्रीरामदेव ने सीताजी से कहा—मैं लक्ष्मण को नहीं त्यागूँगा । हे  
सुश्रोणि । पठिते कभी भी स्वप्न में भी लक्ष्मण का ऐसा अप्रिय वचन नहीं  
सुना था—यह इसी क्षेत्र का विचेष्टित है । इस क्षेत्र में सौभ्राय भाव नहीं  
होगा है । यहाँ पर सभी स्वयं मे उत्पर रहा करते हैं । स्वयं की निष्ठा  
ही जिनका एक मात्र हेतु होता है वे लोग परस्पर मे किसी को नहीं माना  
करते हैं । पुत्र वध पिता की बात नहीं सुना करते हैं और पिता पुत्रों का

बुद्ध भी ध्यान नहीं रखते हैं । शिष्य गुरु के वाक्य को नहीं मानते हैं और गुरु भी शिष्य के कर्म को बुद्ध नहीं समझते हैं । यहाँ पर जो भी प्रीति होती है वह धर्म ( मतलब ) के अनुबन्धन वाली ही हुमा करती है वास्तविक रूप से कोई भी किसी का प्यारा या प्रेम करने वाला नहीं होता है । यह कर्त्तर श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकी वहाँ गये थे । श्री रघुनाथन ने अपने ही नाम में वहाँ पर शिव लिङ्ग की स्थापना की थी । इस श्रीराम तीर्थ में मनुष्य स्नान करके तथा श्रीरामेश्वर प्रभु का दर्शन करके ममत्त धरने इन पापों से विमुक्त हो जाया करता है और वह अन्त में विष्णु लोक में समन किया करता है ॥४३-४८॥

### ७५—विष्णुमाहात्म्यवर्णन

महाकाल किमर्थं तु किवाशिवपदस्मृतम् ।  
 कोटीश्वर किमर्थं तु पावकं तस्किमुच्यते ॥१  
 नरदीपाकिमर्थं तु द्वितीयावटमातरः ।  
 अभयेश्वर किमर्थं तु नन्दोद्धारणमेव च ॥२  
 शून्येश्वर किमर्थं तु किमोद्धारणस्य कथ्यते ।  
 भूतपाप किमर्थं तु किमङ्गारेश्वरं तथा ॥३  
 पुरोचोऽजयिनीदिग्वा सप्तकल्पाकथ स्मृता ।  
 कथयस्व मुनिश्रेष्ठमस्यानामानियानि च ॥४  
 शृणु श्याम ! यथा स्वाना पुरी दिग्वा गुणुष्यदा ।  
 स्वर्णशृङ्गा तु प्रथमे द्वितीये तु धुनस्यली ॥५  
 तृतीयेऽश्विनिकाप्रोक्ता चतुर्थेऽवमरावती ।  
 विद्याज्ञापकमेकल्पे पुगीभूषामणोनिष ॥६  
 पण्डितपावतीज्ञे योजयिनीसप्तमेपुरी ।  
 पुनरन्तेनुसन्पस्य स्वर्णशृङ्गादिहास्मृता ॥७

महा महर्षि श्रीश्यामदेश्वरी ने कहा—यह महा नाम किमर्थसे हुआ या ? अथवा यह शिव पद किसे कहा गया है ? कोटीश्वर किमर्थसे है

धीर यह पावक क्यों कहा जाता है ? नारदीय किस लिये है तथा द्वितीया यह मातर क्यों है—प्रभवेश्वर किस लिये है धीर शङ्खोद्धारण का क्या क्या प्रयोजन है ? भूदेवता किस लिये है धीर मोक्षार क्यों कहा जाता है ? अतः पाप का क्या अर्थ है तथा भोक्षुदेवता का क्या प्रयोजन है ? अतः यह दिव्या उग्रविनी सप्तकल्प कैसे कही गयी है ? हे मुनि श्रेष्ठ ! इसके जो भी नाम हैं उन सबको कहिये । श्रीनरकेश्वरजी के कहा—हे अश्व देव ! यह अथ कल्प करिष्ये विना तरङ्ग से यह मुमुक्षु की देने वाली दिव्या पुरी ब्रह्माण्ड हुई थी । प्रथम कल्प में यह स्वर्ण शृङ्गा विद्यमान थी—दूसरे कल्प में यही कुनस्यनी नाम वाली कही गयी थी । तीसरे कल्प में इसको बदन्तिका कहा गया है धीर चौथे कल्प में जमरा-वती नाम से यह प्रसिद्ध हुई थी । पाँचवें कल्प में यही पुरी वृषभग्री—इस नाम से विख्यात हुई थी । छठवें कल्प में इसको पद्मावती कहा गया धीर सातवें कल्प में इसीको उग्रविनी पुरी बोला जाता है, फिर कल्प में अन्त में यह स्वर्णशृङ्गा आदि नाम वाली कही गयी है ॥१-७॥

एतानि सप्तानामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।  
 सप्तजन्मकृताः पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥८  
 उग्रविन्या पुरारामाः अभूवद्विलम्बान्धकाः ।  
 तस्यपुत्रोमहावीर्यो नाम्नाकनकदानवः ॥९  
 युद्धाद्यसमहावीर्यं शक्र युद्धे समाह्वयत् ।  
 ऋषादिन्द्रणसंश्रामेयुद्धममानोनिपातित ॥१०  
 निहस्वदानवशक्रो अथादन्धामुग्ध्यतु ।  
 जगामश करान्वेसी कैलासश्च करालयम् ॥११  
 दृष्ट्वाप्रणम्यदेवेशं सन्दाहं कृतशेखरम् ।  
 भीतोविज्ञापयामास सहस्राकृतसोचनः ॥१२  
 अभयं देहि मे देव ! दानवा दन्धकाच्च वै ।  
 शक्रस्येत्थ वचः श्रुत्वा शरणागतवत्सल ॥१३  
 ददाय मृगमेवासी मांस्त्वमन्धकाद्विवे ।  
 कृत्स्नारूप महादेवो दिश्वरूप सुभैरवम् ॥१४

जो कोई मनुष्य प्रातः काल में उठकर इन सात नामों की पढ़ता है वह सात जन्मों में किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है—इम में कुद्व भी समाय नहीं है । इस उज्जयिनी नगरी में पहिले अन्धक नाम वाला राजा हुआ । उसका एक पुत्र था जो महान् धीर्य वाला था, उसका नाम कनक दानव था । उस महान् धीर्य वाले ने युद्ध के लिये युद्ध भूमि में इन्द्र देव का आह्वान किया । इन्द्र को बहुत ही अधिक क्रोध प्राया और उसने मगध भूमि में युद्ध करते हुए उस को निषावित कर दिया अर्थात् मार डाला । इन्द्र ने युद्ध में दानव को मार तो दिया किन्तु फिर वह अन्धासुर के भय से भगवान् शङ्कर के अन्वेषण करने वाला होकर शङ्कर के निवास स्थान बलाग पर्वत पर चला गया । वहाँ पर अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले देवेंद्वर का दशन करके उनको इस ने प्रणाम किया । शङ्कर नेत्रों से गमाहुल इन्द्र ने अत्यन्त भय भीत होकर प्रार्थना की थी—हे देव । अन्धक दानव से मुझे अब आप अमय का दान दीजिए । धारण में समागत प्राणी पर दया स्नेह करने वाले प्रभु शङ्कर ने इन्द्र देव के इम वचन को सुनकर उसे पूर्ण विश्वास दिया कि तुम अन्धक से भय मत करो । महादेव न मुर्भरव विश्वरूप धारण कर लिया था ॥८-१४॥

मर्षलिहृद्भ्रूरस्युप्रस्तोक्षणदष्ट्रविपोत्वर्णः ।

पातालोदररूपं दक्ष भेरवाराधनादिभिः ॥१५

मुजैरनेकमाहृष्यं यं हृशश्रुतस्तथा ।

मिहममंपरीधान व्याघ्रत्वगुत्तरीयरुम् ॥१६

गजाजिनकृताटोप चन्द्राग्निरविलोचनम् ।

महामहोघ्रतुल्वाभिज ह्याभिभू पितंसदा ॥१७

शोभयन्बालयन्गवान् पातालस्यतलावधि ।

ईदृशूषं विषामेशो दनुर्दस्यभयावहम् ॥१८

धवानरःमहीभीमः पादेनैकेनशंकरः ।

तत्रं वहिहृशोजातः मर्षदं यतयन्दितः ॥१९

रुगानं नियपदं वद्वियप्पदाक्रान्तयान्यिभु ।

मममादतनुराकोटिःपादांगुष्ठम्यधारिता ॥२०

कोटितीर्थं प्रतःख्यात सर्वपापप्रणाशनम् ।

अगस्त्येनतयाकोटिस्तीर्थं नाम प्रचारितम् ॥२१॥

बहुत तीर्थों वाले—विष से महान् उख्यण अत्यन्त उष—सप  
 मपातो हुई शोभां कासे शर्षों से मुपित पे जो कि पातानोदर के उदृष्य पे  
 धोर महान् अरव ध्वनियों से निनाद करने वाले थे । बहुत से प्रकार के  
 गणनाम्नों का धारण करने वाले बहुत से सहस्र भुजाओं से युक्त उनका  
 स्वस्म या । सिंह के चर्म का परोषान करने वाला तथा व्याध धर्म क  
 अमरीय धाराण करने वाला उनका स्वरूप था । गजचर्म से घाटोप किय  
 हुए तथा चन्द्र और अग्नि के समान नेत्रों वाले थे । महान् पदों के सुख  
 शीर्षों से मया मुपित थे । एतावत के उल के मध्य में सब को शाप करने  
 वाले थे । ईश ने उस समय में ऐसा दुःख और दंष्ट्रों को मय देने वाला  
 अपना स्वस्म बना लिया । तब भगवान् उकर ने भीम स्वरूप से मुक्त  
 होते हुए एक पाद से इस महो में अवतरण किया । वहीं पर समस्त देवों  
 के द्वारा सम्मिल एक हृद उत्पन्न हो गया, वही ध्रुवपद—इस नाम से  
 विख्यात हो गया था कि विष्णु ने अपने पाद से इसे आकाशत कर  
 दिया । वहीं कि यही पर पहिले पादोपुष्ट की धारिता काटि जो अतएव  
 सम्पूर्ण पादों का प्रणाम करने वाला यह कोटितीर्थ—उप शुभ नाम से  
 ही विख्यात हो गया । यहाँ पर महामुनि अगस्त्यजी ने एक कोटि  
 तीर्थों की धारिता की थी, इमनिय नी लोक में ऐसा परम शुभ नाम सदा  
 हो रहा गया है ॥१४-२१॥

छतोपीदृक् शुभ लोके कोटितीर्थं सदा स्मृतम् ।

चन्द्रो मु त्रिशला चर्च स्मरता वै हितकाम्या ॥२२॥

महाकाल कृत रूप महाकालस्ततः स्मृतः ।

अन्धासुरोनिदनुज पुत्र श्रुत्वा हत युधि ॥२३॥

कोचेनमहताविष्टोरणतूर्याप्यवाऽवयत् ।

ससंन्योनिगत प्राप्ताय च तन्निदशाः स्थिता ॥२४॥

महत्यासेनयासाद्ध रथवारणमुक्तमा ।

तद्द वदानवात्वीक्ष्य महाहृदकृन्नोद्यमान् ॥२५॥

वैपन्तस्तेषुसन्नद्धाः शम्भुं शरणमाययुः ।

मार्भपतमहाकालो देवानूचेत्रिलोचनः ॥२६

गृहीत्वानूलमातिष्ठद् दृष्ट्वा दष्टाधरोरुपा ।

कोपमुक्ते विरूपाक्षे उबलाभिः पूरितन्नमः ॥२७

अन्धकेनाथ रुष्टेन शर कोटिस्तु दु सहा ।

मुक्ता जगाम देवानां नाशात् शलभाकृतिः ॥२८

समस्त देव गणों ने इस तरह से देता तो उन सभी ने अपने हित को बामना से दहूँ पर स्नान किया था ॥२२॥ महान् बाल के तुल्य अपना स्वरूप किया इसी वास्ते इसे महाकाल इस नाम से कहा गया है । अन्ध-सुर ने भी अपना पुत्र को युद्ध में मृत हुआ सुनकर महान् कोप से समा-विष्ट होठे हुए अपने मद्राम के तुर्य बाघ बजवा दिये थे । वह अपने समस्त सेना के ही साथ में निजम पहा और वही पर सम्प्राप्त हो गया जहाँ पर देवगण स्थित थे । उन देवों ने बड़ी भारी विनाश और रण के आशरणों से युक्त सेना के साथ उनी समय में महान् संशय को करने के लिये उद्यम करने वाले सब दानवी को देखा । वे सुमन्द्र थे दिव्यु बाँव उटे थे और भगवान् शम्भु के शरण में हाँ गये थे । उस समय में त्रिलोचन महाकाल भगवान् ने उन देवों से कहा—इरो मत । तब उन्होंने अपने त्रिशूल को उठाया और कोप से अपनी दाढ़ों से अशरो को बाटते हुए स्थित हो गये थे । भगवान् विरूपाक्ष के कोप से युक्त होने पर आकाश उवातालों से पूरित हो गया । परम रुष्ट हुए अन्धक अपुर ने अत्यन्त दुःसह एक बरोड तारों को छोड़ा था जो कि दानवी के समान प्राकृति वाले समस्त देवों के विनाश करने के लिये छोड़े गये थे ॥२३-२८॥

विस्तुलिगाविपं वह्नि मञ्चमानः पिनाकधृक् ।

दानशरदकलीबक्रेतञ्चवाणरताडयत् ॥२९

अन्धकोऽपि हि युद्धस्थो शिथिलः शिथिलामुधः ।

निरुद्धशम्भुना वाणंरलिभिः पंकजं यथा ॥३०

तस्य सैन्यञ्च बहुधा स्वगर्गमुं डयोधिभिः ।

योधयर्हंनं दिव्यैः रघाणुगान्निष्पमाश्रितैः ॥३१

नतोऽन्वकेन संन्यं स्वं भिन्नं दृष्ट्वा तथा सुरैः ।  
 आत्मानिरुष महेशेन विद्धं च षाणकोटिभिः ॥३२  
 विक्रान्तहृत्तदेहोऽप्यौ भयमार्द्रित्यवेगतः ।  
 चकारत्तामसीभाषा मायाशतविधा रदः ॥३३  
 तयान्तहितदेहोऽसौ जगामदिमतराम् ।  
 शम्भो मूर्तिहृद विभ्रद्वन्नाममुविभिन्नहृत् ॥३४  
 येनाध्वनागतोऽप्येत्यस्तेन देवोजगामहृत् ।  
 चन्दनहृदयतेवकासौ गतोऽदुष्ट पुनः पुनः ॥ ३५

पिनाक नामक वस्तु के धारण करने वाले भगवान् ने विस्फुलित  
 वाली अग्नि (ज्वालामुखी से निकलने वाली) को छोड़ दिया और उन्होंने उनका  
 सँकड़ा ही अणु २ कर दिये थे तथा अपने बाणों से उसका ताहन किया  
 था ॥३२॥ यह अणुक असुर भी युद्ध स्थल में स्थित होता हुआ बहुत ही  
 घिबिल भासुषो जाता हुआ स्वयं भी परम स्थित हो गया । जिस  
 प्रकार से और कमल को एक दम डक दिया करते हैं वही तरह से यह  
 अणुकासुर भी अणु के द्वारा पाणों से एक दम निकल कर दिया गया  
 था ॥३३॥ इसकी प्रायः सभी सेना युद्ध भूमि में क्षय करने वाले शिव  
 के माणों के द्वारा थी परम दिव्य श्रेष्ठ शोभा के धीरे श्वास्तु के  
 सघिबिध श्च समाश्रय बहाण करने वाले थे, निकल कर तो गये थी ॥३४॥  
 श्चके पश्चात् अणु ने अपनी सेना को वेदों के द्वारा भिन्न हुई रखकर  
 और अपने मापके महेश के द्वारा करोड़ों भाणों से बिल देकर विक्रान्त-  
 हृत् देह वाला यह भय का आश्रय लेने वाला हो गया और फिर सँकड़ा  
 भाषाओं के विचारण हमने अपनी एक छतरी माया की । इस माया से  
 अन्तहित देह वाला यह उत्तर दिया की और जना गया की कि भगवान्  
 अणु को मूर्ति ( भय ) का हृत् करने वाली थी । भिन्न हृदय वाला  
 यह भू मण्डल में अमल कर रहा था । जिस मान से यह दैव परम उची  
 से देव भी परे थे किन्तु यह कही पर भी गया हुआ दुष्ट दिवसाई नहीं  
 रता और शोभा हुआ वास्तुवाचकता जाह्ला था ॥३२-३५॥

उवाचचान्यकश्शब्द तयोवाचमहेश्वरः ।  
 तत्रतीर्थं मथोत्पन्नं धान्यकमितिश्रुतम् ॥३६  
 तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा यो वै दद्यात्सर्गकरम् ।  
 नवम्यां मार्गशीर्षंस्त शुक्लाया श्रद्धयाश्रितः ॥३७  
 अक्षयं तद्भूत्सेत्सर्वं दाता शिवपुरं प्रजेत् ।  
 पितृनेदृदिश्ययत्किञ्चिद्दीयते भक्तितः शिवे ॥३८  
 तृप्तास्तिष्ठन्ति ते तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ।  
 तमना छादिता देवाः सन्वभूवुः समाकुलाः ॥ ३९  
 सम्भ्रान्तमनसस्सर्वे न किञ्चिदपि मे निरे ।  
 एतस्मिन्ननरेष्यास नरादित्यः स्व तेजसाः ॥४०  
 उत्तस्थो नररूपेण कुर्वन्वित्तमिरा दिशः ।  
 नष्टे सममिदं त्येऽपि प्रकाशे प्रकटे मति ॥४१  
 देवामुदमयापुस्ते दृष्ट्वाऽन्त तुलोचनैः ।  
 स्तुयन्तो विविधं स्तोत्रैर्नररूपदिवाकरम् ॥४२

वहाँ पर अन्धक न शब्द बोला तथा महेश्वर प्रभु ने भी बोला ।  
 वहाँ पर धान्यक तीर्थ उत्पन्न हो गया—ऐसा सुना गया है । वहाँ पर  
 स्नान करके परम पुत्र होकर या कोई सर्वरा के सहित दान किया  
 करता है और मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि में श्रद्धा  
 युक्त होकर दान किया करता है तो वह अक्षय हो जाता है । सबका दान  
 करने वाला शिवपुर की गमन किया करता है । हे शिवे ! विष्णु  
 का उद्देश्य करने प्रति भाव से आ कुल भी दिया जाता है तो वे  
 विष्णु परम सम्पन्न होकर जब सब मृत गपत्य होता है तब तक स्थित  
 रहा करते हैं । उस समय में ईश्वर की माया से विहितम से ऐसा  
 अन्धकार हो गया कि सभी देवगण गमायादिन होने हुए परम समाकुल  
 हो गये थे ॥३६-३६॥ सभी सम्भ्रान्त मन वाले होकर कुल भी नहीं मान  
 रहे थे । इसी बीच में हे श्याम ! नरादित्य अपने तेज से नररूप से उत्पन्न  
 हो गये और उन्होंने सभी दिशामों की विन्ता धारण कर सभी कर दिया ।  
 अन्धकार के मृत हो जाने पर सब ईश्वर भी प्रकाश में प्रकट होगया । उस



दर्य के प्रकट हो जावे पर देवों ने अपने होशनों से अनन्त को देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त की । देवों ने अनेक स्तोत्रों के द्वारा उन नर रूप धारी दिवाकर भगवान् का स्तवन किया था ॥४०-४२॥

उत्तस्थीनररूपेण दीप्तोयस्माद्दिवाकरः ।  
 तेनास्यनामनेचक्रुर्नरदीपहृतीश्वराः ॥४३  
 यः पश्यतिनरोभक्त्या नरदीप दिवाकरम् ।  
 मुच्यते सर्वपापेभ्योयद्यपि ब्रह्मह्नाभवेत् ॥४४  
 पश्यामर्कदिनेविप्र सप्तम्यामुपवासकृत् ।  
 दिनज्ञपेऽयसकान्तो ग्रहणेविपुवत्यय ॥४५  
 कुण्ठेस्मात्वाशुचिभूत्वा जपान्नयतमानसः ।  
 ॥४६

गीत " वाद्य पुत्र कृत्वा प्रणम्याष्टाङ्गमेव च ॥४७  
 प्रातर्मध्येपरार्द्धे वा कृत्वाकंस्यप्रदक्षिणाम् ।  
 समुक्तमर्नपापेभ्यु तप्तवन्मकृत्वरपि ॥ ८  
 सूर्यकोटिप्रतीकार्शिविवाते सावेकार्मिके ।  
 सूर्यलोक प्रयात्पाशु परमुरं रपि दुर्लभम् ॥४८

क्योंकि वह दिवाकर प्रभु नर के रूप को धारण करके उरियत हुए और परम प्रसीत हो गये इसी कारण से उन ईश्वरों ने नररूप यद् नाम उनका रखा । जो कोई मनुष्य भक्ति से उन नर रूप दिवाकर का दर्शन किया करता है चाहे भले ही वह ब्रह्म हत्यारा हो क्यों न हो तो भी समस्त पापों से मुक्त हो जाता करता है । हे विप्र ! विचार से युक्त पत्नी में तथा सहयोग में उपवास करने वाला—दिन के समय में—संक्रान्ति में—ग्रहण में—विपुवर्तिन में कुण्ठ में स्नान करके शुचि होकर नियत मंत्र ध्याना होता हुआ जाप करे और नररूप का प्रदक्षिण करे तथा स्तोत्र, ध्यादिन ब्रह्म-यूप-तीर्थ एवं विविध नैवेद्यों से गीत वाद्य पहिले करके घाटों बरों से प्रणाम करे । प्रातः समय, मध्याह्न और अपराह्न काल में सूर्य को प्रदक्षिणा करे ता वह मनुष्य सब पापों से जो कि सात धर्मों में भी

किये गये हैं मुक्त हो जाया करता है । अन्त में इस नर लीला का संवरण करने के पश्चात् वह करोड़ों सूर्यो के सहस्र—सहस्र नामनामों की पूति वाले विमानों के द्वारा सूर्य लोक में प्रयाण किया करता है जो कि बड़े २ देवों को भी परम दुर्लभ होता है ॥४३-४६॥

शक्रात्प्राप्यपुरायस्माद्भानुरप्रप्रतिष्ठितः ।

नरेणैव प्रसादेन नरदीपस्ततो ह्ययम् ॥५०

तदेवास्वपुराव्याप्त ! यात्रा शक्रेणनिर्मिता ।

आगमिष्याम्यह पापं साद्धदेवं समाहितः ॥५१

उपेष्टेऽनीतेद्वितीयायां नरदीपेतुमर्षदा ।

तत्राहमागतोज्ञेयो लोर्षदेवस्यवर्षणात् ॥५२

ततोऽन्तरमागम्य देवा ये त्रिदशालये ।

दृष्ट्वा देवं तथास्व नरदीपमुदीपनम् ॥५३

कृत्वायात्राञ्चतैयान्तिदेव यात्रास्ययेतत ।

य पश्येन्मानवोभक्त्यानरदीपरथस्थितम् ॥५४

सर्वपापविनिर्मुक्त सूर्यलोके महीयते ।

रथयात्रामयो वक्ष्ये नरदीपस्य या पुनः ॥५५

ता कृत्वा चैव तत्पुष्यं मुनीभिः परिकीर्तितम् ।

उपेष्टेऽनीते द्वितीयायां रथस्यो हि दिवाकरः ॥५६

कथोकि पहिले परम पुरातन समय में इन्द्र देव ने प्राप्त करके भानु को यहाँ पर प्रतिष्ठित किया और यह प्रतिप्रापन नर के द्वारा ही प्रनाद से हुआ थाएव तभी में यह नरदीप नाम यात्रा हो गया है । हे व्यास ! उसी समय में पहिले इन्द्र ने यह यात्रा निविन की और कहा—हे पार्ष ! मैं परम समाहित होकर देवों के साथ यहाँ पर आउगा । मनीज उपेष्ट में द्वितीया निविधि में सर्वदा हम नरदीप में बहाँ पर देव के वर्णन होने में योगों को मुझे आया हुआ ही समझता थाहिए । इनके परचाय पाहर जो देव निरुणापय में बहाँ पर आहइ मुदीपन नरदीप देव का पञ्चन करके भी यात्रा किया करते है वे फिर देव यात्रारथ में गमन किया करते है ।

जो मनुष्य भक्तिभाव से रथ में स्थित नरवीप का दर्शन करता है वह समस्त पापों में विमुक्त होकर सूर्य लोक में प्रतिष्ठित एवं सम्मानित हुआ करता है । जो वहाँ की रथ यात्रा होती है उसे मैं फिर कहूँगा । उसको सम्पन्न करने श्री कृष्ण उसका पृथक्—रथ होता है उसे मूर्तियों ने छींचित किया है । अतीत ज्येष्ठ में द्वितीया तिथि के दिन में भगवान् दिवाकर रथ में संस्थित हुआ करते हैं ॥५०-५६॥

कुशास्पत्या द्विजश्रेष्ठार्द्धक्षेत्रे प्रणीयते ।

उत्तरादिगणयान्तरं यं पश्यति दिवस्पतिम् ॥५७

अग्निष्टोममयज्ञस्य लभतेऽशोचिच्छुल फलम् ।

निवृत्त केशवार्कघोरय पश्यति मानवः ॥५८

मृण्डीरस्वामिनोयात्रा कृतातेननसंशयः ।

रथमाकर्षतेयस्तु रज्ज्वाकर्षणवमुने ! ॥५९

कुलमुद्धरने शोच्ये पूर्वान्पितृपितामहान् ।

दक्षिणाभिमुखं यान्त नरवीप द्विजोत्तम ! ॥६०

ये सयना प्रपश्यन्ति ते यान्ति च त्रिविष्टपम् ।

सूयेण वेष्टते क्षेत्रं रथं देवमयापिवा ॥६१

सर्वकामानवाप्नोति कृतपुण्यस्सखायते ।

प्रदक्षिणातु पुण्यं भक्त्या कुर्वन्ति ये नराः ॥६२

प्रदक्षिणीकृतार्त्तस्नुमप्त द्वीप वसुधरा ।

प्रातश्चत्वार्यधोभक्त्या मौनीयाति दिवाकरम् ॥६३

कुशास्वनो मे श्रेष्ठ द्विजो के द्वारा वाटुसपा से प्रणामन किया जाता है । जो कोई उत्तर दिशा में भाये हुए दिवस्पति का दर्शन करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ का पूरा फल प्राप्त करता है । जो मानव केशवार्क से निवृत्त रूप को देखता है उसने मृण्डीर स्वामी की यात्रा पूर्ण करली है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । हे मुने ! जो मनुष्य रज्जु के आकर्षण के द्वारा रथ का आकर्षण किया करता है वह भी अपने कुप का उद्धार कर दिया करता है जो कि पूर्व में पिता पितामह आदिक होते हैं उन सब का उद्धार कर देता है । हे द्विजोत्तम ! जो लोग परम संयत् होते हुए दक्षिण

दिशा की घोर अभिमुख होकर नमन करते हुए नर दीप का दर्शन किया करते हैं वे सीधे ही त्रिविष्टप को पसे जाया करते हैं । जो मूत्र के द्वारा दीप को—रथ को अथवा देव को वेष्टित किया करते हैं वे भी परम पुण्य के करने वाले हैं घोर अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करते हैं । जो अनुप्य भगवान् दिवाकर की भक्ति से प्रदक्षिणा करते हैं उनसे तो मानो सातों द्वीपों वाली सम्पूर्ण यगुधरा की प्रदक्षिणा कर ली है अर्थात् सम्पूर्ण यगुधरा की परिभ्रमा करने का फल उन्हें प्राप्त हो जाया करता है । प्रातःकाल में तटवत् भक्ति भाव से जो कोई गीन घन धारण करने वाला भगवान् दिवाकर के समीप में प्राया करता है उसकी प्रार्थना घोर पुण्य फल बनता है ॥५७-६३॥

दृष्टानुपूर्वद्वारेण नमस्कृत्यद्विजोत्तम ।

प्राक्स्य दक्षिणेनैव रथक्रं प्रपूजयेत् ॥५४

तेनद्वारेण निष्कम्य प्रणिपरयन्नजेत्ततः ।

पश्चिमद्वारमाश्रित्य रथस्य सूर्यमर्चयेत् ॥५५

धामरे च वितानञ्च घट्टां यापि निवेदयेत् ।

पूर्वद्वारे तु गोर्ध्या स्यान्ध्वर्ध्वं च दक्षिणे ॥५६

पश्चिमेषणजः प्रोक्तः उत्तरेरथ एव च ।

सुपदिवतु योपात्रां रथदीपस्य मानव ॥५७

गो सूर्यशिशुनक्राणां स्वालोक्यं सभने मुखम् ।

प्रदक्षिणा महामेरो, कृता तेन भवेन्मुने ! ॥५८

दद्याद्गर्वां सहस्रंघो अतीपातनातेन न ।

अश्वानाञ्च सहस्रं जपात्रायात्तदफलभेत् ॥५९

नरदीपेरथाष्टके यवनं कारयेत्तुमः ।

त्रिया न विष्णुतिस्तस्य सूर्यलोके मही रते ॥६०

हे द्विजानन ! पूर्व दिशा के द्वार की देवद्वार नमस्कार करे—दक्षिण द्वार में प्रवेश करके रथ चक्र का पूजन करना चाहिए ॥५४॥ उग द्वार से निष्कसर प्रणिपान करके घट्टां उ गमन करे । पश्चिम दिशा के द्वार

नम आद्यमग्रहण करके रथ में स्थित सूर्य का पूजन करना चाहिये । वहाँ पर जो भजन, शिवालय और श्रद्धा निवेदित करे । पूर्व द्वार में गौ देनी चाहिए । दक्षिण द्वार पर अथ समर्पित करे । पश्चिम द्वार पर हाथी देवे और उत्तर दिशा के द्वार पर रथ समर्पित करे । इस तरह से जो मानव रथ दीप की यात्रा करे वह मनुष्य गौ—सूय—शिव और इन्द्र के स्वामीत्व के सुख का नाम प्राप्त किया करता है । हे मुने ! यह समस्त जो कि उक्त मनुष्य ने महामेव की प्रदक्षिणा करती है अर्थात् उसे मेव की परिक्रमा करने का पुण्य प्राप्त होता है । जो सौ अर्थात्वातो में एक महत्तम गोशौ का शान करता और सहस्र भर्षों का शान करता है यात्रा में उसका फल उसे प्राप्त हो जाता करता है । नर दीप के रथ पर समास्य हामे पर जो वपन करामा करता है उस पुण्य की श्री से कभी भी विष्णुति नहीं हुआ करती है और भक्त में वह सुखसोक में महत्त्व की प्राप्ति किया करता है ॥६१-७०॥

सूर्यस्य पुरतो वाप्यां मास नित्यं विद्यात्थ च ।

यस्नमालोकते मर्यां दुस्स्वप्न तस्य नश्यति ॥७१

मन्त्राद्योनुद्दिन ध्यानं नरदीपं प्रपश्यति ।

उत्तम स्थानमासाद्य पुत्रपौत्रममन्वितं ॥७२

प्रक्रीडद्य वन्दुभिः सद्यः मृतः सूर्यपुरम्प्रजेव ।

प्रणष्टे तिमिरेक्षिप्र जातेसर्वत्र सुप्रभे ॥७३

हृतेऽथके महेशेन शूसेनप्रिशिसेनवं ।

प्रहृष्टाश्च सुरास्नर्वे ब्रह्मोन्वप्रमुखास्तदा ॥७४

सह्य दम्भो तदा विष्णुः सुराणां हितकाम्यया ।

वत्र तीर्थमगोत्पन्न वस्योक्षारणसञ्ज्ञकम् ॥७५

—

॥७६

देवस्य दक्षिणे भागे शूसेनासक्षित स्थितः ।

चतुर्दश्यां तदाऽऽत्म्या ये पश्यन्ति जितेन्द्रियाः ॥७७

सूर्यदेव की माग्ने में स्थित वाणी शक्यी में जो प्रवगाहन करके मनुष्य उसका दर्शन करता है उसके दु स्वप्न वा सुफन नष्ट हो जाता है ॥७१॥ हे व्यास देव ! भक्ति से जो अनुदिन नर दीप के दर्शन किया करता है वह आयुसप्त स्थान पाकर पुत्र-पौत्रादि समन्वित होता है और अपने बन्धुओं के साथ ग्रामम्ह सहित क्रीडा करके मृत्यु प्राप्त करने पर वह सूर्य के पुर में गमन करता है । हे विप्र ! उम तिमिर के नष्ट हो जाने पर सर्वत्र सुन्दर प्रभा के उत्पन्न होने पर तीन शिवा वाले त्रिमूर्ति से भगवान् महेश्वर के द्वारा अन्वयक दैत्य के निहत हो जाने पर ब्रह्मा, इन्द्र आदि प्रधान सभी गुरगण दहन ही प्राप्त हो गये थे । उन्ही समय में गुरगणों की दित की कामना से भगवान् विश्व ने अपना राज प्रजापाया । वही पर शयोद्धारण नाम वाला तीर्थ समुत्पन्न हो गया था ॥७२-७५॥ हे त्रिमैन्द्र ! वही पर विष्णु गन्निहित रहते हैं । विंग के समीप में मनाद्य चतुर्मुख त्रिग सन्निहित हैं । देव के दक्षिण भाग में गूल से प्राप्त शिव स्थित रहते हैं । ओं इन्द्रियो जो जीत लेने वाले लोग चतुर्दशी तथा षष्ठी तिथि में उनका दर्शन किया करने हैं उनका महान् पुण्य होता है ॥७६-७७॥

ते क्षीणाशेषवापोघाः प्राप्स्यन्ति परमं गतिम् ।

योगिनीना बलि यस्तु यथावत्सम्प्रदास्यति ॥७८

भूतप्रेतविशानाद्यनगिरीकेनापि प्राप्यते ।

दादनी ममुदोप्येय स्नानाश्वादेव जनार्दनम् ॥७९

यः पश्येच्छिन्नं देवं सोऽच्युतं स्थानमाप्नुयात् ॥८०

यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यस्मिन् भूतो न च मयंभूत ।

त्रिभुव यत्तद्वैव हि विद्वद्भैतुर्नमोऽस्तु तस्मै पुराणोत्तमाय ॥८१

उप मनुष्यों के धर्मों वाणी के समुद् क्षीण हो जाते हैं और ये परम छोड़ गति को प्राप्त हुआ करते हैं । जो वही पर योगानयो की बलि यथावत् सम्प्रदान करता है वह भूत प्रेत और विनाय आदि के द्वारा कभी भी बाधित नहीं किया जाता है । दादनी के दिन भरी भीत उपवास करते रहना करने के पश्चात् आ देव जनार्दन तपधारी देव का दर्शन किया

करता है वह प्रकृत स्थान को प्राप्त करता है ॥७८-८०॥ जो स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप वाला है—प्रकटित प्रकाश से युक्त है—जो सर्वभूत है और सर्वभूत नहीं है—जिससे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है और जो इस विश्व का हेतु है उस परम पुरुषोत्तम के लिए नमस्कार है ॥८१॥

७६— गयातीर्थमाहात्म्यवर्णन

शृणु ध्यास । प्रवक्ष्यामि तीर्थमेकमतः परम् ॥१॥  
 तीर्थानामुत्तम तीर्थं गयानामेतिनामतः ।  
 यत्रस्तात्वानरो नित्यं मुच्यतेचमृगणप्रयात् ॥२॥  
 देवान् पितॄन्समम्यर्ष्यां विष्णुलोकं स गच्छति ।  
 कीकटेषुगयापुण्या नदीनृष्या पुना पुनः ( पुनः पुना ) ॥३॥  
 तीर्थानामुत्तमतीर्थं पुण्योराजगिरिस्तथा ।  
 ( अवनस्थाश्रमः पुण्यः पुण्योराजगिरिस्तथा ) ॥४॥  
 सकयं विदितोदेशे महाकालवने शुभे ।  
 एतद्वेदितुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ! ।  
 शृणु ध्यास ! कयाम्पुण्यां पवित्रा पापहारिणीम् ॥५॥  
 गत्या. यवणमायेण पितरोयान्तिसद्गतिम् ।  
 पुराकृतयुगे पुण्ये युगादिदेवनामतः ॥६॥  
 राजासीत्मतुवर्मापुण्यध्ववणकीर्तनः ।  
 तस्वपालयतः सम्यक्प्रजाः पुत्रानिबोरतान् ॥७॥  
 भगवान् सनत्कुमारजो ने कहा था—हे ध्यास ! अब मैं एक इनसे भी परमोत्तम प्राणो तीर्थों के विषय में बतलाता हूँ । बाप समझा यवण कीद्विष्णा ॥१॥ समस्त तीर्थों में 'परम उत्तम नाम से गया कहे जाने वाला एक छोटे तीर्थ है । जिस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य जिस ही तीर्थों से शूद्रकारा वा जाया करता है । देवों को और अपने भितृगणों को वहाँ पर भवो भक्ति अर्पण करके वह मनुष्य सीधा विष्णु लोक को जाता जाता है ॥२॥ जो ध्यासदेव ने कहा था—ध्यासजी बोलो—कीकटों

में गया परम श्रेष्ठ पुण्यमयी पुनः पुनः नदी है । तीर्थों में उत्तम तीर्थ तथा पुण्यमय राजगिरि है । अथवा वा आश्रम पुण्यमय है तथा राजगिरि पुण्यमय है । परम शुभ महाबास वन में और देश में वह यैने विदित हुआ है-हे तपोधन ! मैं यह जानना चाहता हूँ । आप विस्तार से बहिए । श्री सनत्कुमारजी ने कहा-हे ध्याम ! मय पाप पापों का हरण करने वाली इस परम पुण्यमयी पवित्र जगया वा श्वणु कीजिए जिसके ध्वण करने मात्र से ही विगुण सद्गति का प्राप्त हो जाया करते हैं । पुरातन समय में परम पुण्यमय वृणपुत्र में एक युगादि देव नाम का राजा हुआ था । वह बहुत ही धर्मात्मा और पुण्य श्रवण तथा कीर्तन वाला था । उगची प्रजा ऐगी श्री जिनका वह अपने औरत पुत्र पौत्रों के समान ही पालन किया करता था ॥३-७॥

अभूषुः सर्वे सम्पन्ना वर्द्धमानाः समन्ततः ।

धर्मश्चतुष्पदीनस्य यस्मिन्राशिप्रसामति ॥८

कालेवर्षा च पजन्यो अतथ. स्वाङ्गचारिणः ।

यद्दु सस्यफला पृथ्वी गावश्च वनुदुग्धदाः ॥९

येदमादरताविप्रा दश्रियायाहुशालिनः ।

वंश्याधनपरा निरस्य शूद्रा शुभ्रूपजेरता ॥१०

वर्णाश्रमरता नये सर्वधर्मोपदेशवतः ।

अनिम्गृतिपरोधर्मोद्दृष्टपुष्टव्रतारुः ॥११

नागिदनाध्यभिमम्भूता मध्यन्ते केऽपि मानवाः ।

दुशीला दुमगा नार्या विधवा नो तथैवच ॥१२

यदृषन्नापुत्राश्च मृतपुत्रानयन्धियाः ।

रूपनीलगुणोपेता पतिव्रतपरायणाः ॥१३

मुमार्गकरसकीर्णा दस्युक्षोषविजितः ।

दूषताम्भुश्रयताशद्वहीयताश्च गृहे गृहे । १४

गर्भी प्रजाव्रत गर्व मन्वान और गर्भी प्रसार में वर्द्धमान हुए थे ।

उग राजा के प्रसामन काय में शिव समय में निम्न ही धर्म चार वर्णों वाला वर्णाश्रमोद्गर्ण वा । मेष समय पर वर्ण करने वाला था और



सभी ऋतुएँ अपने २ षष्ठी के समाचरण करने वाली थी । भूमि बहुत शस्यों के फलने वाली थी और भोएँ बहुत प्रयुक्त हुआ देने वाली थी । विषयए सब वेदों के बाह करने में रति रखने वाले थे और क्षत्रिय लोग बाहु धन से सम्पन्न थे । वैश्य धन पराधन अर्थात् बहुत हो सम्पत्तिमानो थे तथा शूद्रगण सबकी धुधूपा करने में रत रहा करते थे । सभी जाग अपने २ बरों और आपसों में निरत रहने वाले थे । सभी धर्मों के उप-देशक थे । उन समय में धृति तथा स्मृति में परमगुण ही धर्म या धीर हृष्ट-बुद्ध जनों की छात्र था । वह ऐसा शासन एक धर्म का प्रभाव था कि सब समय में कोई भी अन्याय धार्मिक (मत्स्यिक धर्म) धीर ध्याधि (शारीरिक रोग) से धर्मिसम्भूत दिखलाई नहीं देते थे । नारियाँ भी बुरे स्वभाव वाली—बुरे भाव्य वाली तथा विषवाएँ नहीं होती थी । उस समय में धार्मिक राजा के शासन का ऐसा प्रभाव था कि स्त्रियाँ बहुत पुरो धामो—धरन पुरों धामो—मृत दत्ता धीर बन्ध्याएँ नहीं थी । सभी नारियाँ लय लक्ष्म और पुणों से सम्बन्धित थी तथा वातिदत्त धर्म में पराधन रहने वाली थी । समस्त पृथ्वी नुसार कर मञ्जीराँ थी तथा दत्तु (घोर डाकुओं) के दोष से रहित थी । सभी जगह धर धर में दूधन भोजन, दान निरन्तर हुआ करते थे ॥८-१४॥

अपदानितपोद्दोमस्तुतिभक्तियापराः ।

जनाः सर्वत्र दृश्यन्ते सदाधर्म परायणाः ॥१५॥

चतुष्पदचरोधर्मोद्दामर्षः पादविग्रहः ।

एव राजा सर्वमात्मा युगादिदेवसञ्जितः ॥१६॥

येनेषभालिता पृथ्वीधर्मण बद्धिताः प्रजा ।

अवन्त्याच पुरावशात् । यज्ञकोटि सदाचरत् ॥१७॥

सिम्भन्कालेर्जनिविक्रान्तस्तुह ( ह ) पडनामदानव ।

तेन सर्वे वश नोत्त चराचरमिद जगत् ॥१८॥

घोरं तप्त्वा तप पुष्य ब्रह्मलम्बवरः खलः ।

नैवदेवानयशाश्च वेदमार्गोर्बर्जिताः ॥१९॥

देवतापूजन नास्ति स्वधास्वाहानदृश्यते ।  
उत्सन्नो धर्ममार्गोऽप्यशाश्वतोर्वदुरासदः ॥२०

नष्टप्राया सुरास्तेन कृताः सर्वोत्तमोत्तमाः ।  
ग्रह्याण्यशरण्यजम्भुः पितृणांसहसाद्युभिः ॥२१

सर्वत्र सब मनुष्य जप—दान—तप—होम—स्तवन—यज्ञ और  
तियागों में परायण रहा करते थे । सब जगह मनुष्य धर्म में तत्पर ही  
दिखलाई दिया करते थे । धर्म धारों पक्षों से युक्त सर्वाङ्ग सम्पूर्ण था  
और अधर्म केवल एक ही चरण से युक्त था । इस तरह से वह राजा  
युगादि देव नाम वाला धर्मात्मा था जिसने द्वारा यह पृथ्वी धर्म से पालित  
थी और प्रजा मय वर्तमान हो रही थी । हे ध्यास ! अकाली पुरी में पहिले  
एक करोड़ पक्षों का समाचरण किया था । उमने इस समय में अत्यन्त विक्रम  
वाला एक तुहुण्ड नाम वाला दानव था । उमने इस समय धराधर  
जगत् की अपने ही वत्स में ले लिया था । इसने अत्यन्त परम पुण्यमय  
घोर तपस्या की थी और इस सब ने ब्रह्माजी से धरदान प्राप्त कर लिया  
था । कोई भी देवगण पूजा के योग्य नहीं है—न कोई यज्ञादि ही है—  
सब वेद के निरिष्ट मार्ग से रहित हो जाइये—देवों का पूजन भी कुछ नहीं  
है । स्वधा और स्वाहा कहीं पर भी दिखलाई ही नहीं दे रहे थे । धर्म  
का मार्ग उल्टा हो गया था जो शाश्वत तथा दुरासद था । उमने सभी  
गुर नष्ट प्राय कर दिये थे जो कि मरने उत्तम में भी उत्तम थे । ये सब  
गुर गण तिनको घोर गानुधों के महिमा मितकर ब्रह्माजी को शरण में  
गये थे ॥२१-२१॥

किं कुर्मः वर च गच्छामन्नुह (ह) ष्ठेन पराजिताः ।

इति श्रुत्वा यनस्तेषां ब्रह्मा लोपितामह ॥२२

ममुस्थापनाः गर्वविष्णुलोक जगामह ।

तत्र गत्वा ममाराध्य विष्णुदेवगणैः सह ॥२३

शुनिपुरगणैः न विष्णोरनुमतेजसः ।

प्रथमः शुनिगणैः स्थाप्य नोऽमुदगाय च ॥२४

तदा तेषामिच्छन्ती वैष्णवी चा (वागुवाचा)शरीरिणी ।

श्रूयताम्भोः सुरश्रेष्ठा भवतां श्रेय उत्तमम् ॥२५

यूययात्क्षितौक्षिप्रं महाकालवनं प्रति ।

गुह्याद्गुह्यतरं पुण्य पवित्रं पापनाशनम् ॥२६

नोपत्रमायिनांमाया प्रकाशयति भूतले ।

सर्वतीर्थं मयंतीर्थं कोटितीर्थं वरप्रदम् ॥२७

यत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा सर्वं कामफलप्रदा ।

दैत्यान्तकारिणीदिव्या महाकाली कुलेश्वरी ॥२८

समस्त सुरगणों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की थी कि हम लोग क्या करें और कहाँ पर चले जायें । इन सब को तुहुण्ड ने पराजित कर दिया है । ब्रह्माजी ने जो समस्त लार्कों के पितामह हैं उनके इस वचन को सुनकर वे उठ खड़े हुए थे, और उन सब का साथ में लेकर विष्णु लोक का पसे गये थे । वहाँ पहुँच कर देवगणों के सहित भगवान् श्री विष्णु की समाराधना की थी । उन सबने अतुल तेज वाले विष्णु की स्तुति पुष्प मूक्त के द्वारों की थी । इन सभी ने अपने अम्युदय के हो लिए यह संस्तवन किया था उसी समय में उन सब के कल्याण की इच्छा करने वाली बिना शरीर वाली वैष्णवी वाली ने कहा था—“हे सुरश्रेष्ठो ! आप सब लोग ध्वज बजाए जोकि आपका परम उत्तम श्रेय है । आप सभी लोग बहुत ही शीघ्र भूमण्डल में महाकाल वन में चले जाइये । यह परम गुप्त से श्री गुप्त, पुण्यनय और पवित्र तथा समस्त पापों का नाश करने वाला क्षेत्र है । जहाँ पर ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि भूतल में बड़े से बड़े मायाधारियों की भी माया प्रकाश नहीं किया करती है । यह स्थल ऐसा तीर्थ है जो सम्पूर्ण तीर्थों से परिपूर्ण है और करोड़ों तीर्थों के वर का प्रदान करने वाला है । जहाँ पर समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ क्षिप्रा नदी प्रवाहित होती हुई विराजमान है जो सभी मनोरथों को पूर्ण कर देने वाली है । वहाँ पर परम दिव्य कुलेश्वरी महाकाली विराजमान रहा करती हैं जो कि दैत्यों के अन्त कर देने वाली हैं ॥२२-२८॥

कोटिकोटिगङ्गाकीर्णा मातृणंशक्तिवर्द्धनी ।  
 गणायप्रमहापुण्या फल्गुश्चैवमहानदी ॥२९  
 पुरुषोत्तमगिरि श्रेष्ठो यत्रबुद्धगयास्मृता ।  
 तत्रैवचगयाख्याता त्रिपुलोकेषुविश्रुता ॥३०  
 विष्णो षोडशपदीतीर्थं गदाघरविनिर्मितम् ।  
 सर्वपापहरापुण्या यत्र प्राचीसरस्वती । ३१  
 महामुरनदीप्रोक्ता पञ्चतिष्ठन्ति पुण्यदाः ।  
 न्यग्रोधश्चाक्षयोनित्यः पुराप्रोक्तोमहर्षिणा ॥३२  
 तत्रैव साशिलाप्रोक्ता श्रुतमोक्षकरीशुभा ।  
 तत्रैववसतेनर्वा देयता पितृकल्पजा ॥३३  
 सर्वाक्षरमयोङ्कारः सर्वदेवमयोहरिः ।  
 सर्वंतीर्थंमयादेश कदातीर्थंमनुत्तमम् ॥३४  
 सोम्रंगच्छतत्रैव परासिद्धिमवाप्स्यथ ।  
 यत्रप्रविष्टमात्रेण पितरोनिरयस्थिता ॥३५  
 ते सर्वे स्वर्गमायान्ति ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥३६

यह महाशशी देवी बरोहो हो गलीं से समाधीर्ण रहा करती है ।  
 और मातृगण की शक्ति के वर्द्धन करने वाली है । यह ऐसा स्थान है जहाँ  
 पर महापुण्यमयी गया विद्यमान है और महानदी फल्गु बहती है । वहाँ  
 गय पर्वतों में परम श्रेष्ठ पुरुषोत्तम गिरि है जहाँ पर बुद्ध गया बही गयी  
 है । उन्हीं प्राँति यद् गया भी लोगों संःर्षों में प्रसिद्ध होकर ख्यात हुई है ।  
 भगवान् गदाघर के द्वारा निर्मित वहाँ विष्णु वा षोडशपदी तीर्थं विष्णु-  
 मान है । जहाँ पर समस्त पार्वी के हरण करने वाली परम पुण्यमयी  
 प्राची सरस्वती है । महामुर नदी बही गयी है । ऐसे वहाँ पर पाँच पुण्य  
 पर्वों के प्रधान करने वाली शक्ति विद्यमान रहा जाती है । पुरातन समय  
 में महर्षि के द्वारा कथित निम्न और अक्षय म्पदोप भी वहाँ पर विद्यमान  
 है । वहाँ पर ही यह शिवा बर्णाई गयी है जो परम गुण और श्रेष्ठों के  
 मोक्ष करने वाली है । वहाँ पर पितृ कल्पत्र गमस्तु देवगण निवास किया  
 करते हैं । महाशशमय श्रीशुभर है यहाँ शर में सभी अक्षरों का समा-

वेश होता है और श्री हरि भगवान् य सभी देवता बिराजमान रहा करते हैं । देवगण सम्पूर्ण तीर्थों से परिपूर्ण होते हैं तथा गया तीर्थ सर्वोत्तम तीर्थ है । वही पर बहुत ही शीघ्र ही आप लोग चले जाइए । वहाँ भाप सब परामिद्धि को प्राप्त करेंगे । जिस क्षेत्र में प्रविष्ट होने मात्र से ही नरको में स्थित पितृगण सबके सब स्वर्ग में आ जाया करते हैं और ब्रह्म भूय कल्पित किये जाते हैं अर्थात् ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं ॥२६-३६॥

### ७७—नागतीर्थमहिमावर्णन

नागतीर्थं त्वया ब्रह्मन्युराप्रोक्तं यशस्विना ।  
 तस्यतीर्थं वरस्याऽपि महिमानञ्चसत्तम ॥१  
 भूयस्तु यो नुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ।  
 कियत्काले समास्यातमेतद्विस्तरतो वद ॥२  
 शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि तवाग्रे नागतीर्थं जाम् ।  
 कथां पुण्यतमां तु म्य भुवि पापहरां पराम् ॥३  
 यस्याः श्रवणमात्रेण पापमुक्तो भवेन्तरा ।  
 पुरा नागा परिभ्रष्टा मातुःशापात्परन्तप ॥४  
 जनमेजयेन दग्धास्ते मोक्षिता ह्यास्त्रिकेन च ।  
 पप्रच्छुस्ते द्विजश्रेष्ठा जरत्कार्वात्मजं तदा ॥५  
 ब्रह्मं स्तवप्रसादेन मोक्षिताहव्ययाहनात् ।  
 जनमेजयस्य यज्ञेऽस्मिन्देव राजस्य मुनिवो ॥६  
 अस्माकं भूतिमन्विच्छन्वासस्थायं परंतप ।  
 यस्मिन्स्थाने सदा ब्रह्मन्निवासो जायतेऽभयः ॥७

महापि प्रवर श्री व्यासजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने पहले नाग-  
 तीर्थ का वर्णन किया था । आप तो बहुत ही महात्मी हैं । हे श्रेष्ठजन्म !  
 उस से श्रेष्ठम तीर्थ को महिमा को हे ब्रह्मवेत्ताओं में वरिष्ठ क्षेत्र ! मैं पुनः  
 आपके मुख से श्रवण करना चाहता हूँ । कितना समय होगया सभी  
 आपने इसको कहा था । अब आप इसको विस्तार के साथ कहिए । श्री

तनातुमारजो ने कहा— हे ब्रह्मन् ! अब आप मुनिए, मैं आपके समझ में इस नागनीप में समुद्रमग्न बषा को भाप से कहना हूँ । यह परम पुण्यतम बषा है जो कि इस सहोन्नन्दन में पापों के हरण करने के निम्ने परम प्रशस्त है । यह ऐसी बषा है जिसके ध्वजन मात्र से ही मनुष्य शाप से विमुक्त हो जाना करता है । हे परन्वज ! पुरातन समय में नाग गरा माना के शाप से परिभ्रष्ट हो गये थे । जनमेजय ने उनको देख कर शिवा का घोर घास्त्रिक ने उनको मोक्षित किया था । हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय में उन्होंने जराकाय के पुत्र से पूछा था ॥१-२॥ नागों ने कहा— हे ब्रह्मन् ! हम सब सोम धारके ही प्रमाद से इस घग्नि से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं जबकि देवराज की मश्रिधि में राजा जनमेजय द्वारा इस यज्ञ में हम सब को दाय किया जा रहा था । हे परन्वज ! हमारे भूति को दण्डा करने हुए आप हम लोगों के निवास करने के लिए भी स्थान निश्चित कर दोसिए जिसमें हे ब्रह्मन् ! सदा भय से रहित हमारा निवास हो जाये ॥६-७॥

श्रुयतामानुलथेष्ठा युष्माकः हितमुत्तमम् ।  
 महाकालवने रम्ये वा यं कुशस्थलीस्मृता ॥८  
 तस्या हि दक्षिणे भागे पूर्वतीर्थं मनातनम् ।  
 नागालयं पुरा प्रोक्तं यत्र मन्निहिनो हरिः । ९  
 योगनिद्राममामाद्य भेते ब्रह्म मनातनम् ।  
 क्षेपशापीनिविरयानः सर्वतोरेपुगीयते ॥१०  
 यन्त्रक्षोपो न तत्रैव वाधते सर्वं देहिनाम् ।  
 यत्र दान्द्र्यं ऋषिस्तत्र तपस्तेषु घृतप्रसक्तं ॥११  
 सोमशद्वयं महातेजास्त्रिभुव प्रतिविष्टनि ।  
 दोषावृष्टं ममापन्नोनाकं देवो महामुनिः ॥१२  
 न वसेने कालयकं महाकालप्रनारतः ।  
 तपिनः गिद्धिमास्तनो व्य तौषं वरोत्तमे ॥१३  
 हरिश्चन्द्रो त्रिभुतोऽभूद्गर्ह्यं चण्डालयोनिनः ।  
 सृष्टिप्रवरापेते निर्वाणपदपी गताः ॥१४

मास्तोक ने कहा—हे मातुल श्रेष्ठो ! आपके उत्तम हित की बात का आप धर श्रवण करो । परम रम्य महाकाम वन में जो एक कुशस्यली यज्ञायो गयी है । उसके दक्षिण दिग्भाग में एक सनातन (सदा से पला आने वाला) पूर्व तीर्थ है । वहीसे यह नागालय कक्षा गया है जहाँ पर श्वो हरि सन्निहित रहा करते हैं । वह सनातन ब्रह्म योगनिद्रा को प्राप्त होकर वहाँ पर शयन क्रिया करते हैं और रोपशापी—इस नाम से वह विख्यात हैं उनका इसी नाम से सब लोकों में गायन किया जाता है । वहाँ पर समस्त देहधारियों को कल्प का कोई दोष भी बाधा नहीं दिया करता है वहाँ पर ब्रत धारण करने वाले बक्रदाल्भ्य ऋषि सपञ्चर्या किया करते थे । महान् तेज वाले लोमश ऋषि भी वही पर प्रतिष्ठित रहा करते हैं । महामुनि भार्कष्येय दोर्वायुष्ठम को प्राप्त हो गये हैं । भगवान् महाकाल के प्रताप से वहाँ पर काल चक्र नहीं है । निम्न उत्तम तीर्थ वर में कपिन मुनि भी सिद्धि को प्राप्त हो गये थे । हरिश्चन्द्र अतीव गह्र (निन्दा के योग्य बर्षात् नीच) बाण्डाल मोनि से विमुक्त हो गया था । जो सप्तपि प्रवर हैं वे सब निर्वाण पदवी को प्राप्त हो गये थे ॥८-१५॥

एतस्मात्कारणात्सर्वस्तथ विश्रम्यता सदा ।

मातु. शापोद्भवो दीपो युष्मार्कं नैव वाधते ॥१५

एतत्तैवचनं श्रुत्वामहर्षैरान्तिक्स्वप ।

भागच्छंस्तत्र ते शीघ्रं वासायं पन्नगोत्तमाः ॥१६

एलापयः कम्बलश्च कर्कोटकघनञ्जयो ।

वासुकिःपन्नगश्च छ्ठस्तक्षकी मील एव च ॥१७

पथकश्चावुं दश्चैव नागास्ते सर्व एव हि ।

अत्रागत्य स्वस्थानानि चक्रुस्ते मुचिरव्रताः ॥१८

तत्ररम्याणितीर्थानिजातानिपरमाणि च ।

नवानि चक्रुःकुण्डानि तीर्थभूतानिसत्तम ॥१९

महापुण्यप्रदान्याहुर्महापापहराणि च ।

यत्र सिद्धाश्च गन्धवा ऋषयः संशितव्रताः ॥२०

अप्परोगणमड्व्यंश्च सेव्यन्ते च सदा परैः ।

यत्र शेषो महानागः पुरा शोक्ता महर्षिणा ॥२१

इस कारण से आप सभी लोग वही पर सदा विग्राम करें । माता के साथ से होने वाला शेष बड़ा पर आप सबको बाधा नहीं देगा । उन सब नामों ने उन महर्षि आस्तिक के इस ध्यान का श्रवण करके ये पत्रगो-  
स्तम वही पर अपने निवास के लिए शीघ्रता से चले गये थे । उन विशेष नामों के नामों का सशिष्ट परिचय बनाने हैं—एसापन—कम्बल—  
बर्बोटक—धनञ्जय—पद्मप्रदेश वासुकि—ताराक—नील—पद्मक—  
अहुद आदि के सभी नाम थे । यहाँ पर आकर गुरुरि बनने वाले उन्होंने  
अपने २ स्थान वाग के लिये कर लिये थे । यहाँ परमोत्तम एवं गुरुर्य  
तोर्ष हो गये थे । हे श्रेष्ठतम ! मनीष कृष्णों की रचना की गयी थी जो  
कि सभी तीर्थों के स्वरूप वाले हो गये थे । ये सभी महान् पुण्यो के प्रदान  
करने वाले और महान् ये महान् पापों के हरण करने वाले हैं ऐसा कहा  
जाता है । यहाँ पर गिद्ध—गन्धर्व और गंदिश बनने वाले श्रुतिगण सदा  
श्रेष्ठ अप्परायो के सत्त्वों में सेविन विद्ये जाया करते हैं । यहाँ पर महर्षि  
के द्वारा शेष महानाग पहले कहा गया है ॥११-२१॥

शेषशायी ह्यल विष्णुर्भगवान्कमलेशणाः ।

तत्र गर्वाणिनीर्षानितिष्ठन्तिभुविगर्वंदा ॥२२

श्वेतद्वीपेति विरागता मणिविष्णान्तभूमिका ।

यत्र पुण्याश्च वै वृथा. पुण्यनादयं च सर्वंदाः ॥२३

हं गवाराण्डनाकादिपिकवोकिमगारणाः ।

पद्मप्रदगणान्त्र नृत्यन्ति च नागविटनः ॥२४

निषिरेषमहापद्मो नीलोत्पलमुषग्निना ।

यामिनो वासुना मुध. किन्नरोद्गारवादिनः ॥२५

यत्र मुगंशृणा नाप्यो विहरन्ति मुराङ्गना. ।

नागबन्धार्थो रम्यान्निमं विटनं परमाद्भुगम् ॥२६

पद्मप्रदगणान्त्रोत्पानि संकृन्ठं घामतोभनम् ।

शेषशायी ह्यल्यत्र शेषे हि च रमापति. ॥२७



तत्र रमासरोनाम तीर्थं परमशोभनम् ।

यत्रस्नात्वानरोनित्यं श्रीमान्भवति नाऽन्यथा ॥२८

कमल के समान नेत्रों वाले शेष की शय्या पर शयन करने वाले भगवान् विष्णु ही पर्याप्त हैं । इस भूमण्डल पर वहाँ पर सर्वदा समस्त तीर्थ स्थित रहा करते हैं । मणियों से विक्रान्त भूमि श्वेतद्वीप—इस नाम से विख्यात है । जहाँ पर पुण्य वृक्ष हैं जो सब प्रकार से सदा फूलों वाले रहा करते हैं । यह ऐसा स्थल है जिसमें हृन्—कारण्ड—काक आदि तथा पिक (कोयल)—सारस और पद्म खण्ड गण एवं शिखण्डी नृत्य किया करते हैं । यह महापद्म निधि है । यह स्थल नील कमलो की मुगन्ध वाली वायु से सुवासित रहता है—परम सुध्र और किन्नर गणों के उद्गारों से द्यनित रहा करता है । जहाँ पर सुन्दर सस्कारों से समन्वित नारियाँ और सुरों की भङ्गनाएँ विहार किया करती हैं । यह स्थल परम रम्य नाग कन्याओं से मण्डित रहता है और परम पद्ममुत है । जहाँ पर मनुष्य एक बार स्नान करके ही सीधा प्रति शोभा सम्पन्न वैकुण्ठ धाम को चला जाया करता है । जहाँ पर रमा के पति श्री हरि शेष की शय्या पर शयन करते हुए विराजमान रहा करते हैं । वहाँ पर एक 'रमासर' नाम वला अत्यन्त शोभन तीर्थ है जिसमें नित्य स्नान करके मनुष्य श्रीमान् हो जाया करता है अन्य किसी भी तरह से नहीं होता है । अथवा यह बात मिथ्या है ही नहीं—सर्वथा सत्य है ॥२२-२८॥

एवं व्यास! परं स्थानं सर्वपापहरं परम् ।

अत्रैव च परं तीर्थं बलेराश्रमद्भुतम् ॥२९

अत्रस्नानादिकं कार्यं यत्रसनिहितोहरिः ।

सर्वपापविशुद्धात्मा नरोभवति तत्क्षणात् ॥३०

कियत्प्रमाणमात्रा च ये ददति वसुन्धराम् ।

तनूरुहाणि यावन्ति तावत्कालसङ्ख्यया ॥३१

अक्षय्या लभ्यते वृद्धिस्तेषां लोकाः सनातनाः ।

श्रावणे मासि दशं च पञ्चम्या सोमवासरे ॥३२

नागानां पूजनं कार्यं श्राद्धं दशं विधीयते ।

अथर्वं जायते श्राद्धं वाञ्छितार्थं भवेत्तदा ॥३३

हे श्याम देव ! इस प्रकार से यह परमोत्तम स्थान है जो समस्त पापों के हरण करने वाला है । यहीं पर परमोत्तम तीर्थ बलि का अद्भुत आश्रम है । यहीं पर भी स्नान आदि अवश्य ही करना चाहिए जहाँ कि श्री हरि भगवान् नमिहित रहा करते । यहीं स्नानादि को क्रिया करने से मनुष्य उन्नी क्षण में तुरन्त ही सब पापों से छुटकारा पाकर विगुण आत्मा वाला हो जाता करता है । जिने प्रमाण वाली वसुधारा के घन का पुण्य फल यहाँ पर होता है—इस पर बताया जाना है कि शरीर में जिसने रोम हैं उतनी ही सख्या वाली पूर्ण वसुधारा के दान का पुण्य हुआ करता है । उन पुरुषों को जमी भी क्षीण न होने वाली वृद्धि प्राप्त हो जाती है और उनकी मनानन लोकों का लाभ हुआ करना है । धावण मार्ग की समावस्था तिथि में घण्टा पञ्चमी तिथि में चन्द्रवार के दिन में नागों का पूजन अवश्य ही करना चाहिए । दश में श्राद्ध का भी विधान है । यह श्राद्ध भी अथर्व हुआ करता है तथा जो भी कोई वाञ्छित अर्थ होता है उसकी भी प्राप्ति हो जाता करता है ॥२६-३३॥

### ७८—अवन्तीमाहात्म्यवर्णन

भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि स्वतोऽश्वविदांवर ।

अवन्त्याश्चरपरपुण्य महिमानं श्रुतं मया ॥१

स्वया ब्रह्मायदा प्रोक्तं अस्मत्प्रतपारणम् ।

तीर्थं स्यात्स्व सुविस्तारात्स्नातकानां द्विजोत्तम ! ॥२

अचिरेण नुगतैर्न तीर्थं स्वफलमश्नुते ।

गिडोभूत्वा नरोयानि सद्ब्रह्मद्विजोत्तम ॥३

गुह्याद्गुह्यतरं यत्त पृच्छन्मिव ममानघ ।

सत्सहं नम्रवदयामि शृणुष्वसत्तं ममाहितं ॥४

महाकान्तं ततो गच्छेन्नियतो नियतारमना ।

कोटितीर्थे नरस्नात्वा पुनर्त्र्यम्न विद्यते ॥५

नास्तिवत्समहीवृष्टेक्षिप्रायाःसदृशीनदी ।

यस्यानिरीक्षणान्मुक्तिःकिञ्चिरात्सेवनेनयै ॥६

माघवेमासियोदेवं पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।

मोचनेमुच्चतेनित्यं तर्पणादेकवासरात् ॥७

महर्षि प्रवर श्री व्यामजी ने कहा—हे ब्रह्म के ज्ञान रखने वालों में परम वरिष्ठ । मैंने अवन्ती की परम पुण्यपूर्ण महिमा का ध्वनन कर लिया है किन्तु पुनः मैं कुछ आपसे ध्वनन करने को अभिलाषा रखता हूँ । हे द्विषोत्तम ! आपने जो कि परम ब्रह्म वेत्ता हैं पुरे एक वर्ष के व्रत का पारण व्रजित किया था सो स्नातकों को उस व्रत का जो कि इस तीर्थ पर किया जाता है पूर्ण विस्तार के साथ धरुणं कीजिए । हे द्विषों मे परम श्रेष्ठ ! प्रब यह बतलाइये कि कैसे मनुष्य बहुत स्वल्प समय में ही इस तीर्थ का फल प्राप्त कर लिया करता है और परम मिट्ट होकर प्रयाण करता है ? श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे वत्स ! हे निष्पाप ! आप तो इस समय में परम गोपनीय से भी गोपनीय बात मुझसे पूछ रहे हैं । अन्ध में आपको तो यह भी बतलाऊंगा । अब आप बहुत ही सावधान चित्त वाले होकर ध्वनन कीजिए । इसके उपरान्त पूर्णतम निमत आत्मा से नियत होकर महाकाल तीर्थ में मनुष्य को गमन करना चाहिए । कौटि तीर्थ में मनुष्य स्नान करके फिर दूसरा जन्म ग्रहण नहीं किया करता है । हे वत्स ! इस मही मण्डल में दिमा के तुल्य अन्य कोई भी नहीं है । जिसके केवल निरीक्षण कर लेने ही से मनुष्य की मुक्ति हो जाया करती है, चिरकाल पर्यन्त सेवन करने की तो बात ही क्या कही जावे । माघ मास में जो कोई पुरुषोत्तम देव का पूजन किया करता है वह नित्य ही मुक्त हो जाया करता है और केवल एक ही दिन के तर्पण करने से भी मुक्त हो जाता है ॥१-७॥

अवन्त्यामङ्गपाताख्यं ये पश्यन्ति जनार्दनम् ।

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥८

इतिव्यासवचस्सर्वश्रदन्तिनियतात्मनः ।

वाराहमत्स्यकन्दाद्या लोमशाश्रमहामुनिः ॥९

विधितयापितीर्थस्यशृणुपुण्यसमम्पुनः ।  
 योवैस्वल्पेनपुण्येनतीर्थस्यफलमिच्छति ॥१०  
 तस्यगर्वस्यवक्ष्यामिशृणुध्वेदं तपोधन ।  
 सर्वतीर्थं कलाकाङ्क्षी गुचि प्रयतमानसः ॥११  
 अवगाहप्रतीपाति तीर्थानिचाष्टविशतिः ।  
 ऊर्जेमाघेऽत्रयापाठे वंशाखेचविशेषतः ॥१२  
 यदाकदापुरी प्राप्य कर्तव्यंतीर्थं मज्जनम् ।  
 मवतीर्थफलं प्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥१३

प्रयत्नो मे जो मगपाल नाम वाले जनार्दन प्रभु या दर्शन किया  
 करते हैं उनकी फिर करोहो बरसो मे भी इन सप्तर में पुनरावृत्ति नहीं  
 हुआ करते हैं अर्थात् वे फिर जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं । हे  
 प्याम ! सभी नियत आत्मा वाले लोग इन वचन को बहा करते हैं ।  
 बाराह-मत्स्य और बृहद् घादि तथा महाभुक्ति सोमदा यही बहते हैं । तो  
 भी पुनः पुण्य नम तीर्थों की विधि का व्यवसाय कर लो । जो कोई स्वल्प  
 पुण्य हो से तीर्थों के फल की इच्छा किया करना है उदाहा सभी बुद्ध में  
 बताऊंगा । हे तपोधन ! इसे अब आप श्रुति । गमना तीर्थों के फल की  
 आर्षात्ता रहने यात्रा—गुचि (पवित्र) प्रयत्न मन वाता—अवगाहन के प्र  
 से मुक्त घट्टाईन तीर्थों की जाया करना है । घास्विन-याप—घावाङ्  
 घोर विंलय रूप मे वैशाख भाग मे जब कभी पुरी पहुँच कर तीर्थों का  
 मज्जन करना चाहिए । वह सभी तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त करके विश्व  
 लोक में महिमा-विभ होकर प्रतिष्ठित हुआ करना है ॥८-१३॥

शिप्रातीर्थेऽहियन्नेपुराम्यानानिगूरिभिः ।  
 पुण्ड्रानितीर्थं मुग्धानितानिमेगदन शृणु ॥१४  
 पातदित गुचिभ्रूँत्या विष्णुविष्णुरिनिम्भरन् ।  
 धादाय निधमं गव्यं स्नानक्षानाङ्ग मत्तम ॥१५  
 स्नानाया ग्दमरे निरयं शृङ्गा श्राद्धादिकं तथा ।  
 मघागति परा याना गा दद्या पाय काञ्चनीम् ॥१६

तीर्थं राजनमस्तुभ्यं निजतीर्थविमाहने ।  
 अनुज्ञादेहिमेनित्यं करिष्यामितवार्चनम् ॥१७  
 ततः प्रयातिततीर्थं कर्कराजाभिधं सरः ।  
 तत्र स्नानादिकं कृत्वा घृतपात्रं प्रदापयेत् ॥१८  
 नृसिंहाख्यं परं तीर्थं तत्रमनायाद्द्विजोत्तम ।  
 कृष्णाजिनं ततोदद्यात्मकार्यविशुद्धये ॥१९  
 सङ्गमो नीलगङ्गायाः क्षिप्रयाश्च वसन्तम् ।  
 तत्र स्नात्वाशुचिभूत्वाद्दृष्ट्वाचसङ्गमेश्वरम् ॥२०  
 वाहनञ्च ततो देयं द्विजातिभ्यस्वलङ्कृतम् ।  
 भूषणानि च देयानि यानानि विधिनानि च ॥२१

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—क्षिप्रा नदी के तट पर परम पुण्यमय तीर्थं मुख्य है जिनको कि पहले विद्वानों ने बतलाया है और परम प्रसिद्ध है उनको मैं बतलाता हूँ आप उन्हें सुनिए । पापों से जो भ्रष्ट है वह परम मुक्त होकर 'विष्णु-विष्णु' इस तरह से भगवान् का स्मरण करते हुए हे धेष्ठम । स्नातकों के समस्त नियमों को ग्रहण करके निरत्य ही छदसर मे स्नान करके तथा धाद आदि भी क्रियाओं का सम्पादन करके हे वत्स । अपनी शक्ति के अनुसार वाञ्छनी गौओं का दान करके यह तीर्थ से प्रार्थना करे—हे तीर्थराज । आपको सेवा में भोग नमस्कार समर्पित है । अपने इस तीर्थ में शय्याहृत करने के लिए मुझे अनुज्ञा प्रदान कीजिए । मैं नित्य ही आपका समर्पण करूँगा । यही प्रार्थना करने का यहाँ पर मन्त्र है । इस शय्याहृत करने के पश्चात् ही कर्कराज नाम वाले सर पर आये जो कि महान् तीर्थ है । वहाँ पर स्नान आदि करके घृतपात्र प्रदान करावे । हे द्विशोत्तम ! एक नृसिंह नाम वाला तीर्थ है वहाँ पर स्नान करना चाहिए । इसके अनन्तर अपने कार्य की विशुद्धि के लिए कृष्णाजिनका दान करना चाहिए । हे उत्तम ! वहाँ पर नील गंगा और क्षिप्रा का संगम है । उभमें स्नान करके और शुचि होकर तथा सगमेश्वर प्रभु का दर्शन करके इसके पश्चात् द्विजों के लिए भक्षणों से विमुक्ति

बिया हुआ वाहन का दान करे और भूषण देने तथा विविध प्रकार के यानों का दान करना चाहिए ॥१४ २१॥

ततः प्रायाद् व्रतो सम्यक् तीर्थं पंगोत्थमोचनम् ।

तत्र स्नात्वा च विधिवदाहिनिकादि च कारयेत् ॥२२

गासवत्सो ततो दद्याद्देवदेदाङ्गपारिणे ।

सीदशृदुम्यिने नित्यं द्विजाय मुनिसत्तम ॥२३

महादानानिसर्थाणि तत्रयेयानिसत्तम ।

पिशाचेन ततो द्यूा सर्वपापं प्रमुच्यते ॥२४

गन्धवतीर्थं गच्छेच्च नियमी व्रतकारका ।

तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा श्राद्धं कुर्वन्ममाहितः ॥२५

षष्टिजस्वेष्वर देव पूजयेद्विधिवद्विज ।

ब्राह्मणेभ्यस्ततो दद्याद्गेहदानादिकं परम् ॥२६

दासीदासन्ततो देय सर्वं कावार्थं सिद्धये ।

धनवान् पुत्र्याल्लोके मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२७

ततो गच्छेद्द्वयतीर्थप्रकेदारं तीर्थं मुत्तमम् ।

तत्र स्नात्वा महादानं ब्राह्मणेभ्यस्समर्पयेत् ॥२८

इसके अनन्तर वन धारण करने वाले को पंगोत्थ मोचन तीर्थ में धन्वी तरह से जाना चाहिए । वहाँ पर विधि-विधान के सहित स्नान करके प्राङ्गिक पादि करने । इसके पश्चात् बिसौ येंदो और घेड़ानों के पारगामो द्विज के लिए वास से पुष्टः षो का दान करना चाहिए । हे मुनिर्धेव ! दान सर्वदा ऐसे ही ब्राह्मण को देना चाहिए जो धनाभाव में अवसन्न और कुटुम्बी हो । हे सत्तम ! सभी महादान ऐसे ही द्विज को वहाँ पर देने चाहिए । इसके अनन्तर भगवान् पिशाचेश्वर के दर्शन करे जिमसे मनुष्य सभी पापों से प्रमुक्त हो आया करता है । व्रत के करने वाले और नियमों में स्थिर मानव को इसके उपराग्न गन्धवं तीर्थ को जाना चाहिए । वहाँ पर स्नान करके शुचि हो जावे और फिर समाहित होकर उसको श्राद्ध करना चाहिए । हे द्विज ! फिर षष्टि देवेष्वर देव की विधि के सहित अर्चा करे और फिर द्विजों को परम येश गृह और

दान आदिक देना चाहिए । सब कार्यों की अर्थ सिद्धि के लिए दासी और दास भी देवे । इनसे लोक में धन सम्पन्न और पुत्रों वाला होता है और अन्त में मृत्युगत होकर मोक्ष की प्राप्ति किया करता है । इसके अनन्तर शरीर पुण्य को मृत्युगत तीर्थ केदार को हे विप्र ! गमन करना चाहिए । वहाँ पर भी स्नान करे और ब्राह्मणों के लिए महादान देवे ॥२२-२५॥

शुभंगोमिथुन दत्त्वा विधिवत्तत्रकारयेत् ।

कम्बलाजिनवासांसि तत्रदेयानिसत्ताम ॥२६॥

सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोके महीयते ।

चक्रतीर्थे नरःस्नात्वा चक्राणिसमर्चयेत् ॥२७॥

यत्र तत्रविमानानि तत्रदेयानि सत्ताम ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥२८॥

सोमतीर्थे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा सोमेश्वरं शिवम् ।

निर्मलाङ्गो नरो भाति कुष्ठरोगो न वाचते ॥२९॥

इक्षुधेन्वादिकदानं तत्रदेयं द्विजायते ।

देवप्रयागं गच्छेच्च स्नानार्थं द्विजसत्ताम ॥३०॥

तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा देवं माधवमर्चयेत् ।

गुह्यधेनुः प्रदातव्या विधिदृष्टेन कर्मणा ॥३१॥

सर्वपापविशुद्धात्मा देवलोके महीयते ।

प्रयागे परमं व्यासं वेणीतीर्थं मनुसमम् ॥३२॥

हे तपन ! भक्ति सुभग हो गायो का जोटा दान करे जो कि पूर्ण शास्त्रोक्त विधान के साथ करना चाहिए वहाँ पर कम्बल—अजिन और यज्ञो का भी दान देवे । ऐसा करने वाला पृथ्वी सभी पापों से विशुद्ध आत्मा बाना होकर त्रिष लोक में समवस्थिति प्राप्त किया करता है । चक्र तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उसे फिर भगवान् चक्रपाणि का अर्चन करना चाहिए । हे श्रेष्ठतम ! वहाँ पर शंख शस्त्र और विमानों का दान देना चाहिए । वह मनुष्य समस्त प्रकार के घोरतम पापों से भी छुटकाग पाकर विशुद्ध हो जाता करता है और प्रन्त में विष्णुलोक में प्रविष्टित होता है । सोम तीर्थ में मनुष्य स्नान करके तथा सोमेश्वर भगवान् शिव

का दर्शन प्राप्त करने परम निर्मल प्रगो वाता मनुष्य हो जाया करता है और माय-त कीति से द्योमित हो जाता है कि कुछ रोग उठको फिर बाधा नहीं देना है । ईस, धेनु घादि का दान वही पर द्विजाति को देना चाहिए । हे द्विजो मे परम वरिष्ठ ! और देव प्रयाग को गमन करे गहाँ पर पहुँचकर स्नान करना चाहिये । वहाँ स्नान करके परम शुचि हो जावे और फिर माघय देव का यजन करे । विधि मे देखे हुए कर्म के अनुसार वही पर गुरु और धेनु का दान भवश्यक ही करे । वह बादमी सभी पापों से विमुक्त प्राणमा वाता होकर देवलोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है । हे व्यास ! प्रयाग मे परमात्म मे लीप है ॥२६-३५॥

तत्र स्नानञ्चकर्त्तव्य तिलामलकसमुत्तम् ।

प्रयागेशमयाम्यच्य सकल फलमदनुते ॥३६

तिलधेनुः प्रदातव्या विधिवद्विजपुङ्गवे ।

सर्वकामवरम्प्राप्य विष्णुलोके समोदते ॥३७

ततो गच्छेद् द्रती भूयो योगतीर्थं मनुत्तमम् ।

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा योगिनीश्वरमर्चयेत् ॥३८

जलधेनु ततो दद्याद्दीर्घायुश्च सुखीभवेत् ।

कपिलाश्रम पर तीर्थं नरोगच्छेत्ततः परम् ॥३९

स्नानदानादिक कृत्वा कपिलेश्वरमर्चयेत् ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तपोलोके न गच्छति ॥४०

घृतकुल्यापर तीर्थं क्षिप्राकूलेच पश्चिमे ।

तत्र स्नात्वानरोनित्य घृतधारेश्वर शिवम् ॥४१

पूजयेद्विधिवद्विप्र घृतधेनु समर्चयेत् ।

प्राप्यपुण्यकृतात्लोकान् सर्वपापः प्रमुच्यते ॥४२

उस धर्मो तीर्थ मे तिल और घाँवलो के माघ स्नान करे । इसके अनन्तर प्रयागेश्वर प्रभु का अभ्यसन करे । इनका ऐसा महान प्रभाव होता है कि मनुष्य सभी प्रकार के फलो का लाभ कर सिया करता है । वहाँ पर किसी थोड़ा द्विज को तिसो और धेनु का विधिपूर्वक दान देना चाहिए वह मनुष्य समस्त कामनाओं की सिद्धि का वरदान प्राप्त करके



धन्त में विरगु लोक में सानन्द प्रतिष्ठित हुआ करता है । इसके पश्चात् उत्त तीर्थात्म के प्रथमारी पुष्य को अतीव उत्तम योगतीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर अवगाहन करके पहिले परम विपुद्धि प्राप्त कर लेवे और फिर श्रीयोगिनीश्वर प्रभु का समर्चन करना चाहिये ॥३६-३७॥ वहाँ ब्रह्म पेनु का दान करे । इससे दीर्घ आयु वाला और परम सुख में सम्पन्न हो जाता है । इसके पश्चात् परम धौष्ट कपिलायम नामक तीर्थ के लिए गमन करे वहाँ पदुचकर भी स्नान आदि समस्त प्रथम कर्तव्य सम्पादित करके फिर कपिलेश्वर भगवान को अर्चना करे । वह मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाया करता है और फिर सपोलोक की गमन किया करता है । क्षिमा नदी के पश्चिम दिग्भाग में तट पर एक घृत-पुल्या नाम वाला परम धौष्ट तीर्थ है । वहाँ पर मनुष्य को निरय स्नान करके घृतघारेश्वर दिव्य का विधान के सहित पूजन करना चाहिए । हे विद्व । वहाँ घृत पेनु का दान ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए । इस का यह पुष्य फल होता है कि पुष्य कृत लोको की पद प्राप्ति कर लेता है और इसके पूर्व ही सब पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥३६-४२॥

मधुकुल्यांनरास्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।

मधुदानं प्रकुर्वीत इक्षुधेनुं ततः परम् ॥४३

ऊपर परम तीर्थं सर्वं तीर्थं फलप्रदम् ।

तत्र स्नात्वा नरः पश्येन्महेशमूपरेश्वरम् ॥४४

फलमूलादिकं देवं प्राप्यते मोक्ष उत्तमम् ।

नरादित्यः स्थितो यत्र तत्र तीर्थं परं स्मृतम् ॥४५

तत्र स्नात्वा नरः पश्येत् क्षेत्रादित्येश्वरं परम् ।

रथदानं ततोदत्त्वा नरलोकेऽगच्छति ॥४६

केशवाकर्षरोदेवस्तस्य तीर्थं परं स्मृतम् ।

तत्र स्नानं विधेयञ्च केशवाकं समर्चनम् ॥४७

अन्नं बहुविधं देयं तत्र तीर्थं द्विजोत्तमम् ।

कालभं रव आस्मात्तस्तत्र तीर्थं महाप्रती ॥४८

तत्रस्नात्वा नरो नित्यं दृष्ट्वा भैरवमन्नकम् ।

दद्यात्पूरुषं महादानं नगच्छेद्यमनामनम् ॥४९॥

एक वही पर मनुष्य का नाम वाता भी तीर्थ है । वही पर स्नान करके महेस्वर की पूजा करे—मनु का दान करे और इसके पश्चात् ईश्वर और धेनु का दान दे । एक समस्त तीर्थों के फलों का देने वाला ऊपर नामक परमोत्तम तीर्थ है । वही पर मनुष्य को स्नान करके ऊपरेश्वर महेश्वर का दर्शन करना चाहिए । वही फल और मूल-प्रभृति का दान देवे । इससे उद्योग मोक्ष की प्राप्ति ही जाया करती है । जहाँ पर नरादित्य स्थित है वही पर परमात्तम तीर्थ कहा गया है । वही पर मनुष्य को स्नान करके परम प्रभु क्षेत्रदित्येश्वर का दर्शन करना चाहिये । फिर रत्न का दान करे । यह नरलोक में समस्त किया करता है । केतवार्क सर्व तिरोगण परम देव हैं अतएव उनका तीर्थ भी सर्वश्रेष्ठ है ऐसा कहा गया है । वही स्नान और केतवादि का धर्म्यर्पण करना ही चाहिये । हे उद्योत्तम । अनेक प्रकार का धन वही पर तीर्थ में दान में देना चाहिए । उस तीर्थ में महाप्रती काम भैरव बने गये हैं । वही पर भी मनुष्य का परम कर्तव्य है कि नित्य स्नान करे अतः तक भैरव का दर्शन करे । वही पूरुषं महादान भी देना चाहिये । दानका यह प्रमाण होता है कि मनुष्य फिर यमराज के पास में कभी प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥४९-४६॥

द्वादशाङ्केति विरयात् क्षिप्रफले च दक्षिणे ।

तीर्थञ्च सत्रं पापघ्नं सर्वं कामवरप्रदम् ॥५०॥

तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा द्वादशाङ्कं सर्वं येत् ।

अजादानञ्च देयवेद्यासोऽङ्ककारसंयुतम् ॥५१॥

आरोग्यं सर्वं दादेहे तस्य सम्पत्पदेपदे ।

सत्रापि श्रुपयो देया मन्धोपामनतस्पर्शा ॥५२॥

उपाताञ्च क्रिरेतस्य प्रातः काले चर्द्धवहि ।

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा शुचिभूत्वा समाहितः ॥५३॥

एकानंशेति विख्याता भवानी पापनाशिनी ।

तामर्चयेद्द्विजश्रेष्ठदनाश्रमेधर्षादिबन्धुम् ॥५४॥

तत्र त्र्यं महावानं श्वेताश्वं समलङ्कृतम् ।

विप्रायवेदविदुषे विधिवदृपिसप्तम् ॥५५

सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ।

योऽसावङ्गारको देवो विख्यातो वै घरात्मजः ॥५६

सिन्धु नदी के दक्षिण दिग्भाग में तट पर एक द्वादशार्क तीर्थ परम विख्यात तीर्थ है । यह तीर्थ सभी पापों का हनन करने वाला और सभी कामनाओं के बरों का प्रदान करने वाला कहा गया है ॥५०॥ वहाँ पर अवगाहन करके परम पवित्र होकर द्वादशार्क प्रभु का समर्पण करना चाहिये । वहाँ वस्त्र और अलंकारों से समन्वित घमा (बकरी) का दान देना चाहिये । उस घमा तीर्थ प्रती पुरुष के देह में सर्वदा धारण रहता है और उनके कदम कदम पर सम्पत्ति विलाम किया करती है । वहाँ पर वेदगण और ऋषि वृन्द सन्ध्योपासना में तत्पर रहा करते हैं । प्रातः काल को वेसा में वे सभी सर्वदा उनकी उपासना किया करते हैं । वहाँ पर उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके शुद्ध होकर समाहित हो जाया करता है । वहाँ पर एकानंश—इस नाम से विख्यात पापों के नाश करने वाली भवानी विराजमान है । द्वे द्विशश्रेण ! वहाँ उस देवी का अभ्यर्चन करे और दशाश्वमेधय विधि का यजन भी करना चाहिए । वहाँ पर महादान देना चाहिए । एक श्वेत शर्णु का भद्र जो भूपत्या से भस्मी भाँति अलङ्कृत हो इसका दान है ऋषि श्रेष्ठ ! वेदों के विद्वान् विद्वान् को देना चाहिए और विधान के साथ ही दान करे । यह मनुष्य सभी प्रकार के ऐहिक तथा पूर्व जन्मों के विषे हुए पापों से मुक्त होकर परम दिगुष्ट आत्मा धारण हो जाया करता है और अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है । यहाँ पर एक घरात्मज अङ्गारक देव परम विख्यात है ॥५१-५६॥

तस्य तीर्थं परं व्यास सर्वतीयं फलप्रदम् ।

तत्र तीर्थं नरः स्नात्वा मङ्गलेश्वरमर्चयेत् ॥५७

गुडान्नं वृषभ रक्तं सवासं समलङ्कृतम् ।

स्वल्कृत्नेभ्यो विप्रैभ्यो यो वदति समाहितः ॥५८

तस्यहस्तगतालक्ष्मी. पुत्र दारादिमन्पदः ।  
 गङ्गागङ्गामतीर्थं गङ्गोद्भेदममन्वितम् । ५९  
 तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वागङ्गेश्वरं शिवम् ।  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेमहीयते ॥ ६०  
 तिलपात्रं प्रदातव्यं विधिवत्पारुचनान्वितम् ।  
 सर्वं मौम्यकरदानं मयंपापहर परम् ॥ ६१  
 ऋणमोचनक तीर्थं मयंपापहर स्मृतम् ।  
 तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ऋणतेश्वरमर्षयेत् ॥ ६२  
 पुनश्चाद्यं प्रकुर्वीत दत्त्वास्वर्णञ्च शक्तितः ।  
 ऋणप्रयतिनिर्मुक्तं स्वर्गलोके महीयते ॥ ६३

हे व्यासदेव ! उनका तीर्थं गवसे धेठ तीर्थ है और अग्य सभी तीर्थों का जो कुछ भी गुण्य पात्र होता है उन सबका यह एक ही तीर्थं प्रदान कर देने वाला है । उन तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उसे मंगलेश्वर का सम्पर्धन करना चाहिये । जो मनुष्य यहाँ पर गुरु के सहित अन्न-वस्त्रों से परावृण रक्त वृषभ ओ कि भूषणों से भनी भाँति विनूषित हो उसका परम समाप्ति होकर स्वलज्जित विप्रों को दान देना चाहिये । इसका यह प्रभाव होता है कि लक्ष्मी तो विस्तृत उसके हाथ में ही रहा करती है और पुत्र, दारा आदि की सम्पत्तियाँ भी सब प्राप्त हो आया करती हैं । वही पर गंगा के उद्भेद से गयुक्त एक ल (पाकारा) गङ्गा का सगम तीर्थ है । उन तीर्थ में मनुष्य स्नान करके मंगलेश्वर भगवान् शिव का दर्शन प्राप्त करके समस्त पापों से मनुष्य मुक्त हो जाता है और मन्त्र में विष्णु लोके में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । वहाँ पर एक तिलो का भरा हुआ पात्र जो कि सुवर्ण से भी युक्त हो दान में देना चाहिये । यह दान सभी प्रकार के गौणों का काने वाला है और समूह पापों का भी हरण करने में परम धेठ है । एक ऋण मोचनक नाम वाला 'उत्तम तीर्थ' है जो कि रामस्न पापों के नाश करने वाला कहा गया है । उन तीर्थ में अवगहन करके मनुष्य को ऋणतेश्वर देव का यज्ञ भवश्य ही करना चाहिये ।

वहाँ पर घृत घाढ़ करे और घण्टी शक्ति के अनुसार सुवर्ण का दान करे । ऐसा करने वाला मनुष्य तीनों श्रेणों में विमुक्त हो जाता है तथा स्वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥१७-६३॥

ततो गच्छेन्नरो नित्य शक्ति भेदमकल्मषम् ।

तीर्थानाञ्चैव सर्वेषामुत्तमं पापनाशनम् ॥६४

तत्र स्नात्वानरोऽव्यास शुचिः प्रयत्नमानसः ।

मातृशृणुणाञ्च सर्वेषादर्शनं कारयेद्बुधः ॥६५

कौमारीकार्तिकीमाता चपंठावटमातरः ।

तथा भगवती देवी स्कन्दञ्चैव समर्चयेत् ॥६६

तत्र श्रद्धानि देवानि विधिवद् द्विजसत्तम ! ।

वत्सा शय्यादिकं दानं कास्थयेनुं तथैतरद् ॥६७

मातृशृणुं समुत्तीर्य सायुज्यं लभतेनरः ।

यत्तत्तीर्थं वर श्रेष्ठं पापमोचनसञ्ज्ञकम् ॥६८

तत्र स्नात्वानरं देयं छायादानञ्च सत्तम ।

सर्वपापविशुद्धात्मा जायते मुनि मानवः ॥६९

ततः परं परं व्यास तीर्थं त्रैलोक्यं विश्रुतम् ।

प्रेतगिलेति विख्यातं प्रेतमोक्षकरम्परम् ॥७०

इन सब तीर्थों की यात्रा समाप्त करके फिर मनुष्य का कर्तव्य है कि वह नित्य ही कल्मषों से रहित शक्तिभेद शानक तीर्थ को गमन करे । यह भी अन्य समस्त तीर्थों से उत्तम और पापों का विनाश करने वाला तीर्थ है । हे व्यास ! उसमें मनुष्य स्नान करके परम शुचि एवं प्रयत्न मन वाला होकर बुध की एवं मातृकों का दर्शन करना चाहिये । वहाँ पर कौमारी कार्तिकी माता हैं और चपंठावट माताएँ हैं । उसी भाँति भगवती देवी और भगवान् स्कन्द का भग्यर्चन करे । हे द्विज सत्तम ! वहाँ पर विधिपूर्वक घाढ़ भी देने चाहिए । शय्या आदि कास्थयेनु तथा इतर दान देकर मनुष्य माता के शृणु से उद्धार होकर सामुज्य की प्राप्ति किया करता है । एक परम श्रेष्ठ तीर्थों में वरिष्ठ पापमोचन सज्ञा (नाम) वाला तीर्थ है । हे सत्तम ! वहाँ पर मनुष्यों को स्नान करके छाया दान देना

चाहिये । यह मनुष्य फिर भूमि में सर पापों से विद्युद्ध आत्मा जाता होकर स्थित रहा करता है । हे व्यास ! इसके पश्चात् सबसे परमोत्तम एवं धेष्ठ एक तीर्थ है जो त्रिलोको में परम प्रसिद्ध है और यह 'प्रेतशिला'— इस नाम से ही विख्यात है । यह तीर्थ प्रेतों को मुक्ति करने के लिये तो परमोत्तम है ॥६४-७०॥

तत्र स्नात्वा नरो दद्याच्छ्राद्धं द्विजसमाहितः ।  
 तिस्रोदकप्रदानेन पितरो यान्ति सद्गतिम् ॥७१  
 घटदानं ततो देयं क्षत्रोपानत्समन्वितम् ।  
 महिषीञ्च ततो दद्याद्वा मासि विविधानि च ॥७२  
 अन्नदानं ततो देयं रसेन लवणान्वितम् ।  
 यमेश्वरं समम्यर्च्यं निरयेनाधिगच्छति ॥७३  
 पितरस्तस्य सन्तुष्टा यान्ति ब्रह्म समाप्तनम् ।  
 पितृदोषान् वाधन्ते तेषाञ्च द्विजसत्तम ॥७४  
 तीर्थानामुत्तमं तीर्थं भुवि त्रैलोक्यवन्दितम् ।  
 नवनदीसङ्गमो यत्र तत्र तिष्ठति पार्वती ॥७५  
 तत्र स्नात्वा नरो नित्यं शुचिभूत्वा समाहितः ।  
 पूजयेद्भगवतीं भद्रां पार्वतीं विधिवत्ततः ॥७६  
 महादानानि कुर्याच्च हस्तिपान्नघरान्तिलान् ।  
 सुरभीदुग्धसहिता दद्यान् द्विजवराय च ॥७७

इस प्रेत शिला नामक तीर्थ में स्नान करके हे द्विज ! मनुष्य को परम समाहित होकर श्राद्ध देना चाहिए । यहाँ पर तिस्रोदक के प्रदान करने से पितृगण सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं, घट का दान—छत्र उपानह—महिषी और विविध प्राति के वस्त्रों का दान करना चाहिए । इसके अनन्तर अन्न का दान रस और लवण से समन्वित करके देना चाहिए । फिर यमेश्वर देव का प्रम्यर्चन करके मनुष्य नरक से अधिगमन किया करता है । उस प्रार्थना करने वाले के पितर भी परम सन्तुष्ट होकर समाप्त ब्रह्म की प्राप्ति कर लिया करते हैं । हे द्विज धेष्ठ ! उनको पितृ दोष कुण्ठ भी बाधाएँ नहीं किया करते हैं । सम्पूर्ण तीर्थों में उत्तम एक

तीर्थ है जो इस भू मण्डल में विद्यमान है और त्रिलोकी के द्वारा बन्दित है । जहाँ पर नव नदियों का सङ्गम होता है वहाँ पर जगदम्बा पावंती स्वयं घिराजमान रहा करती हैं । उस तीर्थ में मनुष्य नित्य स्नान करके परम शुचि होकर समाहित होते हुए भगवती भद्रा पावंती का विधि पूर्वक पूजन करना चाहिए । वहाँ पर महादान करे—हाथी—अन्न—वरा—तिल सुरभी जो दुग्ध सहित हो—इनका दान किसी परम श्रेष्ठ को देना चाहिए ॥७१-७७॥

सर्वपापविशुद्धात्मा साक्षाच्छम्भुर्भवेन्नरः ।  
 मन्दाकिनीततो गच्छेदात्मकार्यं विशुद्धये ॥७८  
 तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा पूजयेद्यः सदाशिवम् ।  
 दत्त्वा शकटमन्नाद्य तिलद्रोणं प्रदापयेत् । ७९  
 सर्वपापविशुद्धात्मा घनाधिपसमो भवेत् ।  
 ततो गच्छेद्ब्रती विप्र तीर्थं पैतामहंपरम् ॥८०  
 तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा विधिवत्स्नानमाचरेत् ।  
 दत्त्वा दानानि सर्वाणि त्रीणि तत्र विशेषतः ॥८१  
 यथाशक्तिप्रदेयानि पृथ्वीगात्रमुवर्णकम् ।  
 विप्राश्च भोजयेन्नित्यं विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥८२  
 ततस्तु पुनरागम्य रुद्रसरमनुत्तमम् ।  
 तस्मिन् स्नात्वा च नत्वा च दृष्ट्वा देवमहेश्वरम् ॥८३  
 पूजयित्वा प्रथान्यायं यात्रेश्वरमनुत्तमम् ।  
 तुलसीविल्वपत्रंश्च पुष्पैर्विधिवत्सकैः ॥८४

इस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य सब पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर वह साक्षात् शम्भु ही हो जाता करता है । इसके उपरान्त मनुष्य को अपने कार्यों की विशुद्धि के लिये मन्दाकिनी पर जाना चाहिए । वहाँ जाकर स्नान करे—पवित्र हो जाये और फिर जो सदा शिव का पूजन किया करता है तथा शकर—घन्न आदि का एवं तिलो का द्रोण दान करता है वह सभी पापों से रहित एवं विशुद्धात्मा होकर घनाधिप (कुवेर)

के सुख ही हो जाया करता है । इसके उपरान्त तीर्थं व्रती पुण्य भी हे विप्र ! परमोत्तम पंतामह तीर्थ पर गमन करना चाहिए । वहाँ स्नान कर द्वाधि होकर अर्घ्य विधान के साथ ही स्नान का समाचरण करना चाहिए । वहाँ पर भी सभी प्रकार के दान दवे किन्तु इनमें विशेष रूप से तीन ही दान होते हैं और ये ये हैं—अपनी शक्ति बितनी ही उसी के अनुसार भूमि—भी और सुवर्ण का दान करे । नित्य ही विप्रों को भोजन करावे और उन विप्रों का विपुल दक्षिणा देनी चाहिए । इसके अनन्तर यहाँ से आकर पुनः सर्वोत्तम रत्नर मे स्नान करे—उसको नमस्कार करे तथा महेश्वर देव का दर्शन करे । यथा विधि परमोत्तम यात्रा के ईश्वर देव का पूजन करे । देवेश्वर का पूजन विविध प्रकार के परम सुगन्धित पुष्पो से—तुलसी दत्तो से और विल्व पत्रों से अम्पचन करे ॥७५-७४॥

धृषदीपादिर्नैवेद्यमुं सवासोत्तरच्छदः ।

पूजयित्वा महादेव याशेश्वरमुभापतिम् ॥७५

प्राथं येद् देवदेवेश व्रतसम्पूर्णहेतवे ।

याशेश्वर ! नमस्तुभ्यमुमानाद्यजगत्पते ! ॥७६

त्वत्प्रसादात्कृता यात्रा सफला कुरु मे प्रभो ! ॥७७

एव य. कुरुतेयात्रामवन्त्याश्चद्विजोत्तम ।

अवन्तीवासज पुण्य प्राप्यतेनात्रसशय ॥७८

भुवत्वा च विपुलान्भोगान् धनदारादिसम्पदम् ।

सर्वपापविशुद्धात्मा मृतः शिवपुर अजेत् ॥७९

ये शृण्वन्ति कथां पुण्या पवित्रा पापहारिणीम् ।

न तेषा दुर्लभ किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥८०

माहात्म्यमेतच्छिवभक्तिवद्धं नं यशस्करं पुण्यविघर्षनञ्च ।

यःश्वाययेद्वा शृणुयाच्चभवत्या कुलसमुद्घुत्य हरेःपदंअजेत् ॥८१

यात्रा के ईश्वर उमादेवी के स्वामी महादेव का यजन पूज—दीप—

नैवेद्य—मुखवास और उत्तर द्रुद के द्वारा भली भाँति करना चाहिए ।

पूजन के पश्चात् अपने व्रत की साङ्ग समाप्ति के लिये देव देवेश की

प्राथना करनी चाहिए । हे उमा के नाथ ! हे इस सम्पूर्ण जगत् के



स्वामिन् ! घाप तो यात्रा के अधिपति हैं भापकी पवित्र सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित होवे । हे प्रभो मेरे द्वारा यह घापकी ही कृपा के प्रसाद से तीर्थों की यात्रा की गयी है अब मेरी इस यात्रा को आप सफल कर दी दीजिए ॥८५-८७॥ श्रीसनत्कुमारजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इस रीति से जो भी कोई इस भवन्ती को यात्रा करता है वह भवन्ती पुरी में निवास से समुत्पन्न पुण्य को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । यह बहुत—से भोगों को भोग करके तथा धन—दारा आदि की प्राप्ति करके समस्त प्रकार के पापों का नाशकर विद्युद्ध आत्मा बना होकर घन्त में मृत्यु होने पर सीधा शिवपुर को ही गमन किया करता है । जो इस परम पवित्र-पुण्यमयी-पापों के हरण करने वाली कृपा का प्रबल किया करते हैं उनको इस लोक में और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । यह महा माहात्म्य शिव की भक्ति को बढ़ाने वाला है—यज्ञ की वृद्धि करने वाला है तथा पुण्य का भी वर्धन करने वाला है । जो इसका स्वयं भक्ति की भावना से प्रबल किया करता है अथवा दूसरों को प्रबल कराया करता है वह अपने कुच का भली भाँति उदार करके स्वयं श्रीहरि के पद की प्राप्ति किया करना है ॥८८-९०॥

### ७८—गणेश्वरमाहात्म्यवर्णन

द्वाचत्वारिंशत् देवं गङ्गेश्वरमथो शृणु ।  
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वतीर्थं फलं लभेत् ।  
घ्रुवाधारं जगद्योनेः पदं नारायणस्य तु ॥१  
पदात्प्रवृत्ता या देवी गङ्गा त्रिपयगा नदी ।  
सा प्रविश्य सुषायोनिं सोममाधारमभसाम् ॥२  
ततः सम्बद्धं मानाकं रश्मिसङ्घतिपावनी ।  
पपात मेरुपृष्ठे च सा चतुर्धा ततो ययौ ॥३  
मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्ती यशस्विनी ।  
विकीर्यमाणसलिला निशालम्बा पपत सा ॥४

मन्दरादिषु शंलेषु प्रविभक्तोदकासमम् ।  
 तत्र सीतेतिविख्याता यथा चैत्रयम्वनम् ॥५  
 तत्प्लावयित्वा च यथावरुणोदं तरिद्धरा ॥६  
 तथंवालकनन्दाख्या दक्षिणे गन्धमादने ।  
 मेरुपादवनं गत्वा नन्दने देवनन्दने ॥७

श्रीहर ने कहा—इसके अनन्तर अथ धाप व्यालीसवें अध्याय में गणेश्वर देव के विषय में धमण करिए जिस के दर्शन मात्र से ही सब तीर्थों का फल मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है । इस सम्पूर्ण जगत् को योनि अर्थात् समुत्पत्ति स्पष्ट भगवान् शारामण का पद ( चरण ) ही इसका ध्रुव ( निश्चित ) आधार है । जो देवी भगवान् के पद से प्रवृत्त हुई गङ्गा त्रिपयगा ( तीन भागों में गमन करने वाली ) नदी है । उस गङ्गा ने जम्बो के आधार और सुधा का उत्पत्ति स्थान सोम में प्रवेश किया । इसके पश्चात् सूर्य की किरणों की सङ्गति से पाठन हो जाने वाली यह सम्बद्ध मान होती हुई मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग में गिरी थी । यहाँ से यह चार भागों में होकर गयी । यह यशस्विनी मेरु पर्वत के फूट तदान्तो से गिरती हुई फैले हुए जल वाली बिना अवलम्ब वाली गिरी । मन्दर आदि पर्वतों में प्रविभक्त होती हुई अर्थात् विभक्त जलो वाली होकर वहाँ पर 'सीता'—इस नाम से विख्यात हुई और वह चैत्रय वन में गयी । उस वन को प्लावित करके यह सरिताओं में परम श्रेष्ठ नदी प्रसूतोद की गमन कर गयी । दक्षिण गन्ध मादन पर्वत में यह मलकनन्दा नाम वाली हो गई । मेरुपाद के वन में आकर फिर यह देवी का आनन्द देने वाले नन्दन वन में चली गयी थी ॥१-७॥

मानसञ्च महावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ।  
 तस्माच्चशंलराजानं रम्यत्रिशिखरंगता ॥८  
 तस्माच्च पर्वताः सर्वं प्लावितास्तत्क्षणात्प्रिये ! ।  
 तान्प्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्त महागिरिम् ॥९  
 मया घृता च तत्रैव जदाजूटेन पार्वति ! ।  
 न मुक्ता च यदा गगा तदा कृद्धा ममोपरि ॥१०

गात्राणि प्लावयामास मदीयानि वरानने ।  
 मया च रुद्धाक्रोचेन जटामध्येयगस्विनि ॥११  
 तत्रैव सा तपश्चक्रे बहुकल्पक्षतानि च ।  
 भगीरथेनोपवासः स्तुत्या चाराधितो ह्यहम् ॥१२  
 तदामुक्ता मया देवि गङ्गात्रिपथागामिनी ।  
 महाकालमनुप्राप्ता प्लावयित्वात्तरान्कुरुन् ॥१३  
 ममुद्रमहिषी जाता प्राणेष्वोज्ज्वि गरीयसी ।  
 सदीनामुत्तमागया समुद्रेण कृतातदा ।  
 स तथा सहितो रेमे सनुद्रः स्रिताम्पतिः ॥१४

इसके अनन्तर यह अपने महान् वेग से मात सरोवर को एक क्षण  
 प्लावित करके उस स्थान से परम रम्य तीन शिखरों वाले धनराज पर  
 पहुँच गयी । हे प्रिये ! वहाँ से इतने क्षण मात्र में ही समस्त पर्वतों को  
 प्लावित कर दिया । उन सब पर्वतों को सम्प्लावित करके महान् पर्वत  
 हिमवान् से यह प्राप्त हो गई । हे पार्वति ! वही पर मैंने अपनी जटाजूट  
 के द्वारा इसको पारण किया था । अब मैंने इसको अपनी जटाओं से नहीं  
 छोड़ा था तो यह मेरे ऊपर बहुत ही क्रुद्ध हो गई । हे वरानने ! इतने  
 मेरे समस्त भ्रजों को प्लावित कर दिया । हे यशस्विनि ! मैंने भी क्रोध  
 से अपनी जटाओं के मध्य में इसको अवच्छेद कर लिया । वही पर अपने  
 बहुत से शंखों कल्पों तक तपस्या की थी । इसर राजा भगीरथ ने रूप-  
 वातों के द्वारा और स्तवन से मेरी परम उत्कृष्ट आराधना की थी । उस  
 समय मैं हे देवि ! इस त्रिपथ गामिनी गंगा को अपनी जटाओं से मुक्त किया  
 था । वहाँ से मुक्त होकर यह महाकाल में प्राप्त हुई और इतने उत्तर  
 कुशलो को प्लावित कर दिया । प्राणों से भी अधिक प्रिया यह ममुद्र की  
 गह्विणी हो गई । उसी समय मैं समुद्र ने नरिषों में मङ्गा को सर्वोत्तम बना  
 दिया । स्रिताओं के स्वामी समुद्र इस गंगा के माथ रमण करता था  
 ॥१५-१४॥

ततः कदाचिद्ब्रह्माणमुपासाञ्चक्रिरे सुराः ।  
 तथाप्यंजोगामाय ब्रह्मलोकं सनातनम् ।

मन्दरादिषु शैलेषु प्रविभक्तोदकासमम् ।  
 तत्र सीतेतिदिरुयाता ययौ चैत्ररथम्बनम् ॥५  
 तत्प्लावयित्वा च यथावरुणोद सरिद्वरा ॥६  
 तत्रैवानकनन्दाख्या दक्षिणे गन्वमादने ।  
 मेरुपादवनं गत्वा नन्दने देवनन्दने ॥७

श्रीहर ने कहा—इसके अनन्तर अब आप व्यालीसवें अध्याय में गणेश्वर देव के विषय में ध्यान करिए जिस के दर्शन मात्र से ही सब तीर्थों का फल मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है । इस सम्पूर्ण जगत् श्री योनि अर्थात् समुत्पत्ति स्थान भगवान् नारायण का पद ( धरण ) ही इसका द्रुष ( निश्चित ) आधार है । जो देवी भगवान् के पद से प्रवृत्त हुई गङ्गा त्रिपयगा ( तीन भागों में गमन करने वाली ) नदी है । उष गङ्गा ने जलो के आधार और सुधा का उत्पत्ति स्थान सोम में प्रवेश किया । इसके पश्चात् सूर्य की किरणों की सङ्गति से पावन हो जाने वाली वह सम्बद्ध मान होती हुई मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग में गिरी थी । वहाँ से यह चार भागों में होकर गयी । वह यशस्विनी मेरु पर्वत के भूट लटान्तो से गिरती हुई कैले हुए जल वाली बिना अवलम्ब वाली गिरी । मन्दर आदि पर्वतों में प्रविभक्त होती हुई प्रथम् विभक्त जलो वाली होकर वहाँ पर 'भीता'—इस नाम से विख्यात हुई और वह चैत्ररथ वन में गयी । उस वन को प्लावित करके यह सरितागो में परम ध्रोष्ठ नदी भरुणोद को गमन कर गयी । दक्षिण गन्व मादन पर्वत में यह प्रलकनन्दा नाम वाली हो गई । मेरुपाद के वन में जाकर फिर यह देवों का आनन्द देने वाले नन्दन वन में चली गयी थी ॥१-७॥

मानसञ्च महावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ।  
 तस्माच्चशैलराजानं रम्यंशिशिवरंगता ॥८  
 तस्माच्च पर्वताः सर्वे प्लावितास्तत्क्षणात्प्रिये ! ।  
 तान्प्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् ॥९  
 मया घृता च तत्रैव जटाजूटेन पार्ष्णि ! ।  
 न मुक्ता च यदा गंगा तदा कृद्धा ममोपरि ॥१०

गात्राणि प्लावयामास मदीयानि वरानने ।

मया च रुद्धाक्रोधेन जटामध्येयशस्विनि ॥११

तत्रैव सा तपश्चक्रे बहुकल्पशतानि च ।

भगीरथेनोपवासैः स्तुत्याचाराधितो ह्यहम् ॥१२

तदामुक्ता मया देवि गङ्गा त्रिपथागामिनी ।

महाकालमनुप्राप्ता प्लावयित्वा तिरान्कुरुन् ॥१३

समुद्रमहिषी जाता प्राणेश्चोऽपि गरीयसी ।

सदीनामुत्तमा गंगा समुद्रेण कृता तदा ।

स तथा सहितो रेमे सनुद्रः सरिताम्पतिः ॥१४

इसके भ्रमन्तर यह भ्रमने महान् धैर्य से मान सरोवर को एक दम प्लावित करके उस स्थान से परम रम्य तीन शिखरो वाले धैलराज पर पहुँच गयी । हे प्रिये ! वहाँ से इसने क्षण मात्र में ही समस्त पर्वतों को प्लावित कर दिया । उन सब पर्वतों को सम्प्लावित करके महान् पर्वत हिमवान् में यह प्राप्त हो गई । हे पार्वति ! वहाँ पर मैंने अपनी जटाजूट के द्वारा इसको धारण किया था । जब मैंने इसको अपनी जटाओं से नहीं छोड़ा था तो यह मेरे ऊपर बहुत ही क्रुद्ध हो गई । हे वरानने ! इसने मेरे समस्त भद्रों को प्लावित कर दिया । हे यशस्विनि ! मैंने भी क्रोध से अपनी जटाओं के गन्ध मे इसको प्रबद्ध कर लिया । वही पर इसने बहुत से सैकड़ों कल्पों तक तपस्या की थी । इवर राजा भगीरथ ने उपवासों के द्वारा भीरु स्तवन से मेरी परम उत्कृष्ट आराधना की थी । उस समय मैं हे देवि ! इस त्रिपथ गामिनी गंगा को अपनी जटाओं से मुक्त किया था । वहाँ से मुक्त होकर यह महाकाल मे प्राप्त हुई और इसने उत्तर कुशुभ्रों को प्लावित कर दिया । प्राणों से भी अधिक प्रिया यह समुद्र की महिषी हो गई । उसी समय मैं समुद्र ने नदियों में गङ्गा को सर्वोत्तम बना दिया । सरिताओं के स्वामी समुद्र इस गंगा के माय रमण करता था ॥८-१४॥

ततः कदाचिद्ब्रह्माणमुपासाञ्चकिरे मुराः ।

तथाण्वोजगामाय ब्रह्मलोकं सनातनम् ।

गगया सहितो देवि ! दर्शनाय महोत्सवे ॥१५  
 अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम् ।  
 तस्यावासः समुद्धूतं मास्तेन शशिप्रभम् ॥१६  
 ततोऽभवन्मुरगणाः सहसाऽवाङ्मुखास्तदा ।  
 महाभिषस्तु राजपिनिःशङ्को दृष्टवान्नदीम् ॥१७  
 तस्य भाव विदित्वाऽथ ब्रह्मणा स तिरस्कृतः ।  
 उक्तस्तु वातो मर्त्येषु पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥१८  
 ग गादाप्तायक्रुद्धेन समुद्रेणयशस्विनि ।  
 मा विहायान्यसक्तासितस्माद्यास्यमिमानुपम् ॥१९  
 सोरुमलायुषदीना तत्रदु संमवाप्स्यसि ।  
 तं शाप दाहण श्रुत्वा गंगावचनमब्रवीत् ॥२०  
 विनापराधाच्छप्ताह कस्माद्दे देवसंसदि ।  
 पतिव्रता पतिप्राणा पतिना परमार्थतः ॥२१

इसके अनन्तर किसी समय में सुरगणों ने ब्रह्माजी की उपासना की थी । उसी अवसर पर समुद्र उस सनातन ब्रह्मलोक में गया । हे देवि ! इस समुद्र के साथ में यह गंगा भी थी और उस महोत्सव में दर्शन के लिये गंगा को साथ में लेकर वहाँ पहुँच गया । इसके अनन्तर यह सरिताप्री में श्रेष्ठ गंगा पितामह के समीप में पहुँच गयी । मास्ते ने उसका वाच(वचन)शक्ति प्रभु की ओर भुमुद्धूत (उडाकर फेंक) कर दिया । तब तो सभी सुरगण सहसा नीचे की ओर मुस करने वाले हो गये । राजपि महाभिष ने नि शङ्क होकर नदी का देखा । उसके भाव को जानकर ब्रह्माजी ने उसका तिरस्कार कर दिया और उस को कहा गया कि मनुष्यों में समुत्पन्न हाकर फिर लोकों को प्राप्त करेगा । हे यशस्विनि ! इधर परम क्रुद्ध होकर समुद्र ने गंगा को शाप दे दिया या कि तू मुझ को छोड़कर अन्य में समासक्त हो गई है इस लिये मनुष्य लोक को प्राप्त हो पायगी जो कि मल्य आयु वाला है । वहाँ पर हीन होकर अत्यन्त दुःख को प्राप्त करेगी । उस परम दाहण शाप को सुनकर गंगा यह वचन बोली । बिना ही अपराध के इन देवों की समा में क्यों मुझे शाप दिया

गया है । मैं तो पतिव्रता और पति को ही प्राण समझने वाली महिला हूँ और परमार्थ से पति के ही साथ रहने वाली हूँ ॥१५-२१॥

प्रमादाद्वस्त्रमुद्धतं वायुना व्यापकेतु न ।

प्रत्युवाच ततो ब्रह्मा तां नदीलोकपावनीम् ॥२२

वसूनां कारणाद्देवि । शप्ता यस्मान्महानदि ! ।

भाव्यर्थं तोयनिधिना तस्माच्छीघ्रं ब्रजाघुना ॥२३

महाकाल वने रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ।

शिप्राया दक्षिणे भागे विद्यते लिङ्गमुत्तमम् ॥२४

सर्वं सिद्धिकरं पुण्यं सर्वपातकनाशनम् ।

तमाराधय यत्नेन स ते दास्यति वाञ्छितम् ॥२५

पितामहवचः श्रुत्वा तुष्टा त्रिपथगामिनी ।

गमनं तत्र मेऽभीष्टं विद्यते यत्नस्वी मम ।

शिप्राऽपि मे प्रिया पुण्या महापातकनाशिनी ॥२६

इति सञ्चिन्त्य मनसा दिव्यादेवनदीतदा ।

आजगाममहाकाले ह्यपश्यल्लिङ्गमुत्तमम् ॥२७

पूजयामास पयसा दिव्येन विधिनातदा ।

दृष्ट्वा शिप्रांतस्त्री तत्र संश्लेषं चाभवत्तयोः ॥२८

इस व्यापक रहने वाले वायु ने प्रमाद से मेरे वस्त्र को धड़ूत कर दिया अर्थात् उठाकर उम ओर मे कर दिया । इसके पश्चात् उम नदीक पावनी नदी से ब्रह्मा—हे देवि ! हे महा नदि ! कारण यह है कि वसुगण के कारण से तुम्हें यह शाप दिया गया है और आगे होने वाले क्षय में ही तोयनिधि ने ऐसा किया है अतएव अब तुम बहुत ही शीघ्र सिद्ध और गन्धर्वों के द्वारा गेवित परम रम्य महाकाल वन में आकर पहुँच जाओ । वहाँ पर शिप्रा नदी के दक्षिण भाग में एक उत्तम शिवजी का लिङ्ग विद्यमान है । वह ममस्त सिद्धियों के करने वाला और सभी पातकों के विनाश करने वाला है । तुम वहाँ जाकर उसी लिङ्ग को समाराधना मल पूर्वक करो । वह आपकी शुद्धारा वाञ्छित मनोरथ पूरा कर देगा । पितामह के इस वचन का श्रवण करके त्रिपथ गामिनी गया परम

सन्तुष्ट हो गई । वहाँ का गमन करना तो मुझे परम धभीष्ट है बयो कि वहाँ पर मेरी सखी विद्यमान है । शिप्रा भी मेरी बहुत प्यारी है और परम पुण्यमयी तथा महान् पातको के नाश करने वाली है । उस समय मैं उस दिव्य देव नदी ने अपने मन से इस प्रकार से चिन्तन करके वह महाकाल में आ गई थी और वहाँ पर उत्तम लिंग का दर्शन किया । उस समय मे उसने विधि पूर्वक परम दिव्य पय से उनका पूजन किया । वहाँ पर अपनी सखी शिप्रा को देखा और उन दोनों का वहाँ पर संश्लेष हुआ अर्थात् सम्मिलन हो गया था ॥२२ २८॥

ततः प्रभृतिमञ्जाता साशिप्रापूर्ववाहिनी ।

त्रिपुलोकेषुविस्थातोदेवो ग गेश्वरः स्वयम् ।

गंगयाऽऽराधितो यस्मात्समीहितफलप्रदः ॥२९

सन्तुता देवगन्धर्वगङ्गा देवनदी तदा ।

ऋषिभिर्वालखिल्याद्येस्तथान्यैर्मुनिभिर्मुदा ॥३०

समुद्रस्तत्र सम्प्राप्तो मानिता सा महानदी ।

लिगेनोक्ता तदा गंगा कलया स्थीयतामिति ॥३१

तत्समीपे महापुण्ये यावत्तिष्ठति मेदिनी ।

अ गीकृत समुद्रेण यथोक्तञ्चतथास्त्विति ॥३२

एवमुक्त्वा गता गंगा कलया तत्र सस्थिता ।

ग गेश्वर तु य पश्येत्स्नात्वा शिप्राभ्रसि प्रिये । ॥३३

गो सहस्रफलं तस्य जायते नात्र सशयः ।

सर्व तीर्थं फल तस्य सर्वघमं फल तथा ॥३४

सर्वं यज्ञफलं सम्यक्सर्वं दानफलं तथा ।

सर्वं योगफलं देवि ! प्राप्नोत्येव निरन्तरम् ॥३५

तभी ने लेकर वह शिप्रा नदी पूर्व की ओर बहने करने वाली हो गई । तीनों लोकों में स्वयं देव भी तभी से गणेश्वर नाम से विख्यात हो गये । बयो कि वह देव गंगा के द्वारा समाराधित हुए अतएव सभी हित फलों के देने वाले हो गये । उस समय मैं देवों और गन्धर्वों के द्वारा वह देव नदी गंगा से संस्तुष्ट हुई और वालखिल्य आदि ऋषियों ने



धर्म मुनिजी ने भी परम हृदय के साथ गंगा का स्तवन किया। वहाँ पर समुद्र भी सम्प्राप्त हो गया और उनके द्वारा भी उस महा नदी का सम्मान किया गया। उस अवसर पर शिव लिंग ने कहा कि एक कला से सन्धित रहो। महा पुण्यमय उनके समीप में अब तक भेदनी स्थित रहा—समुद्र ने जैसा भी कहा गया उसे 'तथास्तु' जर्णत् ऐसा ही होगा—बहु झटकर स्वीकार कर लिया। इस प्रकार से झटकर गंगा चली गयी और एक कला से वहाँ पर सन्धित हो गई। हे प्रिये ! शिखा नदी के जल में स्नान करके श्री भी कोई भयवान् भगैरवर का दर्शन करता है उसको एक सहस्र गोश्रों के दान करने का फल प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है। उस पुण्य को समस्त तीर्थों का पुण्य फल होता है तथा सब तरह के धर्मों का रूप पिता करता है। सम्पूर्ण धर्मों के करने का फल और भली भाँति किये गये सब प्रकार के दानों का फल प्राप्त होता है। हे वैश ! वह मनुष्य सब धर्मों का फल निरन्तर ही अवश्य प्राप्त कर लेता है ॥२६-३५॥

तत्र तीर्थानि सुभगे ! पृथिव्या यानि कानिचिद् ।

धर्मरिष्य फल्गुतीर्थं पुष्कर नमिष गया ॥३६

प्रयागञ्च कुण्डौ च केदारमनरेश्वरसु ।

चन्द्रभागा विषाशा च सरयूर्ध्विका कुहूः ॥३७

गोदावरी नतद्रुम वाहुदा क्षेत्रवत्यपि ।

सर्वा एवाथ सरितः सगताः सन्ति ग गया ॥३८

गुप्तानिपुण्यतीर्थानि सिद्धश्रानिचैवहि ।

तत्रसर्वापितिष्ठन्ति कन्वामात्रेणपावति ॥३९

एतेपाफलमान्नोत्तियः पश्यतिसमाहित ।

स्नातस्वाग गेश्वर देव सत्यमेतन्मयोदितम् ।

अतः पुण्यतम स्यान् गीयते गणविन्दते ॥४०

एष ते कथितो देवि प्रभावः पादनाशनः ।

य गेश्वरस्य देवस्य शृण्व गारेश्वरम्परम् ॥४१

हे मुझे ! इस पृथिवी में जो कोई भी तीर्थ है जैसे धर्मारण्य—  
 फल्गुतीर्थ—बंदार—अमरेश्वर—चन्द्रभागा—विषाशा—सरयू—देविका  
 कुहू—गोदावरी—शतद्रु—वाहूदा—धेनुवती ये सभी सरिताएँ यहाँ पर  
 गङ्गा के साथ सङ्गत हुई हैं । जो गुप्त एव पुण्य तीर्थ हैं तथा सिद्धक्षेत्र हैं  
 वहाँ पर वे सभी स्थित रहा करते हैं । हे पार्वति ! कला मात्र से वहाँ पर  
 सभी को सस्तिनि है जो समाहित होकर दर्शन किया करता है वह इन  
 सबका कल प्राप्त किया करता है । वहिने उसे गङ्गेश्वर देव का स्नान  
 करके दर्शन करना चाहिए—सर्वथा सत्य ही मैंने कहा है । हे गण  
 धन्दिने ! इसी लिए यह परम पुण्यतम स्थान गाया जाता है । हे देवि !  
 यह पार्वी के नाश करने वाला श्री गङ्गेश्वर देव का प्रभाव मैंने वर्णन कर  
 दिया है । अब परम प्रह्लादेश्वर का ध्यान करो ॥३६-४१॥

### ८०—प्रयागेश्वरमाहात्म्यवर्णन

प्रयागेश्वरसञ्ज्ञं तु सर्वकामकरं परम् ।  
 अष्टाधिक विजानीहि पञ्चाशत्तममेश्वरम् ॥१  
 आप्तप्रथमकल्पे तु मनुः स्वायम्भुव पुरा ।  
 तस्यप्रियव्रतः पुत्रोयज्वापरमधामिकः ॥२  
 स चेष्टाबहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणे ।  
 मन्तृद्वीपेषु सम्प्राप्य भरतादीन्मुनिप्रिये ॥३  
 स्वयं विशाला बदरी गत्वा तेषु महत्तपः ।  
 कालेन बहुना तत्रनारदः समुपस्थितः ॥४  
 पूजितो विष्टरार्धेण राज्ञा प्रियव्रतेन च ।  
 स पृष्टः पूजयित्वा तु किमाश्चर्यवदस्वमे ॥५  
 इत्युक्तः कथयामास नारदो मुनिसत्तमः ।  
 दवेतद्वीपे मया राजन्कन्यादृष्टा सरोवरे ॥६  
 सा च पृष्टा विशालाक्षी कस्माद्वमसि निर्जने ।  
 कार्जुनि भद्रे ! कथं वासि किं वा कार्यमिह त्वया ॥७

श्री ईश्वर ने कहा—यह प्रयागेश्वर नाम शान्ते प्रभु समस्त कामनाओं के पूर्ण करने शान्ते सर्वोपरि देव हैं । इन ईश्वर को अनुष्ठान ध्यानना चाहिए । पहिले प्रथम कल्प में स्वामानुष्य मनु थे । उनके प्रियव्रत नाम धाता पुत्र था जो यजन करने आता तथा परम पारमिक हुआ था । उसने बहुत से यज्ञों का यजन किया था और परम श्रेष्ठ बधिष्ठाएँ देकर उन्हें सर्ग समाप्त किया था । हे श्रिये ! सप्त द्वीपों में भरत आदि सुतों को प्राप्ति उसने की थी । फिर वहाँ स्वयं परम विद्यान् वदरी में जाकर तप-स्वर्ण करने लग गया था । धनिक समय जब व्यतीत प्रोगया तो वहाँ पर देवर्षि नारद जो समागत हो गये थे । राजा प्रियव्रत के द्वारा विष्टर एव धर्म से उनका पूजन किया गया था । पूजा करके राजा ने तपसे पूछा था कि आश्चर्य क्या है—यह मुझे आप बतलाइये । जब इस तरह से कहा गया था तो मुनिपों में परम श्रेष्ठ नारद की ने कहा था—हे राजन् ! हेने श्वेतद्वीप में सरोवर में एक कन्या को देखा था और मैंने उससे पूछा था कि इस निरन वन में आप किस कारण से निवास कर रही हैं । मैंने उस विद्याल नेत्रों शान्ते से यह भी पूछा था—हे नर्द ! आप कीन हैं और यहाँ पर कैसे हैं । मुझे आपके लिए क्या सहायता करती चाहिए ॥१-७॥

कर्तव्यं चारुतर्वाङ्गि तन्ममाचक्ष्व शोभने ।  
 एवमुक्ताममामाहिमाहृष्टामोलितेक्षणम् ॥८  
 स्मृत्वा तूष्णिस्थिता यावत्तावन्मे शान्तमुत्तमम् ।  
 विस्मृता, सर्ववेदान्च सर्वशास्त्राणि चैव हि ॥९  
 ततोऽहं विस्मयाविस्त्रिन्तामोहममन्वित ।  
 तामेवशरण मरुतायावन्पश्यामिपाश्चिव ॥१०  
 तावदिदम्यनुमास्तम्या शरीरेयमदृश्यत ।  
 तस्यापिपु सोहृदवेद्वितीघस्तस्यचोरनि ॥  
 तस्यापि हृदये चान्यस्तृतीयस्तु द्यवर्वास्पतः ॥११  
 तत वृष्टा मया देवी सा कुमारी कथञ्चन ।  
 वेदा नष्टाममाशेषा मद्रेकिन्नुहिकारणम् ॥१२

हे मुमने ! इस पृथिवी में जो कोई भी तीर्थ हैं जैसे धर्मारण्य—  
 फल्गुतीर्थ—बेंदार—अमरेश्वर—चन्द्रनागा—विषाशा—सरयू—देविका  
 कुहू—गोदावरी—सतद्रु—वाहुदा—घेप्रवती ये सभी सरिताएँ यहीं पर  
 गङ्गा के साथ सङ्गत हुई हैं । जो गुप्त एवं पुण्य तीर्थ हैं तथा सिद्धक्षेत्र हैं  
 वहाँ पर वे सभी स्थित रहा करते हैं । हे पार्ष्णि ! कला मात्र से वहाँ पर  
 सभी की सन्धि है जो समाहित होकर दर्शन किया करता है वह इन  
 सबका फल प्राप्त किया करता है । पहिले उसे गङ्गेश्वर देव का स्नान  
 करके दर्शन करना चाहिए—सर्वथा सत्य ही मैंने कहा है । हे गण  
 वन्दिते ! इसी लिए यह परम पुण्यतम स्थान गाया जाता है । हे देवि !  
 यह पार्वी के माश करने वाला श्री गङ्गेश्वर देव का प्रभाव मैंने वर्णन कर  
 दिया है । अब परम प्रह्लादेश्वर का ध्वण करो ॥३६-४१॥

### ८०—प्रयागेश्वरमाहात्म्यवर्णन

प्रयागेश्वरसञ्ज्ञं तु सर्वकामकरं परम् ।  
 अष्टाधिक विजानीहि पञ्चाशत्तममोश्वरम् ॥१  
 आपत्प्रथमकल्पे तु मनुः स्वायम्भुव पुरा ।  
 तस्यप्रियव्रतः पुत्रोयज्वापरमधार्मिकः ॥२  
 स चेष्टाबहुभिर्यज्ञं समाप्तवरदक्षिणेः ।  
 मन्तद्वीपेषु सम्प्राप्य भरतादीन्मुनान्प्रिये ॥३  
 स्वयं विशाला वदरी गत्वा तेषु महत्तपः ।  
 कालेन बहुना तत्रनारदः ममुपस्थितः ॥४  
 पूजितो विष्टराघेण राज्ञा प्रियव्रतेन च ।  
 स पृष्टः पूजयित्वा तु किमाश्रयंवदस्वमे ॥५  
 इत्युक्तः कथयामास नारदो मुनिसत्तमः ।  
 श्वेतद्वीपे मया राजन्कन्यादृष्टा सरोवरे ॥६  
 सा च पृष्टा विशालाक्षी कस्माद्भवसि निर्जने ।  
 काष्मि मद्रे । कथं वासि किं वा कार्यमिह त्वया ॥७

श्री ईश्वर ने कहा—यह प्रयागेश्वर नाम वाले प्रभु समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले सर्वोपरि देव हैं। इन ईश्वर को अष्टावन जानना चाहिए। पहिले प्रथम कल्प में स्वयाम्भुव मनु थे। उनके प्रियव्रत नाम वाला पुत्र था जो यज्ञ करने वाला तथा परम धार्मिक हुआ था। उसने बहुत से यज्ञों का यज्ञ किया था और परम श्रेष्ठ दक्षिणाएँ देकर उन्हें सांग समाप्त किया था। हे प्रिये ! सात द्वीपों में भरत आदि सुतों की प्राप्ति उसने की थी। फिर वहाँ स्वयं परम विभान् बदरी में जाकर सप्त-स्वर्ग करने लग गया था। अधिक समय जब व्यतीत होगया तो वहाँ पर देवपि नारद जी समागत हो गये थे। राजा प्रियव्रत के द्वारा विष्टर एव प्रार्थ्य से उनका पूजन किया गया था। पूजा करके राजा ने उनसे पूछा था कि आश्चर्य क्या है—यह मुझे आप बतलाइये। जब इस तरह से कहा गया था तो मुनियों में परम श्रेष्ठ नारद जी ने कहा था—हे राजन् ! मैंने श्वेतद्वीप में सरोवर में एक कन्या को देखा था और मैंने उससे पूछा था कि इस निजानं वन में आप किस कारण से निवास कर रही हैं। मैंने उस विनास नेत्रों वाली से यह भी पूछा था—हे भद्रे ! आप शीत हैं और यहाँ पर कैसे हैं। मुझे आपके लिए क्या सहायता करनी चाहिए ॥१-७॥

कर्तव्यं चारुसर्वाङ्गि तन्ममाचक्ष्व शोभने ! ।  
 एवमुक्तामयासाहिमादृष्ट्वामीलितेक्षणम् ॥८  
 स्मृत्या तूष्णीस्थिता यावत्तावन्मे ज्ञानमुत्तमम् ।  
 विस्मृताः सर्ववेदाश्च सर्वशास्त्राणि धैव हि ॥९  
 ततोऽहं विस्मयाचिष्टश्चिन्तामोहमन्वितः ।  
 तामेवक्षण गत्वायावत्पश्यामिपाथिन् ॥१०  
 तावदिदम्यः पुमास्तस्याः शरीरेममहृदयत ।  
 तस्यापिपुंसो हृदये द्वितीयस्तस्य चो रति ॥  
 तस्यापि हृदये चान्यस्तृतीयस्तु व्यवस्थितः ॥११  
 ततः पृष्ट्वा मया देवी सा कुमारी मथञ्चन ।  
 वेदा नष्टाममाशेषा नद्रोक्तिप्रहिकारणम् ॥१२

माताहं सर्ववेदानां सावित्रानाम नामतः ।

मां न जानासियेन त्वमतोवेदा हृतास्तव ॥१३

एवमुक्ते मया पृश्ना विस्मयेन महीपती ! ।

वेदाना स्वं तु माता वैकथयस्वममानधे ॥१४

त्वदीयहृदये देवि ! क एते पुरुषास्त्रयः ॥१५

मैंने उससे कहा था—हे शोभने ! आपके तो सभी अ ग प्रत्यंग परम रम्य हैं । आप स्पष्ट बतलाइये । इस तरह से मेरे द्वारा कही गयी उसने मौलित नेत्रों वाले मुझको देखकर वह स्मरण करके तब तक धुप घाप स्थित रह गयी थी जब तक मेरा उत्तम ज्ञान—समस्त वेद और सब शास्त्र विस्मृत हुए थे । इसके अन्तर मैं परम विस्मय से समाविष्ट होकर चिन्ता और मोह से समन्वित हो गया था । हे पापिण ! जब तक मैं उसी की शरणागति में जाकर बैसता हूँ कि तब तक उसके शरीर में एक परम दिव्य पुमान् मुझे दिखाताई दिया था । उस पुरुष के भी हृदय में दूसरा और उस दूसरे के भी उरःस्थान में एक अन्य ही पुमान् था ऐसे वह तीसरा वहाँ पर व्यवस्थित था । इसके पश्चात् मैंने फिर उस कुमारी देवी से किसी तरह पूछा था—हे भद्रे ! मेरे समस्त वेद नष्ट हो गये हैं—हमना क्या कारण है ? आप मुझे कृपा करके बतलाइये । उस कन्या ने कहा—मैं समस्त वेदों की माता हूँ । मेरा नाम सावित्री है । तुम मुझको नहीं जानते हो, इसीलिए आपके समस्त वेद हूत कर लिए गये हैं । हे महीपते ! इस प्रकार से कहने पर मैंने अत्यन्त विस्मय से उससे पूछा था—हे धनधे जब आप समस्त वेदों की माता हैं तो मुझे यही बतलाओ कि हे देवि ! आपके हृदय में ये तीन पुरुष कौन हैं ? ॥८-१५॥

य एष मच्छरीरस्थः शुभाङ्गश्चाशुशोभनः ।

एष ऋग्वेदनामा तु यजुर्वेदो द्वितीयकः ॥१६

सामवेदस्त्वृतीवस्तु त्रयो वेदा मयि स्थिताः ।

त्रयोऽन्यस्त्रयो देवा मच्छरीरे स्थिता द्विजः ॥१७

इत्युक्त्वा सा तदा कन्या पश्यतो मम भूपते ! ।

अन्तर्द्वान् गता सद्यस्ततोऽहं विस्मितोऽभवम् ॥१८

किं करोमि वद गच्छामि शरणं यामि कं प्रभुम् ।  
 कथमाविर्भविष्यन्ति वेदाः शास्त्राणि साम्प्रतम् ॥१९॥  
 कामिकस्तीर्थं राजस्तुप्रयागः श्रूयते श्रुतौ ।  
 बहू तत्रगमिष्यामिज्ञानं सम्यग्भविष्यति ॥२०॥  
 नष्टवेदेन रम्येण प्राप्ता सिद्धिरनुत्तमा ।  
 सावित्री श्रूयते तत्र अक्षयवटसन्निधौ ॥२१॥

इस कन्या ने कहा—जो यह मेरे शरीर में स्थित है जिसके परम शुभ भ्रंग है और परम चारु एवं दामा वाला है यही ऋग्वेद नाम वाला है । दूसरा यजुर्वेद है और तीसरा सामवेद है । ऐसे ये तीनों वेद मुझमें स्थित हैं । हे डिङ्ग ! तीनो ऋग्निर्वा—तीनो देव मेरे शरीर में स्थित रहा करते हैं । उसी समय में यह कह कर वह कन्या हे भूते । मेरे देखते-देखते तुरन्त ही अन्तर्धान हो गई थी । तब से मैं परम विस्मित हो गया हूँ । क्या करूँ—कहाँ पर जाऊँ और किस प्रभु की शरण ग्रहण करूँ । मेरे ये सब वेद तथा शास्त्र सब कैसे आविर्भूत होंगे । श्रुति में ऐसा सुना गया है कि तीर्थों का राजा प्रयाग कामनाओं की पूर्ति करने वाला है । मैं तो वही पर जाऊँगा जिससे भली भाँति मुझे पुनः ज्ञान हो जायगा । वेदों के नष्ट होने पर रम्य के द्वारा प्राप्त हुई सिद्धि भी उत्तमा नहीं होती है । वहाँ पर अक्षय वट की सन्निधि में सावित्री को सुना जाता है अर्थात् वह वहाँ पर विद्यमान रहती है ऐसा सुनते हैं ॥१९-२१॥

एवं मनसि सन्ध्यायगतोऽहं नृपसत्तम ! ।  
 प्रयागं कामिकं तीर्थं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥२२॥  
 तपस्तीर्थं मया तत्र तप्तं परमदुष्करम् ।  
 अथाजगाम राजेन्द्र प्रयागोर्मतिमान्स्वयम् ॥२३॥  
 उक्तोऽहं प्रणयात्तेन न मातापय नारद ।  
 ब्रह्मपुत्र ! प्रयागोऽहं भीषितस्तपसा तव ॥२४॥  
 भवतः पार्श्वमायातः प्रणयेन तपोधन ! ।  
 धन्योऽसि सर्वथा ब्रह्मंस्तपसाच्चविशेषतः ॥२५॥

इत्युक्तोहं तदा देव्या सावित्र्या नृपसत्तम !  
लिंगस्यास्य प्रभावेण प्रयागाम्पर्ययितस्य व ॥३७

प्रतिभास्यन्ति ते वेदा धर्मशास्त्राणिनारद ! ।

इत्युक्ते वचने भूयःप्राप्ता वेदा मया नृप ॥३९

ज्ञान पढंगसहितं शास्त्राणिविधिधानिच ।

लब्धज्ञानेन राजेन्द्र मयाप्रोक्तवचस्तदा ॥४०

प्रयागेनार्चितो देवो मम ज्ञानस्य कारणात् ।

प्रयागेश्वरसञ्ज्ञस्तु स्याति लोकेषु यास्यति : ४१

तदाप्रभृति तल्लिंग तीर्थकोटिशतैर्वृतम् ।

स्वर्गपवर्ग फलदं तत्र त्वं गन्तुमर्हसि ॥४२

हे प्रभो ! सावित्री के दर्शन से इनके वेद और शास्त्र सब मष्ट हो गये हैं । तब तो उस लिंग से उसी समय मे वेदों से युक्त ब्रह्माग्नी समुत्पित हुए थे । वे ध्रुवों के प्रया रहस्य के सहित वेदों से युक्त थे और पुराणों से भी समन्वित थे । हे नृप सत्तम ! उस समय मे सावित्री देवी ने मुझसे कहा था कि—हे नारद ! इस लिंग के प्रभाव से जिसकी प्रार्थना प्रयाग के द्वारा की गई है आपको अब समस्त वेद और धर्म शास्त्र प्रतिभासित हो जायेंगे । हे नृप ! इस वचन के कहने पर मुझे सब वेद पुनः प्राप्त हो गये थे, पढङ्गों के सहित ज्ञान तथा विविध शास्त्र मैंने प्राप्त कर लिये थे । हे राजेन्द्र ! ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले मैंने उस समय मे यह वचन कहा था—मुझे ज्ञान प्राप्त कराने के कारण से प्रयाग के द्वारा देव की भर्चना की गई थी । इसलिए सोको मे यह प्रयागेश्वर नाम वाले होकर स्याति को प्राप्त होगी । तमो से लेकर वह लिंग संकडो करोड़ तीर्थों से समावृत हो गये हैं और यह स्वर्ग तथा अप वर्ग के फल को प्रदान करने वाले हैं । वहाँ पर आप गमन करने के योग्य होते हैं ॥३९-४२॥

किमनेनाश्वमेधेन इष्टेन नपसत्तम ।

अश्वमेधशतफलं जायते तस्य दर्शनात् ॥४३

तपसा किं सुतप्तेन कायकलेशकरेण तु ।

वाञ्छितं लभते सद्यः प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥४४



नारदस्य वचः श्रुत्वा स्वायंभुवसुतोनुपः ।  
 प्रियव्रतोमहादेवि! महाकालवनं गतः ॥४५  
 ददर्श तत्र तल्लिगं नवनद्यास्तु दक्षिणे ।  
 दर्शं नात्तस्य लिगस्य मत्नमीपं समागतः ॥४६  
 मया सम्मानितो देवि! गणनामधिपः कृतः ।  
 ये पश्यन्ति नरा भक्त्या प्रयागेश्वरमीश्वरम् ॥  
 ते धन्या मानुषे लोके विलक्ष्यन्त्यन्ये निरर्थकाः ॥४७  
 या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः ।  
 सा गतिर्जायते सम्यक्प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥४८  
 माघमासे समेष्यन्ति प्रयागेश्वरदर्शनम् ।  
 कर्तुं ये मानुषास्तेपामश्वमेघः पदे पदे ॥४९  
 एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः ।  
 प्रयागेश्वरदेवस्य शृणु सिद्धेश्वरं परम् ॥५०

इस नृप श्रेष्ठ ! इस यज्ञन किए हुए अश्वमेघ से क्या प्रयोजन है ।  
 उसके दर्शन मात्र से ही सौ अश्वमेघ यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है ।  
 प्रपत्नी काया को बलेश देने वाले हम सुतसत् सप से क्या लाभ होगा  
 प्रयागेश्वर प्रभु के केवल दर्शन ही से सभी प्रकार के श्रमोष्ठों की सिद्धि  
 तुरन्त ही हो जाया करती है । श्री ईश्वर ने कहा—हे महादेवि ! स्वाय-  
 म्भुव मनु के पुत्र प्रिय व्रत ने देवपि श्रो नारद जो के हम वचन को सुन  
 कर वह महाकाल वन में चला गया था । वहाँ पर नद्य नदी के दक्षिण  
 भाग में उस लिग का दर्शन किया था । उस लिग के दर्शन से वह मेरे  
 समीप में आ गया था । हे देवि ! मैंने उसका सम्मान किया था और  
 उसे गणो का अधिप बना दिया था । ओ मनुष्य भक्ति भाव से प्रयागेश्वर  
 ईश्वर का दर्शन किया करते हैं वे मनुष्य इस लोक में परम धन्य हैं अन्य  
 लोग तो निरर्थक ही बलेश उठाया करते हैं । जो सत्त्व में स्थित योग से  
 युक्त मनीषी की गति हूमा करती है वही गति मली माँति प्रयागेश्वर के  
 दर्शन कर लेने से मनुष्यों की ही जाया करती है । माघ मास में जो

की प्रतिष्ठा की गई है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१-२॥ वेद जो अल्पश्रुत पुरुष होता है उससे भय भीत होता है कि यह मुझको प्रतारित करेगा । पहिले ही इतिहास पुराणों के द्वारा यह निश्चय किया गया है ॥३॥ वेदों की धारणा पुराण है और वे धै अङ्ग शास्त्र पृषक् हैं । और जो वेदों में देखा गया है वही स्मृतियों के द्वारा भी देखा गया है । इन दोनों वेदों और स्मृतियों के द्वारा जो देखा गया है वह सब पुराणों में गाया जाता है । पुराण समस्त शास्त्रों का ब्रह्मा का प्रथम कथा गया है ॥४-५॥

अनन्तरं च षडश्रेणो वेदास्तस्य विनिगताः ।

पुराणमेकमेवासीदस्मिन्कल्पान्तरे मुने ॥६

त्रिवर्गसाधन पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।

स्मृत्वाजगादच मुनीन्प्रतिदेवश्चतुर्मुखः ॥७

प्रवृत्तिः सर्वशाखाणां पुराणस्याभवत्ततः ।

कालेनाग्रहण दृष्ट्वा पुराणस्यततोमुनिः ॥८

ध्यासरूपं विभुः कृत्वा सहरेत्स युगेयुगे ।

अष्टलक्षप्रमाणे तु द्वापरेद्वापरे सदा ॥९

तदष्टादशधाकृत्वाभूर्लोकैःस्मिन्प्रभाष्यते ।

अद्यापिदेवलोकेतच्छतकोटिप्रविस्तरम् ॥१०

इसके उपरान्त उनके मुखों से वेद विनिर्गत हुए । इस कल्पान्तर में एक ही पुराण था ॥६॥ चतुर्मुख ब्रह्माजी ने त्रिवर्ग का साधन स्वरूप—परम पुण्यमय और सौ करोड़ के प्रकृत विस्तार वाला स्मरण करके देव ने मुनियों के प्रति कहा था ॥७॥ इसके अनन्तर समस्त शास्त्रों की प्रवृत्ति पुराण की हो गई । इसके उपरान्त कुछ काल में मुनि ने पुराण का ग्रहण न करना देखकर विभु ने व्यास का स्वरूप धारण किया और वह युग-युग में सहाय करते थे । सदा द्वापर-द्वापर में आठ लाख प्रमाण होने पर इस भू लोक में अठारह प्रकार से करके प्रभाषित किया जाता है । आज भी देवों के लोक में वह सौ करोड़ के विस्तार वाला है ॥८-१०॥

तदथात्र चतुर्लसं संक्षेपेण निवेदितम् ।  
 पुराणानि दशाष्टौ असाम्प्रतं तदिहोच्यते ।  
 नामस्तस्मानि षडशामि शृणु त्वमृपिसत्तम् ॥११  
 सर्गश्च प्रक्सिर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।  
 वशानुचरितं चैव पुराण पञ्चलक्षणम् ॥१२  
 ब्राह्मं पुराण सप्राद्य संहितायां विभूषितम् ।  
 श्लोकानां दशसाहस्रं नानापुण्यकथायुतम् ॥१३  
 पाद्य च पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि निगद्यते ।  
 तृतीयं वंष्णव नामप्रयोविशतिसहस्रया ॥१४  
 चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतम् ।  
 शिवभक्तिममायोगाच्छंभु तच्चापराख्यया ॥१५  
 चतुर्विंशतिसंख्यात सहस्राणितुरीनकम् ।  
 अतुभिः पर्वभिः प्रोक्तं भविष्यं पञ्चमस्तथा ॥१६  
 चतुदशसहस्राणि तथा पञ्चशतानितत ।  
 मार्कण्डेय नव साहस्रं पञ्च तत्परिकीर्तितम् ॥१७

यह यहाँ पर धार साय मनेव से निवेदित किया है । पुराण अठारह हैं । इस समय यह यहाँ पर कहा जाता है । है यंत्र ऋषिवर । मैं नामोल्लेख करके उनकी वतभाता हूँ । पाप उनका ध्वण करिए ॥११॥ पुराण के पाँच सहाय दृष्टा करते हैं—सर्ग—प्रतिघर्म—वय—मन्वन्तर और वनों का अनुचरित पुराण में धरित दृष्टा करते हैं ॥१२॥ उन पुराणों में सब से बृषह् आदि में होने वाला ब्राह्म पुराण है जो कि संहिता में विभूषित है । इसमें दश सहस्र श्लोक हैं और यह अनेक परम पुण्यमयी कथामों से युक्त है ॥१३॥ फिर साक्ष मध्वदि पंच पुराण है जिसके श्लोकों की ( यहाँ सर्वत्र धतुपुत्र म्भु से तात्पर्य है ) पचपन महस्र कहो जाती हैं । तीक्ष्ण विष्णु पुराण है जिसके श्लोकों का संख्या सेईव सहस्र है ॥१४॥ चौथा वायुदेव के द्वारा धरित वायवीय पर्वत्रि वायु पुराण कहा गया है । शिव की मूर्ति के समायोग से दशका श्लोक नाम शिवपुराण भी होता है ॥१५॥ हे शीतक । यह चौबीस सहस्र की संख्या यामा है ।

पाचवाँ पुराण भविष्य है जो चार पर्वों के द्वारा कहा गया है ॥१६॥  
इसके श्लोकों की संख्या साढ़े चार सहस्र है । छठवाँ मार्कण्डेय  
पुराण है जिसके श्लोकों की संख्या नौ सहस्र है ॥१७॥

आग्नेय मत्स्यं प्रोक्तं सहस्राणि तुषोडश ।  
अष्टमं नारदीयं तु प्रोक्तं वै पञ्चविंशति ॥१८  
नवमं भगवन्नाम भागद्वयविभूषितम् ।  
तदष्टादशसाहस्रं प्रोच्यते ग्रन्थसंख्यया ॥१९  
दशमं ब्रह्मवैवर्तं तावत्संख्यमिहोच्यते ।  
लंङ्गमेकादश ज्ञेयं तथैकादशसंख्यया ॥२०  
भागद्वय विरचितं तल्लिङ्गमृषिपुंगव ।  
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं द्वादश विदुः ॥२१  
विभक्तं सप्तभिः खण्डैः स्कान्दं भाग्यवताम्बर ! ।  
तदेकाशीतिसाहस्रं संख्यया वै निरूपितम् ॥२२  
ततस्तु वामनं नाम चतुर्दशतमं स्मृतम् ।  
संख्यया दशसाहस्रं प्रोक्तं कुलपते ! पुरा ॥२३  
कोर्म पञ्चदशं प्राहुर्भागद्वयविभूषितम् ।  
दशसप्तसहस्राणिपुरा साख्यपते कलौ ॥२४

आग्नेय अर्थात् अग्निपुराण सातवाँ पुराण बताया गया है जिसके  
श्लोकों की संख्या सोलह हजार है । आठवाँ नारदीय अर्थात् नारद पुराण  
है जिसके श्लोकों की संख्या पच्चीस सहस्र होती है ॥१८॥ नवम भगवत  
महापुराण है जो भगवान् के नाम से प्रसिद्ध है और दो भागों से विभूषित  
है, इस ग्रन्थ के श्लोकों की संख्या अठारह सहस्र है ऐसा कहा जाता है  
॥१९॥ दशवाँ ब्रह्मवैवर्त पुराण है । इसके श्लोकों की संख्या भी उतनी  
ही अर्थात् अठारह हजार कही गई है । ग्यारहवाँ लिङ्ग पुराण है । इनकी  
ग्यारह सहस्र संख्या है ॥२०॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! वह लिङ्ग दो भागों में  
विरचित है । बारहवाँ पुराण वाराह है जिसके श्लोकों की संख्या चौबीस  
सहस्र होती है ॥२१॥ हे भाग्यवानो मे परम श्रेष्ठ ! स्कन्द पुराण सात  
खण्डों में विभक्त है और इसके श्लोकों की संख्या इक्यासी हजार है । यह

संश्रुति में सबसे बड़ा है ॥२२॥ इसके पदवात् चौदहवां पुराण धामन है । इसके धर्मों की संख्या है कुलपते । पहिले दश सहस्र कही गयी है ॥२३॥ पञ्चदश कर्म पुराण है । यह भी दो भागों में भूषित है । पहिले कानि में यह मन्त्र सहस्र संख्या वाता होगा है ॥२४॥

मात्स्य मत्स्येनपन्त्रोक्तं मनवेयोठशाब्दमात् ।

सञ्चतुर्दशसाहस्रं सलममावदनाम्बर ॥२५

गायत्रि सप्तदशमं स्मृतं चैकोनविंशतिः ।

षष्टादशं तु द्वाण्ड भागद्वयविभूषितम् ॥२६

सप्तमं द्वाण्डसाहस्रं शतमष्टमन्वितम् ।

तथैवोपपुराणानि कानि चोक्तानिवेषणा ॥२७

इव ब्रह्मपुराणस्य भुल्लभ सौरमुत्तमम् ।

सहिताद्वयसमुक्तं पुष्य विवकथाश्रयम् ॥२८

वाद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूर्यभाषिता ।

सनत्कुमारतन्ना हि तद्विख्यात महामुने ॥२९

द्वितीयं नारसिंहं च पुराणे पापमक्षिते ।

शौकेयं हि तृतीयं तु पुराणे त्रैण्यवंतसम् ॥३०

वार्हस्पत्यं चतुर्थं च प्रायस्य समतंसदा ।

दोर्बाम्बम पञ्चमं च स्मृतं भागवतसदा ॥३१

सौमहर्षी पुराण मात्स्य है जिसका भगवाद् मात्स्य में मनु से कहा है ।

हे सोमने वालों में परम श्रेष्ठ । इसके श्लोकों की संख्या चौदह सहस्र है

॥२५॥ इस दशम ब्रह्म पुराण है जिसकी संख्या बत्तीस हजार है । षष्ठा-

दशवां ब्रह्माण्ड पुराण है जो दो भागों में विभूषित है ॥२६॥ इसके धर्मों

की संख्या वाग्द्वे हजार भाग की है । उन्नी प्रकार के उपपुराण जो हैं वे

वेदा के द्वारा वक्त हैं ॥२७॥ यह ब्रह्म पुराण की सुलभ उत्तम और दो

संहिताओं से समुत्पन्न है । यह परम पुष्यमद तथा शिव की कथा का

प्राथम्य वाता है ॥२८॥ इन में पहली सनत्कुमार के द्वारा कथित है और

दूसरी सूर्य वेद के द्वारा वर्णित है । है महामुने । यह सनत्कुमार के

नाम से ही विख्यात है ॥२९॥ द्वितीय पाद उक्त होने पुराण में नारसिंह

है और तीसरा शीरेय है जो वैष्णव पुराण में माना गया है ॥३०॥ चौथा वाहेस्पत्य है जो सदा वायव्य मन्मथ है । पञ्चम शीर्षोत्त है जो सदा भागवत में कहा गया है ॥३१॥

भविष्ये नारदोक्तं च सूरिभिः कथितं पुरा ।

कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम् ॥३२

ब्रह्माण्डं वाह्यं चाथकालिकाद्वयमेव च ।

माहेश्वरं तथानाम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम् ॥३३

पाराशरं भागवतं क्रौर्मचाष्टादशक्रमात् ।

एतान्युपपुराणानिमयोक्तानियथाक्रमम् ॥३४

पुराणसंहितामेनायः पठेद्वाशृणोति च ।

सोऽनन्तपुण्यभागीस्यान्मृतो ब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥३५

भविष्य में नारद के द्वारा उक्त है और पहिले सूरियों के द्वारा कथित है । ये कपिल के द्वारा—मनु के द्वारा और उषना के द्वारा कथित है ॥३२॥ ब्रह्माण्ड वाह्य है । इसके अनन्तर कालिकाद्वय है । माहेश्वर—गाम्ब—सौर सब अर्थों का सञ्चय है ॥३३॥ पाराशर भागवत है और क्रम से क्रौर्म है ऐसे ये अष्टादश हैं मैंने ये यथा क्रम उपपुराणों को बता दिया है ॥३४॥ इस पुराण संहिता को जो जोई पढ़ता है अथवा श्रवण करता है वह अनन्त पुण्य का भागी होता है और मृत होकर वह ब्रह्मपुर को गमन किया करता है ॥३५॥

### ८२—रेवा माहात्म्य वर्णन

नर्मदायास्तु माहात्म्यं कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।

ततोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥१

विस्तरं नर्मदायास्तु तीर्थानां मुनिशतम् ।

कोऽप्यः शक्तोऽस्ति वं वक्षतुमृते ब्रह्माणमाश्वरम् ॥२

एतमेव पुरा प्रदत्तं पृष्ट्वाञ्जनमेजयः ।

वंशम्पापनसञ्जन्तु शिष्यं द्वैपायनस्य ह ॥३

रेवातीर्थाश्रितं पुष्पं तत्ते वक्ष्यामि शीतकम् ।।

पृथ परोक्षितो राजा यज्ञदीक्षानु दोक्षित ॥४

सन्मृते तु हविद्रव्ये वर्तमानेषु कर्मसु ।

आग्नीषु द्विजाग्र्येषु ह्ययमाने हुताखने ॥५

वर्तमानसु सर्वं च तथा धर्मकथानु च ।

श्रूयमाने तथा शब्दे जनस्मृतु त्वहनिशम् ॥६

यज्ञभूमौ कुलपतेक्षीयतामुज्यतामिति ।

विविधांश्चिनोदान्च कुर्वणिषु विनोदिषु ॥७

एवम्विधे वर्तमाने यज्ञे स्वर्गसदा समे ।

वैशम्पायनमानीन पश्यन्त्य जनमेजय ॥८

महामुनि श्रीकृष्ण द्वैपायन ने कनका के माहात्म्य को कहा । श्री  
तुमने पूछा है उसको मैं तुमको बतलाता हूँ ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ । प्रह्ला-  
दी के अतिरिक्त अन्य किस में ऐसी शक्ति है जो नर्मदा के तीर्थों के माहा-  
त्म्य का विस्तार बाधन कर सके ॥२॥ इसी प्रश्न को पहिले जनमेजय ने  
पूछा और यह प्रश्न द्वैपायन के शिष्य वैशम्पायनजी से पूछा गया था  
॥३॥ हे शीतक । रेवा तीर्थ का आश्रित जो पुष्प होता है उसे तुमको  
बतलाता हूँ । पुराने समय में पारितोष राजा यज्ञ की दीक्षाओं में शोभित  
हुया था ॥४॥ नर्मदान कर्मा में हाविद्रव्य के सन्मृत होने पर षोडश द्विजों  
के समासीन होने पर—हुताखन के ह्ययमान होने पर—नर्मदान धर्म  
कथाओं के मर्मत्र श्रूयमाण होने पर तथा महानिष्ठ जनों के द्वारा शब्द के  
कहने पर, यज्ञ भूमि में हूँ कुलपते । श्री—योग करो—इत घनेक चिनोदों  
को विनोदी लोगों के द्वारा किये जाने पर इत प्रकार ये यज्ञ के वर्तमान  
हाने पर स्वर्ग वासियों के समाप्त होने पर—जनमेजय ने समासीन वैश-  
म्पायनजी से पूछा था ॥५, ६॥

द्वैपायनप्रसादेनज्ञानवानसिमेमतः ।

वैशंपायनतस्मात्स्वां पृच्छामिऋषिसन्निधौ ॥९

ब्रूहि मे ग्वं पुरामृशं पितृणा तीर्थसेवनम् ।

चिरं नानाविधान्तेषान्प्राप्तास्तद्वृत्तिमे श्रुतम् ॥१०

कथं द्यूतजिता.पार्याममपूर्वपितामहाः ।  
 व्यासमुद्रां महीविप्रभ्रमन्तस्तीर्यं लोभतः ॥११  
 केन ते सहितास्तात भूमिभागाननेकशः ।  
 चेरुः कथयतत्सर्वं सर्वं ज्ञोऽसि मतोमम ॥१२  
 कथयिष्यामिभूनाथ! यत्पृष्टं तु त्वया ज्ञघ ।  
 नमस्कृत्य विरूपाक्षं वेदव्यासं महाकविम् ॥१३  
 पितामहास्तु ते पञ्चपाण्डवाः सहकृष्णया ।  
 उपित्वा ब्राह्मणं । साद्वं काम्यकेवनजलामे ॥१४

जनमेजय ने कहा—मेरा ऐसा मत है कि आप भगवान् द्रुपद्यजनजी  
 की कृपा से ही ज्ञानवान् हैं । हे वंशम्पायनजी ! ऋषियों की सन्निधि में  
 मैं आप से पूछता हूँ ॥११॥ आप कृपया मुझे पहिले पितृगण के तीर्थों का  
 सेवन का वृत्त बतलाइए । मैंने ऐसा श्रवण किया है कि बहुत समय तक  
 उन्होंने अनेक प्रकार के बलेशो को मोगा था ॥१०॥ मेरे पूर्व पितामह किस  
 प्रकार से द्यूत में जीत लिये गये और वे तीर्थों के लोभ से समुद्र पर्यन्त  
 भूमि में भ्रमण कर रहे थे ॥११॥ हे तात ! वे किस के सहित थे जिस  
 समय में अनेक भूमि के भागों में उनमें विचरण किया । यह सभी आप  
 मुझको बतलाइए क्योंकि मेरे मत से आप सभी कुछ के पूर्ण ज्ञाता हैं  
 ॥१२॥ वंशम्पायनजी ने कहा—हे भूनाथ ! आप तो निष्पाप हैं । जो भी  
 कुछ आपने पूछा है वह मैं सभी कुछ आपको बतलाऊंगा । उन्होंने फिर  
 महा कवि विरूपाक्ष वेदव्यास को नमस्कार किया था ॥१३॥ वंशम्पायन  
 जी ने कहा—तुम्हारे पितामह पाँच पाण्डव थे जो कृष्ण के साथ मेरे थे ।  
 उन्होंने परमोत्तम काम्यक वन में ब्राह्मणों के साथ निवास किया था  
 ॥१४॥

प्रधानोद्दालके तत्र कश्यपोऽथ महामतिः ।  
 विभाण्डकश्च राजेन्द्र गुरुश्चैव महामुनिः ॥१५  
 पुत्रस्स्यो लोमशश्चैव सयाज्ये पुत्रपौत्रिणः ।  
 स्नात्वा नि.शेषतीर्थेषु गतास्ते विन्ध्यपर्यन्तम् ॥१६



ते च तन्नाश्रमं पुण्यं सर्ववृक्षैः समाकुलम् ।  
 चम्पकैः कर्णकारैश्च पुन्नागैर्नागकेसरैः ॥१७  
 वकुलैः कोविदारैश्च दाहिमैरुपशोभितम् ।  
 पुष्पितं रजुं नञ्च व विल्वपाटलकेतकैः ॥१८  
 कदम्बाभ्रमधूकैश्च निम्बजम्बीरतिन्दुकैः ।  
 नालिकेरैः कपित्थैश्च खजूं रपनसंस्तया ॥१९  
 नानाद्रुमलताकीर्णं नानावल्लीभिरावृतम् ।  
 सपुष्पं फलितं कान्तं धनं च त्रय यथा ॥२०

जलाशयंस्तु विपुलैः पद्मिनीखण्डमण्डितम् ।  
 सितोत्पलैश्च सञ्छन्नं नीलपीतैः सितारणैः ॥२१

यहाँ पर प्रधानोद्दालक में महामतिमान् कश्यप थे । हे राजेन्द्र ।  
 महा मुनि गुरु विभाण्डक थे ॥१५॥ पुष्पस्तय और लोमहा तथा अन्य पुष्प  
 एवं पौत्रों वाले थे सब समस्त तीर्थों में स्नान करते विन्ध्य पर्वत में गये  
 थे ॥१६॥ उन्होने यहाँ पर परम पुण्यमय आश्रम दक्षा जो सब प्रकार के  
 वृक्षों से विरा हुआ था । यहाँ पर चम्पक—कर्णकार—पुन्नाग—नागकेसर  
 —वकुल—कोविदार—दाहिम के वृक्षों से उस आश्रम की प्रत्यन्त शोभा  
 हो रही थी । यहाँ फूलों से युक्त अजुंन के वृक्ष—विल्व—पाटल—केतक—  
 कदम्ब—आभ्र—मधूक—निम्ब—जम्बीर—तिन्दुक—नालिकेर—कपिला  
 —खजूर—पनस आदि धनेक प्रकार के द्रुमों का समुदाय और लताएँ  
 थीं । वह आश्रम नागवृत्तियों से समावृत था । पुष्पों से समन्वित—फला  
 वाला—सुन्दर चैत्ररथ धन के समान यहाँ का धन था ॥१७-२०॥  
 बहुत से यहाँ समाधम ग्रहण करने वालों से वह संयुत था तथा पद्मिनी  
 के खण्ड से भी वह आश्रम विभूषित था । यहाँ पर स्वेत कमल—नीलो-  
 त्पल—पोतिमित घटछ सभी यहाँ वाले कमल खिले हुए थे ॥२१॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।

आढीकाकवलाकभिः सेवितं कोकिलादिभिः ॥२२

सिहैर्व्याघ्रैर्वेराहैश्च गजैश्चैव महोत्कटैः ।

महीपैश्चमहाकायैः कुरङ्गैश्चिकेः शशैः ॥२३

गण्डकंरुचं व खड्गंश्च गोमायुमुरभीपुत्रम् ।  
 सारंगमल्लकंरुचं व द्विपदंश्च चतुष्पदः ॥२४  
 तथा च कोकिलाकोपं मन कान्तं सुगोमितम् ।  
 जीव जीवकनुटं र्घंश्च नानापक्षितनायुत्रम् ॥२५  
 दृ सशोकविनिर्मुक्तं सत्वोत्पटनगोरमम् ।  
 धुनूपारहितं कान्तं सर्वव्याधिविवाजितम् ॥२६  
 तिहीस्तनं पिबन्त्यत्र कुरङ्गाः स्नेहसंपुनम् ।  
 मार्जारमुपफोचोभाववलेहतदन्तुखी ॥२७  
 पञ्चास्याः पौतकेनाश्रनोगिनस्तुकलापिनः ।  
 दृष्ट्वात्रद्विपिनं रन्व्यं प्रविष्टाः पाण्डुनन्दनाः ॥२८

वह परम रम्य आश्रम अनेक तरह के पक्षियों से सुगोमित था । हंस  
 और कारुण्डियों से वह आश्रम एक वन सनाकीरुं था तथा बज्रबाहों की  
 गोमा बाना था । आले—छाक—बतासामों तथा बोजन आदि के द्वारा  
 वह आश्रम सेवित था ॥२२॥ वही बहुत प्रकार के पशु भी सञ्चारण  
 किया करते थे—निह—ज्याग्र—बराह—गज—महोत्सव महिष—महार्  
 कादा बाघे कुरङ्ग—चित्रक—रघु—गण्डक—खड्ग—गोमायु—घोर  
 मुरली से वह वन युक्त था । सारङ्ग—मन्त्रक—द्विपद और चतुष्पदों से  
 भी वह समाकीरुं हो रहा था ॥२३-२४॥ चारों घोर जीवनों से  
 सनन्दित जन की सुन्दर सगने वाला घोर गोमा से सम्पन्न था । जीवकों  
 के सङ्घों से तथा नाना पक्षियों से समानुत्त था वही पर किसी भी प्रकार  
 का दुःख तथा शोक नहीं था । इस तरह की वातामो से वह छुटकारा  
 पाया हुआ और अतीव उत्कृष्ट मत्त गुण के कारण परम सुन्दर प्रतीत  
 होता था । सुख—प्राप्त—ब्रह्मी वाधाएँ वही नहीं सत्राया करती थीं ।  
 वह परम सुन्दर एवं सन्तो तरह की व्याधियों से रहित था ॥२५-२६॥  
 उस आश्रम के वन में स्वामाधिक बर भी नान मान छो नहीं था  
 और कुरंग के बच्चे बड़े ही स्नेह से निहनी के स्तन को पीना करते थे ।  
 मार्जार और मूपक दोनों परस्पर में उन्मुख होकर बबलेहन किया करते  
 थे ॥२७॥ निहनी के पुत्रों के गज स्नेह करते और मयूर एक सपं भी

एक दूसरे के साथ बड़े ही स्नेह से रहते । उस परमोत्तम एव अतीव सुन्दर उस विपिन को देखकर पाण्डु के पृथ्वी ने उसमें प्रवेश किया ॥२८॥

मार्कण्डे दृष्ट्वास्तत्रतत्तणादित्यसन्निभम् ।  
 ऋषिभिःसेव्यमानं तु नानाशास्त्रविशारदः ॥२८  
 कृत्वा नः सत्त्वसम्पन्नैः शौचाचारममन्वितैः ।  
 धीसङ्गतैः क्षमायुक्तैस्त्रिमध्यजपतत्परैः ॥३०  
 ऋग्यजुःसामविहितैर्मन्त्रैर्होमपरायणैः ।  
 केचित्पृथ्वाग्निमध्यस्था केनिदेकान्तसंस्थिताः ॥३१  
 ऊर्ध्वं वाहनिरालम्बा आदित्यभ्रमणाः परैः ।  
 सायं प्रातश्च जश्चान्ये एकहारास्था परैः ॥३२  
 द्वादशाहाराद्याचान्ये अन्ये मासाद्धर्मो जनाः ।  
 दशो दशैतथाचान्ये अन्ये षोडशालमोजनाः ॥३३  
 पिण्याकमपरेऽमृच्छज्केचित्पालादाभोजनाः ।  
 अपरे निपताहारावायुभक्ष्याम्बुभोजनाः ॥३४  
 एवम्भूतैस्तथा वृद्धैः सेव्यते मुनिपुङ्गवैः ।  
 तत्रो धर्ममुतः श्रीमानाश्च तं प्रविश्य तः ॥३५

वहाँ पर पाण्डवों ने अनेक शास्त्रों के महान् पण्डित ऋषियों के द्वारा सेव्यमान तथा तक्षण सूर्य के समान तेज से समन्वित मार्कण्डे मुनि का दर्शन किया था । २८॥ ये ऋषि गण परम कृत्वीन—सर्वगुण से युक्त एव शौच और आचार से संयुक्त थे । वेधों से मञ्जित—क्षमागुण से युक्त और हीनों कालों में सन्ध्याोपासना एवं मन्त्रों के जाप करने में परायण रहा करते । उनमें कुछ तो पाँच अग्निपियों के मध्य में स्थित होकर तप करने वाले और कुछ ऐसे थे जो बिल्कुल एकान्त में स्थित रहकर साधना किया करते थे ॥३०-३१॥ कुछ लोग ऊर्ध्व होकर निरालम्ब तपश्चर्या करने वाले थे । दूसरे आदित्य की परिक्रमा किया करते । कुछ सायं प्रातः भोजन किया करते और अन्य एक ही वार प्राहार करने वाले थे । कुछ बारह दिन में भोजन करते और अन्य मास में आधा भोजन करने

वाले थे । दशं—दशं में कुछ भोजन किया करते और कुछ केवल  
 घाँस का ही आहार करते । कुछ पिप्पलाक का आहार करते तो अन्य  
 पालाश भोजी थे । दूसरे लोग नियत आहार वाले थे । कुछ केवल वायु  
 तथा जल का ही आहार किया करते । इस प्रकार के परम बृद्ध श्रेष्ठ  
 मुनियों के द्वारा उस आश्रम एवं वन का सेवन किया जाता था । इसके  
 पश्चात् धर्म के पुत्र श्रीमान् मुनिष्ठिर ने उस आश्रम में प्रवेश किया था  
 ॥३२-३५॥

दृष्ट्वा मुनिवरं शान्तं ध्यायमानं परं पदम् ।  
 प्रादक्षिण्येनसहस्रादण्डवत्पतितोऽग्रतः ॥३६  
 भक्त्यानुपतितं दृष्ट्वा चिरादादायलोचनम् ।  
 कोभवानित्युवाचेदं धर्मं धीमानपृच्छत ॥३७  
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दारकस्तत्समीपगः ।  
 आहाऽयं धर्मं राजस्तेदशं नाथं समागतः ॥३८  
 तच्छ्रुत्वा दारकेणोक्तं वचनं प्राह सादरः ।  
 एह्यं हि वत्सवत्सेति किञ्चित्स्थानाच्चलन्मुनिः ।  
 तं तु स्नेहाद्गुपाध्याय आसने उपवेशयत् ॥३९  
 उपविष्टे सभायातु पूजां कृत्वायथाविधि ।  
 वन्यं धान्यं फलं मूत्रं रसं चैव पृथग्विधैः ॥४०  
 पाण्डवाब्राह्मणैः सार्द्धं यथायोग्यं प्रपूजिताः ।  
 मूहूर्त्तादियविश्रम्य धर्मं पुत्रो युधिष्ठिरः ॥४१  
 पृच्छति स्म मुनिश्रेष्ठ कौतूहलसमन्वितम् ।  
 भगवन्सर्वलोकानां दीर्घायुस्त्वं मतो मम ॥४२

वहाँ पर परम पद का ध्यान करने वाले परम शान्तमय मुनि का  
 दर्शन करके युधिष्ठिर सहस्रा प्रादक्षिण्य से उनके प्रागे चरणों में दण्ड के  
 समान गिर गये थे ॥३६॥ भक्ति भाव से अपने चरणों में पड़े हुए राजा  
 को देखकर चिरकाल में उन पर अपनी दृष्टि डालकर परम धीमान् मुनि  
 ने धर्म पुत्र से पूछा—आप कौन हैं ॥३७॥ उन मुनिवर के इस वचन  
 का ध्वरण करके उनके समीप में स्थित दारक ने कहा—यह धर्मराज हैं,

इस समय में यहाँ आपके दर्शन के लिये समागत हुए हैं ॥३५॥ दारक के द्वारा कथित वचन को सुनकर मुनि ने बहुत ही आश्चर्य के साथ कहा— हे वत्स ! हे वत्स ! यहाँ पर आपो—आगे चले आओ, मुनि अपने स्थान से कुछ चलित हो गये । उसको बड़े स्नेह से सूँघकर उनको घासन पर बिठा दिया था ॥३६॥ उस समा में मली भ्रांति बैठ जाने पर यथा विधि पूजा करके कर्म धाम्य—कर्म—मूल और विभिन्न प्रकार के रसों के द्वारा सत्कार किया था ॥४०॥ ब्राह्मणों के साथ पाण्डव यथा योग्य पूजित हुए ? मुहूर्त्त मात्र विद्याम करके धर्म पुर युधिष्ठिर ने कौतूहल से समन्वित उन श्रेष्ठ मुनि से पूछा—हे भगवद् ! आप मेरे मत से समस्त लोकों में दीर्घ आयु देने हैं । हे धर्म्य ! आप मेरे सामने अब सात कल्पों का पूर्ण रूप से वर्णन कीजिए और कल्प क क्षय में भी स्यावर तथा अज्ञम लोक का वर्णन कीजिए ॥४१-४२॥

सप्तकल्पानशेषेण कथयस्वममाज्जय ।

कल्पक्षयेऽपि लोकस्यस्यावरस्येतरस्य च ॥४३

न विनष्टोऽमि विप्रेन्द्र ! कथं वाकेनहेतुना ।

गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांताश्वयामुने ॥४४

तासा मध्ये स्थिताः काः स्वित्काश्चैव प्रलय गताः ।

का नु पुण्यजला नित्यं का नु न क्षयमागता ॥४५

एतत्कथयमेतात्प्रसन्नेनान्तररत्नना ।

श्रोतुमिच्छाम्यशेषेणश्रुपिमासह्यान्ध्रवः ॥४६

साधु साधु महाप्राज्ञ ! धमपुत्रयुधिष्ठिर !

कथयामियथान्यायं यत्पृच्छसिममानघ ॥४७

सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं रुद्रभाषितम् ।

याशृणोतिनरोमक्षया तस्यपुण्यफलं शृणु ॥४८

धरदमेघसहस्रेण वाजपेयघतेन च ।

तत्फलं समवाप्नोति राजन्नास्त्यत्र संशया ॥४९

हे विप्रेन्द्र ! किस प्रकार से और किस हेतु से विनष्ट नहीं हुए हो ?

हे मुने ! गङ्गा आदि समस्त सरिताएँ जो समुद्र के घन्त तक हैं उनके

नन्द में कौन स्थित है और कौन प्रलय को प्राप्त हो गयी हैं ? कौनसे  
 पुत्र जब बानी हैं और कौनसे धर को नहीं प्राप्त हुई हैं ॥४१-४२॥  
 हे तात ! यह सब खान करने परम प्रदत्त बन्तःकरण से मेरे जाने  
 कहिए । मैं पूज्यता सुनने का इच्छुक हूँ । मेरे नाम मेरे दास्यव और श्रुति  
 परम भी इच्छुक है ॥४६॥ श्रीमहादेवश्री ने कहा—हे धर्म के पुत्र मुनि-  
 शिर ! धार तो महाशक्त हैं । बहुत अच्छी बात है धारका प्रान अन्धा  
 है । मैं त्याग पूर्वक सब कहता हूँ । हे धनप ! धार जो भी पूज रहे हैं  
 वह मनो बजाता हूँ ॥४७॥ उदस्त प्रकार के धारों का हरण करने  
 वाला परम पुम्भन पुराण वही है जिसे श्री महाबाहू स्व ने कहा है ।  
 इस पुराण की जो अनुप्य नास्तिभाव से मुक्त होकर धरण किया करता  
 है । उठका वो पुम्भ—फन होता है उठका धरण करो ॥८२॥ हे  
 रावन् ! एकसहस्र धरवनेव मत और ही बावनेव मत के जनान ही  
 उठका पुम्भ फन होता है—इसमें ठनिक भी संशय नहीं है ॥४६॥

ब्रह्मधरश्च सुरानी च स्तेयो गोधरश्च यो नरः ।

मुञ्चते त्वं पापेभ्यो रद्रत्नवचनं यथा ॥५०

गंगा तु सरिता षोष्ठा तथा चं व सरस्वती ।

कावेरी देविका चं व सिन्धुः सालकुटी तथा ॥५१

सरयूः शतद्रवा च मही च नितया सह ।

गोदावरी तथा पुष्पा तपैव यमुना नदी ॥५२

पयोष्णीषा शतद्रवश्च तथा वमं नदीसुभा ।

एताश्चान्याश्च सरितः स्रवंषाः पहराः स्मृताः ॥५३

किं तु ते वारणं तात ! वक्ष्यामि नृपसत्तम ! ।

समुद्राः सरितः सर्वाः कल्पे कल्पे क्षयं गताः ॥५४

सप्तकल्पक्षये क्षीये न स्मृता तेन वमंदा ।

नमं देकं व राजेन्द्र ! परं तिष्ठेत्स रिदरा ॥५५

तोयपूर्णा मसानाग ! मुनिनडू धैरिनिष्पृता ।

गंगाद्याः सरितश्चान्याः कल्पे कल्पे क्षयं गताः ॥५६

एषा देवी पुरा दृष्टा तेन वक्ष्यामि तेऽनघ ॥५७

वाश्चर्यभूता राजेन्द्रा त्रिषु लोकेषु विभुता ॥५८

ब्राह्मण की हत्या करने वाला—सुरा का पान करने वाला—चोरी का कर्म करने वाला—गाय का वध करने वाला जो मनुष्य होता है भगवान् रुद्र के ऐसे ही वचन हैं कि वह इस पुराण के श्रवण से सब पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥ गङ्गा सब सरिताओं में श्रेष्ठ है उसी प्रकार से सरस्वती—कावेरी—वेविका—सिन्धु—सालकुटी—सरयू—घतछ्द्रा—षमिता के साथ मही—गोदावरी ये भी सब नदियाँ परम पुण्यमयी हैं यमुना नदी—वयोष्णी—शतद्रु—शुभा घर्म नदी—ये तथा इनके प्रतिरिक्त अन्य भी सरिताएँ हैं जो सब पापों के हरण करने वाली कही गयी हैं ॥५१-५३॥ हे नृप श्रेष्ठ ! क्या कारण है कि ये सब समुद्र और सरिताएँ कल्प—कल्प में क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसे भी बतनाङ्गा ॥५४॥ सात कल्पों के क्षय के क्षीण होने पर यह नर्मदा कभी मृत अर्थात् विनष्ट नहीं होती है । यही एक नर्मदा ऐसी श्रेष्ठ सरिता है जो स्थित रहा करती है ॥५५॥ हे महाभाग ! यह जब से मरी हुई और मुनियों के सङ्घ के द्वारा प्रभिष्टुत होती हुई स्थित रहती है तथा अन्य गङ्गा आदि सब कल्प के क्षय होने पर क्षय को प्राप्त हो जाया करती हैं ॥५६॥ हे निष्पाप ! यह देवी पहिले उसके द्वारा रष्ट है उसको बतला-जोगा । हे राजेन्द्र ! यह वाश्चर्य स्वरूप वाली है और तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥५७-५८॥

### ८३—नर्मदापञ्चदशनामवर्णन

ततोर्णावात्ममुत्तोष्यं त्रिकूटशिखरे स्थितम् ।  
 महाकनकवर्णाभि नानावर्णशिलाचिते ॥१  
 महाशृङ्गे समासीनं रुद्रकोटिसमन्वितम् ।  
 महादेवं महात्मानमीशानमजमव्यम् ॥२  
 सर्वभूतमयं तात ! मनुना सह सुप्रत ! ।  
 भूयो ववन्दे चरणौ सर्वदेवनमस्कृती ॥३

तत्काले युगसाहस्रं सह रुद्रेणमानद ! ।  
 तस्मिन्नेकार्णवे घोरेस्थितोऽहं कुरुनन्दन ॥४  
 एतच्छ्रुत्वा तु मे तात परं क्लौतूहलंहृदि ।  
 जायं तत्कथयस्वेतिशृण्वताः सहवान्धवः ॥५  
 कासापद्मपलाशाक्षी तमो भूतेमहार्णवे ।  
 योगिवद्भ्रमतेनित्यं रुद्रजास्वाचयाग्रवीत् ॥६  
 एतमेव मया प्रदत्तं पुरापृष्ठो मनुः स्वयम् ।  
 तदेव तैश्चवक्ष्यामि अवलायाः समुद्रभवम् ॥७

महा महर्षि श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—इसके उपरान्त समुद्र से समु-  
 स्तीर्ण होकर त्रिकूट पर्वत के शिखर पर स्थित हुए थे । वह महामृग  
 सुवर्ण के वरण के समान जामा वातर, अनेक बर्णों वाली शिलामो से युक्त  
 था हे सुवत ! हे तात । रुद्रों की कोटि से समुत्पन्न उस शृंग पर विराजमान  
 राज—ईशान—अव्यय—महात्मा सर्व भूतमय महादेवजी के मन के साथ  
 समस्त देवगण के द्वारा नमस्कृत चरणों की पुनः वन्दना की थी । हे  
 मानद ! उस समय में रुद्र के साथ युग पर्यन्त, हे कुरुनन्दन ! उस घोर  
 एकार्णव में मैं स्थित रहा था ॥१-४॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे तात ! इस  
 बात को सुनकर तो मेरे हृदय में बड़ा भारी कुतूहल उत्पन्न हो गया  
 है सो अपने बान्धवों के सहित ध्वज करने वाले मुझे बतलाइये ॥५॥  
 यह पद्मपलाश के सदृश नेत्रों वाली कौन है जो घन्धकार से परिपूर्ण  
 प्रणव में जो नित्य ही योगी के समान भ्रमण किया करती है और जो  
 स्त्री रुद्रजा की बानी थी ॥६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यही प्रश्न  
 मैंने पहिले मनु से पूछा था । वह ही आज अबला की स्वयं उत्पत्ति तुमको  
 बतलाता है । ७॥

व्यतीतायां निशायां तु ब्रह्मण. परमेष्ठिनः ।  
 ततः प्रभाते धिमलेसृजमानेषु जन्तुषु ॥७  
 मनुं प्रणम्य शिरसा पृच्छाम्येतद्युधिष्ठिर ! ।  
 केयं पद्मपलाशाक्षी श्यामा चन्द्रनिभानना ॥९



एकाणं वै भ्रमत्येका रुद्रजाऽस्मीतिवादिनी ।  
 सावित्री वेदमाता च ह्ययवा सा सरस्वती ॥१०  
 मन्दाकिनी सरिच्छ्रेष्ठा लक्ष्मीर्वा किमथो उमा ।  
 कालरात्रिर्भनेत्साक्षरत्प्रकृतिर्वा सुखोचिता ॥११  
 एतदाचद्वै भगवन्का सा ह्यमृतसम्भवा ।  
 चरत्येकाणं वै घोरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥१२  
 शृणुवत्सयथान्यायमस्यावण्यामिसम्भवम् ।  
 यथा रुद्रसमुद्भूतायाचेयंवरवर्णिनी ॥१३  
 पुरा शिवः शान्ततनुश्चधार विपुल तपः ।  
 हिताथ सर्वलोकानामुमया सह सद्गुर ॥१४

परमेष्ठी ब्रह्माजी की रात्रि के व्यतीत होने पर विमल प्रभात काल में जन्तुओं के सृजन होने पर हे युधिष्ठिर ! मनुजी को घिर झुकाकर प्रणाम करने के पश्चात् मैंने उनसे पूछा या ॥१०॥ चन्द्रमा के समान मुख वाली इयाम् पद्मपलाशाक्षी यह कौन है जो अपने आपको पद्मना कहती हुई अकेली इस एकाण्ड में भ्रमण कर रही है । यह वेदमाता सावित्री है— अथवा सरस्वती है या सरिताओं में श्रेष्ठ मन्दाकिनी है अथवा महालक्ष्मी है या उमादेवी है । यह साक्षात् काल रात्रि हो सकती है या सुखोचित प्रकृति है ॥११-१०॥ हे भगवन् ! आप यह बतलाइये कि अमृत से सम्भूत होने वाली यह कौन है जो उरग और राक्षस भी जिसमें नष्ट हो गये हैं ऐसे इस परम घोर एकाण्ड में चरण करती है ॥१२॥ सूतजी ने कहा— हे वरन ! तुम सुनो, मैं ठीक २ इसको उत्पत्ति बतलाता हूँ । जिस प्रकार मे यह रुद्र से समुत्पन्न हुई घोर जो यह वरवर्णिनी है ॥१३॥ प्राचीन काल में परम शान्त शरीर वाले शिवजी ने परम दुश्चर तपश्चर्या की थी । यह तप भगवान् सद्गुर ने उमादेवी के साथ लोकों के हित के ही लिये किया था ॥१४॥

श्रुत्वाशैल समाह्वय तपस्तेये सुदारुणम् ।

अदृश्यः सर्वभूतानां सर्वभूतात्मको वशी ॥१५

तपतस्तस्य देवस्य स्वेदः समभवत्किल ।  
 तंगिरिप्लावयामास सस्वेदोरुद्रसंभवः ॥१६  
 तस्मादात्तीत्समुद्भूता महापुण्या सरिट्वरा ।  
 या सा त्वयाऽर्णवे दृष्ट्वा पद्मपत्राचतेक्षणा ॥१७  
 स्त्रीरूपं समवस्थाय रुद्रमाराधयत्पुरा ।  
 आये कृतमुगे तस्मिन्समानामयुतं नृप ॥१८  
 ततस्तुष्टो महादेव उमया सह वाङ्मुरः ।  
 ब्रूहि त्वं तु महाभागे यत्ते मनसि वसंतं ॥१९  
 प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे ।  
 प्रसादात्तव देवेश वक्ष्याहं भवे प्रभो ! ॥२०  
 सरित्सु सागरेष्वेव पर्वतेषु क्षयिष्वपि ।  
 तव प्रसादाद्देवेश ! पुण्याक्षय्याभवे प्रभो ! ॥२१

ऋषि गौतम पर समारोहण करके सर्वभूतात्म धर्मा शिवजी ने समस्त  
 भूतो से भद्र होकर परम दारुण तप किया । तपस्या करते हुए उन देव  
 के स्वेद हो गया । उम रुद्र से उदात्त होने वाले स्वेद ने उस गिरि का  
 प्लावित कर दिया था ॥१५-१६॥ उससे यह महान् पुण्य वासी घेष्ट  
 सरिता समुत्पन्न हुई थी यह वही है जिसको तुमने पद्मरत्न के समान  
 मुन्दर नेत्रों वाली अर्णव मे देखा था ॥१७॥ पहले समय मे स्त्री के  
 स्वरूप मे समास्थित होकर इसने भगवान् रुद्र की आराधना की थी ।  
 प्रायः सत्सुग में हे नृप ! उमने दश हजार वर्ष तक यह आराधना की  
 इसके पदचाद भगवान् वाङ्मुर उमादेवी के सहित परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट  
 हो गये । भगवान् वाङ्मुर ने उससे कहा—हे महाभागे ! तू बतला दे जो  
 कुछ भी कामना तेरे मन मे हो ॥१८-१९॥ सरिता ने कहा—हे प्रभो !  
 हे देवेश ! प्रलय के प्राप्त होने पर जब कि स्थावर और जंगम सभी नष्ट  
 हो जाया करते हैं आपके प्रसाद से उम समय में भी मैं इस जगत् में अक्षय  
 होकर रहूँ । जब सब नदियाँ—सागर और पर्वतो के भी क्षय हो  
 जाने पर हे देवेश्वर ! मैं आपके ही प्रसाद से भव मे पुण्या और अक्षय  
 रहूँ ॥२०-२१॥

पापोपपापकर्म्युक्ता महापातकिनोऽपि ये ।  
 मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो भक्त्या स्नात्वा तु शङ्कर ! ॥२२  
 उत्तरे जाह्नवी देशे महापातकनाशिनी ।  
 भवामि दक्षिणेमार्गयद्येव सुगुणजिता ॥२३  
 स्वर्गादागम्यगङ्गे त्रियथाख्याताक्षितौविभो ।  
 त्रयावक्षिणगङ्गेतिमवेय त्रिदशेश्वर ॥२४  
 पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा यत्प्रभते फलम् ।  
 तत्फलं लभते मर्त्या भवत्या स्नात्वा महेश्वर ! ॥२५  
 ब्रह्महत्यादिकंपापं यदास्ते सञ्चितं वचिन् ।  
 मास मात्रेण तद्देवदाययात्ववगाहनात् ॥२६  
 यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु शङ्कर ।  
 अवगाहेन तत्सर्वं भवत्विति मतिर्मम ॥२७  
 सर्वदानोपवासेषु सर्वतीर्थविगाहने ।  
 तत्फलं मम तोयेन जायतामिति शङ्कर ! ॥२८

हे शङ्कर ! पापों, उपपातकों से मुक्त तथा जो महापातकी भी हों वे सब भक्ति से मुक्त में स्नान करके अपने पापों से मुक्त हो आवें । उत्तर देश में जाह्नवी महापातकों के विनाश करने वाली है । उसी प्रकार से सुरों के द्वारा पूजित मैं दक्षिण मार्ग में हो जाऊँ । हे विभो ! स्वर्ग से पाकर गंगा जिस तरह से भूमि में विख्यात हो गयी है । हे त्रिदशेश्वर ! उसी भाँति मैं भी दक्षिण गंगा की प्रसिद्धि वाली हो जाऊँ । पृथिवी में समस्त तीर्थों में स्नान करके जो फल प्राप्त किया जाता है उसी पुण्य—फल को मनुष्य हे महेश्वर ! भक्ति भाव से मुक्त में स्नान करके प्राप्त कर लेंगे ॥२२-२४॥ ब्रह्म हत्या आदि पाप जो भी कुछ कहीं पर सञ्चित हों वे हे देव ! एक मास पर्यन्त मुक्त में अवगाहन करने से वह सब क्षय को प्राप्त हो आवे ॥२५॥ हे शङ्कर ! जो फल सब वेदों में और सब यज्ञों में होता है । वह सभी फल मुक्त में अवगाहन करने से ही जावे—यही मेरी मति है ॥२६॥ सब प्रकार के दान तथा उपवासों में तथा सब तीर्थों

के भवगाहन मे जो फल होता है वही पूर्ण फल मेरे जल से हो आवे—  
वही मेरी कामना है ॥२७-२८॥

मम तीरे नरा ये तु अर्चयन्ति महेश्वरम् ।  
ते गतास्तव लोक स्युरेतदेव भवेच्छिव ॥२९॥  
मम कूले महेशान उगया सह दैवतः ।  
वस नित्यं जगन्नाथ एष एव वरो मम ॥३०॥  
सुकर्मा वा विकर्मा वा शान्तो दान्तो जितेन्द्रिया ।  
मृतो जन्तुर्मम जले गच्छतादमरावतीम् ॥३१॥  
त्रिषु लोकेषु विख्याता महापातकनाशिनी ।  
भवामि देवदेवेश प्रसन्नो यदि मन्यसे ॥३२॥  
एताश्चान्यान्वरान्दिव्यान्प्रार्थिनो नृप सत्तम ।  
नर्मदया ततः प्राह प्रसन्नो वृषधाहनः ॥३३॥  
एवं भवतुकल्याणि यत्त्वयोक्तमनिन्दिते ।  
नान्यावरार्हा लोकेषु मुक्त्वा त्वां कमलेक्षणे ॥३४॥  
यद्वं व मम देहास्व समुद्भूता वरानने ! ।  
तद्वं सर्वपापना मोचिनी त्वं न संशय ॥३५॥

मेरे तट पर जो मनुष्य भगवान् महेश्वर का अर्चन किया करते हैं ।  
हे शिव ! मैं यही चाहती हूँ कि वे सब आपके लोक में चले आया करें  
॥२९॥ हे महेशान ! उमादेवी और देववृन्द के साथ आप मेरे ही तट  
पर नित्य निवास करें—यही मेरे लिये अभीष्ट वरदान है ॥३०॥ चाहे  
कोई सुन्दर कर्मों के करने वाला हो भयवा कोई कर्म रहित हो—शान्त  
—दान्त—जितेन्द्रिय—कैसा ही हो जो जन्तु मृत होकर मेरे जल में  
आवे वह सीधा भमरावती को चला जाया करे ॥३१॥ हे देव देवेश !  
यदि आप अपने को मुझ पर प्रसन्न हुए मानते हैं तो यह वरदान प्रदान  
करिये कि मैं तीनों लोकों में महा पातकों के विनाश करने वाली विख्यात  
हो जाऊँ ॥३२॥ हे नृप श्रेष्ठ ! नर्मदा के द्वारा भगवान् पाकर से ये  
सपा भव्य दिव्य वरदानों की प्राप्ति की प्रार्थना की थी । इसके पश्चात्  
भगवान् मृषम के धाहन वाले शिव प्रसन्न हो गये थे ॥३३॥ यामहेश ने

कहा—हे अनिन्दित कल्याण ! त्रौ भी तूने याचित किया है बड़ देवा ही सब हो जायेगा । हे कमल के समान लोचनों वाली ! तुम्हको छत्रकर लोको में अन्य कोई धरो के योग्य भी नहीं है ॥३४॥ हे धराली ! जिस समय से तू मेरे शरीर से सम्बन्ध हुई उसी समय में तू समस्त पापों के मोचन कर देने वाली हो गयी थी—इस में तो कुछ भी संशय है ही नहीं ॥३५॥

कल्पवृक्षकरे काले काले धारे विशेषतः ।

उत्तरं कुलमाश्रित्य नियसन्ति चयेनराः ॥३६

अपिकीटपत्तगरश्च वृक्षगुरुमण्डलादय ।

आदेहपतनाद्देवि ! तेऽपिघारमन्तिसद्गतिम् ॥३७

दक्षिण कुलमाश्रित्य ये द्विजा धर्मवत्सलाः ।

आमृशोन्तिस्मिन्मन्त्रिणे मत्स्ये पितृमन्दिरे ॥३८

अहं हि तप वाक्येन कर्मिश्चितकारणान्तरे ।

त्वत्तीरे निषसिष्यामि सर्व्व ह्य मया समम् ॥३९

एव देवि ! महादेवि ! एवमेव न मयावः ।

ब्रह्मेन्द्रचन्द्रवरुणः सार्व्वेभ्य सह विष्णुना ॥४०

उत्तरेषेव ! ते कुलेषमिष्यन्तिममाज्ञया ।

दक्षिणे पितृभि साद् तथाऽग्येसुरसुन्दरि ॥४१

वसिष्यन्ति मया साद्भेप ते वर उत्तम ।

गच्छ गच्छ महाभागे ! मर्त्यान्मापाह्विमोचय ॥४२

सहित्वा ऋषिसर्पेश्च तथासिद्धसुरसुरैः ।

एयमुक्त्वा महादेव उमयासहितोविभु ॥४३

यस्यमानोऽथ मनुना मया षादश्रनं गतः ।

सेन शैया महापुण्यामहापातकनाशिनी ॥४४

वर्णों के दाय करने वाले जाल में घोर विशेष रूप से महात् घोर काल में तेरे उत्तर सट वा आश्रय ग्रहण करके जो गर निवारण करते हैं तथा मनुष्य ही नहीं—कौट-पताग-वृक्ष—गुह्य योग सजा आदि भी अपने देह के पतक होने पर हे देवि ! वे सब भी सद्गति को प्राप्त हो जायेंगे

॥३६-३७॥ जो परमं प्रिय मनुष्य (द्विज) दक्षिण तट का प्राथम्य ग्रहण कर मृत्यु पर्यन्त निवास करते हैं वे पितृ मन्दिर में गये हैं ॥३८॥ मैं तो तेरे वचन से स्थितो अन्य कारण मे तेरे तीर पर सदा ही उमादेवी के सहित निवास करूंगा ॥३९॥ हे देवि । हे महादेवि ! ऐसा ही है-इसमें संशय नहीं है । ब्रह्मा—इन्द्र—वन्द-वरुण और साध्यगण देव वृन्द भगवान् विष्णु के साथ हे देवि ! उत्तर तट पर तेरे समीप में ही मेरी ध्याना से निवास करेंगे । हे सुर सुन्दरि ! तेरे दक्षिण तट पर उसी प्रकार से पितृगण के साथ अन्य देव गण वास करेंगे । तथा सिद्ध सुर और अमुरो के सहित एवं ऋषिगण के समुदायो के साथ वहाँ पर सभी निवास करयेंगे । इस प्रकार से कहकर विप्र श्री महादेव उमा के महित मेरे द्वारा और मनु के द्वारा वन्द्यमान होवे दृष्टे मन्त्रार्चन हो गये । इसी से यह महान् पुण्यवासी महान पातको से विनाश करने वाली है ॥४०-४४॥

कथिता पृच्छधते या ते मा ते भवतु विस्मयः ।

एषा गंगा महापुण्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥४५

दशभिः पञ्चभिः स्रोतः प्लाययन्ती दिशो दश ।

शोणोमहानदश्चैव नर्मदा सुरसाकृता ॥४६

मन्दाकिनी दशार्णा च विप्रकृता तपयच ।

तमसाविदशा चैव करभायमुनात्पया ॥४७

चित्रोत्पलाविपाशा च रञ्जनावास्तुवाहिनी ।

ऋक्षपादप्रसूतास्ताः सर्वा वै रुद्रसंभवाः ॥४८

सर्वपापहराः पुण्याः सर्वमंगलदाः शिवाः ।

इत्येतानिभिर्दिव्यैः स्तूयते वेदपारगः ॥४९

पुराणज्ञैर्महागैराज्यपैः सोमपैस्तथा ।

इत्येतत्सर्वमाख्यातं महाभाग्यं नरोत्तम ॥५०

मनुनोक्तं पुरामह्यममृतायाः समुद्रभवम् ।

पुण्यं पवित्रमतुलं रुद्रोद्गीतमिदं शुभम् ॥५१

ये नराः कीर्त्तं प्रिष्यन्ति भक्त्या शृण्वन्ति येष्वपि च ।

प्रातरुष्याय नामानि दश पञ्च च भारत ! ॥५२

ते नराः सकलपुण्यलभिष्पन्त्यवगाहजम् ।

धिमानेनाकं वर्णनघण्टानातनिनादिना ॥५३

रक्षकदा मानुष्यक भाव यास्यन्ति परमां गतिम् ॥५४

जो आपके द्वारा पूछा जाता है वह सब ही कह बी गई है । इसमें आपको विस्मय नहीं करना चाहिये । यह सहान पुष्पशास्त्रिणी गंगा है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है । ४१॥ पन्द्रह स्रोतों के द्वारा दसों दिशाओं का प्लावन करती हुई यह नमदा है । महानद शोण—नमदा विविधा—करमा—वसुधा—विशालपत्ता—विपासा—रञ्जना—वासु बाहिनो और षड्भपात्र प्रसूता वे सभी श्री यशवेव से मन्मून होने वाली हैं ॥४९-५०॥ ये मनस्त पापों के हरण करने वाली सगितार्य हैं—परम पुष्पनयो—सभी संसारे के प्रदान करने वाली—विधा है । इस दिव्य नामों के द्वारा भैरों के पारणामी विद्वानों के द्वारा सदा स्तुति की जाया करती है । इसका स्तवन पूगार्यों के माता—महाभाग राज्यों के स्वामी तथा धीम पाव करने वालों के द्वारा किया जाता है । हे नगोत्तम ! यह सब महामाया कह दिया गया है । इन धमृत्रा का उद्भव पहिले मनु देव ने मुग्धे कहे था । यह परम पुष्पनय—मनुज—नबिज—धुम और रुद्र के द्वारा समुद्रगोत है । जो मनुष्य हमका कीर्तन करेगे और जो भक्ति भाव से यदण करेगे और हे भारत ! प्रातः उठकर इन दत्त और पाँच नामों का स्मरण करेगे । वे मनुष्य भवपाहन से उत्पन्न सम्पूर्ण पुष्प को प्राप्त करेंगे । जो यक्षादि जो ध्यमि वाले मूय के समान विमल के द्वारा इस मनुष्यत्व के भाव का परित्याग कर के वे परम गति को प्राप्त करेगे ॥४९-५४॥

### ८४—नर्मदा स्तोत्र वर्णन

एतच्छ्रुत्वा बचो राजन्संहृष्टा ऋषयोऽभवन् ।

नर्मदा स्तोत्रुभारव्याः कृताञ्जलिपुटा द्विजाः ॥१

नमोऽस्तु ते पुष्पजले नमोमकरगामिनी ।

नमस्ते पापमोचिन्यै नमो देवि ! वरानले ॥२

नमोऽस्तु ते पुण्यजलाश्रये । शुभे ।  
 विशुद्धसत्त्वे । सुरसिद्धसेविते ।  
 नमोस्तु ते तीर्थं गणनिषेवितं  
 नमोऽस्तु रुद्रागसमुद्रमवं ! वरे ॥३  
 नमोऽस्तु ते देवि । समुद्रगामिनि !  
 नमोनतु ते देवि वरप्रदेऽशिवे ।  
 नमोऽस्तु लोकद्वयसौख्यदायिनि ।  
 ह्यनेकभूतौघसमाश्रितेऽनघे ॥४  
 सरिद्धरे ! पापहरे ! विचित्रिने !  
 गन्धर्वयक्षोरगसेवितान्ङ्गे ।  
 सनातनि ! प्राणिगणानुकम्पिनि !  
 मोक्षप्रदे ! देवि ! विधेहि क्षमः ॥५  
 महागजौघर्मह्यैवंराहै ससेविते देवि महोर्मिमाले ! ।  
 नता स्म सर्वे वरदे ! सुखप्रदे ।  
 विमोचयास्मान्पशुपाशबन्धात् ॥६  
 पापंरनेकरणुभेर्विब्रद्धा भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मत्याः ।  
 महानिलोदभूतनरंगभूत'  
 यावत्तवाम्भो हि न सस्पृशन्ति ॥७

महामुनि श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजन् ! इस वचन का ध्यान  
 कर ऋषिगण परम हयित हुए थे । द्विजगण हाथ जोड़कर नर्मदा की  
 स्तुति करने लगे थे । १॥ हे परम पुण्य जल वाली ! आपको सेवा मे  
 हमारा नमस्कार है । मकर गामिनी आपके लिए हमारा नमस्कार है ।  
 हे देवि ! पापों के मोचन करने वाली आपको नमस्कार है । हे वरानने !  
 आपको हमारा प्रणाम है ॥२॥ हे पुण्य जल के आश्रय वाली ! हे परम  
 शुभे ! आपको नमस्कार है । आप विशुद्ध सत्त्व वाली श्री सुरों के द्वारा  
 सेवित हैं । समस्त तीर्थों के समुदाय के द्वारा सेवित श्री विशुद्ध सत्त्व  
 सम्पन्न आपको नमस्कार है । आप सुरों और सिद्धों के द्वारा सदा सेवित  
 हैं । पाप भगवान् रुद्र के भ्रंश से परम वरिष्ठ हैं आपको हमारा नमस्कार



है ॥३॥ हे बरों के प्रदान करने वाली देवि ! हे देवि ! आपकी प्रणाम है । शीनों लोको में मौख्य के प्रदान करने वाली देवि ! आप तो अनेकों भूतो के समुदायो का समाध्य देने वाली और अनन्य हैं आपकी हमारा समस्कार है ॥४॥ आप समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ हैं । हे पाप हरे ! हे विधिविभे ! आप गन्धर्व—राक्षस—उरगों के द्वारा सेवित भङ्ग वाली हैं । हे सनातनि ! समस्त प्राणियों के गणों पर कृपा करने वाली हैं और मोक्ष के प्रदान करने वाली हैं । हे देवि ! आप हमारा कल्याण करें ॥५॥ हे महाद् उर्मियों की माला वाली । हे देवि ! आप महाद् गर्जों के समुदाय—महिष और वराहों के द्वारा मनी भाँति सेवित हैं । हे वरदे ! हे मुखप्रदे ! हम सब मत हैं हमको पशुपाद्य के बन्ध से विमुक्त कराइये ॥६॥ अनेक अशुभ पापों से विधेय ह्य से बद्ध मनुष्य अभी तक मरको में भ्रमण किया करते हैं जब तक महा निलोद्भूत आपके शत्रु का वे स्वयं नहीं करते हैं ॥७॥

अनेकदुःखौषभयार्दिताना पापंरनेकरभिवेष्टितानाम् ।

गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्रे द्वन्द्वं रनेकरपि सम्वृतानाम् ॥८

नद्यन्व पूता विमला गवन्ति

त्वा देवि सम्प्राप्य न सशयोऽन ।

तु खातुराणामभय ददासि

शिष्टं रनेकरभिपूजितार्प्रसि ॥९

स्पृष्टं करंश्चन्द्रमसो रवेश्च

तदं व दद्यात्परमं पदं तु ।

यत्रोपलाः पुष्पजलाप्लुतास्ते ।

शिवत्वमायान्ति किमत्र वित्रम् ॥१०

अमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्या दुःखागुरा पापपरोतदेहा ।

महानिलोद्भूततरङ्गमङ्ग यावत्तवाम्भो न हि सत्ययन्ति ॥११

अनेक दुःखों और भयों से पीड़ित और अनेक पापों से पत्थिवित मानवों की आप ही मति हैं । हे अम्भोज के समान मुख वाली ! मनुष्य

संसार में घनेरु दुन्दों से सम्पृक्त हैं उन सबका उद्धार प्राप्त ही करने वाली है ॥८॥ हे देवि ! आपको सम्प्राप्त करके सदियाँ विमत और पूत हो जाती हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो दुःख से आतुर है उनको प्राप भ्रमय दिया करती है और आप घनेरु सिद्धों के द्वारा अभिपूजित हैं ॥९॥ चन्द्रमा के वरों से तथा सूर्य के कर्मों से स्पृष्ट प्रापका जब उसी समय में परम पद प्रदान किया करता है जहाँ पर पुण्य जब में प्लुत हुए शिवत्व को प्रदान किया करते हैं—इसमें क्या विचित्र बात है ॥१०॥ सभी तक मनुष्य पापों से परीत देहों वाले नरकों से दुःखों से आतुर होते हुए भ्रमण किया करते हैं जब तक महा निलोद्भूत सरङ्गों के मङ्गल वाले आपके जल को समाश्रय ग्रहण नहीं किया करते हैं ॥११॥

म्लेच्छाः पुलिन्दास्त्वय यातुधानाः

पिबन्ति येऽम्भस्तव देवि पुण्यम् ।

मुक्ता भवन्तीह भयात्तु घोरात्

निःसंशयं तेषां किमत्र चित्रम् ॥१२

सरासि नद्यः क्षयमभ्युपेता

घोरे बुभुक्षुःसिन्धुः कलौ प्रदूषिते ।

त्व भ्राजसे देवि जसौघपूर्णा

दिवीव नक्षत्रपथे च गङ्गा । १३

तव प्रसादाद्वरदे वरिष्ठे

पाल यथेनं परिपालयित्वा ।

यामोऽप्य रुद्र तव सुप्रसादा

द्वय तथा त्वं कुरु वै प्रसादम् ॥१४

आपके परम पुण्यमय जल को म्लेच्छदुलिनद-यातुधान सब पान करते हैं वे भी घोरभय से मुक्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है और इसमें विचित्रता ही क्या है ॥१२॥ इस प्रदूषित कलिपुत्र में जो परम पीर है सभी सर घोर सदियाँ क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं । हे देवि ! आप ही जल के श्रेय से परिपूर्ण हुई आजमान रहती हैं जैसे दिवसोरु में और नक्षत्र पथ में गङ्गा रहा करती है ॥१३॥ हे

बरिष्ठे ! हे बरदे ! इस काल का परिपालन कर के आपके सुप्रसाद से हम रुद्र के समीप में प्राप्त हो जावें उसी प्रकार का भाग हमारे ऊपर प्रसाद करिए ॥१४॥

गतिस्त्वमम्वेव पितेव पुत्रो  
स्व' पाहि नो यावदिमं युगान्ताम् ।  
काले त्वनावृष्टिहृतं सुधोर  
यावत्तरामस्तव सुप्रसादात् ॥१५॥  
पठन्ति ये स्तोत्रमिदं द्विजेन्द्रा  
शृण्वन्ति ये चापि नराः प्रशान्ताः ।  
ते यान्ति रुद्र वृषसयुतेन  
यानेन दिव्याम्बरभूषिताश्च ॥१६॥  
ये स्तोत्रनेनत्तततं पठन्ति  
स्नात्वा तु तोये खलु नर्मदायाः ।  
बन्ते हि तेषां सरिदुत्तमेय  
गतिं विशुद्धामचिराद्ददामि ॥१७॥  
प्रातः समुत्थाय तथा शयानो  
यः कीर्तयेताञ्जुदिनं स्तव च ।  
स मुक्तपापः सुविशुद्धदेहः  
समाश्रयति महेश्वरस्य ॥१८॥

धन्वा कीर्तित भाग हो गति है और भाग पिता के समान जब तक इस युग का अन्त हो हमारे रक्षा करिए । काम में प्रतापार्थ से इव सुधोर को हम तरण करे यह भागका ही सुप्रसाद है ॥१५॥ जो द्विजेन्द्र इस स्तोत्र को पढ़ते हैं और जो परम प्रशान्त होकर मनुष्य इमका अन्त किया करते हैं वे वृष से समन्वित धान के द्वारा दिव्य वस्त्रादि से विभूषित होते हुए याम के द्वारा रुद्र के समीप समन किया करते हैं ॥१६॥ जो मनुष्य नर्मदा के जल में स्नान करके इस स्तोत्र को निरन्तर पढ़ा करते हैं अन्त में शीघ्र ही यह उत्तमा सरित उनको विशुद्ध गति प्रदान किया करती है ॥१७॥ प्रातः उठकर या समन करता हुआ ही पढ़ि

दिन इस सब का कीर्त्तन किया करता है । वह पापों से छुटकारा पाकर  
वितुष्ट देह वाला होते हुए भगवान् महेश्वर का समाश्रय ग्रहण किया  
करता है ॥१८॥

### ८४ — कावेरीसङ्गममाहात्म्यवर्णन

कावेरीति च विख्याता त्रिषु लोकेषु सत्तम ।  
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तस्या मार्कण्ड तत्त्वतः ॥१  
कीदृशं दर्शनं तस्याः फल स्पर्शस्यवाविभो ।  
स्नानेजाप्येष्यवादानजपवासेतयामुने ॥२  
कथयस्व महाभागकावेरीसङ्गमेफलम् ।  
धर्मश्रुतोऽप्यदृष्टोवाकथितोवाकृतोऽपिवा ॥३  
अनुमोदितो वा विप्रेन्द्र पुनातीति श्रुतं मया ।  
यथा धर्मप्रसङ्गे तु मुनि धर्मोऽपिजायते ॥४  
स्वर्गं च नरकश्चैव इत्येवं वैदिको श्रुतिः ॥५  
साधुसाधुमहाभागयत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ।  
शृणुष्वकमनाभूत्वाकावेरीफलमुत्तमम् ॥६  
अस्ति यक्षो महासत्त्वः कुबेरीनाम विध्रुतः ।  
तोऽपि तीर्यप्रभावेण राजन्यक्षाधिपोऽभवत् ॥७

रामा मुनिशिर ने कहा—हे षोडशम ! तीनों लोकों में कावेरी  
विख्यात है । हे मार्कण्ड ! तात्त्विक रूप से उसके माहात्म्य का ध्वण  
करना चाहता हूँ । हे विभो ! उसका दर्शन कैसा है अथवा स्पर्श करने  
में क्या फल होता है ? हे मुने ! स्नान—घ्राप्य—अथवा दान तथा उपवास  
में क्या फल होता है ॥१-२॥ हे मुनिवर ! आप तो महान् भाग्य वाले  
हैं । इस कावेरी के सङ्गम में जो भी फल होता है उसे कहिए । धर्म चाहे  
ध्रुत हो—दृष्ट हो—कथित हो—कृत हो—अनुमोदिन हो, हे विप्रेन्द्र ।  
वह पवित्र कर दिया करता है—ऐसा मैंने सुना है । हे मुने ! धर्म के  
प्रसंग में जैसे धर्म भी होता है वैसे ही स्वर्ग और नरक भी है—इस

प्रकार की वैदिकी श्रुति है ॥३-२॥ श्री माहेंडेमजी ने कहा—हे महा-  
याय ! बहुत ही अच्छा है जो कि आपने इस समय में मुझसे पूछा है ।  
भव आप एक मन होकर कावेरी के उलम फल का ध्वषण करिये । एक  
महान सत्य वाला यज्ञ जो कि कुवेर—इस नाम से प्रतिष्ठित, हुआ था ।  
यह भी हीयं के प्रभाव से हे राजन् ! यज्ञ का राजा हो गया था  
॥६-७॥

तच्छृणुष्व विधानेन भवत्यापरमयानुप ।

सिद्धिं प्राप्तोमहाभागकावेरीसङ्गमेन तु ॥६

कावेर्या नमं वायास्तुसङ्गमेलोकविश्रुते ।

तमस्तात्वाभुचिभू त्वाकुवेरामत्वधिकम् ॥९

विधिवन्वियमं कृत्वा शास्त्रयुक्त्या नरोत्तम ।

आराधयन्महादेवमेकचित्तः सनातनम् ॥१०

एकाहारोवसान्मासं तथापष्टाह्नकालिकम् ।

पक्षापदासोन्यवसत्कश्चिन्वत्काल नृपोत्तम ॥११

मूलशाकफलंश्चान्यं कालं नमति बुद्धिमान् ।

किञ्चिन्वत्कालं वसुस्तत्र तीर्थे शैवालमोजनः ॥१२

पराकेणानमत्कालं कृच्छ्रेणापिचमातद ।

चान्द्रायणेन चाप्यन्यमन्यदाप्यम्बुभोजनं ॥१३

एवं तत्र नर श्रेष्ठ कामरागदिवर्जितः ।

स्थितोवर्षरातं सार्धं कर्षेयन्स्रं तथा वपुः ॥१४

हे नृप ! परम भक्ति के भाव से विधान से उक्तका पाप ध्वषण  
करिए । हे महाभाग ! कावेरी के संगम से तो सिद्धि को प्राप्त हो गया  
था ॥६॥ मोक में परम प्रतिष्ठित कावेरी और नर्मदा का संगम है । उममें  
स्नान करके घोर रजिय होकर कुवेर सत्य विक्रम वाला हो गया था  
॥९॥ कुवेर ने विधिपूर्वक नियम धारण करके हे नरोत्तम ! शास्त्रोक्त  
शक्ति से एक चित्त होकर सनातन महादेव की आराधना की थी । यह  
कुछ समय तक एक ही वार आहार करने वाला रहा था । फिर एक मास  
के पीछे छठवें दिन आहार लेने वाला और इसके पश्चात् पक्ष में एक वार

भोजन करने वाला होकर कुछ समय तक वहाँ उसने वास किया था ॥१०-११॥ उस बुद्धिमान ने धन्य बात को मूल-फल और धारु के आहार से व्यतीत किया था । कुछ समय तक केवल शीवाल का ही आहार करके वह वहाँ पर निवास करने वाला हुआ था ॥१२॥ हे मानव ! उस कुबेर ने कुछ समय पराक—कृन्तू और चाण्डाल्यण पत्नी के द्वारा व्यतीत किया था और कुछ समय तक केवल जनपान की ही भोजन रखकर तपस्या की थी ॥१३॥ हे नर धेड़ ! हम रीति से वहाँ पर काम और राग से विवर्जित होकर अपने शरीर को श्रुति करता हुआ वहाँ डेढ़ सौ वर्ष तक स्थिर रहा था ॥१४॥

ततो वयंशतस्यान्ते देवदेवो महेश्वरः ।

तुष्टस्तु परया भक्त्या तमुवाच हसन्निव ॥१५

भो भो यक्ष महासत्त्व वरं वरय सुव्रत ।

परितुष्टोऽस्मि ते भक्त्या तव दास्ये तथेप्सितम् ॥१६

यदि तुष्टोऽसि देवेश उमम सह शङ्कर ।

सद्यप्रभृति सर्वेषां यदाणामधिपो भवे ॥१७

नशामभ्याव्यमभ्रैव तव भक्तिपुरस्सरः ।

धर्मं मतिं च मे नित्यं ददस्व परमेश्वर ॥१८

यत्प्रया प्रायितं सर्वं फल धर्मस्य तत्तया ।

इत्येवमुक्त्वा तं तत्र जगामादर्शनं हरः ॥१९

सोऽपि स्नात्वा विधानेन सन्तप्यं पितृदेवताः ।

धामन्ययित्वा तत्तीर्थं कृतार्थंश्च गृहं ययो ॥२०

पूजितस्तत्र गच्छंस्तु सोऽभिपिक्तो विधानतः ।

चकार विपुलं तत्र राज्यमीप्सितमुत्तमम् ॥२१

इसके उपरान्त जब कि सौ वर्ष समाप्त हो गये थे तो उनके धन्व मे देवों के भी देव भगवान महेश्वर प्रसन्न हुए थे और उसकी पराभक्ति से तुष्ट होकर हँपते हुए उससे बोले थे ॥१५॥ हे यक्ष ! हे महान् सत्त्व वाले ! हे सुव्रत ! वरदान की मायना करो मैं तेरी भक्ति से परितुष्ट हो गया हूँ और तुझको जो भी तेरा अभीष्ट धर होगा उसे दे दूँगा ॥१६॥

यक्ष ने कहा—हे देवेश ! यदि प्राय मुझ पर परम गुण हैं तो हे समावेशी के महिष्ठ भगवान शङ्कर ! मैं प्राय ही से लेकर समस्त यक्षों का स्वामी हो जाऊ और अशाय्य तथा अभ्यय हो जाऊँ जिसमें प्रायवी भक्ति मनी हुई हो । हे परमेश्वर ! धर्म में निरय हो मेरी भक्ति आप प्रधान कीजिए ॥१७-१८॥ ईश्वर ने कहा—तूने जो भी प्रार्थना की है वह उरी भाँति धर्म का फल होया—बन बरना ही कहकर भगवान् हर वही पर भन्तवर्त हो गए थे ॥१९॥ यह भी स्नाग बरके विधिपूर्वक विदूषण और देवो का मनी भाँति तर्पण बरके उस तीर्थ को प्रायन्त्रित करके कृतार्थ हीता हुआ अपने पर की चला गया था ॥२०॥ यहाँ पर वह समस्त यक्षों के द्वारा पूजित हुआ और उसका विद्यान के साथ अभिवेक किया गया था । यहाँ पर उसने उत्तम और बहुत अपना इच्छित राज्य किया था ॥२१॥

सत्र चान्ये सुराः सिद्धायक्षगन्धर्वकिन्नराः ।

गणाश्चाप्सरसात्तत्रशृण्वन्व्रतयाञ्जय ॥२२

कावेरीसङ्गम तेन सर्वपापहारं विदुः ।

स्वर्गागामयि सर्वेषां द्वारमेतच्चुबिष्ठिर ॥२३

ते घन्यास्ते महारमानस्तेषा जन्म सुजीवितम् ।

कावेरीसगमे स्नात्वा पदंत्तं हि तिलोदकम् ॥२४

वशा पूर्वं परे तात मातृतः पितृतस्तथा ।

पितरः पितामहास्तेन उद्बभूतानरकार्णवात् ॥२५

तस्मात्सर्वप्रवर्तनेन तत्र स्नायीतमानकः ।

अर्चयेदीश्वरं देवं पदीच्छेच्छाश्वतीं गतिम् ॥२६

कावेरीसगमे राजन्स्नानदानाचैत नरैः ।

कुत भक्त्या नरश्रेष्ठ क्षत्रमेघाधिक फलम् ॥२७

होमेन चाक्षयः स्वर्गो ऋषादायुषिदधते ।

ध्यानतो नित्यमाप्नोति पद शिवकलारमकम् ॥२८

ह मन्व ! यहाँ पर अन्य सुर—सिद्ध—यक्ष—गन्धर्व—किन्नर—

अपराधों के गण तथा शृण्वन्व भी थे । इनसे वह कावेरी का संगम

समस्त पापों का हरण करने वाला जाता गया है । हे भुविष्ठिर ! यह स्वर्गों का और अन्य समस्त लोकों का द्वार है ॥२२-२३॥ वे महाव्रत आरमा वाते पुरुष परम धन्य हैं और उनका जीवन प्रति सुन्दर जीवन है जिन्होंने कावेरी के संगम में स्नान करके तिलोदक समर्पित किया है ॥२४॥ हे तात ! उसने माता और पिता दोनों के दस पूर्व के और दस पर के पितरों पितामहों को नरक के घोर दर्शव से उद्धार कर दिया है ॥२५॥ इतलिये सब प्रकार के प्रयत्न से मनुष्य को वहाँ पर अवश्य ही स्नान करना चाहिए । यदि शाश्वत गति की इच्छा रखता है तो वहाँ पर देव ईश्वर की धर्चना करनी चाहिए ॥२६॥ हे राजन् ! कावेरी के संगम में ब्रह्म मनुष्यों ने भक्ति की भावना से स्नान दान और अन्न किया है हे नर घोष्ठ ! उनको अत्यन्त यज्ञ से भी अधिक फल प्राप्त होता है ॥२७॥ होम से प्रशस्त स्वर्ग की प्राप्ति होती है और जाप करने से प्राणु की वृद्धि हुआ करती है तथा ध्यान करने से नित्य ही शिव के कलात्मक पद की प्राप्ति किया करता है ॥२८॥

अग्निप्रवेश यः कुर्यात्स्मिस्तीर्थे नरेश्वर ।

अग्निलोकेवसेत्तावद्यावदाभूतसप्लवम् ॥२९

बनाशकं तु यः कुर्यात्स्मिस्तीर्थे नराधिप ।

सस्य पुष्पफलं यद्वै तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥३०

गन्धर्वाप्सरसङ्कीर्णं विमाने सूर्यसन्निभे ।

वीज्यमानो वरस्त्रीभिर्देवतैः सह मोदते ॥३१

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षसतानि च ।

क्रीडते रदलोकस्यस्तदन्ते भुवि चागतः ॥३२

भोगवान्दानशीलश्च जायते पृथिवीपतिः ।

आधिपोकविनिर्मुक्तो जीवन्त शरदा रतम् ॥३३

एवंगुणगणाकीर्णं कावेरी सा तरिन्नुप ।

त्रिपु लोकेषुविख्यातानमदा सगमेसदा ॥३४

जितवाक्कामचित्ताश्च ध्येयध्यानरतास्तथा ।

कावेरीसगमे तात तेषुपि मोक्षमवाप्नुयुः ॥३५



हे नरेश्वर ! उस तीर्थ में जो कोई अग्नि में प्रवेश किया करता है वह जब तक भूत संप्लव अर्थात् महा प्रलय होता है अग्नि लोक में निवास प्राप्त किया करता है ॥२६॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई अनाशक करे उसको जो भी पुष्प-फल होता है उसको सुनिये ॥३०॥ वह व्यक्ति गन्धर्व और अक्षराओं के द्वारा सङ्कीर्ण विमान में जो कि सूर्य के समान होता है परम श्रेष्ठ स्त्रियों के द्वारा धोज्यमान होता हुआ देवों के साथ आनन्द प्राप्त किया करता है ॥३१॥ वह साठ हजार साठ सौ वर्ष पर्यन्त रुद्र लोक में स्थित होकर क्रोडा किया करता है । इतने समय के पश्चात् ही वह इस भूलोक में आता है ॥३२॥ यहाँ पर भी अत्यन्त अधिक भोगों से समन्वित होकर तथा परम दान देने वाला हाता हुआ राजा हो जाता है । वह मानसिक व्यथा और शोक आदि से रहित होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है ॥३३॥ हे नृप ! इस प्रकार से अनेक गुणगण से वह कावेरी सरित युक्त है और तीनों साँको में सदा नर्मदा के संगम में विस्थित है ॥३४॥ हे ताव ! उस कावेरी के संगम में अपने वचन-काया और चित्त के ऊपर विजय प्राप्त करके ध्येय के ध्यान में रत होते हुए निवास किया करते हैं वे सभी मोक्ष को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥३५॥

शृणु तेऽप्यत्प्रवक्ष्यामिआश्रयं नृपसत्तम ।

त्रिपुलोकेपुकात्वन्यादृश्यमेसरितातमा ॥३६

लब्ध यं नर्मदातोयं ये चाकुर्युः प्रदक्षिणम् ।

ये पिबन्ति जलं तत्र ते पुण्यानात्रसंशय ॥३७

न तेषा सन्ततिच्छेदो दश जन्मानि पञ्च ष ।

तेषां पापं विलीयेत हिमं सूर्योदये यथा ॥३८

गंगायमुनसगे वै यत्फलं लभते नरः ।

तत्फलं लभते मर्त्यः कावेरीस्नानमाचरन् ॥३९

भोमे तु भूतजायोगे व्यतीपाते वसंक्रमे ।

राहुसोमसमायोगेतदेवाष्टगुणं स्मृतम् ॥४०

अशीतिश्च यथाः प्रोक्ता गङ्गायामुनसंगमे ।

कावेरीनर्मदायोगे तदेवाष्टगुणं स्मृतम् ॥४१

गङ्गा षष्टिसहस्रं स्तु क्षेत्रपालैः प्रपूज्यते ।

तदद्वैरन्यतीर्थानि रक्षन्ते नाऽत्र संशयः ॥४२

हे नृप सत्तम । आप ध्वज करिए मैं पापको एक अन्य अद्वय बत-  
लाता हूँ, तीनो लोकों में इस सरिता के समान अन्य कौन सी है अर्थात्  
कोई भी नहीं है । जिन्होंने नर्मदा का जल प्राप्त कर लिया है और जो  
इसकी परिक्रमा करते हैं । जो वहाँ पर इसके जल का पान किया  
करते हैं वे परम पुण्यशाली हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३६-३७॥  
पन्द्रह जन्मों तक उनकी सन्तति का छेद नहीं होता है सूर्योदय के होने पर  
हिम के समान ही उनके सब पाप विलीन हो जाया करते हैं ॥३८॥ गङ्गा  
और यमुना के सगम में जो कन मनुष्य प्राप्त करता है उन्को पुण्य—फल  
को मनुष्य कावेरी के स्नान से प्राप्त करता है ॥३९॥ भीष में भूतजा  
योग के होने पर—स्वर्गपात में—सूर्य के सक्रमण में तथा राहु और सोम  
के योग होने पर वही पुण्य—फल भठगुना बताया गया है ॥४०॥ गङ्गा  
और यमुना के सगम में अतीति सब कहे गये हैं वही कावेरी और नर्मदा  
के सगम में आठ गुना बताया गया है ॥४१॥ गङ्गा साठ हजार क्षेत्रपालों  
के द्वारा प्रकर्म रूप से पूजी जाया करती है उनके पापों के द्वारा अन्य  
तीर्थ रक्षित किये जाया करते हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है  
॥४२॥

अमरेश्वरे तु सरितां मे योगाः परिकीर्तिताः ।

ते त्वशीतिसहस्रं स्तु क्षेत्रपालंस्तु रक्षिताः ॥४३

तथाअमरेश्वरे माम्ये लिंगं वैश्वपलेश्वरम् ।

द्वितीयं चण्डहस्ताख्यं द्वेलिंगेतीर्थं रक्षके ॥४४

क्षिप्तेन स्थापिते पूषं कावेर्याद्यभिरक्षके ।

लक्षेण रक्षिता देवी नर्मदा बहुकल्पगा ॥४५

धनुषां षष्ट्यभियुतं पुनर्वरीशयोजितः ।

ॐकारशतसाहस्रं । पर्वतश्चामिरक्षितः ॥४६

अन्यदेशकृतं पापमस्मिन्क्षेत्रे विनश्यति ।

अस्मिन्स्तीर्थे कृतं पापं ब्रजलेपो भविष्यति ॥४७

एषा ते कथिता तात कावेरी सरितां वरा ।

रुद्रदेहसमुत्पन्ना तेन पुण्यासरिद्वरा ॥४८

सरिताभों के अमरेश्वर योग में जो योग कीर्तित किये गये हैं वे पस्सी हजार क्षेत्रपालों के द्वारा रक्षित होते हैं ॥४३॥ उसी प्रकार से अमरेश्वर के योग्य में षण्णेश्वर लिंग है और दूसरा षण्णहस्त नामक लिंग है । ये दोनों लिंग तीर्थ सजा वाले हैं ॥४४॥ पहिले ही भगवान् शिव के द्वारा कावेरी—आदि के अभिरक्षक से स्थापित किये गये । यह देवी नर्मदालक्ष के द्वारा रक्षित हुई है जो कि बहुत कल्पों में गमन करने वाली है ॥४५॥ साठ धनुषों से अभियुक्त पुरुषों के द्वारा जो कि भगवान् ईश के द्वारा योजित हैं और सौ सहस्र ओङ्कारों से पर्वत अभिरक्षित होता है । अन्य स्थल में किया हुआ पाप इस क्षेत्र में विनष्ट हो जाया करता है ॥४६॥ इस तीर्थ में समागत होकर जो भी पाप किया जाता है वह षण्ण लेप हो जाया करता है ॥४७॥ हे तात ! तुम्हारे आगे यह समस्त सरिताओं में परम श्रेष्ठ नदी कावेरी का वर्णन किया गया है । यह कावेरी साक्षात् भगवान् रुद्र के देह से समुत्पन्न हुई है उसी से यह परम पुण्यमयी सरिता परम धंष्ट है ॥४८॥

### ८६— शूलभेदप्रशंसावर्णन

तीर्थानां परम तीर्थं तच्छृणुष्वनराधिप ।

रेवाया दक्षिणेकूले निर्मितं शूलपाणिना ॥१

मोक्षार्थं मानवेन्द्राणां निर्मितं नृपसत्तम ।

श्रुत्वा मे विविधा धर्मास्तीर्थानि विविधानि च ।

दानधर्माः समस्ताश्च त्वत्प्रसादाद् द्विजोत्तम ॥२

अन्यच्च श्रोतुमिच्छामिसंसारश्छिद्यतेयथा ।

पुनरागमनं नास्तिमोक्षप्राप्तिभवेद्यथा ॥३

एतदाख्याहि मे सर्वं प्रसादाद् द्विजसत्तम ॥४

शृणुष्वैकमना भूत्वा तीर्यात्तीर्यान्तरं महत् ।

श्रुते यस्य प्रभावे तु मुच्यते चाब्दिकादघात् ॥५

वाचिकं मनिसंवापि शारीरंश्च विशेषतः ।

कीर्तनात्तस्य तीर्थं स्य मुच्यते सर्वपातकैः । ६

पठचक्रोशप्रमाणं तु तच्च तीर्थं महीपते ।

शुक्तिमुक्तिप्रद दिव्यं प्राणिना पापकर्मिणाम् ॥७

महावि प्रवर धीमार्कण्डेय जी ने कहा हे नरायण समस्त तीर्थों में जो परम शिरोमणि तीर्थ है उसके विषय में अब सावधान होकर ध्यान करिए । इस तीर्थ को साक्षात् भगवान् शूलपाणि ने रेवा नदी के दाहिने तट पर निर्मित किया है ॥१॥ हे नृपो में परम श्रेष्ठ ! इस तीर्थ का निर्माण मानवों के मोक्ष का सम्पादन करने के लिये ही किया गया है । युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजो में परमोत्तम ! आपकी कृपा से मैंने अनेक धर्म और नाना प्रकार के तीर्थों का ध्यान किया है—उपा समस्त दानों के धर्म भी सुन लिये हैं ॥२॥ हे भगवद् ! अब मैं घोर भी कुछ ध्यान करने की इच्छा रखता हूँ जिससे इस ससार के जन्म—मरण और बराबर लगे रहने वाले भावागमन का छेदन हो जावे और मरकर पुनः यहाँ पर जन्म ग्रहण कर आगमन न होवे तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाया करे ॥३॥ हे द्विजो में परम श्रेष्ठ ! आप अपने प्रसाद के हृत् में यह सब कुछ मेरे समक्ष भे ध्यान कीजिए ॥४॥ धीमार्कण्डेयजी ने कहा— अब आप एकमन होकर तीर्थ से अन्त्य तीर्थ का ध्यान करिए जो कि परम महात् तीर्थ है जिसके प्रभाव के श्रुत मात्र से ही वर्ष के अघ से मुक्ति प्राप्त करली जाया करती है ॥५॥ वाचिक—मानसिक और शारीरिक समस्त पातकों से विशेष रूप से तीर्थ के कीर्तन करने से छुटकारा पा लिया जाता है ॥६॥ हे महीपते यह तीर्थ पाँच कोश के प्रमाण वाला है । यह तीर्थ पाप कर्मों के करने वाले प्राणियों को समस्त सांसारिक सुखों के उपभोग और मोक्ष दोनों का ही प्रदान करने वाला दिव्य तीर्थ है ॥७॥

रेवाया दक्षिणेकूलेपवंतोभृगुसञ्चितः ।

तस्यमूर्ध्नि च तृतीयं स्थापितं चं वशम्भुना ॥८

शूलभेदेति विख्यातं त्रिपुल्लोकेषु भूपते ।

तत्र स्थिताश्रये वृक्षास्तीर्याच्च वचतुर्दिशम् ॥९

पतितानीलयं यान्ति रुद्रस्य नात्र संशयः ।

मृतास्तत्र वयेकेचिज्जन्तवो भुवि पक्षिणः ॥१०

ते यान्ति परमं लोकं तत्र तीर्थं न संशयः ।

पातालान्निःसृता गंगाभोगवतीति सञ्ज्ञिता ॥११

निष्क्रान्ता शूलभेदाच्च सर्वपापक्षयङ्करी ।

या सा गीर्वाणनाम्न्यन्या वहत्पुण्या महानदी ॥१२

पतिता कुण्डमध्ये तु यत्र भिन्नं त्रिशूलिना ।

शम्भुना च पुरा तात उत्पाद्य च सरस्वती ॥१३

सा तत्र पतिता राजन्प्राचीना घविमोचिनी ।

भास्वत्या त्रितय यत्र शिला गीर्वाणसञ्ज्ञिता ॥१४

रेवा के दक्षिण तट पर एक भृगु संज्ञा वाला पर्वत है । उसके सिद्धर पर भगवान् शम्भु ने उम तीर्थ की स्थापना की है ॥८॥ हे भूपते ! वह शूलभेद इस नाम से विख्यात है और तीनों लोकों में वेद प्रसिद्ध है । उसमें जा वृक्ष हैं जो कि उम तीर्थ के चारों दिशाओं में है । वे जब गिरते हैं तो सीधे रुद्र के नितय में जाकर प्राप्त हुआ करते हैं—इसमें संशय नहीं है वहाँ पर भूमि में जो भी कोई जन्तु एवं पक्षी मृत होते हैं वे सब परम लोक को गमन किया करते हैं उस तीर्थ का यह प्रभाव है— इस में कुछ भी संशय नहीं है । पाताल से निकली हुई गंगा भोगवती— इस संज्ञा वाली है ॥९-११॥ यह शूलभेद से निष्क्रान्त हुई है जो कि समस्त पापों के क्षय करने वाली है । जो अन्य गीर्वाण नाम वाली है वह सरस्वत पुष्पमयी महानदी है ॥१२॥ वह कुण्ड के मध्य में शक्ति हुई है जहाँ पर शूलपाणि के द्वारा भिन्न की गई है । हे तात ! भगवान् शम्भु ने पहिले सरस्वती सरिता का उत्पादन किया था ॥१३॥ हे राजन् ! वह वहाँ पर पतिव हुई थी जो पुराने—से भी पुराने अर्थात् से

मुक्त कर देने वाली है । जहाँ पर गोर्वाण सत्ता वाली शिला है वहाँ सरस्वती के तीन रूप हैं ॥१४॥

सप्त तीर्थं च तृतीयं न भूतं न भविष्यति ।

केदारञ्च प्रयागञ्च कुरुक्षेत्रं गया तथा । १५

अन्यानि च सुतीर्थानि फलां नाहन्ति षोडशीम् ।

पञ्च स्थानानि तीर्थानि पृथग्भूतानि यानि च ॥१६

वक्ष्यामि च समासेन एकैकं च पृथक्पृथक् ।

गया नाम्भ्यां यथा पुण्यां चक्रतीर्थं च तत्समम् ॥१७

धर्मारण्ये यथा कूप शूलभेदं च तत्समम् ।

ब्रह्मयूपं यथा पुण्यं देवनद्यास्तयं च ॥१८

यथा गयाशिरः पुण्यं सुराणां च यथा शिला ।

यथा च पुष्करं स्थानं माकण्डहृद एव च ॥१९

दत्त्वा पिण्डोदकं तत्रपितृणां च तथाक्षयम् ।

यस्तत्रकुक्ष्तेश्चाद्धं तोयं पिवति नित्यशः ॥२०

मुच्यते सर्वपापंस्तु उरगः कञ्चूकैरिव ।

अग्निन्द्यान्पूजयेद्विप्रान्दम्भक्रोधविवर्जितान् ॥२१

उस तीर्थ में वह तीर्थ ऐसा है जो कभी न हुआ और न भविष्य में होगा । केदार—प्रयाग—कुरुक्षेत्र और गया हैं । अन्य जो सुतीर्थ हैं वे सोलहवीं कला के भी योग्य नहीं हैं । जो पञ्च स्थान तीर्थ हैं और जो प्रथग्भूत हैं उनको एक-एक को पृथक्-पृथक् संज्ञे में बतलाऊंगा । नाभि में गया जिस प्रकार का पुण्यमय तीर्थ है उसी के समान चक्रतीर्थ तीर्थ है ॥१५-१७॥ धर्मारण्य में जैसा कूप है उसी के समान शूलभेद है । ब्रह्म-यूप जैसा पुण्यमय है उसी प्रकार का देवनदी का भी है । जिस प्रकार का गया का शिरः पुण्यमय है और सुरों का शिला है । जैसा पुष्कर स्थल है और माकण्ड हृद भी वैसा ही है ॥१८-१९॥ वहाँ पर पितृगण को पिण्डोदक देकर जो वहाँ पर भक्ष्य धाढ़ करता है वह नित्य ही जल का पान किया करता है ॥२०॥ जैसे मर्ग सपत्नी कंबुली से मुक्त हो जाया करता है वैसे ही वह मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा पा जाता करता

है । जो बिना निन्दा करने के योग्य न होने और इन्म तथा प्रीति से रहित होवे लक्ष्मी पूजा करनी चाहिए ॥२१॥

त्रयोदशदिनं दानं त्रयोदशगुणम्मवेत् ।

अभ्यर्चितं सुरं दृष्ट्वा गणनाय गजाननम् ॥२२

सर्वे विष्णुदिनस्यन्ति दृष्ट्वा कम्बलक्षोपपम् ।

पूजयेत्परयाभक्त्याशूलपार्शिमहेश्वरम् ॥२३

देवस्य पूर्वभागे तु उमा पूज्या प्रयत्नतः ।

माकण्डेश ततो भवत्या पूजयेद् गुहृवासिनम् ॥२४

मृच्चन्तेपातके सर्व्वज्ञानज्ञानसञ्चितः ।

गुहामध्ये प्रविष्टस्तु जपेत्सूक्त तुभ्यस्वरम् ॥२५

नीलपर्वतश्च पुण्य पक्षाशेन लभेत स ।

त्रिनरास्तत्र तिष्ठन्ति सादित्यमर्ष्यं सह ॥२६

सर्वं देवस्य स्थानं कोटिलिङ्गममुत्तमम् ।

अथादीनदा सर्वं सागरे यान्तिमङ्गलमम् ॥२७

तथा पापानि नश्यन्ति शूलभेदस्य दर्शनात् ।

प्रत्यक्षो दृश्यतेऽद्यापि प्रत्यमो ह्यवनीपते ॥२८

त्रयोदश दिन का दिया हुआ दान तेरह गुना हो जाता करता है । अभ्यचना किये हुए गणनाय गन के समान मुख वाले सुरका दर्शन करने तथा जनसेकण प्रभु को देखकर सभी विष्णु विशेष रूप से गढ़ हो आया करते हैं । परमाधिक भक्ति की भावना से महेश्वर शूलपार्श्व भवनान् की पूजा करनी चाहिए ॥२२-२३॥ शैवेश्वर के पूर्व भाग में प्रयत्न पूर्वक जगदम्बा उमादेवी की पूजा करनी चाहिए । इसके मतलब अर्थात् माय से गुह्यामी मार्कण्डेय की मर्चना करे ॥२४॥ इस पूजन के करने से ज्ञान तथा मज्जा के द्वारा सञ्चित समस्त पातकों से मानव मुक्त हो आया करते हैं । गुहा के मध्य में प्रविष्ट होकर श्वशर सूक्त का जाप करना चाहिए ॥२५॥ यह व्यक्ति नील पर्वत से समुत्पन्न पुण्य को पक्षांश से प्राप्त किया करता है । यहाँ पर सादित्य मर्षी के साथ तीन नर स्थित रहा करते हैं ॥२६॥ यह स्थान सम्पूर्ण देवस्य है और प्रति उत्तम कोटि तिर्गों

से युक्त है । बिना प्रकार से सभी नदी और नद मापर में सस्य को प्राप्त हो जाया करते हैं उसी भाँति भगवान् शूलभेद के दर्शन करने से सब पाप नष्ट हो जाया करते हैं । हे अश्वतोषते ! आज भी यह प्रत्यक्ष दिखनाई देते हैं और प्रत्यक्ष होता है ॥२७-२८॥

विस्फुलिगालिगमध्येस्पन्दन्तेस्नानयोगतः ।

द्वितीयःप्रत्ययस्तप्रतंलबिन्दुन्लं संपति ॥२९

एवं हि प्रत्ययस्तत्र शूलभेदप्रभावजः ।

यः स्मरेच्छूलभेद तु त्रिकालं नित्यमेव च ॥३०

सपूतश्चभवेत्साक्षात्सवाह्यान्यन्तरोत्तुप ।

नक्त्यचिन्मयाख्यातं पृष्टोऽङ्घ्रिदर्शरपि ॥३१

गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं सदा गोप्यं कृतं मया ।

सर्वपापहरं पुष्यं सर्वदोषघ्नमृत्तमम् ॥३२

सर्वतीर्थंमयं तीर्थं शूलभेदं जनेश्वर ।

श्रुते यस्य प्रभावेनुमुच्यतेसर्वपातकैः ॥३३

शूलभेद मयातातसंक्षेपात्कथितं तव ।

यः शृणोतिनरोभक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥३४

स्नान के योग से सिंग के मध्य में विस्फुलिग स्पन्द किया करते हैं । दूसरा प्रत्यय है कि वहाँ पर तंत का बिन्दु सँग नहीं किया करता है ॥२९॥ इस प्रकार से वहाँ पर शूलभेद के प्रभाव से समुत्पन्न प्रत्यय होता है । जो पुरुष तीनों बालों में नित्य ही भगवान् शूलभेद का स्मरण किया करता है हे नृप ! वह बाहिर और भीतर से साक्षात् पूज हो जाया करता है । यह बात मैंने किसी से भी नहीं की यद्यपि देवों के द्वारा भी मुझ से पूजा गया था ॥३०-३१॥ यह गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है अतः मैंने इस तीर्थ को गुप्त ही रक्खा था । यह सभी प्रकार के पापों का हरण करने वाला—पुष्यमय—उत्तम और सभी दोषों का हनन करने वाला है ॥३२॥ हे अनेश्वर ! शूलभेद तीर्थं समस्त तीर्थों से परिपूर्ण तीर्थ है । इसके प्रभाव का अदृष्ट करने पर ही समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है । हे तात ! यह शूलभेद तीर्थ का दर्शन मैंने मुझसे



सामने संशय से भर दिया है। जो भी कोई मनुष्य भक्ति भाव से इसे पढ़ने करता है वह सभी पातकों से मुक्त हो जाता करता है ॥३४॥

८७—कालरात्रिकृतजगत्संहारवर्णन

सतस्तु श्रुपयः सर्वमहाभागास्तपोधनाः ।

गतास्तुपरमं लोकं ततः किञ्चात्मदभुवम् ॥१

ततस्तेषु प्रयातेषु नमं वातीरवासिषु ।

बभूव रौद्रसंहार सर्वभूतक्षयकरः ॥२

कालासशिखरस्य तु महादेवं सनातनम् ।

ब्रह्माद्याः प्रास्तुतन्देवमृम्यजुः सामभिः शिषम् ॥३

सुहृत्स्व' जगद्देव ! सदेवामुरमानुषम् ।

प्राप्तोयुगसहस्रान्तः काला संहारणक्षमा ॥४

मद्रूपं तु समाम्नाय त्वया चैतद्विनिमित्तम् ।

वैष्णवी मूर्तिमास्थाय त्वयैतत्परिपालितम् ॥५

एका मूर्तिस्त्रिधा जाना ब्राह्मी शैवी च वैष्णवी ।

सृष्टिसंहारणकार्यं भवेदेव महेश्वर ! ॥६

एतच्छ्रुत्वावचस्तप्यविष्णोश्चरपरमेष्ठिनः ।

सगणः सपरीवारः सद्गताम्यासङ्गो नया ॥७

सप्तलोकान्विमिश्रोमान्भगवान्नीललोहितः ।

भूराद्यब्रह्मलोकान्तं भित्त्वाऽण्डं परतः परम् ॥८

युधिष्ठिर ने कहा—इसके अनन्तर महान् भाग्य वाले सप ही विनका यत या वे समस्त श्रुपिगण परम लोक को अपने गये थे। इसके पश्चात् क्या घद्मुत घटना हुई थी? श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—इसके अनन्तर उन नमंदा के तट पर निवास करने वाले लोगों के प्रयाण कर जाने पर फिर समस्त प्राणियों का गयेकर क्षय करने वाला रौद्र संहार हुआ था। ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने शैलास पर्वत की शिखर पर समवस्थित बनाउन शिव महादेव का शुकु, मनु और सप्तवेदों के द्वारा स्तवन किया

था । हे देव ! मार इस सम्पूर्ण जगत् का जिसमें देव-मनुष्य और मनुष्य समा हैं संहार कीजिए क्योंकि भव एक सहस्र युगों का प्रन्तकाल प्राप्त हो गया है जो कि संहार करने में समर्थ है । आपने ही मेरे स्वरूप को धारण करके इस जगत् का सृजन किया था फिर वैष्णवी मूर्ति को धारण करके अर्थात् विष्णु के स्वरूप से इस जगत् का आपने ही परिपालन किया था । आपने ही एक मूर्ति ब्राह्मी वैष्णवी और शैवी तीन प्रकार की हो गई थी । हे महेश्वर ! आपने जगत की सृष्टि, रक्षा और संहार करने के ही लिए ऐसा किया है । इस परमेशी और भगवान् विष्णु के रूप वचन का श्रवण करके अपने गणों के साथ तथा उन दोनों के सहित और उमा देवी के साथ तीस सोहित भगवान् ने इन सातों लोकों का विभेद किया था । भू से आदि लेकर ब्रह्म लोक के प्रन्त तक पर से पर अण्ड वा विभेदन कर दिया था ॥१-८॥

शैव पदमज दिव्यमाविदात्सह तैर्विभुः ।

न तत्र वायुर्नाशनाग्निस्तत्र न भूतलम् ॥६

यत्र संतिष्ठते देव उमया सह शकरः ।

न सूर्यो न ब्रह्मास्तत्र न ऋक्षाणिदिशस्तथा ॥१०

न लोकपाला न सुखं न च दुःख नृपोत्तम ! ॥११

ब्राह्म पद यत्कवयो वदन्तिशर्वं पदं यत्कवयो वदन्ति ।

क्षेत्रज्ञमीशप्रवदन्तिचान्त्येसांस्याश्चगायन्तिकिलादिमोक्षम् ॥१२

यद्ब्रह्म आद्यं प्रवदन्ति केचिद्यं सर्वंभीशःनमजं पुराणम् ।

तमेकरूपं तमनेकरूपमल्पमाद्यं परमव्ययाख्यम् ॥१३

अवर्णमप्यर्थमनामगोत्रं तुर्यं पद यत्कवयो वदन्ति ।

व्यानार्थं विज्ञानमय सुसूक्ष्ममात्मस्थमीशानवर वरेण्यम् ॥१४

बह विभु परम दिव्य—अज दैव पद में उनके साथ प्रवेश कर गये ।

वहाँ पर न वायु है—न आकाश है और न अग्नि तथा भू तल ही है जहाँ पर कि देव शंकर उमादेवी के साथ स्थित रहा करते हैं । यहाँ सूर्य ग्रह ऋक्ष और दिशाएँ कुछ भी नहीं हैं । हे नृपोत्तम ! वहाँ पर न तो कोई लोकपाल ही है और न कोई गुण एवं दुःख ही है । जिसको कवि-

मल भाह्य पद कहा करते हैं और कवि उसे शीब पद भी कहते हैं । अन्य मोग जमी को शीबन ईश कहते हैं तथा शोरप साप उची को भादि मोक्ष कहकर पुकारा करते हैं । कुछ मोग उसको पाश ब्रह्म कहते हैं जिसको सर्व—ईशान—मज और पुराण भी कहते हैं । उसको एक ही रूप वाला—अनेक रूपों से युक्त—बिना रूप वाला—घात—परम और अम्यय नाम वाला—अपार्थी भी अर्थ—अनाम—अगात्र—तुल्य पद कवि लोग कहते हैं । प्यान के लिए विज्ञानमय—सुसुन्दरत्व—ईशान नर श्रीं बरेष्य भी कहते हैं ॥६-१५॥

ततस्तनयस्ते भगवन्ततोष सम्प्राप्य सक्षिप्य भवन्द्यर्धकम् ।

पृथक्स्वरूपैस्तु पुनश्च एव जगत्समस्त परिपालयन्ति ॥१५

सहार सर्वभूतानां कृत्वे कुरुते प्रभुः ।

विष्णुत्वे पालयेत्लोकान्द्रह्यास्यै सृष्टिकारकः ॥१६

प्रकृत्वा सह सगुक्तः कालो भूत्वा महेश्वरः ।

विश्वरूपा महामाया तस्य पार्श्वे व्यवस्थिता ॥१७

यामाहुः प्रकृति तज्ज्ञा पदार्थानाविषक्षणाः ।

पुरुषत्वेऽप्रकृतित्वे च कारण परमेश्वरः । १८

तस्मादेतज्जगत्सर्वसमुद्भूत शराचरम् ।

तस्मिन्निवलय याति युगान्ते समुपस्थिते ॥१९

भगान्निष्काकित सर्वं ध्याप्त व परमेष्ठिता ।

भगरूपो मर्देद्विष्णुर्लिङ्गरूपा महेश्वरः ॥२०

माति सर्वं पु लोकेषु गीयते भूभुवादिषु ।

प्रविष्टः सर्वभूतेषुतेनविष्णुभग स्मृतः ॥२१

इसके उपरान्त वे तीनों देव एक ही ईश भगवान् को प्राप्त करके और जिसकर संभक्त हो जाते हैं । वे ही फिर पृथक् स्वस्वों से मुक्त होकर इस सम्पूर्ण जगत् का परिपालन किया करते हैं । प्रभु सर्वभूतों के सहार को शरीर में करते हैं । विष्णुत्व के रूप में लोको का पालन करते हैं और ब्रह्मत्व रूप में सृजन का कार्य किया करते हैं । प्रकृति के साथ सगुक्त महेश्वर काल होकर स्थित रहते हैं । विश्वरूपा महामाया उसी के पार्श्व

में स्थित रहा करता है । उसके ज्ञाता विचक्षण लोग पदार्थों के जानने वाले जिनको प्रकृति कहते हैं । पुरुषत्व के स्वरूप में तथा प्रकृति के रूप में परमेश्वर ही एक कारण है । उनसे ही यह सम्पूर्ण ब्रह्म और अक्षर अणु उत्पन्न हुआ है और भुग के अन्त के उपस्थित होने उन्ही में परम होजाता है । परमेश्वर के द्वारा यह सनस्त भगतिग से अक्षर व्याप्त हो रहा है । भगस्व भगवान् विष्णु हैं और तिग स्व महेश्वर हैं सब लोको में ही दीप्तिमान् होते हैं और भूनुं वादि में गान किये जाते हैं । समस्त ज्ञानों में प्रविष्ट हैं इसी कारण से विष्णु भग कहे गये हैं ॥१५-२१॥

विशनाद्विष्णुरित्युक्तः सर्वं देवमयो महाम् ।

भासनाद्गमनाच्च भगसञ्ज्ञाप्रकीर्तिता ॥२२

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यस्मिन्नेतिलयं जगत् ।

एकभावसमापन्नं लिंगं तस्माद्विदुर्बुधाः ॥२३

महादेवस्ततो देवीमाह पार्श्वे स्थिता तदा ।

सहरस्व जगत्सर्वं मा विलम्बस्व शोभने ! ॥२४

त्यज सौम्यमिदं रूपं सितचन्द्राशुनिर्मलम् ।

रोद्ररूपं समास्यायसंहरस्व चराचरम् । २५

रोद्रं भूतगणैर्घोरैर्देवि त्वं परिवारिता ।

जीवलोकमिमं सर्वं नक्षयस्वाम्बुजेक्षणे ॥२६

ततोऽहं मदं विष्यामि प्लावयिष्ये तथा जगत् ।

कृत्वा चंकार्णवं भूमं सुखं स्वप्स्ये त्वया सह ॥२७

सर्वं देवों से परिपूर्ण विष्णु विश्व होने से ही विष्णु इस तरह नाम से कहे गये हैं । भासन होने और गमन होने से ही "भग" यह संज्ञा कीर्तित हुई है । ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त यह अणु जिसमें लय का प्राप्त होता है । एक भाव को समापन्न हो गया है इसीलिये बुध लोग इसे तिग कहा करते हैं । इसके अनन्तर उस समय में महादेव ने पार्श्व भाग में स्थित देवी से कहा था—हे शोभने ! इस सम्पूर्ण जगत् का सहार करो और अब विलम्ब मत करो । अब सित चन्द्र की किरणों से निर्मल इस सौम्य स्वरूप का त्याग कर दो और महान् रोद्र स्वरूप से समास्थित

होकर इस अद-अज्ञम अज्ञानर जगत का संहार कर दानो । हे देखि ! परम धार रौद्र रूप वाले भूतो के गलों से आप परिधारित होती हुई हे अम्बुवेसाणो । इस घमात जगत् का भक्षण कर टासो । इसके पश्चात् मैं मर्दन कर डालूँगा और इस सम्पूर्ण जगत् को प्लावित कर डालूँगा सबको एकाएक मैं मुक्त करके फिर तुम्हारे साथ मैं सुखपूर्वक अथन करूँगा ॥२२-२७॥

नाह् देववगञ्चैतस्संहारामि महाब्रुते ।

अम्वा भूत्वा विचेष्ट न भक्षयामिभृजातुरम् ॥२८

स्रोस्वभावेन कारुण्य करोति हृदय मम ।

कर्म वै निर्वह्मिष्यामिष्वगदत्तजगत्पते ॥२९

तस्मात्त्व स्वयमेवेव जगत्संहार शकः ।

— — — — — ॥३०

ॐ हू फट् त्व स इत्याह कोपाविष्टं रयेसाणं ॥३१

दु कारित्वाविशालाक्षीपीनोरुजघनस्थला ।

सत्क्षणाद्दामवदोद्राभालराप्तीकभारत ॥३२

हू कुबंती महाबादेनदिधन्तो दिशोदन ।

व्यवर्धनमहारौद्रा विद्युत्स्रोवामिनीयथा ॥३३

विद्युन्म्याजदुष्प्रं रुषा विद्युत्सघातचञ्चला ।

विद्युज्ज्वालाकुला रौद्रा विद्युद्ग्नितिभेक्षणा ॥३४

मुत्तन्केयी विवालाक्षीकृशपीवा क्रुजोदरो ।

व्याघ्रधर्मन्विरघराभ्यालयशोषवीतिनी ॥३५

श्री देवी ने कहा—हे महापुंछ ! हे देव ! मैं इस सम्पूर्ण जगत का संहार नहीं करती हूँ । मैं अम्बा होकर विषम चेष्टा वाले मोर अत्यन्त घातुर का भक्षण कभी नहीं कर सकती हूँ । मैं स्त्री स्वभाव वाली हूँ मेरे हृदय में कारुण्य होता है । हे जगत्पते ! मैं कृपे जगत् को अम्बा होती हुई इस जगत् का निर्दहन करूँगी । इनसिए आप ही स्वयं हे शकूर । इस सगत्संहार के संहार का कर्म कीजिये । इसके पश्चात् इस प्रकार के

देवी के द्वारा कहे हुए धूर्जटि नीललोहित प्रभु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस देवी को निभंसित किया था और महेश्वरी को हुंकार के द्वारा फटकार दी थी । उनसे 'सुम हुंक्ट'—यह कहा था । कोप से समाविष्ट नेत्रों के दृष्टि बालों के द्वारा वह पीन रूद्र और जघन स्थल वाली विशालाक्षी देवी हुंकारित हुई थी । हे भारत ! उसी क्षण में वह परम रोद्रा काल रात्रि के समान हो गई थी । वह देवी महावृ नादों से हुम् हुम् करती हुई और दशो दिशाओं को ध्वनित करने वाली विद्युत् सीदामिनी की भाँति महारोद्र रूप वाली होकर बढ़ गई थी । विद्युत् के सम्यात के ही समान वह दुष्प्रेक्षणोय थी तथा विद्युत् के संघात के समान चंचला थी । विद्युत् के समान ही ज्वालाओं से समानुल और विद्युत् की अग्नि के तुल्य नेत्रों वाली रोद्र रूप वाली हो गई थी । युक्त केशों वाला उसका स्वरूप था । उस देवी के नेत्र परम विशाल थे—श्रीवा कृत थी और वह कृश उदर वाली थी । वह उस समय में व्याघ्र के चर्म की अम्बर वाली थी तथा व्यालो के यशोपवोत को धारण करने वाली थी ॥२८-३५॥

वृश्चिकैरग्निपुच्छाभैर्गोनसैश्च विभूषिता ।  
 त्रैलोक्यं पूरयामास विस्तरेणोच्छ्रयेण च ॥३६॥  
 भासुराङ्गा तु सम्वृत्ता कृष्णसर्पैककुण्डला ।  
 चित्रदण्डोद्यतकरा व्याघ्रचर्मोपसेविता ॥३७॥  
 व्यवधंत महारोद्रा जगत्संहारकारिणी ।  
 सृक्लिणी लेसिहाना च क्रूरफूत्कारकारिणी ॥३८॥  
 व्यात्तास्या धुर्धुरारावा जगत्सदृक्षोभकारिणी ।  
 खेलद्भूतानुगा क्रूरा निश्चासोच्छ्वासकारिणी : ३९॥  
 जातादृहासादुर्नाभावह्निबुण्डसमेक्षणा ।  
 प्रोद्यत्किल किलारावाददाहसकलं जगत् ॥४०॥  
 दह्यमानाः सुरास्तत्र पतन्ति धरणीतले ।  
 पतन्ति यक्षगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥४१॥

पतन्ति भूतङ् सुधाश्च हाहाहेहेधिराविणः ।

बुभ्यापातैः सनिर्घातैरुदितायस्वरैरपि ॥४२

अग्नि के पुञ्ज के समान आभा वाले कुश्चिकों (विन्दुओं) से घोर मोतसों से बिभ्रित थी । उन देवी ने अपने विस्तार से घोर वज्ररूप से सम्पूर्ण ऋग्वेद को पूरित कर दिया था । कुञ्ज सपों के कुण्डली को धारण करने वाली वह मामूत्र झड़ों वाली हो गई थी । कर में चित्र दण्ड धारण कर उन्नत हुई व्याघ्र के चर्म से समुपसेदित थी । वह देवी महारौद्र स्वरूप वाली ममन्त जयन्त के संहार करने वाली बड़ गई थी । उस समय म बड़ टपी जीम से सुविकशिपी (मुख के दोनों किनारों को) धाटती हुई और बहुत क्रूरता से फलतार करने वाली थी । देवी ने अपने मुस को फँसा लिया था—पुपुंर राव करने वाली—सम्पूर्ण जयन्त के संक्षोभ को करने वाली थी और उसके प्रनुग मृत उसके पीछे सेत कर रहे थे—बहुत ही क्रूर स्वभाव वाली तथा निरिहातों और उच्छवाहों को करने वाली थी । वह अटटत्रास करने वाली—बहुत बुरी नासिका से युक्त घोर अग्नि के कुण्ड के तुल्य आव्यन्दमान नेत्रों वाली थी । किन्किन्त शब्द करती हुई वह बड़ी ही अधिक अग्नि के साथ सम्पूर्ण जगत को दग्ध कर रही थी । समस्त सुराण दग्धमान होकर धरती तन पर गिर गये थे । यज्ञ-मन्थर्व-किन्नर और महारण मन्थो दग्ध होते हुए भूमि तन पर गिर रहे थे । हा हा—है है—अग्नि करते हुए मृतों के संघ भी पतित हो रहे थे जो कि बुभ्यापात—निर्घात—सहित घोर घात स्वरो से युक्त थे ॥३६-४२॥

व्याप्तमासीत्तदा विश्व त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

सम्पतद्भिः पतद्भिश्च ज्वलद्भूतमर्णमंही ॥४३

जातैश्चटचटाशब्दैः पतद्भिर्गिरिसानुभिः ।

तत्र रोद्रोत्सवे अताच्छानन्दविचिचिनी ॥४४

विहिसमानामुदानिचर्वमाश्राचरानपि ।

तत्तद्गन्धमुपादाय शिवारावधिराविणी ॥४५

गलच्छोणितधाराभिमुखादिग्धकलेवरा ।  
 चण्डशीलाऽभवच्चण्डीजगत्संहारकर्मणि ॥४६  
 येषु प्राप्ता महर्लोकं भृग्वाधाश्च महर्षयः ।  
 तेषु नश्यन्ति शतसो ब्रह्मक्षत्रविद्यादयः ॥४७  
 देवासुराभयप्रस्ताः सयशोरगराक्षसाः ।  
 विशन्तिकेऽपिपातालं सीयन्ते चगुहादिषु ॥४८  
 सा च देवी दिशः सर्वा व्याप्य मृत्युरिव स्थिता ।  
 युगक्षयकरे काले देवेन विनियोजिता ॥४९

उस समय में सम्पूर्ण विश्व घोर धर धर से युक्त समस्त त्रैलोक्य व्याप्त था । यह महोत्तम जलते हुए गिरते हुए घोर सम्पन्न शील भूत-गणों से व्याप्त हो गया था । 'धर धर' ध्वनि के साथ गिरकर टूटने वाली पर्वतों की शिखरों से पूर्ण यह महोत्तम शीतोत्पन्न में भगवाद् रुद्र के आनन्द को बढ़ाने वाली हो गई थी । समस्त भूतों की विशेष रूप से हिंसा करती हुई घोर धर जीवों का चर्बण करने वाली उस पन्न को प्राप्त कर रावा विरादिली अर्थात् भयंकर ध्वनि करने वाली—फँसे हुए श्विर की धाराओं से युक्त मुक्त वाली तथा समस्त दिग्ध कलेवर वाली यह शिवा चण्डल भाव से युक्त इस जन्तु के संहार कर्म में साक्षात् चण्डी हो गई थी । जो भृगु आदि महर्षि गए महालोक को प्राप्त हो गए वे भी संकटों ही ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आदि सब नष्ट-भष्ट हो रहे थे । महान् मय से ढरे हुए देव और असुर यक्ष—उरग और राक्षसों के सहित कुछ तो पाताल लोक में प्रवेश करने लगते हैं और कुछ गुफा आदि स्थलों में जाकर छिप रहे थे । वह देवी समस्त दिशाओं में व्याप्त होकर साक्षात् मृत्यु की ही भाँति स्थित हो गई थी । उस युग के क्षय करने वाले काल में वह देवी महादेवजी के द्वारा विशेष रूप से नियोजित की गई थी ॥४३-४६॥

एकापि नदया जाता दशधा दशधा तथा ।

चतुर्षष्टिस्वरूपा च शतरूपाद्गृहातिनी ॥५०



जज्ञे सहस्ररूप्यचलमकोटितनुः शिवा ।  
 नामाख्यायुधाकारानानादादानवाग्निणी ॥५१  
 एवंख्याग्भवद्देवीशिवस्यानुज्ञया नृपः । ।  
 दिक्षु सर्षासु गगने विकटायुषशोलितः ॥५२  
 रुन्धन्तो नश्यमानास्तान्यणा ताहेश्वराः स्थिताः ।  
 विश्वरन्ति तथा साद्वं शूलपट्टिशपाणयः ॥५३  
 सतो मातृगणाः केचिद्विनायकसर्षाः सह ।  
 व्यवर्धन्त महारौद्राजगत्स हारकारिण ॥५४  
 तनस्तस्या व्यवर्धन्त दद्यां कन्देन्दुसन्निभः ।  
 योजनानां सहस्राणि मयुतान्पशुं दानि च ॥५५  
 दृष्ट्वालि करंरुहा कूरास्तीक्ष्णारुच ककुंक्षाः ।  
 विमद्दिशो छिन्नन्त्येव मत्तद्वीपां वसुन्वराम् ॥५६

वह एक ही देवी नौ प्रकार की वन गई थी और वह एक-एक दस-  
 वध दस रूपों में हो गई थी । चौपट म्वरूपों वाली वह पतण्या और  
 अट्टहास करने वाली थी । फिर वह सहस्र स्वर्णों वाली हो गई और  
 वह शिवा सक्ष कर्णिके धारी के धारण करने वाली बन गई थी । उस  
 महादेवो के अनेक रूपों वाले प्रायुध के चित्रके विविध धारण के तथा  
 वह नामा माति से वाद्यों के करने वाली हो रही थी । हे मृग ! उस  
 समय में भगवान् शिव अनुशा से इस प्रकार के विभिन्न रूपों वाली बन  
 गई थी । आकाश में मनी दिशाओं में दिष्ट आयुधों के धारण करने  
 वाले महेश्वर के गण नश्यमान उन मदही दग्ध करने हुए स्थित थे ।  
 सुप्त पशुमा हविषाये को ग्रहण करके सभी देवों के साथ वे सह मण  
 विश्वरथ कर रहे थे । इसके अनन्तर कुछ मातृगण विनायक के मर्षों के  
 सहित महान् रौद्र रूप वाले इस षण के सहान करने वाले बढ़ गये थे ।  
 इनके परमात्मा उस देवी की दादों बढ़ गई थी जो कुन्द के पुष्प और मग्न  
 के सुव्य श्वेत थी । वे स्वामी अधिक बढ़कर हो गई थी जो सहस्रों—  
 मण्डलों और शतों मोजन सम्बो थी । उस देवी की दादों को पौक और

नाधून महात् क्रूर—तोदन तथा कर्कश ये जो घाकास—दिशाएं तथा सात द्वीपों बालो पृथ्वी पर मानो लेसन-सा कर रहे हों ॥१०-५६॥

तस्याद्दंष्ट्राभिसम्पातंश्चूणित्वावनपर्वताः ।

शिलासञ्चयसघाताविशीर्यन्तेसहस्रराः ॥५७

हिमवान्हेमकूटश्च निपथो गन्धमादनः ।

माल्यवाश्चवनीलश्च श्वेतश्चैव महागिरि ॥५८

मेरुमध्यमिलापीठं सप्तद्वीपं च सार्णवम् ।

लोकालोकेन सहित प्राकम्पत नृपोत्तम ॥५९

दष्टाशनिविस्पृष्टाश्च विशीर्यन्ते महाद्रुमाः ।

उत्पातंश्च दिशो व्याप्ताधोररूपं समन्ततः ॥६०

तारा ग्रहगणाः सर्वे ये च वैमानिका गणाः ।

शिवासहस्रं राकीर्णा महामातृगणैस्तथा ॥६१

सा चचार जगत्कृत्स्नं युगान्ते समुपस्थिते ।

ध्रुवदिभश्च प्रवृद्धिभश्च क्रोशदिभश्च समन्ततः ॥६२

प्रमथद्दिग्ज्वलद्दिभश्च रोद्रे व्याप्तादिशोदश ।

विस्तीर्णं शैलसंघातं विघूर्णितगिरिद्रुमम् ॥६३

प्रभिन्नगोनुरद्वार केशशुष्कास्थिसकुलम् ।

प्रदग्धप्रामनगरं भस्मपुञ्जाभिसम्भ्रुतम् ॥६४

चिताधूमाकुलं सर्वं त्रिलोक्य सचराचरम् ।

हाहाकाराकुलं सर्वं महह्रस्वननिस्वनम् ॥६५

जगदेतदभूत्सर्वं मशरण्यां निराधयम् ॥६६

उस घण्टी देवी की दाढ़ी के अभि सम्पातो के समस्त वन—पर्वत एक दम चूर्णित हो गये थे । सहस्रो शिवाओं के संघात जो कि सचित स्वरूप में एकत्रित थे विशीर्ण हो गये थे । हे नृपोत्तम ! यह ऐसा भीषण संहार का काल होता है कि उसमें हिमवान्—हेमकूट—निपथ—गन्धमादन—माल्यवान्—नीलगिरि—श्वेत गिरि—महागिरि—मेरु पर्वत मध्य—रत्नापोठ और अर्जुनों सहित साम द्वीप तथा लोकालोक के सहित सबके सब प्रकाशित हो गये थे । दाढ़ रूपी प्रमथि (व्यथ) से स्पर्श होये

ही महान् द्रुम भी विसीर्यं हो जलते थे । चारों ओर में घोर ल्पो वाले उत्पातो से सभी दिशाएँ व्याप्त हो गई थीं । तारा मण्डल-ग्रहगण और जो समस्त वैमानिक गण थे अर्थात् विमानों पर स्थित रहने वाले थे वे सब सहस्रो शिवाघों और मातृगणों से समाकीर्यं हो गये थे । उत पुत्र के अन्त काल के अगुपद्विवत् होने पर सम्पूर्ण जगत में वह विचरण करती थी । दश दिशाएँ अमणुशोभ—घोलने वाले—चीखने वाले—प्रमथन करने वाले और चलते हुए रौद्रों से व्याप्त हो गई थी । शंलों का सघात जहाँ पर विस्तीर्यं हो रहा था—गिरि—और द्रुम जियमे विचूर्णित हो गए थे—गो पुर द्वार जिममे विदीर्यं हो गये थे—बो केच पूर्व शुष्क भूमियों से संकुल ही गया था—जितने ग्राम और नगर जल मुनकर नष्ट हो गये थे—तो राज के डेरो से अन्नितवृत्त था, जहाँ पर शिवाघों की मूर्धा नरो हुई थी ऐमा सम्पूर्ण चराचर श्रंलोक्य ही गया था । सर्वत्र हा हाकार से आकुलता थी और सभी जगह 'अहह' इस ध्वनि की परिपूर्यता थी । इस प्रकार से सम्पूर्ण जगत निराश्रय वरष्य के ही गुप्त बन गया था ॥१७-६६॥

८८—सृष्टिसंहरणसरम्भवर्णन

ततो मातृसहस्रंश्च रौद्रंश्च परिवारिता ।  
 कालरात्रिजं गत्व हर्ते दीप्तलोचना ॥१॥  
 ततस्ता मातरो घोरा ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।  
 वाग्निन्प्राणलकोवेरा यमतोयेशसक्तया ॥२॥  
 स्कन्दकोडनृसिंहाना विचरन्त्यो भयानकाः ।  
 चक्रशूलगदासङ्गवज्रशक्त्यष्टिपट्टिभिः ॥३॥  
 सत्वाङ्गं ह्रमुकं दीप्तं व्यचरन्मातरः क्षये ।  
 उमासंनोविताः सर्वाप्रयावन्द्यो दिशोदश ॥४॥  
 तासाचरणविलोपेहं ह्काशोद्गारनिस्वर्तः ।  
 श्रंलोक्यभेतत्सहस्रं विप्रदग्धं समन्ततः ॥५॥

हाहारवाक्रन्दितनिस्वनैश्च प्रमिन्नरथ्यागृहगोपुरैश्च ।

वभूव घोरा धरणी समन्तात्कपालकेशाकुलकर्बुराङ्गी ॥६

यदेतच्छतसाहस्रं जम्बूद्वीपं निगद्यते ।

सर्वमेव तदुच्छन्नं समाधुष्य नृपोत्तम ॥७

धी मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् सहस्रों मातृगणों से तथा रीदो से परिवारित उस काल रात्रि ने जिसके बहुत ही प्रसोचन थे सम्पूर्ण जगत का संहारण किया। इसके पश्चात् उन परम घोर रूपो वाली मातृकाओं ने जो ब्रह्मा—विष्णु और शिव के स्वरूप वाली थीं तथा वायु—इन्द्र—धनत और कुबेर के रूप वाली थी तथा परम घोर पक्षी की शक्ति से सम्पन्न थी एवं स्कन्द क्रोध और नृमिहो के रूप में स्थित थी बहुत ही भयानक विचरण करती हुई चक्र—शूल—गदा—चङ्ग—बध्न—शक्ति—शृष्टि और पट्टियों से तथा सटबाङ्ग और दीप्त उत्मुखों युक्त होकर मातृगण क्षय करने में विचरण कर रहे थे। ये सब माताएँ उमा देवी के द्वारा भली भाँति प्रेरणा प्राप्त की हुई थी और दशों दिशाओं के प्रघावन (दोड़) करने वाली थी। उनके घरणों के विशेषों से तथा हुद्धारों के उद्धार की ध्वनियों से यह सम्पूर्ण त्रिसोक्य सभी ओर से विप्रदग्ध हो गया था। हा हाकार और आकन्दन के परम घोर शब्दों में—प्रकृष्ट रूप से क्षिप्र-भिन्न रथ्या, गृह और गोपुरों से यह सम्पूर्ण पृथ्वी सभी घोर में कपाल, केशों से समाकुल होती हुई विचित्र ही भङ्गों वाली हो गई थी। हे नृपोत्तम ! जो यह जम्बू द्वीप एक सौ सहस्र परिमाण वाला कहा जाता है वह सब समाधुषित होकर उत्पन्न हो गया था ॥१-७॥

जम्बु शकं कुशं क्रीञ्चं गोमेदं शाल्मलिस्तथा ।

पुष्करद्वीपसहिता ये च पर्वतवासिनः ॥८

ते भ्रस्ता मृत्युना सर्वे भूतं मातृगणंस्तथा ।

महासुरकपालैश्च मासमेदोवसोत्कटैः ॥९

महानादपर घोरैर्वीरुषीगन्धमोहितैः ।

ज्वाला सहस्रमम्ब्वीताविद्युज्ज्वलितकुण्डला ॥१०

रुधिरोद्गारघोणाङ्गीमहामायासुभीयणा ।  
 पिवन्ती रुधिरं तत्रपद्मानांनवसाप्रिया ॥११  
 कपालहस्ता विकटा भक्षयन्ती मूरामुखात् ।  
 मरयन्ती च हसन्ती च विपरोदा महारवा ॥१२  
 अलाङ्घ्यसन्त्रासकरो विद्वत्सफोटहार्सिनी ।  
 सप्तद्वीपसमुद्रान्तां गलपित्वा च मेदिनीम् ॥१३  
 ततः स्वस्थानमगमद्यत्र देवो महेश्वरः ।  
 नर्मदातीरमाथित्पावसन्मातृगणं सह ॥१४

जम्बू-द्वारु-कुश-क्रीञ्च-योमेद-शाकपति और पुष्कर द्वीपों के सहित जा भी पर्वत कासी वे वे सभी मृगु क द्वारा प्राप्त हा रये थे । तथा मृतगण-मातृगण-और कि महासुरों के अग्रिम-समूह-मांस, मैद, असा से उत्कट, महाद् बाध से उत्पर, परम और और वाष्पी की गन्ध से मोहित थे, इनके सहित सहस्रों उवालाधो से सम्बोध विखुत के समान उद्विग्न मुखवखो बालो-रुधिर क उद्गारों से जान अर्धों वाजी अत्यन्त भीषण स्वरूप बाली महा माया महा मांस और वसा से प्यार करने वाली रुधिर का पान कर रही थी । उद्य महामाया के हाथो ने कपाल या और वह अत्यन्त विकट स्वरूप बाली थी । समस्त सुरों और असुरों का भक्षण करती हुई-पुष्प करने वाली, प्रट्टहास करती हुई, परम विपरोत और महाद् वीष करन बाली थी । सम्पूर्ण बालोक्ष्य को मास देती हुई-विद्वुत क स्फोट के संगान भीषण हाम्य करने बाली उसने साठो द्वीप और समुद्र के अन्त तक सम्पूर्ण मेदिनी का भक्षण कर लिया था । इनके उपरान्त वह अपने रचान पर आ गई थी जहाँ पर साक्षात् देव महेश्वर विराजमान थे ; नर्मदा के तट का समाश्रय ग्रहण करके वह समस्त मातृगणों के सहित निवास करने लगी थी ॥१-१४॥

अमराभा कटे तुङ्गं मृत्यन्ती हसितानना ।  
 अमरा देवतः प्रोक्ता शरीरकटमुच्यते ॥१५  
 तं कटं उच्यते यन्मात्स्यवंतोऽयं नृपोत्तम ।  
 छिन्नभिन्नास्थिनिकरं वंशामेदोचक्षिनुस्तं ॥१६

अमरकट इत्येवं तेन प्रोक्तो मनीषिभिः ।  
 महापवित्रो लोवेपुशम्भुना सविनिमित्तः ॥१७  
 नित्य सन्निहिस्तत्रशङ्करोह्यु मयासह ।  
 ततोऽहं नियतस्तत्र तस्य पादाग्रस्तस्थितः ॥१८  
 प्रह्वः प्रणतभावेन स्तौमि तं नीललोहितम् ।  
 ततस्तालकसंपातं गणं मातृगणं सह ॥१९  
 सम्प्रनृत्यति संहृष्टो मृत्युना सह शङ्करः ।  
 खट्वाङ्गं रुत्मुकं श्चं व पट्टिशं परिघं स्तथा ॥२०  
 मांसभेदोवसाहस्ताहृष्टानृत्यन्तिसंघसः ।  
 वामनाजटिलामुण्डालम्बम्रीवोष्ठमूर्द्धजा ॥२१  
 महाशिशुदरभुजा नृत्यन्ति च हसन्ति च ।  
 विकृतं राननं घोरं मुञ्जोत्खणमुखादिभिः ॥ २

अमरो के तुङ्ग (उग्रत) बट में नृत्य करती हुई और हसित मुख वाली देवी थी । अमर देवों को कहा गया है और शरीर का बहा जाता है । हे नृषोत्तम ! यह पर्वत उन्हीं बलों से समावृत है जो कि बसा-मेह और रक्त से विप्लुत क्षिप्र-भिन्न अस्थियों के समूहों वाले थे । इसी कारण से महर्षियों ने दमना नाम अमरकट, यह कहा है । समस्त लोक के कल्याण चाहने वाले शम्भु देव ने यह महान् पवित्र निमित्त किया है । वहाँ पर भगवान् शम्भु जगज्जननी उषा देवी के साथ नित्य ही सन्निहित रहते हैं । तभी से मैं भी वहाँ पर ही उनके चरणों के अग्रभाग में अस्थित रहा करता हूँ । मैं परम विनोद होकर अत्यन्त विनम्र भाव से उन भगवान् नील लोहित प्रभु का स्तवन किया करता हूँ । फिर ताल के वृक्षों के सम्पात के समान सब मातृगणों के साथ भगवान् शङ्कर मृत्यु के साथ परम प्रसन्न होते हुए मनीषी मूर्ति नृत्य किया करते हैं । खट्वाङ्ग, रुत्मुक, पट्टिश, परिघों से युक्त, मांस, भेदा और बसा हाथों के लिए हुए, परम दक्षिण संघ में मातृगण नृत्य किया करते हैं । अन्य गण भी जिनमें वामन (बीना), अटापारी, मुच्छित, लम्बी गरदन वाले, लम्बे होठ और बेशीं वाले वे भी महान् शिशन, उदर और भुजाओं

वाले नृत्य करते हैं तथा हंसते हैं जिनके बहुत ही विकृत घोर मुख थे और जलवायु भुभाएँ तथा मुखों से वे युक्त थे । विपरीत ज्ञान के प्राप्त होने पर अमर को कष्टक उगहोने कर दिया था ॥१५-२२॥

अमर कण्ठकं चक्रुः प्राप्तेकालविषयंये ।  
तेषां मध्ये महाघोरं जगत्सन्नासकारणम् ॥२३

मृत्युं पश्यामि नृत्यन्तं तडित्पिङ्गलमूर्द्धजम् ।  
सस्य पादर्वे स्थितां देवीं विमलाम्बरभूषिताम् ॥२४

कुण्डलोद्घुष्टगण्डा ता नागयज्ञोपवीतिनीम् ।  
विविधं रूपहारंश्च पूजयन्ती महेश्वरम् ॥२५

अपश्य नर्मदा तत्र मातरं विश्ववन्दिताम् ।  
नानातरङ्गां चावर्तां सुवेल्लापं वसन्निभाम् ॥२६

महासरः सरित्वातं रदस्या दृश्यरूपिणीम् ।  
वन्द्यमानां सुरैः सिद्धं मुनिषट् षं षभारत ॥२७

एतस्मिन्नन्तरे घोरा सप्तमस्तकसञ्ज्ञिताम् ।  
महावीच्यौघकेनाढ्या कुर्वन्ती सजलं जगत् ॥२८

उन्हीं सबके मध्य महान घोर और जगत के सन्नास का कारण रूप, विकृत के तुल्य पिगल वर्ण वाले केशों से युक्त कृत्य करते हुए मृत्यु की दशा है । उन्हीं के पार्श्व भाग में स्थित परम स्वच्छ वस्त्रों से विभूषित, कुण्डलों से उद्घुष्ट गण्ड स्वलों वाली-नागों के यज्ञोपवीत धारण करती हुई—विविध रूपहारों के द्वारा महेश्वर भगवान को पूजती हुई विश्व के द्वारा वन्दित नर्मदा माता की भी वहाँ पर देने देखा था जिसमें नाना रंगों की तरंगें समुद्रियत हो रही थी, पादलों से युक्त थी तथा सुवेल्लाप में अर्णव (समुद्र) के तुल्य थी । महाद्वार और सरिताओं के पाती से महदया, दृश्य रूप वाली सुरगणों से वन्द्यमान तथा सिद्ध और मुनियों के सघों द्वारा हे भारत ! वन्दनीय थी । इसी अन्तर में सप्तमस्तक सज्ञा (नाग) बाला, परम घोर महाद्वार बीची (लहर) के भोग (समुद्राय) घोर फँतों से समन्वित नर्मदा देवी को देखा था । जो सम्पूर्ण जगत को जल से युक्त कर रही थी ॥२३-२८॥

दृष्टवान्मर्दां देवी मृगकृष्णाम्बरां पुनः ।

सधूमाशनिनिहर्दिर्वतन्ती सप्तदा तदा ॥३१

इति संहारमतुलं दृष्टवाग्नाजसतम ।

नष्टचन्द्रार्ककिरणमभूदेतच्चराचरम् ॥३०

महोत्पानसमुद्भूतंनष्टनक्षत्रमण्डलम् ।

अलातचक्रवत्सूर्यमशेषंभ्रामयस्ततः ॥३१

विमातकोटिसकीर्णं मकिन्नरमहोरगः ।

महावातसनिर्घातोपेनाकम्पञ्चराचरम् ॥३२

रुद्रधक्त्रास्समुद्भूतःसम्बर्तोनामविश्रुतः ।

वायु सप्तोपयामासविततन्सप्तसागरान् ॥३३

उदधूलिताङ्ग कपिलाक्षमूर्द्धजो जटाकलापैरववद्धमूर्द्धजः ।

महारयोदीप्तविशालशूलधृक्मपानुयुष्माश्चदिनेदिनेहरः ॥३४

शूलो घनुष्मान्केवची किरीटी श्मशानभस्मोक्षिसवगात्रः ।

कपालमालकुलाकण्ठनालो महाहिसूत्रैरववद्धमौलिः ॥३५

वह देवी नमंदा मृग का कृष्ण वर्ण वाला अम्बर धारण कर रही थी । उस समय मे घूम खोर अशनि ( बज्र ) के निहर्दा के सहित सात भेदों से बहान कर रही थी । हे राजमन्त्र ! इस तरह से मैंने प्रवृत्तित संहार देखा था जिसमें चन्द्र और सूर्य की किरणों भी नष्ट हो गई थी ऐसा यह चराचर जगत् हो गया था । महान् उत्पात मे समुत्पन्न विनाश से सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल विनष्ट हो गया था । इसके उपरान्त इस सम्पूर्ण विश्व को अलात ( जलती हुई लकड़ी का अङ्गारा ) के चक्र के समान घीघ्रता से घ्रामित करते हुई किन्नर और महान् उरगों के सहित बरोटो विमानों से सङ्कीर्ण घोर निर्घातों से युक्त महावात चलने लगा था जिसने इस चराचर जगत् को प्रकम्पित कर दिया था । यह रुद्र देव के मुत से समुत्पन्न हुआ था और सम्बर्त इस का नाम प्रसिद्ध था । इस वायु ने फंसे हुए विशाल साग्री सागरों को अच्छी तरह से शोषित कर दिया था । जिसके अङ्ग मत्स्य से उद्भूतित हो रहे हैं—कपित्रवणों के नेत्र और जिन के भेज हैं, जिन्होंने जटाओं के कलापो से बेटों को बाँध रक्खा है—



महान् धोप से युक्त और परम दीप्त एव विद्यात विमूढ को धारण करने वाले यह भगवान् हर बिन प्रतिबिम्ब भाषको रक्षा करे । भगवान् शूल के धारण करने वाले हैं—धनुष भी धारण करने हुए हैं—कवच धारण मस्तक पर किरीट पहिने वाले हैं । स्वर्गान की भस्म से जिनके समस्त मङ्ग लक्षित हैं । बिन्दुके कपालों ( नर सुखी ) की माना से अपने कण्ठ नाम की सभाकीर्ण कर रक्ता है और वे भगवान् शिव महान् सर्पों के मुख से अपने मस्तक को प्रवृत्त करने वाले हैं ॥२६-३५॥

स गोनसोषे, परिवेष्टित्वाङ्गो विपाग्निचन्द्रामरमिन्दुमोति ।  
 पिनाकखट्वागकरालपाणि म कुत्तिवासा इमह्यणाद ॥३६॥  
 स सप्तलोकान्तरनिःसृतात्मा महामुन्नावेष्टितसंवेगात् ।  
 तैत्रेण सूर्योदयसन्निभेन प्रवालकाकूरनिभोदरेण ॥३७॥  
 सन्व्याभ्ररक्षोत्पलपद्मस्यसिन्दूरविधु व्यकराक्षणेन ।  
 तप्तेन लिगेन च लोचनेन चिक्रीडमानस्युगान्तकामे ॥३८॥  
 हिरण्ययेर्नय समुत्सृजन्सदम्बेन यद्वदनगवान्समेरु ।  
 पादाग्रविक्षेपविशालशैला कुर्वन्जगत्सोऽपि ब्रह्म तम ॥३९॥  
 सहर्तुं कामस्त्रिदिव त्वशेषं प्रमुञ्चमानो विकृताट्टहामम् ।  
 जहार सर्वं त्रिदिव महात्मा सक्षोभयन्त्रै जगदीश एका ॥४०॥  
 तं वेवमीधानमज वरेण्य दृष्ट्वा जगत्संहारण महेशम् ।  
 सा कासरारिः सहमातृमिष्वगमाञ्चतवेक्षिबभञ्चयन्ति ॥४१॥  
 मन्दी च भृ गी च मणादपञ्च तं सर्वभूत प्रणमन्ति वेदम् ।  
 जगद्धरं सषेजन्स्य कारणं हर तमारारतिमहनिश से ॥४२॥

सृष्टि के संहारण काम से भगवान् शम्भु के स्वरूप रूप वर्णन किया जाता है कि वे जो सर्पों के समूह से परिवेष्टित प्रकृतो वाले हैं । मस्तक से जिनके विष की अग्नि—चन्द्रदेव और अमर सिन्धु ( मङ्गा ) विराजमान हैं । शरों से भगवान् शम्भु पिनाक धनुष और खट्वाग धारण करने वाले हैं । गण धर्म के मदन धारण करने वाले तथा इमरु के प्रणाद युक्त हैं । यह प्रभु सात लोकों के अमरर निनृण साम्या वाले हैं तथा वह भुजाओं से वेष्टित मात्र बलि हैं । प्रवालकाकूर सहस्र मध्य भाग धारण सूर्योदय क

सुख नेत्र से उपलसित है । युगान्त काल में वह प्रभु सख्या कालीन मेव—रक्तमल—एकराग—तिन्दूर और विद्युत् के प्रकर समान प्रकाश तप्त लिंग से और सोचन के द्वारा क्रीडा करने वाले थे । भगवान् को ही नानि मेरु हिरण्य दण्ड से ही समुत्पन्न करता हुआ वह भी पाशो के अप्रमाणा शीलों को विशीर्य करवा हुआ वहीं पर बना गया था । महात् आत्मा वाले वह एक ही जगदीश सम्पूर्ण त्रिदिव के संहार करने को कामना वाले अत्यन्त विदार युक्त ग्रहहास को धुँडने हुए समस्त त्रिदिव को युक्त करते हुए उन्होंने सबका हरण किया था । उन ईशान—प्रब—घरेण्य देव का जो महेश इस जगत् के संहार करने वाले हैं, दर्शन करके वह कालरात्रि सावृणो के साथ तथा समस्त धन्य गण सभी भगवान् शिव का समर्पण किया करते हैं । नन्दी—नृ गी और वे सब अन्य गण अहर्निश उन सर्व भूत देव को प्रणाम किया करते है जो इस जगत् मे परम षष्ठ है—सभी जनों के कारण हैं—कामदेव के भस्न करने वाले हर हैं ॥३६-४२॥

### ८६ — ब्रह्मकृतशिवस्तुतिवर्णन

समावृभिर्भूतगणंश्च धोरैर्वृतः समन्तास्स ननतं शूली ।  
 गजेन्द्रचमावरणे वसानः संहर्तुं कामश्च जगत्समस्तम् ॥२  
 महेश्वरः सर्वसुरेश्वराणां मन्त्ररत्नेर्करवद्वमाली ।  
 मंदोवसारक्तविचचिताङ्गस्त्रलोच्यदाहे प्रणतत शम्भुः ॥३  
 न कालरात्या सहितो महात्मा काले त्रिलोको सक्त्वां जहार ;  
 सम्बतंकास्य. समहानुभाव दम्भुमहात्मा जगतो वरिष्ठः ॥३  
 स विस्फुलिगोत्करधूममिथं महोत्कवच्चाशनिवात्ततुल्यम् ।  
 ततोऽट्टहासं प्रभुमोच धोरं विवृत्य वक्त्रं बडवामुखाभम् ॥४  
 सहस्रवज्राशानिसन्निभेन तेनाऽट्टहासेन हरोद्गतेन ।  
 आपूरितास्तत्र दिशोदर्शवसक्षोभिताः सर्वमहाणंवाश्च ॥५  
 स ब्रह्मलोकं प्रजगाम शब्दो ग्रहाण्डभाण्डं प्रचञ्चाल सर्वम् ।  
 किमेतदित्याकुलचेतनास्ते वित्रस्तस्था ऋषयो बभूवुः ॥६

प्रणम्य सर्वे सहस्रैव भीता ब्रह्माण्मुक्षुः परमेश्वरेशम् ।

भीताश्च सर्वे श्रेयमस्ततस्ते सुरामूर्च्छं च महोरगैश्च ॥७॥

महामहर्षिवर श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—बहू भयवान्, शून्यकारी पराग पोर भूयगणों तथा मातृगणों से पारों और समावृत्त होकर उस समय में साण्डव नृत्य बहुत ही प्रसन्न होकर किया करते हैं, उस नृत्य के समय में वे गजेन्द्र के धर्म का भाषरण विमं हुए इन सम्पूर्ण सृष्टि जगत् का सहार करने की इच्छा रखते हुए अपने नियत कर्तव्य कर्षिपोसन समय को पाकर ध्यानमें मग्न हो नृत्य किया करते हैं ॥१॥ सब मृत्यु के भी ईश्वरों के धर्मकर्मनों से अब ब्रह्मसानी भगवाद् महेश्वर शम्भु इस जनोपय के दाह करने में मेदा—वसा—रक्त से घणित जगो वाले नृत्य किया करते थे ॥२॥ उन श्शु महात्मा ने उच्च जातरात्रि की सहायता से युक्त होकर उस समय में इस समस्त त्रिलोकी का सहार कर दिया था । सम्पूर्ण नामधारी—दम जयन् के सर्वं श्रेष्ठ सहानुभाव—महाद् आत्मा वाले शम्भु ने विस्फुर्निगों क समुदाय और वूम से मिश्रित—महोत्का वस धनि और धात के तुल्य प्राप्तत पोर सर्व प्रथम धरते बहवा क मुख की जाभा वाले समान आभा वाले मुख का फेनाकर महृहास किया था । वह उनका समुत्पिन्व परम भौषण महृहास सहस्रो वस्यपात और अक्षित सभात क सहस्र था । उससे दसो दिलाए भर गईं थी और ममहर सापर लक्ष्म युक्त हो गये थे । सब एक दम महृहास से हलनल स्वार्थ थी । वह उनके महृहास का दरद प्रह्लासोक्त तो पहुँच गया था और उनसे सम्पूर्ण महृहास भाष को विचलित कर दिया था । यह क्या परम धार स्वनि है जिसका इसका प्रबल प्रभाव छा गया है—इस स्वयं सम्मन्वित विचार में बुद्धि और चेतना की सों बँडने धानि समस्त ऋषिनाथ भयभीत हो गये थे । सब से अतिशय बरे हुए सबने सहसा ही परमेश्वरेश श्रीब्रह्माजी से प्रणाम करने कहा क्योंकि उच्च समय में सुर समुर और महोरगा के सहित सभी ऋषिगण सब से परम विभक्त हो रहे थे ॥१-७॥

विद्युरप्रभाभासुर भीषणागः क एष चिकीर्षति भूतलस्थ ।

कालानल नाशनिद दधानो यस्याद्दृष्टानेन जगद्भिमूढम् ॥८॥

विश्वस्तरूपं प्रवभो क्षणेन संहतुं मिच्छेत्किमय त्रिलोकीम् ।  
 सार्धैर्वयसा सप्तभिरणंवंश्च जनस्तपः सत्यमभिप्रयाति ॥९  
 संहतुं कामो हि क एष देव एतत्सन्स्तं कथयाऽप्रमेय ।  
 न दृष्टमेतद्विषम कदापि जानासि तत्त्वं परमो मतो नः ॥१०  
 निशम्य तद्वाक्यमथावभाषे ।

ब्रह्मा समाश्रित्य मुरादिसंघान् ॥११

स एष कालस्त्रिदिवं त्वशेषं  
 संहतुं कामोजगदक्षयात्मा ।  
 पूर्णं च क्षते परिवत्सराणां  
 भविष्यतीशानविभुर्न चित्रम् ॥१२

सम्बत्सरोऽस्य परिवत्सरश्च  
 उद्वत्सरो वत्सरएष देवः ।  
 दृष्टोऽप्यदृष्टः प्रहुतः प्रकाशी  
 स्थूलश्च सूक्ष्मः परमाणुरेपुः ॥१३  
 नातः परं किञ्चिदिहाऽस्ति लोके  
 परापरोऽस्य प्रभूरात्मवादी ।

तुष्येत मे कालसमानरूप  
 इत्येवमुक्त्वा भगवान्सुरेशः ॥१४

सनत्कुमारप्रभुर्नैः समेतः ।

सन्तोषयाभास ततो यतात्मा ॥१५

हे ब्रह्मन् ! विद्युत की प्रभा के सदृश भागुर एवं महान् भीषण अंग  
 वाला भूतल मे समक्षित यह वीर है जो ऐसी क्रीडा कर रहा है ?  
 यह तो कालानल शरीर को धारण करने वाला है जिसके केषल इस  
 महान् अट्टहास से ही यह सम्पूर्ण जगत् विमूढ हो गया है ॥१॥ यह भ्रमन  
 परम विश्वस्त रूप से मुक्त शोभित हो रहा है । क्या यह इस समय में  
 समस्त त्रिलोकी के सहार करने की इच्छा कर रहा है । याके ही साथ  
 पीर सारो प्रार्थो के संहित जनलोक और तपलोक सायलोक को जा रहे  
 हैं । यह इस प्रकार से इस त्रैलोक्य के सहार करने की इच्छा वाला है

देव । कौन है । हे भद्रमेव । आप कृपा करके यह सम्पूर्ण वृत्तान्त हमको बतलाइये हम लोगों ने ऐसी विषमता अभी तक पहिले कभी भी नहीं देखी थी—आप ही इसका पुरुषोत्तम जानते ही हैं । हमसे आपको ही सर्वोपरि समझते हैं । देवियों के इस वृत्तान्त की सुनकर प्रज्ञात्री ने सुर आदि के पूरे समूह को समावेशन देते हुए कहा था—श्रीशुभाक्षी ने कहा— यह वह ही काय है जिसमें अक्षय माय्या वाले प्रभु हम सम्पूर्ण जगत् की धीर त्रिदिश को संहार करने की इच्छा वाले हुए करते हैं । परिवन्तरों के अर्थात् विन्ध्य वर्षों के पूरे से ही जाने पर यह ईशान विष्णु इसी प्रकार के स्वरूप वाले ही जायेंगे—इसमें कोई भी विचित्र बात नहीं है । ऐसा सा हुआ ही करता है । यह मन्वन्तर है—परिवन्तर है—उद्भव्यर है और यह देव वन्तर है । यह दृष्ट भी घट्ट है—प्रहृत—प्रकाशी—स्फुर—सुदम और यह परगु है । यहाँ पर इसमें पर कुछ भी नहीं है । नीक में यह परापर आत्मवादी प्रभु है । काल के समान रूप मुझे सन्तुष्ट करता है । इतना इस प्रकार से कहकर भगवाद् सुरों के ईश्वर सुनस्कृमार जिनमें प्रभुत्व है उनके समेत तब यह यत्नात्मा सम्भारित हुआ था ॥८-११॥

नमोऽस्तु सुर्वाय सुधान्तमूर्तये  
ह्यधोरक्षाय नमोभमस्ते ।  
सर्वोत्तमे सद नमोनमस्ते  
महात्मने भूतपते नमस्ते ॥१६

ओंकारह कारपरिष्कृताय  
स्वधावपट्कार नमोनमस्ते ।  
गुणत्रयेशाय महेश्वराय ते  
प्रदीपमाय त्रिगुणात्मने नमः ॥१७

त्व स करस्त्वहं हि महेश्वरोऽसि  
प्रधानमग्रधं स्वममि प्रबिष्ट ।  
त्वं विष्णुरीक्ष प्रपितामहश्च  
स्व सप्तजिह्वस्त्वमनन्तजिह्वः ॥१८

स्रष्टाऽसि सृष्टिश्च विभो त्वमेव  
 विश्वस्य वेद्य च परं निधानम् ।  
 आहुद्विजा वेदविदो वरेण्यं  
 परात्परस्त्वं परतः परोऽसि ॥१९  
 सूक्ष्मातिसूक्ष्मं प्रवदन्ति यच्च ।  
 वाचो निवर्तन्तिमनो यतश्च ॥२०

श्रीब्रह्माजी ने कहा—परम शान्ति मूर्ति वाले सर्व के लिये नमस्कार है । अघोर स्वरूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है । हे सर्व ! सबकी आत्मा आपके लिये बारम्बार नमस्कार है । हे समस्त भूतो के स्वामिन् महान् आत्मा वाले आपके लिये नमस्कार है । हे स्वाहा—स्वप्ना और वषट्कार स्वरूप वाले । आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है । तीनो गुणों के स्वामी—त्रयोमय—त्रिगुणात्मा महेश्वर आपके लिये नमस्कार है । आप एकद्वार हैं अर्थात् कल्याण करने वाले हैं । आप महेश्वर हैं—सर्वोत्तम प्रधान भी आप ही हैं और प्रविष्ट हैं । आप ही विष्णु हैं—ईश हैं और आप ही प्रथितामह हैं । आप सप्तत्रिंशद् और अनन्त त्रिंशद् हैं । हे विभो ! आप ही इस विश्व के जानने के योग्य परम निधान हैं । वेदों के ज्ञाता द्विज आप को वरेण्य कहते हैं । आप पर से भी पर हैं जिसको सूक्ष्म से भी प्रति सूक्ष्म कहने हैं और जिससे मन और वाणी भी निवृत्त हो जाया करते हैं ॥१९-२०॥

त्वया स्तुतोऽहं विदिषंश्च मन्त्रः  
 पुष्पाणि शान्ति तव पश्योने ।  
 ईक्षस्व मा लोकमिमं ज्वलन्तं  
 बभ्रुरनेकैः प्रसभं हरन्तम् ॥२१

एवमुक्त्वा स देवेशो देव्या सह जगत्पतिः ।  
 पितामह समाश्वास्य तत्रैवाञ्तरधीयत ॥२२

इदं महत्पुण्यतमं वरिष्ठंस्तोत्रं निशम्येह गतिं लभन्ते ।  
 पापैरनेकैःपरिवेष्टिता ये प्रयान्ति रुद्र विमलंविमानैः ॥२३

भयं च तेषां न भवेत्कदाचित्  
पठन्ति ये तात इदं द्विजाप्रधा ।

सङ्घमत्रौराग्निवने तथाऽग्नौ  
तेषां सिद्धमप्राप्तिं न सशयोऽग्र ॥२४

श्रीमहाशिवजी ने कहा—हे पपशोने ! प्रापने अनेक मन्त्रों के द्वारा सस्तवन किया है । मैं पापकी क्षान्ति का पोषण करता हूँ । अनेक मुण्डों के द्वारा मन्त्राद् महत्त्व करने वाले मुझको घोर जलते हुए जोक को देखो । इस प्रकार से यह समस्त जगत् पति शैवदेव देवी के माय कहकर पितृमह को समाश्वासान देकर वहीं पर मन्त्रहित होयवे वे । यह महान् तम और स्थित स्तोन है । इन लोक में इसका भजन करके मनुष्य सद्गति का प्राप्त होते हैं । जो मनुष्य अनेक पापों से परिबेष्टित रहा करते हैं वे भी परम विषमों पर समाश्रय होकर उनके द्वारा इन्द्र लोक में यमन किया करते हैं । हे तात ! जो श्रेष्ठ द्विजवर्ण इसका पठ किया करते हैं । किन्तो भी समय में कोई भी भय नहीं हुआ करता है । अथवा स्वयं में—सौर्गों के द्वारा उपस्थित भय में—अग्नि काण्ड में—वन में तथा सपुत्र में इस मन्त्र के पाठ करने वालों को भयवाद् शिव स्वर्ग परिप्राप्त करते हैं—इसमें बिल्कुल भी संशय करने का कोई अवसर ही नहीं है ॥२१-२४॥

२०—द्वादशादित्यरूपेण जगत्सहरणवर्णन

एवं सस्तूयमानस्तु अह्नाद्यं गुं निपुङ्गवः ।

अह्नलो जगत्स्तय मञ्जहार जगरप्रभु ॥१

स तद्ग्रीमं महारीद्र दक्षिण वक्त्रमव्ययम् ।

महाद द्रोत्कटाशयं पातालतलसन्निभम् ॥२

विद्युज्ज्वलनपिगाक्षं भैरवं लोमहर्षणम् ।

महाबिह्वं महाद द्रु महासर्पधिरोधरम् ॥३

महानुरशिरोमालं महाप्रलयकारणम् ।

असत्समुद्रनिहितवातवारिमयं हविः ॥४

वडवामुखसद्द्वारां महादेवस्य तन्मुखम् ।  
 जिह्वाग्रेण जगत्त्रयं लेलिहानमपश्यत् ॥५॥  
 योजनानांसहस्राणिसहस्राणांशतानिच ।  
 दिशोदशमहाघोराभांसमेदोवसोत्कटाः । ६  
 तस्य दंष्ट्राव्यवर्धन्तशतशोऽप्य सहसराः  
 सासुरान्मुर्गरन्धं वान्तयक्षोरगराक्षसान् ।  
 यस्य दंष्ट्राग्रानलम्वान्त ददर्श पितामहः  
 दन्तयन्त्रान्तसम्बिष्टं दिचूर्णितशिरोधरम् ॥७॥

महर्षि प्रवर थोमान् श्रेयसो ने कहा—इस प्रकार से संस्तवन किये गये प्रभु ने जो कि ब्रह्मा आदि मुनि श्रेष्ठो ने ब्रह्मात्तोरु मे समुपस्थित होकर शिव को बहुत स्तुति की थी सब सम्पूर्ण जगत् का संहार कर दिया था ॥१॥ उस सहरण करने के अवसर पर मबने भगवान् शिव का महान् रौद्र स्वरूप का दर्शन किया था वह रूद्र का स्वरूप अत्यन्त भयानक, दक्षिण दशन, अध्वय, बड़ी दाढ़ी वाला, उत्कट धीप से सयुत और पाताल तल के तुल्य था ॥२॥ विद्युत् और अग्नि के सदृश तीन नेत्रों वाला महान् भैरव एव रोमाञ्च छड़े कर देने वाला वह स्वरूप था । महान् जिह्वा से युक्त—महा विकराल दाढ़ी वाला और बड़े २ विशाल सों को गिर पर धारण करने वाला शिव का स्वरूप था ॥३॥ बड़े २ असुरों के मुण्डों की माला को धारण किये हुए, महा प्रलय का कारण स्वरूप, प्रसते हुए समुद्र मे निहित वायु और अल से परिपूर्ण देवि, बड-धाग्नि के मुख के तुल्य मुख वाला थोमहादेव का मुख था । उस मुख को जिह्वा के अग्रभाग से इस समस्त जगत् को घाटने दृष्ट देखा था । भगवान् पितामह ने देखा था कि सैकड़ों और सहस्रों योवन दशो दिशाएं जो महान् घोर थी और भांस, मेदा और वसा से उत्कट थी तथा सुर, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग और राक्षस सहस्रो की सख्या मे महादेव की दाढ़ी के अग्रभाग मे सलग्न हो रहे थे । सम्पूर्ण यह जगत् उनके दाँतों के यन्त्र मे घन्दर प्राविष्ट होता हुआ शिरोधरों से युक्त चूर्णित हो रहा था ॥४-७॥



जगत्प्रख्यामि राजेन्द्रविश्वान्त व्यादिते मुखे ।

नानातरंगमंगनामहाकैनोपसंकुलाः ॥४

यथा नद्यो ज्यं धान्ति समुद्रं प्राप्य सस्वनाः ॥५

तथा ततं विश्वमिदं समस्तमनेकजीवाणंबहुविगाह्यम् ।

विवेश हृद्रस्य मुखं विशालं ज्वलत्तदुग्रं धननादधोरम् ॥६०

ज्वालास्ततस्तस्य मुखात्सुषोराः ।

सविस्फूर्तिगा बहुलाः समूहाः ।

अनेकरूपा ज्वलनप्रकाशाः ।

प्रदोषयन्तीव विशोर्गखिलाश्च ॥११

ततो रविज्वालासहस्रमालि

वभूववक्त्रं चलजिह्वदृष्टम् ।

महेश्वरस्यादसुतरूपिणस्तवा

स द्वादशात्मा प्रवभूव एकः ॥१२

ततस्त्वे द्वादशादित्या रुद्रवक्त्रादिनिर्गताः ।

वायित्य दक्षिणामाशा निर्दहन्तो वमुन्वरात् ॥१३

हे राजेन्द्र ! इस सम्पूर्ण जगत् को भगवाद् शिव के फैलाये हुए मुख

में प्रवेश करते हुए देखता हूँ । अनेक नहरों के मञ्जाङ्गों वाली ओर नहर

कैनों के समुदाय से निकल प्वनियुक्त नदियाँ त्रिषु प्रकार से समुद्र में प्राप्त

होकर तप को प्राप्त हुआ करती हैं उसी भाँति अनेक जीवों के सागर से

दुविगाह्य ( न पार होने के योग्य ) यह परम विशाल समस्त विश्व मेघ के

समान परम धीर भगवाद् शिव के मुख की ज्वालाएँ प्रत्यन्त

मुख में प्रवेश कर गया था । उन भगवाद् शिव के मुख की ज्वालाएँ प्रत्यन्त

धीर रूप वाली—धूम से धीर प्रग्नि कणों से युक्त विशाल रूप में निकल

रही थी । उन ज्वालाओं के नाना भाँति के स्वरूप ये धीर वे प्रग्नि के ही

दुत्य प्रकाश वाली थी जो कि सभी दिशाओं को प्रदीप्त—की कर रही थी ।

इसके अनन्तर वृत्त मदुत्त रूप वाले महेश्वर प्रभु का मुख सूर्य की सहायों

ज्वालाओं की भाँसा बना हो गया था जिनमे जिह्वा धीर दाढ़े बध रही

थी उस समय में धारह स्वरूपों वाले श्री शिव एक ही रूप वाले हो गये

ये । इसके पश्चात् रुद्र के मुख से द्वादश आदित्य विनिर्गत हुए थे जो दक्षिण दिशा का समाधम ग्रहण करके इस सम्पूर्ण भूमि का निर्दहन करने वाले थे ॥८-१३॥

भोम यज्जीवनकिञ्चिन्नानावृक्षतृणालयम् ।

शुष्कं पूर्वं मनावृष्ट्यासकलाकुलभूतलम् ॥१४

तदीप्यमानं सहसा सूर्येस्तं रुद्रसम्भवेः ।

धूमाकुलमभूत्सर्वं प्रणष्टप्रहतारकम् ॥१५

जज्वाल सहसा दीप्तं भूमण्डलमशेषता ।

ज्वालामालाकुलं सर्वं मभूदेतच्छराचरम् ॥१६

सप्तद्वीपसमुद्रेषु सरित्सु च सरस्सु च ।

अग्निरत्ताजगत्सर्वं माज्याहुतिमिवाध्वरे ॥१७

विशालतेजसा दीप्तामहाज्वालासमाकुला ।

ददद्हुर्वजगत्सर्वं मादित्यारुद्रसम्भवाः ॥१८

आदित्यानां रश्मयश्चसस्पृष्टा वं परस्परम् ।

एवं ददाहभगवांस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१९

सप्तद्वीपप्रमाणस्तुसोऽग्निभूत्वामहेश्वरः ।

सप्तद्वीपसमुद्रान्तानिर्ददाह वसुन्धराम् ॥२०

सुमेरुमन्दरान्तां च निर्दद्हुर्वसुधातदा ।

भिरवा तु सप्तपातालनागलोकततोऽद्दहत् ॥२१

इस भूमि पर रहने वालों का जो भी जीवन था जिनका कि अनेक वृक्ष, वृण आदि निवास स्थान थे वह पहिले तो अनावृष्टि होने से शुष्क हो गया था और समस्त मूलतः सूखा से समाकुल हो उठा था फिर वह सम्पूर्ण पृथ्वी तल रुद्र देव से समुत्पन्न चन्द्र सूर्यो से सहसा दीप्यमान हो गया था समस्त भूमि भाग धूँआ से समाकुल हो गया था और सम्पूर्ण ग्रह तथा तारागण नष्ट हो गये थे । सहसा पूरा मण्डल दीप्त होकर जल गया था और यह समस्त चराचर ज्वालामो की मालाओं से आकुल हो गया था । सार्वो द्वीपो वाले समुद्रों में—सर्व सरिताओं में और सरोवरों में है सम्पूर्ण

जगत् को अग्नि यज्ञ में घृत्न की आहुति के समान भक्षण कर रहा था । परम विशाल तेज से प्रदीप्त—महादेव ज्वालाओं से समाकुल—रुद्रदेव से समुत्पन्न आदित्यों ने इस सम्पूर्ण जगत् को दहन कर दिया था । भगवान् ने इस खट—वज्रम शूलोत्पन्न को इस प्रकार से जला दिया था कि आदित्यों की किरणों परस्पर में भली भ्रति स्पष्ट हो गईं थीं जर्षात् एक दूसरे से मिल गयीं थीं । वह महेश्वर भगवान् सात द्रापो के प्रमाण वाला अग्नि स्वरूप हो ही गया था । या सात द्रोप और समुद्रों के पान्थ पर्यन्त इस मन्त्र वपुस्वर को जलाकर दहन कर दिया था । उस समय मे सुमेरु पर्वत से लेकर मन्दराचल पर्यन्त इस भूमि को दहन कर दिया था फिर सात पातालों का भेदन करके नागलोक को भी दहन कर दिया था ॥१४-२१॥

भूम्यथः सप्तपातालान्निदं हं स्तारकः सह  
चचारग्निः समन्तात्तुनिदं हन्वंयुविष्ठिर ॥२२

धम्यमान इवागारं लोहराग्निरिवज्वलन् ।  
तयात्प्राज्ज्वलत्तन्मर्वसम्बलान्निप्रदीपितम् ॥२३

निवृक्षा निस्तृणा भूमिनिनिभं रसरसरि ।  
विशीरान्छंशृ गोधा कृगंपृष्ठोपमाग्भवत् ॥२४

ज्वालामालाकूलं कृत्वा जगत्सर्वं चिदात्मकम् ।  
महारूपधरो रुद्रो व्यतिष्ठत् महेश्वरः ॥२५

समातृगणभूयिष्ठा सपत्नीरगराक्षमा ।  
ततो देवी महादेवं विवेश हरिलोचना ॥२६

निर्वाण परमापन्ना शान्तेव चित्तिनःशिक्षा ।  
जगत्सर्वं हि निदं ग्वं त्रिभिलोकैः सहान्नय ॥२७

रुद्रप्रसादान्मृक्त्वा मा नर्मदां चाप्ययोनिजाम् ।  
युगानामयुतं देवो मया चादय युमुक्षणात् ॥२८

हे युविष्ठिर ! पातालों के सहित भूमि और अयोमान में सातों पातालों को निदंन करते हुए चारों ओर दाह करते हुए वह अग्नि संचरण करने लगा था । अगारों से घायमान को मौत तोहरादि की

तरह जलते हुए उसने सम्बर्त्तानि से प्रदोषित सबको प्रज्वलित कर दिया था । उस समय मे इस भूमि की ऐसी दशा हो गई थी जैसे किमी कूर्म (कृष्णभ्रा) की पीठ हो । भूमि पर एक भी कहीं वृक्ष नहीं रहा था—तृण नाम मात्र को नहीं था । न कोई ऋत्ना—घर घोर सरिता हो थी । सब पर्वतों की षोटियाँ टूट-पूटकर गिर गई थी । इस सम्पूर्ण जगत को जो कि विदात्मक या ज्वालाओं की मात्साओं से समाकुल करके महान् रूप के धारण करने वाले महेश्वर समस्थित हो गये थे । बहुत-सी मातृगणों की पत्नियों से युक्त और यक्ष उरग तथा राक्षसों के सहित हरिलोचना देवी ने महादेव मे ही प्रवेश कर लिया था । हे अनघ ! तीनों लोकों के सहित सम्पूर्ण जगत को निर्दग्ध कर दिया था घोर फिर शिखी की शिखा की तरह घान्त होती हुई परम निर्वाण को प्राप्त हो गई थी । अयोनिजा नर्मदा मुम्बुकी रुद्र के प्रसाद से मुक्त करके आज पुम्बुक्षण से भेरे द्वारा दश सहस्र युगों तक देव शूलों की पहिले आराधना की गई थी ॥२२-२८॥

पुरा ह्याराधितः शूली तेनाहमजरामरः ।

अघमपेणघोरं च वामदेवं च त्र्यम्बकम् ॥२९

ऋषभं त्रिमुपर्णं च दुर्गा सावित्रमेव च ।

बृहदारण्यकं चैव बृहत्साम तयोत्तरम् ॥३०

रौद्री परमगायत्री शिवोपनिषदं तथा ।

यथा प्रतिरथ सूक्तं जप्त्वा मृत्युञ्जयं तथा ॥३१

सरितागरपर्यन्ता वसुधा भस्मतात्कृता ।

वर्जयित्वा महाभागा नर्मदा मृतोपमाम् ॥३२

महेन्द्रो मलयः सह्यो हेमकूटोऽपमाल्यवान् ।

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्त ते कुलपर्वताः ॥३३

द्वादशानित्यनिर्दग्धाः शैलाः शीर्णाः शिलाः पृथक् ।

भस्मीभतास्तु दृश्यन्ते न भृष्टा नर्मदा तदा ॥३४

हिमवान् हेमकूटश्च त्रिपद्यो गन्धमादनः ।

माल्यवांश्च गिरिश्रेष्ठो नीलः श्वेतोऽथ शृंगवान् ॥३५

एते पर्वतराजानो देवगन्धर्वसेविताः ।  
युगान्ताग्निविनिर्दग्धाः सर्व्यशीर्णमहाशिला ॥३६  
एवं मया पुरा दृष्टो युगान्ते सर्वसङ्क्षयः ।  
वर्जयित्वा महापुण्यां नर्मदा नृपसत्तम ॥३७

अथवा शूची की कायधना से भी अजर-अमर हो गया । अथमर्षण  
घोर, वामदेव, अम्बक, अणम, त्रिपुपर्णा, दुर्गा, माविन, बृहदारण्यक  
बृहत्साम, उत्तर, रौद्री, परम गायत्री, शिषोपनिषद्—प्रतिरथ सुक्त और  
उसी भाँति मृत्युञ्जय का जाप करके भी अजर अमर हो गया था । सरिता  
भीर रागर पर्वत संपूर्ण बहुधा भस्म कर दी गई थी केवल परम महा  
माग धातो मृतोपमा नर्मदा का वर्णन कर दिया था । महेंद्र, मलय,  
सह्य, हेमकूट, माल्यवाह, विन्ध्य, पारियात्र, ये सात कुल पर्वत कहे गये  
हैं । द्वादश आदित्यो के द्वारा निर्दग्ध हुए धांतो की सब गिलाएँ धीरे  
होकर घृषक हो गई थी । ये सब भस्मी भूख होकर दिसलाई दे रहे थे  
किन्तु उस समय में भी नर्मदा का नाम नहीं हुआ था । हिमवान्  
(हिमालय), हेम कूट, निषध, मन्वमादन, माल्यवान्, गिरियों में  
परम श्रेष्ठ नील गिरि, दक्षे वीर शृङ्गवान्, ये सब पर्वत राज हैं जो  
कि देशी वीर गन्धर्वों के द्वारा सेवित हैं । जब युगान्त की अग्नि प्रज्वलित  
हुई तो ये सब निर्दग्ध हो गये ये भीर इनकी सप्त महा शिलाएँ टूट-  
कूट गई थी । इस प्रकार से मैंने युग के अन्त में पहिले सबका संशय  
धार्मिकों से देखा था । हे नृपसत्तम ! सबका तो संशय हुआ था किन्तु महाव  
पुण्य वाली नर्मदा का उस समय में भी विनाश प्रयात् क्षय नहीं हुआ  
था ॥२६-३७॥

६१ — नर्मदामाहात्म्यवर्णन

निर्दग्धेऽस्मिस्ततो लोकेसूर्यरीश्वरसम्भवो ।  
सप्तभिस्त्राणंबं. शुक्लं द्विपिं. सप्तभिरेषध ॥६  
ततो मुस्तात्तस्य पना महोत्त्वणा निश्चं सरिन्द्रायुषतुत्यरूपाः ।  
घोरः पयोदा जगदन्धकारं कुर्वन्त ईशानवरप्रमुक्ता ॥२

नीलोत्पलाभा ऋचिदञ्जनाभागोक्षीरकुन्देन्दुनिभाश्चकेचित् ।

मयूरचन्द्राकृतयस्तथाऽप्ये केचिद्विधूमानलसप्रभाश्च ॥३

केचिन्महापर्वतकल्परूपाः ।

केचिन्महामीनकुलोपमाश्च ।

केचिद्गजेन्द्राकृतयः सुरपाः

केचिन्महाकूर्दानभाः पयोदाः ॥४

घलत्तरङ्गोमिममानरूपा

महापुरोधाननिभाश्च केचित् ।

सगोपुराट्टालकसन्निकाशाः

सविद्युदुल्काशनिमण्डितान्ताः ॥५

समावृतांगं स बभूव देवः सम्बर्तकोनाम गणः सरौद्रः ।

प्रवर्षमाणो जगदप्रमाणमेकार्णवं सर्वमिदं चकार ॥६

ततो महामेषविवर्द्धमानमीशानमिन्द्राशनिभिर्बृताङ्गम् ।

दददं नाह भयविह्वलाङ्गो गङ्गाजलीर्षश्च समावृतांगः ॥७

महर्षि दर श्रो माबंण्डेयजी ने कहा—ईश्वर से समुत्पन्न हुए सूर्यो के द्वारा इस सम्पूर्ण लोक के निर्दग्ध हो जाने पर और सातो समुद्रों के उतल होकर सूख जाने पर तथा सातो द्वीपों के शुष्क होकर नष्ट हो जाने पर फिर उनके मुख से इन्द्रदेव के प्रायुषो के तुल्य रूप वाले महान् उत्खण घन निकलकर संघरण करने लगे थे । परम श्रेष्ठ ईशान देव के द्वारा प्रयुक्त उन परम घोर पयोदो ने इस जगत में भ्रमकार फैला दिया था ॥१-२॥ ये मेष विभिन्न रूप और आकार वाले थे । कहीं तो वे मेष नील कमल की आभा वाले थे । वहीं पर अञ्जन की आभा के तुल्य आभा वाले थे—और कुछ शो के रूप, कुन्द पुष्प और चन्द्र के समान थे । अन्य मोर और चन्द्रमा की आकृति वाले थे और कुछ विद्युम अर्थात् घुंआ से रहित अग्नि की प्रभा के तुल्य थे । कुछ मेष शो विशाल पर्वतों के ही बिल्कुल सदृश रूप वाले थे और कुछ महामीन (विशाल भद्री) के कुल के समान थे । कुछ गजेन्द्र के समान आकृति वाले थे तथा कुछ मेष महान्

घोटी के सुख सुन्दर हन वासे थे ॥३-६॥ कुछ मेघ बसती हुई तरंगों  
के समान कष वाते थे और कुछ महा पुरोयान के सुख थे । कुछ मायूर,  
घट्टानरु के सुख थे जिनमें विष्णु, उल्का, शक्ति से मण्डित अन्त वाते  
थे ॥४॥ यह देव समुत्तम यो बाला ही गया था, सम्पर्क नाम वाला  
यह रौद्र रूप प्रदर्शण करता हुआ इस समस्त जगत का सम्भरण एक  
क्षण वाता कर दिया था । इसके अनन्तर भव से विद्वान् ब्रह्म वाते  
मैन मद्गा के अन्त के शीघ्र से समावृत्त भंगो वाला महान् मेघों से निवृत्त-  
नाम और इन्द्र के अन्त से वृत्त अ गो बाले ईमान की दत्ता ॥६-७॥

गजाःपुनश्चैव पुनः पिवन्तो  
जगत्समन्तात्परिदह्यमानम् ।  
आपूरितं च जगत्समन्तम्  
सर्वं च तैजस्युरदर्शनं च ते । ७  
महासंज्ञां सप्त सरानि द्वीपा  
नद्योऽप्य सर्वा अप मुमुं वदच ।  
आपूर्यन्त्याः सन्निभौघशाली  
रेक्षार्णव सस्यमिदं बभूव ॥८  
न दृश्यते किञ्चिदहो चराचरे  
निर्गमिचन्द्रार्कमयेऽपि लोके ।  
प्रणष्टमज्ञानसमोज्ज्वकारे  
प्रशान्तवावास्तमितं कनीडे ॥९०  
महाजलीषेऽथ विबुद्धनत्वा  
स्तुतिभंग्या भूप । कृता सदानिम् ।  
ततोऽहमिषेऽथ विविन्नयान,  
शरप्यमेकं भव नु यामि शान्तम् ॥११  
स्मरामि देव हृदि विस्मयित्वा प्रभु शरभ्यं जलसन्निविष्टम् ।  
तस्मिन्नि देव शरणं प्रपद्ये ध्यानं च तस्येति कृतं मया च ॥१२  
ध्यात्वा ततोऽहं सलिलं उदारं तस्य प्रसादाच्च विमूढचेतसा ।  
स्नानिनः शमश्चैव मम प्रणष्टौ देव्याः प्रसादेन नरेन्द्रपुत्र ॥१३

चारों ओर से परिदृश्यमान इस जगत् को पुनः पुनः गव पी रहे थे । सभी ओर से यह जगत् उनके द्वारा भापूरित होना हुआ था और फिर वे प्रदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥८॥ सातों महाराज—सब सर—सात द्वीप—समस्त नदियाँ और मूर्धुवः स्वः जलों के ओघों के जलों से भापूरण-माण होते हुए यह सब एकारणव (समस्त समुद्रनय) हो गया था ॥९॥ महो ! भव—कद्र और घग्नि से रहित इस घराघर लोक में जो कि नक्षत्रों के नष्ट होने से अन्धकार पूर्ण और तमोमय या और वायु के भी प्रदान्त होने एक अस्तमित नील हो रहा था कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था ॥१०॥ हे भूप ! तम महावृ जलोघ में उस समय में मैंने इनकी विद्युत् सत्व वाली स्तुति की थी । इसके पश्चात् मैं ही हूँ, ऐसी चिन्ता करता हुआ कि एक परम शान्त शरण्य को शरण्यगति में कहाँ जाऊँ ? ॥११॥ जल में सन्निविष्ट मैं अपने हृदय में परम शरण्य, देव प्रभु का चिन्तन करके स्मरण करता था । मैं देव को नमस्कार करता हूँ, शरण में जाता हूँ—इस तरह से मैंने उनका ध्यान किया था । इसके अनन्तर ध्यान करके उनके प्रसाद से प्रविमूढ चित्त वाला होकर सलिल में तरण किया था । स्वानि और अम हे नरेन्द्र पुत्र । देवी के प्रसाद से मेरा सब नष्ट हो गया था ॥१२-१३॥

### ८२—वाराहकल्पवृत्तान्तवर्णन

ततस्त्वेकार्णवे तस्मिन्मूर्परहमातुरः ।

कावृच्छ्वासस्तरं स्नोय वाहुम्या नृपसत्तम । ॥१॥

शृणोम्यर्णवमध्यस्यो निःशब्दस्तिमिते तदा ।

अम्भोरवमनोषम्यं दिशोदशविनादिनम् ॥२॥

हंसकुन्देन्दुसङ्काशां हारगोक्षीरपाण्डुराम् ।

नानारत्नविचित्राङ्गी स्वर्णशृगां मनोरमाम् ॥३॥

खुरं प्रवालकमयैर्लाङ्गुलध्वजशोभिताम् ।

प्रलम्बघोषानन्देन्तीखुरं रणवगाहिनीम् ॥४॥



वां दक्षिणाहमुद्दिश्यो मामेवाऽभिस्तुतीं स्थिताम् ।

किंङ्कणोजासमुत्तामिः स्वर्गं घटासमावृताम् ॥५

तस्यादचरणविशेषः नवमेकार्णं वज्रम् ।

विशिष्टकेनपुष्पोर्ध्वन्त्यस्तीव नमन्ततः ॥६

रराग सलिलोत्थोर्ध्वः शोभयन्ती महार्णवम् ।

सा मामाह महाभाग । इत्यङ्गम्भीरथा गिरा ॥७

मार्थि प्रवर थी माकेपेयतो ने कहा—इसके उपरान्त उन एक गात्र सागर में हे हुए सत्तप । मैं अखण्ड पातुर और वाकृन्द्यास होता हुआ पयवी बाहुओं से जल को तीर रहा था । अर्णव के मध्य में स्थित मैं शब्द रहित भीमिष्ठ जल में उस समय में अनुभव और शयो शिवागो मे विशेष भवति करने वाले जल के शब्द को सुनना है ॥१-२॥ हृग, पुन्द, (एक श्वेत रंग का पुष्प) शन्दु (पद्मना) के मृदुम अर्थात् एक दम मषेद, हार, शयन का दूध के समान पाण्डुर, जनेक रंगों से विचित्र रंगों वाली, सुतहले धीमों से युक्त धर्तीय सुन्दर, प्रबालों से परिपूर्ण मृत्तों से युक्त, नांगन (पूख) और ध्वज से शोभा वाली, नम्वो नामिका आयो सुरों से अर्णव का पादन करती हुई तथा नर्वत करने वाली माय को भीम धर्तीय तद्विम्ब होते हुए देखा था जो कि मेरे ही नामने स्थित थी और निम्नली ब्रह्म पुत्राओं से स्वर्ग के घटा से वह समावृता थी ॥३-५॥ उपर बरणों के विशेषों से वह समस्त एकार्णव का रूप विशिष्ट फेरों के पुत्रों के समूह से सभी घोर नाश का रहा था । जल को ऊपर की ओर ऊठेसे से उठ महार्णव में शोभ करती हुई वह उठ करती थी । वह मुझसे बोली—  
हे महाभाग ! उधरी वाली उठ समय में बहुत ही नव्यस्य और यम्भीर थी ॥६-७॥

सा शेषीवंत्सवत्सेति मृत्युस्तत्र न विद्यते ।

महादेवप्रसादेन न मृत्युमन्तेममापिच ॥८

ममाश्वस्त्रलागुल त्वाभवत्तारयाम्बुहम् ।

धोरादांमाद्मयाद्विप्रमाकस्त्पुत्रवत्तत्रगतम् ॥९

क्षुत्तृपाप्रतिघाताथं स्तनौ मे त्वं पिबस्व ह ।  
 पयोऽमृताश्रयं दिव्यं तत्पीत्वा निवृत्तो भव ॥१०  
 तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हर्षात्पीतो मया स्तनः ।  
 न क्षुत्तृपा पीतमात्रे स्तने मह्यं तदाऽभवत् ॥११  
 दिव्यं प्राणवल जज्ञे समुद्रप्लवनक्षमम् ।  
 ततस्ता प्रत्युवाचेदं का त्वमेकार्णवीकृते ॥१२  
 भ्रमसे ब्रूहि तत्त्वेन विस्मयो मे महान्हृदि ।  
 भ्रमतोऽयममातंस्य मुर्ध्नीः प्रहतस्पह ॥१३  
 त्वं हि मे शरणं जाता भाग्यशेषेण सुव्रते ! ॥१४

हे बत्स ! हे बत्स ! डरो मत, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी । महादेव का प्रसाद ऐसा ही है कि उससे न तो तुम्हारी मृत्यु है और न मेरी ही । तुम मेरी पूँछ को पकड़ लो, मैं तुमको तार दूँगी । हे विप्र ! जब तक यह जगत में सप्लव होता है मैं तब तक इस अति घोर भय से मैं उच्चार करती हूँ । अपनी क्षुधा और पिपासा के प्रतिधान करने के लिए तुम मेरे स्तनो का पान करो । यह मेरा अमृताश्रय परम दिव्य पय है उसको पीकर निवृत्त हो जाओ । उसके इस वचन का ध्वजा करके मैंने बहुत ही हर्ष से उसका स्तन पिया था । उस समय में उस स्तन के पीने ही भर से मुझे क्षुधा और तृपा नहीं रही थी । मुझमें उस समय में परम दिव्य प्राण बल समुत्पन्न हो गया था जो कि समुद्र के प्लवन की सामर्थ्य रखने वाला था । इससे पश्चात् मैंने उससे कहा था—भाप कौन हैं ? जो इस एकार्णवी भूत हुए जल में इस तरह से भ्रमण कर रही हैं । भाप इसको ताद्विक रूप से मुझे बतलाइये । मेरे हृदय में इस बात का बड़ा भारी विस्मय हो रहा है । यहाँ पर परम आत्मा भ्रमण करते हुए मेरी, जो कि प्रहत और मरने वाला हो रहा हूँ हे सुव्रते ! मेरे भाग्य की शेषता होने से हा भाप संरक्षण करने वालो हो गई हैं ॥८-१४॥

किमहं विस्मृता तुभ्यं विश्वरूपामहेश्वरी ।  
 नमं दाघमं दानुणास्वगंशर्म वलप्रदा ॥१५

हृद्गा स्वां सीदमानं तु हृद्रेयाऽहं विस्मिता ।  
 स द्विजं तारयस्वापि मा प्राणांस्त्वज्जतो जले ॥१६  
 गौरूपेण विभावनिधायत्वरसकाशमिहागता ॥  
 मा मृपादधनः शुम्भुर्भवेदिति च सत्स्वरः ॥१७  
 एवमुक्तस्तयाऽहं तु ह्यन्द्रायुषानिभनुमम् ।  
 लागूलमप्यत्र ज्ञात्वाभुजाभ्यामवसम्बित ॥१८  
 ततोऽन्तरं तं ज्वलन्निगूलध्वजमाधितः ।  
 जमी देवो महादेव इति मां पत्यभापत ॥१९  
 ततो युगं सहस्रान्तमहं कालं तथा तद् ॥  
 व्यसरं यं तमीभूते सर्वतः मनिलाद्युते ॥२०  
 महार्णवे तदन्तस्मिन्भ्रमन्वोऽपुच्छमाधितः ।  
 निर्यासे चात्यकारे च निरालोके निरामये ॥२१

श्री न कहा—वया आपने मुझको मुक्त किया है ? मैं विश्वकर्म बाली  
 महेश्वरी हूँ । मेरा नाम समंदा है और मैं मनुष्यों का धर्म क देन वाली  
 तथा स्वर्ग कल्याण और बन् प्रदान करने वाली हूँ । मुझका अत्यन्त  
 पीड़ित होते हुए देखकर भगवान् इन्द्र ने मुझे छोड़ दिया है और उन्होने  
 मुझे यहाँ भेजते हुए बताया है कि हे स्वामी ! हम द्विज का तारण  
 करो ; वह इस बन् स अपने प्राणी का परिश्रम स कर देवे । विष्णु क  
 ही इस बन् स से मैं गो के रूप में तुम्हारे समीप में यहाँ पर सम्पन्न हुई  
 हूँ कि भगवान् शुम्भु का बन्धन मिथ्या न होने पावे । इसीलिए मैं बड़ी  
 पीड़िता स आसन्न किया है । इन प्रकार से उसके द्वारा कहे हुए मैंने  
 इन्द्र के प्रायुष क तुल्य परम पुन एव अथवा समझकर उसकी पूजा की  
 दोनों मातृश्रीं से एकत्र किया था । इसके अनन्तर जंगल ध्वज उस अति  
 के आधित यह देव महादेव हैं वह मुझसे कहा था : इसके पश्चात् मैं  
 उसके साथ एक सहस्र युग के अन्त तक समय में सब क्षण स उस से  
 समाकृत उस अन्वकार पूर्ण में विचरण करता रहा था । इसके उपरान्त  
 उस महार्णव में गो श्री पूंछ का आश्रय ग्रहण करने काहा मैं बिना वायु  
 वाले आसोच रहित निरामय अन्वकार में भ्रमण कर रहा था ॥१६-२१॥

अकस्मात्सलिले तस्मिन्नतसीपुष्पसन्निभम् ।  
 विभिन्नाञ्जनस काशमाकाशमिव निर्मलम् ॥२२  
 नीलोत्पलदलश्यामं पीतवामसमव्ययम् ।  
 किरीटेनाकं वणं न विद्युद्विद्योतकारिणा ॥२३  
 भ्राजमानेन शिरसास्त्रमिवात्यन्तरूपिणम् ।  
 कुण्डोद्घट्टगल्लं तुहारोद्घयोतितवक्षसम् ॥२४  
 जाम्बूनदमयैर्दिव्यभूषणं रूपशोभितम् ।  
 नागोपधानशयनं सहस्रादित्य वर्चसम् ॥२५  
 अनेकबाहूरुधरं नैकवदनं मनोरमम् ।  
 सुप्तमेकार्णवं वीरं सहस्राक्षशिरोधरम् ॥२६  
 जटाजूटेन महतास्फुरद्विद्युत्समाचिषा ।  
 एकार्णवं जगत्सर्वं व्याप्य देवं व्यवस्थितम् ॥२७  
 प्रसितवा शंकरं सर्वं स देवानुरमानवम् ।  
 प्रपश्याम्यहमीशानं सुप्तमेकार्णवं प्रभुम् ॥२८

अचानक उस जल झर में अलसी के पुष्प के सदृश, विभिन्न अञ्जन के तुल्य, आकाश के समान निर्मल, नीलकमल के सदृश श्याम, पीत वदन पाये अव्यय, विद्युत् के तुल्य विद्योतनारो, सूर्य के समान किरीट से शोभित भ्राजमान, शिर से आकाश की भाँति अत्यन्त रूप वाले उस एकार्णव में शयन करने वाले ईशान प्रभु को मैंने देखा था । जो कुण्डलों से उद्घुष्ट गालों वाले थे । सुवर्ण मय दिव्य आभूषणों से यह शोभित थे । जिनकी शय्या पर नागों का ही उपधान (तकिया) था और जो सहस्रों आदित्यों के तुल्य वर्चस वाले थे । उनके अनेक बाहु और ऊरु थे तथा अनेक मुखों से युक्त थे अत्यन्त ही मनोरम थे । सहस्रों नेत्र एवं मस्तकों के धारण करने वाले यह वीर उस एकार्णव में सुप्त थे । विद्युत् के समान अचिष्यो वाले अर्धात् ज्योति की ज्वालाओं से युक्त महान् जटाजूटों से समुपलक्षित थे । उस एकार्णव सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके थे देव अवस्थित थे । सबका प्राप्त करके जित विश्व में देव अमुर और मानव सभी थे ऐसे दाहुर प्रभु का मैंने दर्शन किया था ॥२२-२८॥

सर्वं व्यापिनमभ्यक्तमनन्तं विश्वतोमुखम् ।  
 तस्यपादतलाम्याशेष्वर्णं केयूरमण्डिताम् ॥२९  
 विश्वरूपा महाभागा विश्वमायावधारिणीम् ।  
 श्रीमयीं ह्लीमयीं देवीं धीमयीं शङ्ख मयीं शिवाम् ॥३०  
 सिद्धिं कीर्तिं रतिं प्राह्वीं कालरात्रिमयोनिजाम् ।  
 तामैवाहं तदात्यन्तमौखरान्तिकमास्तिपताम् ॥३१  
 मद्राक्षं चन्द्रवदनां घृष्टिं सर्वेश्वरीमुमासु ॥३२  
 क्षान्तं प्रभुपत नवह्रैमवर्णं मुमासहाय भगवन्तमीशम् ।  
 तमोव्रुत पुण्यतम वरिष्ठ प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कराणि ॥३३  
 तत्र प्रमुपत सहस्रा विबुद्धो  
 रात्रिघाते देववर, स्वभावात् ।  
 विश्वोभयन्वाहुभिरणं वान्शो  
 ब्रह्मप्रणष्ट सलिले विमृश्य ॥३४  
 किं कार्यमित्येव दिञ्चिन्तयित्वा  
 वाराहकर्मोऽभवददनुवाङ्म ।  
 महाघनाम्भोधरवृक्षयवर्चा,  
 प्रलम्बमालाम्बरनिष्कमरली ॥३५

यह भगवाद् सर्वेश्वरी—व्याक्त और अनन्त तथा विश्वतो मुख के  
 लनके चरण तलों के समीप में ही मुखों के रचित केयूरों से मण्डित—  
 विश्वरूप वाली—महाभागा विश्वमाया श्री नवधारिणी—धीमयी—  
 ह्लीमयी—धीमयी—शङ्ख मयाश्रिता— देवी—सिद्धि—कीर्ति—रति—प्राह्वी  
 —मयोनिजा—कालरात्रि उसी की मति ईश्वर के अत्यन्त समीप में समा-  
 स्तिपत उक्त समय में देखा या श्री कि चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली—शुद्धि  
 बीर सर्वेश्वरी उमा थी । परम शान्त—घोड़े हुए—गूठन हेतु क सहस्र  
 दण्ड वाले—उमा की सहायता वाले—उम से अच्युत—शुद्धताम—वरिष्ठ  
 —यववाग् ईश की प्रदक्षिणा करते मीन नमस्कार किया था । इसके अन-  
 न्तम सोये हुए वे देववर सहस्रा रात्रि के क्षम होने पर विबुद्ध हो गये वे  
 खपाई जाय गये थे । स्वभाव से ब्राह्मणों से उम पराणिक के बल को विगुन्व

कर रहे थे । उस जल में सम्पूर्ण जगत् को नष्ट हुआ सोचकर अब क्या करना चाहिए—यही विशेष रूप से चिन्तन करके प्रद्युम्न अङ्ग एवं रूप वाले वे बाराह रूप वाले हो गये थे । जो महान् घन धम्मोधर के समान वचंस वाले और प्रलम्ब माला और अम्बर तथा निष्क ( गले का भूषण ) की माला के धारण करने वाले थे ॥२६-३५॥

सशस्त्रचक्रासिधरः किरीटी सवेदवेदाङ्गमयो महात्मा ।  
 त्र्यलोक्यनिर्माणकरा पुराणो देवप्रयीरूपधरश्च काय ॥३६॥  
 स एव रुद्रः स जगज्जहार  
 सृष्टयर्थं मीशः प्रपितामहोऽभूत् ।  
 सरक्षणार्थं जगतः स एव  
 हरिः मुचक्रासिगदाब्जपाणिः ॥३७॥  
 तेषां विभागो न हि कर्तुमर्हो  
 महात्मनामेकशरीरभाजाम् ।  
 मीमासहेत्वर्थं विशेषतर्कं  
 यंस्तेषु कुर्यात्प्रविभेदमज्ञः ॥३८॥  
 स याति घोरं नरकं क्रमेण  
 विभागकृद्द्वेषमतिदुःरात्मा ।  
 या यस्य भक्तिः स तयैव नूनं  
 देहं त्यजन्स्वयं ह्यमृतत्वमेति ॥३९॥  
 मम्मोहयन्मूर्तिभिरत्र लोकं  
 सृष्टा च गोप्ता क्षयकृत्स देवः ।  
 तस्मान्न मोहात्मकमाविशेत  
 द्वेषं न कुर्यात्प्रविभिन्नमूर्तिः ॥४०॥  
 वाराहमीशानधरोऽप्यतोऽक्षी  
 रूपं समास्थाय जगद्विधात्ता ।  
 नष्टे त्रिलोकेऽण्वतोयमग्ने  
 विमार्गितोयोधमयेऽन्तरात्मा ॥४१॥

यह देव वाह—वक्र घोर प्रसि ( वाह ) के धारण किये हुए थे—  
 किरीटधारो—वेदों और वेदाङ्गों से परिपूर्ण—महात्मा वाह—  
 त्रिलोकी के निर्माण को करने वाले—पुराण और काम में तीन देवों के  
 रूप धारण करने वाले हैं । वही इन्द्रदेव इन जगत् का सृजन करने वाले हुए  
 थे । वह ही मृद्धि की रचना करने के लिये ईश प्रथितमह हुए थे । इस  
 जगत् की रक्षा करने के लिये वह ही यक्र, गदा, सङ्ग और पंक्त को धारण  
 करने वाले धीहरि हुए हैं । एक ही शरीर को धारण करने वाले उन  
 महात्माओं का विभाग नहीं करने योग्य है । भीमाना—हेतु—अर्ध विशेष  
 और तर्कों के द्वारा जो कोई उन में विभाग करता है या प्रभेद मानता है  
 वह बहुत ही अज्ञानी एवं भूढ़ है ॥३६-३८॥ इत प्रस्वर से विभाग करने  
 वाला द्वेष बुद्धि से युक्त बुध्वाभा क्रम से घोर नरक में गमन किया करता  
 है । जिस गुरुप का उस देवी की भक्ति होती है वह उसी के प्रभाव से  
 निश्चय ही अपने देह का त्याग करता हुआ समुत्तरक को प्राप्त होता है  
 ॥३९॥ यहाँ पर इन भूतियाँ के द्वारा लोक को सम्मोहित करते हुए  
 वही सृजन करने वाले—संरक्षण करने वाले और क्षय करने वाले हैं ।  
 इसीलिए यह मित्र २ भूतिधारो है—ऐसा माहात्मक द्वेष नहीं करना  
 चाहिए । यह ईशान पर वाराह के स्वरूप में समाहित होकर इस जगत्  
 के विधायक हैं । इस त्रैलोक्य के मह हा जाने पर और अणु के अन्त में  
 निगम होने पर विमर्षी अत्र के समूह में पूर्ण में धम्तरात्मा सण्ड के  
 अन्त का भेदन करके धम्तर में स्थित पाताल में सण्डर में प्रवेश कर गये  
 थे । जन्म में हुआ हुई क्रम के अन्त के तुल्य नेत्रों वाली इस सम्पूर्ण धरणी  
 का स्पर्श किया था ॥४०-४१॥

भिस्वार्णव' तोयमथान्तरस्य  
 विवेश पातालस्रुतं क्षणेन ।  
 जने निमग्ना धरणी समस्ता  
 समस्पृश्यात्स्रुजपक्षनेत्राम् ॥४२  
 विशीर्णं शंखोत्पलश्रुङ्गकृदा  
 वसुन्धरा तां प्रत्ये प्रनीताम् ।

दंष्ट्रैकमा विष्णुरतुल्यसाहसः।  
समुद्धार स्वयमेव देवः ॥४३  
सा तस्य दंष्ट्राग्रविलम्बिताङ्गी  
कैलासशृङ्गाग्रगतेव ज्योत्स्ना ।  
विभ्राजते साप्यसमानमूर्तिः  
शशाङ्कुशृङ्गे च तडिद्विलम्बा ॥४४

तामुज्जहारार्णवतोयमग्नां  
करी निमग्नामिव हस्तिनी हठात् ।

नादं विशीर्णामिव तोयमध्या  
दुक्षीर्णसत्वोनुपमप्रभावः ॥४५

स तां समुत्तार्य महाजलोघात्  
समुद्रमार्यो ऽभजत्समस्तम् ।

महारणवेशेव महारण्वाम्भो  
निक्षेपयामास पुनर्नदीषु ॥४६

क्षीर्णाश्च क्षलान्तश्चकार भूयो  
द्वीपान्तमस्ताश्च तथाणं वाश्च ।

र्षी लोपलर्षे विचिताः समन्ता  
ञ्छिलोच्चमास्तान्तश्चकार कल्पे ॥४७

अनेकत्पं प्रविभज्य देहं चकार देवेन्द्रगणान्तमस्ताम् ।  
मुखाच्च वह्निर्मनसश्च चन्द्रश्चक्षोश्च सूर्यः सहसा बभूव ॥४८

अज्ञेय तस्येश्वरयोगमूर्तेः प्रध्यायमानस्य सुरेन्द्रसंघः ।  
वेदाश्चयज्ञाश्चतस्रं व वर्गास्तथा हि सर्वोपधयोरताश्च ॥४९

विशीर्णं हुए फाली के उत्पल शृंगकूटो वाली—प्रलय में प्रलीन उस  
षमुन्धरा की अतुल्य साहस वाले देव विष्णु ने स्वयं ही एक दंष्ट्रा से उठा

लिया था ॥४३॥ यह घरणी उनकी दाढ़ के अग्र भाग में लटके हुए अर्धों  
वाली फाली पर्वत की शीटो के अग्रभाग में फाली हुई ज्योत्स्ना के समान  
शोभित हो रही थी । असमान मूर्ति वाली वह भी शशाङ्कु के शृंग में  
विसर्जन कर्तित् जैसी थी ॥४४॥ उस घरणी को जो कि अर्णव के अल



वे निम्न भी जल में डूबी हुई हविनी का हर पूर्वक उद्धार करने वाले  
 ऋषी की शक्ति बाराह भगवान् ऊपर उठाने लाया था । उदोर्ण सत्य जाने  
 तथा अनुपम प्रभाव से समन्वित सम वेद ने जल के मध्य से विरोध हुई  
 मौका की भाँति उग्र भूमि की महान् जल के समूह से ऊपर उठकर उल्ले  
 सम्पूर्ण समुद्र का विभाग कर दिया था । महार्णव के जल को महान्  
 दक्षिणों में और फिर तबियों में निक्षिप्त कर दिया था । शीघ्र हुए पर्वतों  
 को उन्हेनि पुनः कर दिया था । ज्यो तरह से समस्त द्वीपों का धीरे  
 धीरे भी यथास्थित कर दिया था । उन्हेनि का शैली के उपलों  
 से चारों ओर में विहित थे उन शलाकियों का रूप में कर दिया था ।  
 अपने वेद को अपने स्वस्वों में विभक्त करके फिर समस्त ऐश्वर्य गार्गी का  
 कर दिया था । इनके मुख से प्रीति समुत्पन्न हुई—मन से चन्द्रमा की  
 उत्पत्ति हुई—ज्यु से सङ्घा सुर्व देव समुत्पन्न हुए वे ३४२ ४५॥ प्रकृत  
 रूप से स्थान करने जाने योग्यति उन ईश्वर से पुत्रियों का सत्य समुत्पन्न  
 हुआ था । समस्त वेद—यज्ञ—वसु—सर्वोपधिषी और समस्त रस उत्पन्न हुए  
 थे ॥४६॥

अगस्तमस्तं मनसा बभूव  
 यत्स्वावर किञ्चिद्विहाण्डज वा ।  
 जरायुज स्वैवजमुद्भिज वा  
 यन्किञ्चिवाकीटपिपीलकाद्यम् ॥५०

ततो विषज्ञे मनसा कथित  
 अनेकरूपा महामह महेश ।  
 चकार यन्मूर्तिभिरव्ययारमा  
 अथामिराविश्य पुनः स तत्र ॥५१

तोसा चकाराज्य समृद्धतेसा अतोऽत्र मे पश्यत एव विद्याः ।  
 तेषां मया दर्शनमेव सर्वं यावन्मुहूर्ततिलमकारि भूप ॥५२  
 शूद्रस्य त्वदीप किल लोचमेव स देवदेवो जगता विधाता ।  
 सर्वत्रहमसर्वत्र एव देवो जगाम चाद्रशंभमादिकर्ता ॥५३

यत्तन्मुहूर्तादिह नामरूपं तावत्प्रपश्यामि जगत्तथैव ।  
 द्वीपं समुद्रं रभिसम्भृतं हि नक्षत्रतारादिविमानकीर्णम् ॥५४  
 वियत्पयोदग्रहचक्रवित्रं  
 नानाविधं प्राणिगणैर्वृतं च ।  
 तां व न पश्यामि महानुभावां  
 गोरूपिणी सर्वसुरेश्वरी च ॥५५  
 क्व साम्प्रतं सेति विचिन्त्य राजन्  
 विभ्रान्तचित्तस्त्वभवं तदवैव ।  
 दिशो विभागानवलोकयान्  
 श्रुते पुनस्ता कथमीश्वरांगीम् ॥५६

यह सम्पूर्ण जगत् मन से ही हुआ था जो भी स्थावर कुछ है घपवा  
 यहाँ घण्डज है । कोट—पिपीलिका आदि से लेकर जो कुछ भी अरामुज—  
 स्वेदज और उद्दिमज मृष्ट है । इसके उपरान्त भगवान् महेश ने दशभर  
 में सहसा अनेक रूपों वाली सृष्टि का सृजन मन से ही किया था । यह  
 अक्षय आत्मा वाले ने वहाँ पर पुनः आठ मूर्तियों में आविष्ट होकर यह  
 सब किया था । हे विप्रो ! मेरे देखते हुए ही समृद्ध तैत्र वासे प्रभु ने इस  
 के पश्चात् लोला का भी । हे भूप ! मुहूर्ता मात्र तक मैंने उनके समस्त  
 दर्शन अब तक किये थे । जगतों के विधाता देवों के देव ने यह सब  
 लोला ही से करके सर्वत्र दिखलाई देने वाले और सभी जगह गमन करने  
 वाले यह देव आदिकर्ता प्रदर्शन को प्राप्त हो गये थे । यहाँ पर मुहूर्ता  
 मात्र में ही यह नाम और रूप वाला जगत् उसी प्रकार का समुत्पन्न  
 हुआ मैं देखपा हूँ जो कि समस्त द्वीपों भूय समुद्रों से अभि स्रवृत तथा  
 तथा नक्षत्र और तारादि विमानों से भी सकीर्ण हो रहा था । यह अन्त-  
 रित्त पयोद ( मेघ )—ग्रहों के चक्र से घिरित था और नाना प्रकार के  
 प्राणियों के समुदाय से भी समाकीर्ण था । फिर मैं उम महानुभावा गाय  
 हरूप वाली सर्वेश्वरी को नहीं देखता था । हे राजन् ! उस समय में  
 वह कौन थी—यह विचिन्तन करके मैं विभ्रान्त चित्त वाला हो गया

था । फिर ईश्वरगो उसके अभाव में कैसे दिव्यमा के दिग्गो को देखने यात्रा होता ॥१०-१६॥

पश्यामि तामग वृत्तश्च वृत्त  
महाभ्रनीला सुविशुभ्रतोषाम् ।  
वृश्रंरनेकं रूपशोभितागो  
गजंस्तुष्टं विहगं वृत्तं च ॥५७

यथा पुरा तीरमुपेत्य देव्या  
समास्थितरथाप्यमरकण्टके तु ।

तथैव पश्यामि सुखोपविष्ट  
आत्मानमभ्यग्रमवाप्तसौख्यम् ॥५८

तथैव पुण्यमश्रुतोययाहा  
दृष्ट्वा पुनः कल्पपरिक्षयेऽपि ।

दम्यामिवायोमनुकम्पमाना  
मकीणतोषो विहजते विगोषः ॥५९

एवं महत्पुण्यतम च कल्प  
पठन्ति शृण्वन्ति च ये द्विजेन्द्रा ।

महावाराहस्य महेश्वरस्य  
दिने दिने ते विपला भवन्ति ॥६०

अशुभघातसहस्रं ते विषूय प्रपन्ता  
स्त्रिदिवममरजुष्ट सिद्धगन्धर्वंयुक्तम् ।

विमलशशिनिसामि सर्वेवाप्सरोनिः  
सहस्रविषविलासोत्सर्गसौख्यं समन्ते ॥६१

मैं फिर यहाँ पर उसको महाद् अश्र के ( मेघ के ) समान मील  
वहाँ वाली—शुचि एवं शुभ लक्ष वाली थीर परम वृत्त उभय दशन  
करता है । यह अनेक वृत्तों से उपशोभित लगेई वाली तथा गज, अब  
घोर विहगों से समावृत थी । जिस प्रकार से पहिले तीर की प्राप्त होकर  
देवी के समीप में अमर कण्टक में समास्थित हो गया भी वही मूर्ति  
अम्यप्र प्राप्त हुए शोभ्य लक्ष अतमा को मुख पूर्वक उपविष्ट होकर देखता

हैं । उसी प्रकार से परम पुण्यमय एवं अमन जन के बहन करने वाली को देखकर फिर कल्प के परिक्षय में भी ब्रम्हा की भांति अनुकम्पा करती हुए सीलता रहिन जल वाली विद्या धार्या की शोक रहित होकर देखता है । जो द्विकेन्द्र इम प्रकार से इम महाद् पुण्यतम महा वराह महेश्वर के कल्प को पढ़ने हैं और भवण करते हैं वे दिन—दिन में विमल हो जाया करते हैं । वे सँकड़ो और सहस्रो प्रशुभो का विनाश करके प्रपन्न हुए देवों से सेविन और विद्व तथा गन्धर्वों से ममन्वित स्वर्ग के परम सुख का उपभोग किया करते हैं जो स्वर्ग्य चन्द्र के तुष्य प्रप्प-राद्यो के साथ विविध प्रकार के विनाशो से युक्त होता है ॥५७०६१॥

### ६३—मेघनादतीर्थमाहात्म्यवर्णन

जलमध्ये महादेवः केनतिष्ठति हेतुना ।  
 उत्तरं दक्षिणं कूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तम ॥१॥  
 एतदाख्यानमतुलं पुण्यं श्रुत्तिसुखावहम् ।  
 पुराणे यच्छ्रुतं तात तत्तं वक्ष्याम्यशेषतः ॥२॥  
 त्रेतायुगे महाभाग रावणो क्षेपकण्ठकः ।  
 प्रलोक्यविजयी रौद्रः सुरासुरभयङ्करः ॥३॥  
 देवदानवगन्धर्वैस्तु पिभिश्च तपोधनेः ।  
 अवध्योऽथ विमानेन यावत्पर्यटतेमहीम् ॥४॥  
 तावद्विन्ध्यगिरेर्मध्ये दानवो बलदपित्तः ।  
 मयोनामेति विख्यातो गुहावासी तपदचरन् ॥५॥  
 तस्य पार्श्वगतो रक्षो धिनयादवनिगतः ।  
 पूजितो दानसन्मानं रिद्धं वचनमब्रवीत् ॥६॥  
 कस्येयं पद्मपत्राक्षी पूरण्चन्द्रनिभानना ।  
 किनामधेया तपति तप उग्रं कथं विभो ॥७॥

पुष्पिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! महादेव जल के मध्य में उत्तर और दक्षिण कूल को वर्जित करके किस हेतु से स्थित रहा करते हैं ? धीमाकं-

ज्येष्ठजी ने कहा—यह आख्यान तो बहुत ही मनुष्य है और परम पुण्य  
 पूरा है तथा धर्मों को सुख प्रदान करने वाला है । हे वसन्त ! पुराण में  
 मैंने जो कुछ भी सुना है उस सबको मैं आपको बतलाना हूँ । हे महा-  
 भय ! वैद्ययुग में देवों के जिसे कष्टक रावण हुआ था जो त्रिलोकी को  
 पराजित कर विजय प्राप्त करने वाला, महाद् शेर और तुर, असुर सबके  
 लिये बहुत ही भयकर था । बहू देवों, दानवों, गन्धर्वों, ऋषियों और  
 तपोधनों के द्वारा कई कई के धाम्य कही था । वह विमान के द्वारा  
 सम्पूर्ण पृथ्वी पर पर्यटन किया करता था । जैसे ही यह पर्यटन कर रहा  
 था वैसे ही विन्ध्य गिरि के मध्य में एक वन के दर्पे वाला मय नाम  
 वाला दानव था जो परम प्रसिद्ध था और गुफाओं में निवास करते हुए  
 उपदर्या कर रहा था । उसके समीप में जाकर राक्षस ने वितम से पव-  
 नत हाकर भूमि में अवस्थिति की थी । दान और सम्मानों के द्वारा  
 उसकी पुत्रा की थी और अन्त में उसने मय से यह वचन कहा था—यह  
 कर्मन् इन के समान नेत्रों धारण तथा पूर्ण अद्रमा के तुल्य मुख धारण यह  
 क्या नाम वाली है, हे विन्ध्य ! यह क्या ऐसी उग्र उपदर्या कर रही है ?

॥१-७॥

दानवानां पतिः श्रेष्ठो मयोऽहं नाम नामतः ।  
 भार्या सेत्रोवती नाम तस्यास्तु तमया शुभा ॥८  
 मन्दादरीतिविक्रियातातपस नर्तुं कारणात् ।  
 आराधयन्ती मर्त्यैरमुमयादयित शुभम् ॥९॥  
 तच्छ्रुत्वा वचन तस्य रावणो मदभोहितः ।  
 प्रसृतप्रणतो भूत्वा मयम्बचनमप्रवीत् ।  
 पौलस्त्यानवयसञ्जातो देवदानवदर्षहा ।  
 प्रार्थयामिमहाभागमृता त्व आतुमर्हसि ॥१०॥  
 शार्वार्षतामह वृत्त मयेनार्जप महात्मना ।  
 रावणायसुनादता पुत्रमित्वाविधानतः ॥११॥  
 गृहीत्वा तां तदा रक्षोऽन्यर्ष्यमानो निशाचरः ।  
 देवोद्याने विमानैश्च शीघ्रते न तथा सह ॥१२॥

केनचित्त्रय कालेन रावणो लोकिरावणः ।

पुत्रवता श्रेष्ठो जनयामास भारत ॥१४

भय ने कहा—दानवों का परम धंष्ट पति नाम से मय नाम वाला है । मेरी भार्या तेजोवती नाम वाली है और उसकी यह शुभा पुत्री है । उसका नाम मन्दोदरी प्रसिद्ध है और यह अपने स्वामी की प्राप्ति के लिये ही उपव्रता कर रही है । उमा देवी के परम पुत्र स्वामी की आराधना करती हुई अपने मर्ता की कामना करती है । मद से मोहित रावण उसके इस वचन का श्रवण करके परम प्रसृत एव प्रणत होकर मय से यह वचन बोला था—मैं वीरस्य वंश में समुत्पन्न हुआ हूँ और मैंने देवी उमा दानवों के दर्प का भली भाँति हवन किया है । हे महाभाग ! मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि इस अपनी सुता को आप मुझे देने के योग्य हैं । महारमा मय ने भी पितामह ( पितृस्य ) के वृत्त का समझकर उस मन्दोदरी अपनी पुत्री को विधि पूर्वक पूजकर रावण के लिये दे दिया था । उस समय में निशाचरों के द्वारा अन्धच्य मान होता हुआ वह राक्षस रावण उस समय में उस मन्दोदरी को ग्रहण करके फिर देवोद्यान में विमानों के द्वारा उस मन्दोदरी के साथ क्रोडा किया करता था । हे भारत ! कुछ समय व्यतीत होते हुए उस लोको को भयभीत करने वाले उस रावण ने भी पुत्रवालो में परम धंष्ट था, पुत्र समुत्पन्न किया था ॥८-१४॥

तेनैवजातमाश्रेणरावो मुक्तीमहारमना ।

सम्बर्त्तकस्यमेघस्य तेन लोकाजडोऽकृता ॥१५

श्रुत्वातन्नदित धोर ब्रह्मालोकपितामहः ।

नाम चक्रे तदा तस्य मेघनादोभविष्यति ॥१६

एवंनामा कृतसोऽपि परमं व्रतमास्थितः ।

तोपयामास देवेशमुमया सह शङ्करम् ॥१७

व्रतंन्नियमदानिश्च होमजाप्यविधानता ।

कृच्छ्रचान्द्रायणानित्यं कृशं कुर्वन्कलेवरम् ॥१८

एवमन्यद्दिने तात । केनास्य घरणीघरसु ।  
 गन्धार्त्तमाद्भ्यगृह्यप्रस्थितोदक्षिणामुत्तः ॥१९  
 तमंदातटमाधित्थ स्नातुकामो महावनः ।  
 नित्यं पूजयन्नेव कृतजाप्यो नरेश्वरः ॥२०  
 तत्रायत्तनवासेन स्नातो हुतहुताञ्जनः ।  
 कृतकृत्यमिवात्मानं मानयित्वा निशाचरः ॥२१

महात्मा उस पुत्र ने सद्युत्पन्न द्वाते श्री एक परम गवानक रात्र क्षणी  
 धरति को बो । वह रात्र सम्बर्णक तप का-रा या और उनसे समस्त सोको  
 जशीभूत बना दिया था । उस परम धीर वरिष्ठ को सुतकार लोको के  
 पितामह ब्रह्माश्री ने उस समय ने यह भेषनाद शेषा—ऐसा नाम कर  
 दिया था । इन् प्रकार का नाम प्राप्ति करने वाला वह भी परम इत मे  
 सवास्वित ही गया था । हमने भी उमादेवो के सहित देवेश्वर श्चर को  
 अपने उपस्था से शोषित कर दिया था । अतः—निमम—दान—होम  
 —वाप्य—और कृत्तु चाग्नाधरयो के विधि विधान से करते हुए उसने  
 अपने कलेवर को बहुत ही कृपा कर दिया था । हु तात ! इस प्रकार से  
 धार्य दिग् मे परधीवर केनाम पर आवाज लिये हम को प्रहृष करके यह  
 दक्षिण दिशा की ओर अग्निमुख होकर प्रस्थान कर गया था । तमंदर नदी  
 के तट पर हे नरेश्वर । यह पहुँच कर महान् प्रभवान् स्नान करने की  
 इच्छा वासा ही गया था । वही पर देव का स्थापित कर उसकी पूजा  
 करता हुआ आर करने लगा था । वही पर आवातम वास के दाश स्नान  
 करने वाला तथा अग्नि मे हवन करता हुआ यह निशाचर अपने आपको  
 कृत कृत्य मानकर हे नृप श्रेष्ठ । यह लक्षा मे परम मार्ग से समन करने  
 की इच्छा वाजा हो गया था ॥१९-२१॥

गन्तुकाम परमार्थं लकाया नृपसत्तमः ।  
 एवमुद्धरतो सिङ्ग प्रणतं सुव्यप्राणिना ॥२२  
 द्वितीयं तु द्वितीयेन भक्त्या पौलस्त्यनन्दनः ।  
 तत्रादेव महामिङ्ग पतितं नमंषाञ्जभसि ॥२३

याहियाहीति चेत्युक्त्वा जलमध्ये प्रतिष्ठितः ।  
 नमित्वा रावणिस्तस्य देवस्य परमेष्ठिनः ॥२४  
 जगामाकाशमाविश्य पूजयमानोनिशाचरं ।  
 तदाप्रभृतितत्तीर्थमेघनादेतिविश्रुतम् ॥२५  
 पूर्वं तु गर्जनं नाम सर्वपापक्षयंकरम् ।  
 तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र ! यस्तु स्नानं समाचरेत् ॥२६  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा भ्रश्वमेघफलं लभेत् ।  
 पिण्डदानं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥२७  
 यत्फलं सत्रयज्ञेन तद्भूवेन्नाऽत्र संशयः ।  
 तेन द्वादशवर्षाणि पितरः सम्प्रतपिताः ॥२८

वह पीलस्य नन्दन एक लिङ्ग को प्रणत होते हुए सब्यपालि से  
 उद्धृत कर रहा था और दूसरे को भक्ति पूर्वक दूसरे हाथ से उतार रहा  
 था । उतने ही में वह महालिङ्ग नर्मदा के जल में गिर गया था । "जापो  
 —जापो"—यह कहकर जल के मध्य में उसकी प्रतिष्ठा करदी था ।  
 रावण के पुत्र मेघनाद ने उक्त परमेश्वी देव को प्रणाम करके फिर वह  
 निशाचरों के द्वारा पूज्यमान होता हुआ आकाश में प्रविष्ट होकर चला  
 गया था तभी से लेकर यह तीर्थ 'मेघनाद तीर्थ'—इस नाम से प्रसिद्ध हो  
 गया था । पहिले तो गर्जन नाम था जो सब पापों के क्षय करने वाला  
 था । हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में जो कोई स्नान करता है और अहोरात्र  
 उपोषित होता है वह भ्रश्वमेघ यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ।  
 है नराधिप । जो कोई उस तीर्थ में पिण्ड दान किया करता है उसका  
 फल सत्र यज्ञ के तुल्य होता है—इसमें जेशमाण भी मशय नहीं है । इस  
 के करने से पितृगण बारह वर्ष तक सत्रपित हो जाया करते हैं  
 ॥२२-२८॥

•यस्तु भोजयते विप्रं पट्टसाऽन्नेनभारत ! ।  
 अक्षयं पुण्यमाप्नाति तत्र तीर्थे नरोत्तम ॥२९  
 प्राणत्यागं तु यः कुर्याद्भ्रातृभितो भावितात्मना ।  
 स वसेच्छांकरे लोके यावदाभूतमम्बलवम् ॥३०



एषा ते नरक्षादू ल १ गर्जनोत्पत्तिरुत्तमा ।

कथिता स्नेहबन्धेन सर्वपापक्षयकरि ॥३१॥

हे भारत जो कोई नहीं पर पट्टरों वाले मन से विप्र को मोहन कराता है हे नरोत्तम ! उम तीर्थ में यह ब्रह्म पुण्य प्राप्त किया करता है । भाषित भारवा के द्वारा भाषित होते हुए जो नहीं पर प्राणों का न्याय किया करता है वह मनुष्य जब तक समस्त भूतों का सम्पन्न होता है तब तक भगवान् शङ्कर के लोक में निवास किया करता है । हे नरक्षादूत ! यह इस गर्जनोत्पत्ति नामक तीर्थ की उत्तम उत्पत्ति कापक्षी बनताही है । मैंने स्नेह के बन्धन से कावम ही यह बनताही है । यह सम्पूर्ण प्रकार के पापों का क्षय कर देने वाली है ॥२९-३१॥

### ६४—भीमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयकरम् ।

सेवितं श्रुतिसर्वैश्च भीमव्रतधरं शुभैः ॥१॥

तत्र तीर्थं तु यं स्नात्वा सोपवातो जितेन्द्रियः ।

जपेदेकाक्षरं मन्त्रमूर्ध्वबाहुर्दिवकरे ॥२॥

सम्यजन्माञ्जितं पापं सत्सनादेव नश्यति ।

मन्तुजन्माञ्जितं पापं गायत्र्या नश्यते ध्रुवम् ॥३॥

इह भिजन्मभिर्जातं धरेन तु पुरा जन्तम् ।

सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति किस्विपम् ॥४॥

वैदिकं लौकिकं वापि वाप्यं प्रप्तं नरेश्वरः ।

तत्क्षणाद्भृते सर्वं तृणान्तुज्वलनायया ॥५॥

न देवव्रतमाश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् ।

अज्ञानान्धयतेक्षिप्रं मोक्षरं तु कदाचन ॥६॥

तत्र तीर्थं तु यो दानं यत्किमाश्रित्य वाचरेत् ।

तदक्षम्यफलं सर्वं दायते पाप्मनुन्वन ॥७॥

श्रीमद्भगवद्गीता—इसके मन्त्रर भीम व्रतों के धारण करने वाले परम शुभ श्रुतियों के सर्वों के द्वारा सेवित भीमेश्वर नाम

घाले तीर्थ पर गमन करना चाहिए जो समस्त पापों के शय करने वाला है । उस तीर्थ पर जो भी कोई स्नान करके अपनी इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखते हुए उपवास करता है और सूर्य की ओर बाहुओं को ऊंचा उठाकर एकाक्षर मन्त्र का जाप किया करता है उस मनुष्य के पूर्व जन्मों में अजित किये हुए समस्त पाप उसी क्षण में नष्ट हो जाते हैं । गायत्री के जाप से तो सात जन्मों के पापों का निश्चय ही विनाश हो जाये करता है । दश बार गायत्री का जाप करने से इसी जन्म में जो पाप किये हैं उनका नाश होता है—सौ बार जप करने से पूर्व में किये हुए पापों का शय हुआ करता है और एक सहस्र बार जप करने से तीस जन्मों के किये हुए पापों का विनाश गायत्री कर दिया करता है । हे नरेश्वर ! वैदिक भयवा लौकिक जाप्य का किया हुआ जप उसी क्षण में तिनको ने डेर को मन्त्र के समान समस्त पापों को नष्ट कर देता है । देव का बल प्राप्त करके कभी भी पाप का समाचरण नहीं करना चाहिए । जो पाप भयानक बल बन गया है वह तो तुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है और ज्ञान पूर्वक जान बूमकर किया जाता है वह कभी नष्ट नहीं करता है । उस तीर्थ में जो मनुष्य अपनी दक्षिण क मनुमार दान करता है हे पाण्डु नन्दन ! उस दान का भी अक्षय्य फल हुआ करता है जो कभी भी शय को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥१-७॥

### ६५—नरादेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनारदेश्वरमुत्तमम् ।  
 तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ॥१  
 नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्मात्तीर्थं विनिर्मितम् ।  
 एतदाख्याहिमे सर्वप्रसन्नोपदिसत्तम ! ॥२  
 परमेष्ठिसुताः पार्थ ! नारदो मुनिसत्तमः ।  
 रेयामाश्रुत्तरे कुले तपस्तेन पुरा कृतम् ॥३  
 नवनाडीनिरोधेन काष्ठावर्त्या गतेन च ।  
 तोषितः पशुभर्ता वै नारदेन युधिष्ठिर ! ॥४

मुष्टोऽहं तव त्रिप्रोद्भ ! योगिनाथ अयोनिश्च । ।

वर प्रार्थय मे वत्स यत्ते मनसि वसते ॥५॥

स्वप्नसादेन मे शम्भो योगध्वं व प्रसिध्यतु ।

अचलाते भवेद्भक्ति सर्वकालं ममैव तु ॥६॥

स्वेच्छाचारी भवे देव वेदवेदाङ्गपारग ।

त्रिकालज्ञा जगन्नाथगोतृशोभू सदा भवे ॥७॥

श्री महाशय माकण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र । इसके उपरान्त परमोत्तम नारदेन्दर नामक तीर्थ पर गमन करना चाहिये । यह सभी अन्य तीर्थों में श्रेष्ठ श्रेष्ठ तीर्थ है और इसको स्वयं देवर्षि श्री नारदजी ने ही बताया था । मुनिशिर ने कहा—ये मुनिशिर । यदि आप घेरे लहर प्रवाह है तो इ सतम । मुझे यह सभी बतनाइये कि नारदजी ने इस तीर्थ का निर्माण किस कारण से किया था । श्री माकण्डेयजी ने कहा—उन परमश्री ब्रह्मज्ञानी के पुत्र मुनिशिर ने परम श्रेष्ठ नारदजी ने ही प्रार्थना की कि मुझे उचित और पर पहिले तपस्सा की थी । इ मुनिशिर । नव मादिशिरों के निराद करने से कायावती म प्राप्त हुए थी नारद ने पशुपति प्रभु को परम लोहित कर दिया था । श्री ईश्वर ने कहा—हे विप्रेन्द्र । आप तो योगियों के भी स्वामी हैं । हे सयोनिव । मैं आपसे मत्स्य प्रसन्न हो गया हूँ । इ मत्स्य । सब को भी कुछ आपके मन की सुहाता ही बड़ी मरदान मुझसे प्राप्त कर लो । वरषि श्री नारद ने कहा—हे शम्भो । आपने प्रसाद से मरा योग शक्ति ही प्राप्त और सर्वदा मेरे हृदय में प्राप्त करणों में अविमल भक्ति हो राव । समस्त ब्रह्म और वेदों का सम्पूर्ण अर्थ प्राप्तो का पारगामी हाकर मैं स्वच्छया जहाँ भी चाहुँ वहाँ भ्रमण करने वाला हो जाऊँ । त्रिकाल की बातों का ज्ञान और सब जगत् का स्वामी का गुण जान करने वाला हो जाऊँ । ११-७॥

दिनेदिने यथा मुष्ट देवदानवमानुषे •

पातालैर्मह्यं लोके वा स्वर्गं वाऽपि महेश्वर ॥८॥

पश्येय त्वत्प्रसादेन भदन्त पार्वती तथा ।

तीर्थं लोकेषु विस्थातं स्वर्गपापक्षय करम् ॥९॥

एवं नारद ! सर्वं तु भविष्यति न संशयः ।  
 चिन्तितं मत्प्रसादेन सिद्धियतेनात्र संशयः ॥१०  
 स्वेच्छाचारो भवेवंतस्तस्वर्गं पातालगोचरे ।  
 मर्त्यं वा भ्रमं वा योगिन्न केनाऽपि निवार्यसे ॥११  
 सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चंकर्विधातिः ।  
 ताना एकोनपञ्चाशत्प्रसादान्मे तव ध्रुवम् ॥१२  
 मम प्रियं करं दिव्यं नत्पगीतं भविष्यति ।  
 कलिं च पश्यसे नित्यं देवदानवकिन्नरैः ॥१३  
 त्वत्तीर्थं भूतले पुण्यं मत्प्रसादाद्भूयिष्यति ।  
 वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो ह्यशेषज्ञानकोविदः ।  
 एकस्त्वमसि निःसङ्गो मत्प्रसादेन नारदः ॥१४

हे महेश्वर ! पाताल में—स्वर्ग में और मनुष्य लोक में जो आये  
 दिन देवों के, दानवों के और मनुष्यों के युद्ध हो वे सब मैं आपके प्रसाद  
 से दल लिया करूँ तथा रुदा आपको और जगदम्बा पार्वती का भी दर्शन  
 प्राप्त किया करूँ । यह लोको में अति विख्यात तीर्थ ही जावे जो सभी  
 पापों का क्षय करने वाला बन आवे । श्री ईश्वर ने कहा—हे नारद !  
 इसी प्रकार से मेरे प्रसाद से यह आपके द्वारा सोचा हुआ सभी कुछ ही  
 जायगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । यह सभी सिद्ध होगा—इसमें  
 संशय का कोई भी अवसर नहीं पायेगा । हे धर्म ! आप स्वेच्छा से  
 समाचरण करने वाले हो जाओगे चाहे जहाँ भी स्वर्ग-पाताल और गो  
 चर स्थल एवं मनुष्य लोक में भ्रमण करो । हे योगिन् ! आपका निवारण  
 किसी के भी द्वारा नहीं किया जायगा । पञ्च आदि सातों स्वर्ग—तीनों  
 ग्राम—इक्षीम मूर्च्छनाएँ और उमघास तान ये सभी मेरे प्रसाद से आपको  
 प्राप्त हो जायेंगे—यह परम निदिष्ट है ॥१०-१२॥ आपका नृत्य और  
 गीत मेरी दिव्य प्रीति के करने वाला होगा । देव आसुरों तथा किन्नरों  
 के द्वारा होने वाले कलह को आप नित्य ही देखा करेंगे । यह आपके  
 नाम से प्रसिद्ध तीर्थ भी मेरी कृपा से परम विख्यात बन जायगा । हे  
 नारद ! आप वेदों और वेदों के तत्वों के ज्ञाता तथा अशेष ज्ञान के

महा मनीषो ज्ञाता हो जायेंगे । भाप एक ही सङ्ग रहित होकर मेरे प्रचार से विभरण्ड करने वाले होंगे ॥१३-१४॥

इत्युवत्वान्तर्दधे देवो नारदस्तत्र शूलिनम् ।

स्वाग्नामासास राजेन्द्र सर्वमस्त्रोपकारकम् ॥१५॥

पृथिव्यामृत्तम तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ।

तत्र तीर्थं नृपश्रेष्ठ यो गच्छेद्विजितेन्द्रियः ॥१६॥

मासि भाद्रपदे पार्व । कृष्णपक्षे षतुद्दशी ।

उपोष्य परया भक्त्या राप्ती कुर्यात् जागरम् ॥१७॥

छन्न तत्र प्रदानम्ब्रं ब्राह्मणे शुभलक्षणे ।

द्यस्त्रेषातु हवा यैवं तेषा धातु प्रदापयेत् ।

ते गान्ति परमं लोकं पिण्डदानप्रभावतः ॥१८॥

कपिलातमदातव्यापितृनुदिश्य नारतः ।

इत्युच्चार्य द्विजे देव्यामान्तु ते परमागतिम् ॥१९॥

सस्य श्राद्धस्य भावेन ब्राह्मणस्य प्रसादतः ।

तमं दातो मभावेन न्यायाजितघनस्य च ।

तेषा चैव प्रभावेण श्रेता यान्तु परा गतिम् ॥२०॥

इत्युच्चार्य द्विजे देवा दक्षिणा च स्वस्त्युत्तः ।

हृविष्यान्त विद्यालाभा ! द्विजान्त चैव दापयेत् ॥२१॥

देवस्वर भगवान् क्षम्भु-इतज कडुकर बही पर मन्त्रहित हा गये थे और शही पर फिर देवपि श्री नारदजी ने इस धरातल मे वह परम उत्तम तीर्थ निर्मित किया था । इ नृप श्रेष्ठ । उस तीर्थ में जो भी कोई मन्त्र किया करता है और इन्द्रियो को जीउ तिमै वामा हाता हैं । हे पाप । इस उत्तम तीर्थ में मन्त्र करने का श्रेष्ठ समय भाद्रपद मास होता है । भाद्रपद में कृष्ण पक्ष की षतुर्दशी तिथि में वहाँ पहुँचकर उपवास कर और परम उत्कृष्ट भक्ति से भावना से रति में जागरण करना चाहिए । किसी शुभ-लक्षणों से मुक्त ब्राह्मण को छत्र का दान करे । जो कोई भी घरमें के बाह्य निर्मित हुए ही उनके लिए वहाँ पर श्राद्ध देना चाहिये । वही पर पिण्डदान करने का ऐसा प्रभाव होता है कि वे सब परमोत्तम लोक

को चले जाया करते हैं । हे भारत ! वहाँ पर अपने पित्रों का उद्देश्य लेकर कपिला गो का दान करना चाहिये । उस समय मेरा सा उच्चारण भी करे कि मेरे पितृगण इस कपिला के दान के प्रभाव से परम गति को प्राप्त हों । इन श्राद्ध के प्रभाव से—बाह्यण की कृपा से—नमंदा के बस के नाव से न्याय से उपाजित धन से किया हुआ दान-मुष्य घोर उनके प्रभाव से सभी प्रेत परम गति को प्राप्त करें—एसा उच्चारण करके अपनी शक्ति अनुसार द्विज को दक्षिणा देनी चाहिये । हे विमलाक्ष ! द्विजों को हविष्यान्न देना चाहिए ॥११-२१॥

दीपं भक्त्या प्रदातव्यं नृत्यं गीतं च कारयेत् ।

अवाप्तं तेन वै सर्वं यः करोतीश्वरालये ॥२२

स याति रुद्रसन्निध्यमिति रुद्रः स्वयं जगो ।

विद्यादानेन चक्रेन अक्षया गतिमाप्नुयात् ॥२३

पूर्वहास्तप्रदातव्याभूमिं सस्यवतीं नृप ।

चित्रभानुं शुभमन्त्रैः प्रीणयेत्तत्र भक्तितः ॥२४

अज्येन सुप्रभूतेन होमद्रव्येण नारत ।

ये यजन्ति तदा भक्त्या त्रिकालं नृत्यमेव च ॥२५

तीर्थं नारदनाभारये रेवायाश्चोत्तरे तटे ।

चित्रभानुमुखादेवाः सर्वदेवमयो ऋषिः ॥२६

ऋषिणा प्रीणिताः सर्वे तस्मात्प्रीत्यो हुताशनः ।

पूजितो हव्यवाहे तु दारिद्र्यं च नैव जायते ॥२७

घनेन विपुलां प्रीतिर्जायते प्रतिजन्मनि ।

कुलीनाश्च भुवेपाश्च सर्वकालं घनेन तु ॥२८

परम भक्ति की भावना से दीप दान करे, नृत्य और गान भी करना चाहिए । उस ईश्वर के आलय में जो भी कोई ऐसा करता है उसने सभी कुछ प्राप्त कर लिया है । वह अन्त समय में भगवान् रुद्र को सन्निधि प्राप्त किया करता है, ऐसा भगवान् रुद्र ने स्वयं कहा था । एक विद्या के दान से मनुष्य अज्ञय गति को प्राप्त किया करता है । हे नृप ! वहाँ पर अस्य-वती पूर्वहा भूमि का दान करना चाहिये । वहाँ पर भक्ति के नाव से

शून मन्त्रों के द्वारा चित्रमानु को प्रसन्न करना चाहिए । कुछ से, प्रसन्न होय के शब्द के द्वारा हे भारत । जो योग सदा भजन किया करते हैं और विद्यास में नृत्य करते हैं । रेवा नदी के वरपर तट पर शारद नाम वाले तीर्थ में शिपमानु जिनमें प्रवास है ऐसे सब देवता हैं और सब देवों से परिपूरित धर्म हैं । शक्ति के द्वारा समस्त देवों को प्रसन्न किया गया था । इससे हुवाचन को धर्मात् धर्मि देव को प्रसन्न करना चाहिये । ह्यम वाह के (धर्मि के) पूजित करने पर अनुष्य को शरिदा कभी नहीं बुझा करती है । धन से प्रति जन्म में बहुत धनिरु प्रीति हुमा करती है । धन से कुनोन और सभी जानों में सुन्दर देवों वाले होते हैं ॥२०-२८॥

प्लवो नदीना पतिरङ्गना राजा च सद्बुद्धयः प्रजानाम् ।

घन मरणासृष्टवस्त्ररुणां गतु यत्र योश्चमानयन्ति ॥२९

घनदाव' घनेनेन क्षमिन्तीर्थे ह्युपाजितम् ।

यमेनच यमत्व हि इन्द्रत्व चैववशिषा ॥३०

धर्म्य' ररि महीपाले पाथिदास्त्रमुपाजितम् ।

नारदेश्वरमहात्म्याद्ध्रुवो निश्चलतां गतः ॥३१

सर्वतीर्थेश्वर तीर्थ' निर्मित' नारदेन तु ।

पृथिव्या सागरान्ताया रेवापाश्वीतरे तटे ।

तद्वर' सर्वतीर्थीना महापातकनाशनम् ॥३२

शक्ति का पत्र—मन्त्रों का पत्र, प्रयोगों का संकलन में रचकर करने वाला राजा—मन्त्रों का पत्र शक्तियों को शत्रु से पराजित मीथन को प्राप्त किया करते हैं । घनेदा कुवेन ने घन दत्व का पद जसी तीर्थ में उपाजित किया था—यमराज ने यमत्व होने का पद तथा बज्जी ने इन्द्रत्व का पद तथा धर्म्य महीपालों ने भी पाथिदा हुने का पद उपाजित किया था । नारदेश्वर प्रभु के महात्म्य ही से ध्रुव निरालम पद को प्राप्त हुमा था इस प्रकार से देवधि श्री नारदजी ने यह तीर्थ यमराज धर्म्य तीर्थ से परम श्रेष्ठ निर्मित किया है । इस सागरों का समाप्ति वाली पृथिवी में रेवा नदी के वरपर दिशा वाहि तट पर इस तीर्थ की प्रतिष्ठा हुई है जो

सब तीर्थों में श्रेष्ठतम है और सभी महापातकों के भी विनाश करने वाला है ॥२६-३२॥

६६—दधिस्कन्धमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनं

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! तीर्थं द्वयमतुत्तमम् ।  
 दधिस्कन्दं मधुस्कन्दं सर्वपापक्षय करम् ॥१  
 दधिस्कन्दे नरः स्नात्वा यस्तु दद्याद् द्विजे दधि ।  
 उपतिष्ठेत्ततस्तस्य सप्तजन्मनि भारत ! ॥२  
 न व्याधिर्न जरा तस्य च शोको नैव मत्सरः ॥३  
 मधु स्कन्देऽपि मधुना मिश्रितान्यस्तिलान्ददेत् ॥४  
 मधुनासह समिश्रं पिण्डं यस्तु प्रदापयेत् ।  
 तस्य पोत्रप्रपोत्रेभ्योदारिद्र्यं नैव जायते ॥५  
 दधिभिः सहस्रं मिश्रं पिण्डं यस्तु प्रदापयेत् ।  
 तस्मिंस्तीर्थं नरः स्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुखः ॥६  
 पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।  
 द्वादशाब्दानि तूष्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥७

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर दधिस्कन्द और मधुस्कन्द नामक तीर्थों का गमन करे। यह दोनों तीर्थ सभी पापों का क्षय करने वाले हैं। प्रथम मनुष्य दधि स्कन्द में स्नान करे, शाहूणों को दही का दान दे। उस जगह उपनिष्ठ रहने पर हे भारत ! सात जन्मों तक कोई व्याधि, वृद्धावस्था, शोक एवं मत्सर के क्लेश नहीं होते ॥१-३॥ फिर मधुस्कन्द में मधु में तिल मिलाकर दान दान दे। तथा मधु से मिश्रित पिण्ड प्रदान करे तो उसके पोत्र-प्रपोत्र भी दरिद्री नहीं होते। यदि दही मिलाकर पिण्ड दे और स्नान कर विधिवत् दक्षिणा दे तो उसके पिता, पितामह और प्रपितामह आदि बारह वर्ष तक वृद्ध रहते हैं इसमें विचार करने की कोई बात नहीं है ॥४-७॥



८७—सुवर्णशिलातीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेन्महीपाल सौवर्णशिलमुत्तमम् ।  
 प्रख्यातमुत्तरे कूले सर्वपापक्षयकरम् ॥१॥  
 समन्ताच्छतपातेन मुनिसर्गं पुराकृतम् ।  
 रेवायां दुर्लभंस्थानं सङ्गमस्थसमीपतः ॥२॥  
 विभक्तं हस्तमायं च पुष्पक्षेत्रं नराधिप ।  
 सुवर्णशिलकेस्तात्वापूजयित्वा महेश्वरम् ॥३॥  
 जत्वा तु मास्करं देवं होतव्यं च हुनाशने ।  
 विलिखेनाऽऽज्यविभिन्नेषु विलिखन्निरेणाऽपि वा ॥४॥  
 प्रीयता मे जगन्नाथो व्याधिनक्षयतु मे घृवम् ।  
 द्विजाय काञ्चने दत्तं मत्फलं तच्छृणुष्व मे ॥५॥  
 बहुस्वर्णस्य यत्प्रोक्तं मागस्यफलमुत्तमम् ।  
 तथाऽपीलभते सर्वं काञ्चनये प्रयच्छति ॥६॥  
 तेन दाशेनपूतात्मा मृतं स्वर्गमवाप्नुयात् ।  
 रुद्रस्तानुचरस्तावसावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥७॥  
 ततः स्वर्गावतीर्णस्तु जायते विशदे कूले ।  
 धनधान्यसमीपतः पुनः स्मरति तज्जलम् ॥८॥

धी माकण्डेय महर्षि ने रक्षा—हे महोपान ! इसके उपरान्त अति उत्तम सुवर्णशिला नाम वाले तीर्थ में गमन करना चाहिये जो उत्तर पूरु में प्रख्यात है और सब पापों के क्षय करने वाला है । मुनिर्षों के साथ ने पहिले धारों और छत पात के द्वारा श्रिया या । रेवा नदी में यह परम दुर्लभ स्थान है जो कि सगम के समीप में है । हे नराधिप ! एक हाथ परिभाण वाला पुष्प क्षेत्र विभक्त है । इय सुवर्ण शिला नामक तीर्थ में स्नान करके श्री महेश्वर प्रभु का धर्मचर्चन करके, मास्कर क्षेत्र को ममन करके हुनाशन में हवन करना चाहिए । इम घृव से मिश्रित वित्त धनो से अवशा केषन विल धनो ने श्री करे ॥१-४॥ यह कहना चाहिये—इकनाथ बहु मुक्त पर प्रसन्न होवें और देरी व्याधि निश्चिन्त

हृत् से नष्ट हो जावे । द्विज के निम्ने दुवर्ग के दान करने पर जो फल होता है उत फल का मुझसे भक्षण करो ॥४॥ बहुत स्वर्ण वाले याग को जो उत्तम फल कहा गया है उनी मति यह प्राप्त किया करता है जो सन्नूरुं शङ्खन दिया करता है । उन दान से पवित्र आत्मा धामा मृत होकर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है । यह उन समय तक भगवान रत्न का अनुचर रहा करता है जब तक चौदह ह्द घनना कार्य सम्पादन किया करते हैं अर्थात् चौदह ह्द परिवर्तित हुआ करते हैं । फिर वह अक्षयि पुष्प फल की समाप्त हो जाने पर स्वर्ग से अवनीरुं होकर वहाँ लोक में किमी परम उत्तम कुल में वह मनुष्यप हुमा करता है । इन और धान्य से समन्वित हुआ यह पुनः उन अक्ष का स्मरण किया करता है ॥६-८॥

### ६८—करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णन

करञ्जाख्ये ततो गच्छेत्सोपवानो जितेन्द्रियः ।  
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१  
अर्चयित्वा महादेवं दत्त्वादानं तु भक्तितः ।  
सुवर्णं रजतं वाऽपि मणिमोक्तिकविद्रुमान् ॥२  
पादुकोपानहौ छत्रं शय्या प्रवरणानि च ।  
कोटि कोटिगुणं सर्वं जायते नानसंगयः ॥३

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! फिर करञ्ज सत्रक तीर्थ में उपवासपूर्वक जाकर स्नान करे तो सभी पापों से मुक्त हो जाता है । वहाँ भगवान महादेवजी का पूजन करके भक्ति सहित स्वर्ण, चाँदी, मणि, मुक्ता आदि का दान दे घोर पादुका, जूने, छत्रों, शय्या आदि वस्तुएं प्रवर पुष्पों को दे तो यह सभी वस्तुयें करोड़ों गुनी होकर प्राप्त होनी हैं, इसमें संशय नहीं है ॥१-३॥

### ६९—कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णन

सतो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम् ।  
सौभाग्यकरणं दिव्यं नरनारीमनोरमम् ॥१

तत्रमादुर्मंगानापीनरोषा नृपसत्तम ।  
 स्नात्वाऽथ धेदुभास्त्रद्वीसीभाग्यं तस्यजापते ॥२  
 तृतीयायामहोरान्नं सोपवासोजितेन्द्रिया ।  
 निमन्त्रयेद् द्विजं नवत्या सपत्नीक सुहृदिणम् ॥३  
 गन्धभात्यैरलङ्कृत्य वस्त्रधूपविवासितम् ।  
 भोजयेत्पायसान्नेन कृसरैणाऽथ भक्तितः ॥४  
 भोजयित्वायथान्याय प्रदक्षिणमुदाहरेत् ।  
 प्रीयतां मे महादेवः सरस्तीकोद्रुपध्वजः ॥५  
 यथा ते देवदेवेश ! न वियोगः कदाचन ।  
 मनाऽपि करुणा कृत्वा तयार्जस्त्विति विचिन्तयेत् ॥६  
 एव कृते तत्तस्तस्य यत्पुण्यं समुदाहृतम् ।  
 तत्ते सर्वं प्ररक्षयामि यथादेवेनभाषितम् ॥७

हे महीपास । इसके अनन्तर परम शोभा सम्पन्न कामद तीर्थ पर  
 गमन करना चाहिये जो घनि दिव्य सीमाय का करने वाला घोर नरों  
 तथा नारियों के लिए बहुत ही मनोरम है । हे नृप सत्तम ! वहाँ पर  
 उस तीर्थ में चाहे नर हो या दुर्मंगा नारी ही स्नान करके उमा देवी और  
 रुद्रदेव का मन्यर्षन किया करता है उमला परमोत्तम सीमाय सम्पन्न  
 हो आया करता है । तृतीया तिथि में एक पूरे महोरान्न उपवास करते  
 इन्द्रिय जोड़ रहे घोर भक्ति के भाव से सुन्दर रूप सम्पन्न पत्नी के सहित  
 एक द्विज को निमन्त्रित करे । उस दम्पती को गन्ध माला भाँति से सम-  
 संकृत करके वस्त्र धूपादि से सुवासित करे और पायसान्न से यथवा  
 कृसर से भक्ति के साथ भोजन करावे । भोजन कराकर न्यायानुसार उस  
 दम्पती की प्रदक्षिणा करनी चाहिये और प्रार्थना करे—पत्नी के सहित  
 कृपध्वज मणवात्र महादेव मुझ पर प्रसन्न होयें । हे देव देवेश ! मेरे ऊपर  
 परम करुणा करते हुए ऐसा ही कौबिये कि जिससे हम दोनों का कभी  
 भी वियोग न होवे । ऐसा हो होवे—ऐसा चिन्तन करना चाहिये । ऐसा  
 करते पर जो उनके पुण्य फल होता है वह मैं सभी आपको बतताऊ  
 हूँ जो कि देवदेव ने स्वयं अपने मुख से कहा था ॥१-७॥

दोर्भाग्यं दुर्गतिश्चैव दारिद्र्यं शोकवन्धनम् ।  
 बन्ध्यत्वं सप्तजन्मानि जायते न युधिष्ठिर ! ॥८  
 ज्येष्ठमासे सिते पक्षे तृतीयायां विशेषतः ।  
 तत्र गत्वा यो भक्त्या पठ्वाग्नि साधयेत्ततः ॥९  
 सोऽपि पापैरशेषं स्तुमुच्यते नाऽनसंशयः ।  
 गुग्गुलुं दहते यस्तु द्विधा चित्तविवर्जितः ॥१०  
 शरीरं भेदयेद्यस्तु गौर्याश्चैव समीपतः ।  
 तस्मिन्कर्मप्रविष्टस्य उरुक्रान्तिर्जायते यदि ॥११  
 देहपाते व्रजेत्स्वर्गमित्येवं शङ्करोऽश्रवात् ।  
 सितरक्तं स्नया पीतं वस्त्रैश्च त्रिविधं शुभैः ॥१२  
 ब्राह्मणी ब्राह्मणं चैव पूजयित्वा यथाविधि ।  
 पुष्पैर्नानातिथैश्चैव गन्धपुष्प सुशोभनैः ॥१३  
 कण्ठसूत्रकसिन्धूरैः कुंकुमेन विलेपयेत् ।  
 कल्पयेत् स्नयनं गौरी ब्राह्मणं निवस्त्रपिणम् ॥१४

हे युधिष्ठिर ! उस मनुष्य को साठ जन्मों तक दोर्भाग्य—दुर्गति—  
 दरिद्रता—शोक बन्धन—बन्ध्यात्व शोष आदि नहीं हुना करते हैं । ज्येष्ठ  
 मास में—शुक्ल पक्ष में विशेष करके तृतीया तिथि में वहाँ पर जाकर जो  
 भी कोई भक्ति की भावना से प्रच्छाग्निपत्रों का साधन किया करना है वह  
 समस्त पापों से मुक्त हो जाता करता है—इसमें सेवा मात्र भी नश्य नहीं  
 है । जो दुविधा मुक्त चित्त से रहित होकर गूगल का होम किया करना  
 है और जो गौरी के समीप में शरीर का भेदन किया करता है उसने कर्म  
 में प्रविष्ट हुए की यदि उरुक्रान्ति होती है तो वह उन देह के पाव हो जाने  
 पर स्वर्ग में गमन किया करता है—इस प्रकार से यह भगवान् शङ्कर ने  
 कहा था । सफेद—नाल घोर पीले अनेक प्रकार के परम शुभ वस्त्रों से  
 ब्राह्मण और ब्राह्मणी का विधि के अनुसार पूजन करके उनका अनेक  
 प्रकार के सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से समलंकित कर कण्ठ सूत्र धारण करावे  
 और सिन्धूर एवं कुंकुम से विलेपन करे । उस ब्राह्मणी को साक्षात् गौरी

तथा ब्राह्मण को छात्रात् विष स्वरूप मनस कल्पना करके ही धर्मभंग करना चाहिए ॥८-१४॥

तेषा तद्रूपकं कृत्वा दानमुत्सृज्यते ततः ।

क कर्ण कर्ण वेष्ट च कण्ठिकामुद्रिका तथा ॥१५

सप्ताधान्यं तथा चैव भोजन नृपसत्तम ।।

धान्यान्यपि च दानानि तस्मिंस्तीर्थे ददाति यः ॥१६

सर्वदानंश्च यत्पुण्यं प्राप्नुयान्ताप्रसशय ।

सहस्रगुणित सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥१७

सद्गुरेण नम तस्माद्भोगं मुहुक्तं ह्यनुत्तम ।

सौभाग्य तस्य विपुल जायते नात्र सशय ॥१८

अपुत्रो लभते पुत्रमधतो धनमाप्नुयात् ।

राजेन्द्र ! कामद तीर्थं नर्मदायां व्यवस्थितम् ॥१९

उन दोनों ( ब्राह्मण-ब्राह्मणी ) का ऐसा रूपक करके फिर दान का उत्सृजन करना चाहिए । कर्ण, कर्णवेष्ट, कण्ठिका, मुद्रिका, सात्र प्रकार के धान्य और हे नृप सत्तम ( भोजन-इतका दान करे । इनके प्रतिगुणित धर्म्य भी जो दान उस महातीर्थ में देता है वह समस्त प्रकार के दानों से जो पुण्य—फल होता है उसे प्राप्त कर लेता है—इसमें शनिक भी संशय नहीं है ॥१२-१६॥ यही पर दिया हुआ दान सहस्र गुना हो जाता करता है—इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥१७॥ इसमें यह भगवान् गद्गुर के जो नाथ में पूर्वोत्तम भीषो का उपभोग किया जाता है । उसका महान् सौभाग्य होता है—इसमें भी कुछ संशय नहीं है । जिस मनुष्य के पुत्र नहीं है वह पुत्र होने को प्राप्ति कर लिया करता है । जो निर्धन मनुष्य हो वह विपुल धन का लाभ लिया करता है । हे राजेन्द्र ! इस तीर्थ का नाम 'कामद' है अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है और यह तीर्थ नर्मदा में व्यवस्थित है ॥१९-१९॥

## १०० — भण्डारीतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! भण्डारीतीर्थं मुत्तमम् ।  
 दरिद्रच्छेदकरणं युगान्येकोनविंशतिं ॥१  
 धनदेनतपस्तप्तप्त्वा प्रसन्ने पद्मसम्भवे ।  
 तत्रैव स्वल्पदानेन प्राप्तं वित्तस्यरक्षणम् ॥२  
 तत्र गत्वा तु यो भक्त्या स्नात्वा वित्तं प्रयच्छति ।  
 तस्य वित्तपरिच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति ॥३

श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त श्रेष्ठ भण्डारी तीर्थं मे गमन करे । यह तीर्थं इक्कीस युगो तक की दरिद्रता का उच्छेद करने वाला है । वहाँ कुवेर का तप करता हुआ पद्मसंभव ब्रह्माजी को प्रसन्न करे तो घोटा-सा दिया हुआ दान ही धन की रक्षा प्राप्त कराने वाला होता है । वहाँ जाकर भक्ति पूर्वक स्नान और धन दान करे तो भविष्य में कभी भी उसका धन से विच्छेद नहीं होता अर्थात् वह कभी रक नहीं हो पाता ॥१-३॥

## १०१ — स्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन

नमं दादक्षिणेकूले तीर्थं परमशोभनम् ।  
 स्कन्देन निर्मितं पूर्वं तपः कृत्वामुदारुणम् ॥१  
 स्कन्दस्यचरितं सर्वं भाजेन्मद्विजसत्तम ।  
 तीर्थं स्पृश्विधिपुण्यं कथयस्वयथार्थत ॥२  
 देवदेवेन वै तप्तं तपः पूर्वं युधिष्ठिर ।  
 विष्णुप्तेन सुरैः सर्वैरुमादेवो विवाहिता ॥३  
 नास्ति सेनापतिः कश्चिद्देवानां सुरसत्तम । ।  
 नीयन्ते दानवैर्घोरैः सर्वैर्देवाः सवासवा ॥४  
 यथा निशा विना चन्द्र दिवसो भास्करं विना ।  
 न शोभते मृहूर्तं वै तथा सेना निनायका ॥५

एव ज्ञात्वा महादेव परया दययाविभो ।

मेनानोर्दीयताकश्चिद्विभुसुक्किपुविश्रुत ॥६

एतच्छ्रुत्वा पुम वाक्य देवाना परमेश्वरः ।

कामयान उमा देवां सस्मार मनसा स्मरम् ॥७

महानर्षि श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—नर्मदा महानदी के दक्षिण तट पर एक अत्यन्त शोभा से सम्पन्न तीर्थ है जिनको पहिले परम दक्षिण तपस्या करके भगवान् स्कन्द ने निर्मित किया था । युधिष्ठिर ने कहा— हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! भगवान् स्कन्द का अन्न से लेकर पूरा शरित और उस तीर्थ की विधि तथा पुष्य-फल यह सभी कुछ यथार्थ रूप से कहिए । श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे युधिष्ठिर ! पहिले देवों के भी देव ने मतिधोर तप का यहाँ पर उपन किया था और समस्त सुरमणों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उन्होंने उमादेवी के साथ विवाह कर लिया था । देवों ने उन देवेश्वर की प्राप्ति की थी कि हे सुरों में परम श्रेष्ठ ! हम समय में देवमणों में कोई भी सेना का स्वामी नहीं है । परम योग यानवी के द्वारा इन्द्र के सहित सब देवगण एकटकर ले जाये जाते हैं । जिन प्रकार से रात्रि चन्द्रमा के बिना घामित नहीं होती है और दिन भगवान् मास्कर के बिना सोमा हीन रहता है और थोड़ी देर तक भी सोमा नहीं दिया करते हैं वही तरह से बिना कितो शायक के सेवा होती है । इस तरह से समस्त देव महादेव । हे विभो ! परम दया करके आप कोई मोक्षों में परम प्रसिद्ध सेनावी हमको प्रदान कीजिए । देवों के इस वचन का श्रवण करके परमेश्वर ने उमादेवी की कामना करते हुए मन से कामदेव का स्मरण किया था ॥६-७॥

तेन मूर्च्छितसर्वाङ्गः कामरूपो जगद्गुरुः ।

कामयामाल रुद्राणो दिव्यं वर्षक्षतं किल ॥८

देवराजस्ततो ज्ञात्वा महामधुनग हरम् ।

सम्मन्थ्य दैवतं सारं प्रपयञ्जातवेदसम् ॥९

तेन गत्वा महादेव । परमानन्दसंस्थितः ।

सहसा तेन दृष्टोऽसौ हाट्टेः प्रवत्वा समत्पितः ॥१०

ततः क्रुद्धा महादेवी शापवाचमुवाच ह ।

वेपमाना महाराज शृणुयतोवदाम्यहम् ॥११

अहं यस्मात्सुरैः सर्वैर्याचितानुत्रजन्मनि ।

कृतारतिश्चविफलासम्प्रेष्यजातवेदसम् ॥१२

तस्मात्सर्वे पुत्रहीनाभविष्यन्ति न संशयः ।

हरेणोक्तस्ततोवह्निरस्माकं बीजमावह ॥१३

यथा भवति लोकेषु तथा त्वं कर्तुं महंति ।

मम तेजस्त्वया शक्यं गृहीतुं मुरसत्तम ।

देवकार्यार्थं सिद्धयर्थं नाज्यः शक्तो जगत्त्रये ॥१४

उसने सर्वांगी में मूर्च्छित होने वाले कामरूप जगद्गुरु ने दिव्य सी धर्य तक रक्षाणी की कामना की थी इसके अनन्तर देवराज ने यह जान कर कि इस समय में भगवान् हर महा भंशुन में प्रकृत हो रहे हैं । देवराज ने देवगणों के साथ मन्त्रणा करके आतवदा ( अग्नि ) को वहाँ पर भेज दिया था । उसने वहाँ जाकर कहा—हे महादेव । इस समय में आप तो मानन्द में सन्निधत् हो रहे हैं । सहसा महादेवजी ने उस आग्नि को देखा तो “हा-हा”—यह कहकर वे रतिक्रिया छोड़कर उठ खड़े हुए थे । इसके पश्चान् महादेवी अत्यन्त क्रुद्ध हो गई थी और उन्होंने शाप दे दिया था । कापते हुए महादेवी ने कहा—हे महाराज ! आप अथवा कीजिए मैं आप से कहती हूँ क्यों कि मुझसे समस्त गुरो ने याचना की थी कि मैं पुत्र को जन्म दूँ । अब इस जातवेदा को प्रेषित करके मेरी रति विफल करदी है । इसलिये ये सब देवगण पुत्र हीन हो जायेंगे—इसमें पुद्ग भी शक्य नहीं है । इसके पश्चान् भगवान् हर ने अग्नि से कहा—हमारे बीज को धारण करो । जैसा लोको में होता है वंसा ही तुम करने के योग्य होते हो । यह मेरा तेज है मुरसत्तम ! तुम ही प्रश्न कर सकते हो और देवी के शपथ की सिद्धि भी हो सकेगी । तुम्हारे प्रतिरिक्त अन्य इन तीनों लोको में कोई भी समर्थ नहीं है ॥८-१४॥

तेजस्त्वय मे देवकाशक्तिर्घाणेविभो ।

करोतिभस्मसात्सर्वं श्रूलोभ्य सचराचरम् ॥१५



उदरस्येन वीजेन यदि ते जायते रुजा ।

तदा सिपम्ब तप्तं जो गङ्गातोये हुताशन ॥१६

एवमुक्त्वा महादेवो अमोघं धोजमुत्तमम् ।

हृष्यवाहमुखे सर्वं प्रक्षिप्यान्तरधीयत ॥१७

गते चादर्शनं देव दह्यमानो हुताशनः ।

गङ्गातोये विनिक्षिप्य जगामस्व निवेशनम् ॥१८

ब्रह्महवी तु तन्नेत्रो ग गाऽपि सरिताम्बरा ।

गरस्तम्बे विनिक्षिप्य जगामाऽऽबु यथागतम् ॥१९

तत्र जातं तु तद् दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः ।

कृत्तिका प्रेषयामासुः स्तन्यं पापयितु तदा ॥२०

दृष्ट्वा ता आगताः सर्वा गङ्गागर्भं महामतेः ।

पण्मुखं, पण्मुखो भूत्वा पिपासुरिवत्स्तनम् ॥२१

अग्नि ने कहा—हे विभो ! हे देव । आपके तेज को धारण करने की मुझमें क्या शक्ति है । आपका तेज तो इस सम्पूर्ण जगत् और त्रैलोक्य तथा परावर सबको भस्मलास कर दिया करता है । ईश्वर ने कहा— हे हुताशन । यदि मेरे इन बीज के तुम्हारे उदर में स्थित होने पर कोई पीडा होती उठी समय में उस तेज को गंगा के जल में प्रक्षिप्त कर देना । इस प्रकार से कहकर महादेवजी ने यह अपना अत्युत्तम एवं अमोघ बीज सम्पूर्ण उस अग्नि के मुख में डाल कर ये यही पर अन्तर्धान हो गये थे । देवेश्वर के भक्तहित होने पर हुताशन दह्यमान ही गया था और उसने उस महादेव के बीज को गंगा के जल में फड़फड़ बह अपने जिनास स्थान पर बना गया था । सरिताम्वरी में परम श्रेष्ठ यह गंगा भी उस तेज को सहन नहीं करती हुई उसको अपने भी गरस्तम्ब में निक्षिप्त कर दिया था और अहाँ से यह आई थी वही पर शोध्य चत्वीर्गई थी । वहाँ पर समुत्पन्न हुए उनको देखकर इन्द्र के सहित समस्त देवों ने उस समय में स्तन पिलाने के लिये यहाँ पर कृत्तिका को प्रेषित किया था । उन सबको आई हुई इन्होंने महामति के गया गर्भ को देखा था कि यह स्नान पान करने की इच्छा वाला था और फिर वह पण्मुख होकर

अर्थात् छे मुखो गाला होकर उसने छे मुखो से स्तन का पान किया था  
॥१५-२१॥

जातकर्मादिसंस्कारान्वेदोक्तान्प्रसम्भवः ।

चकारसर्वान्राजेन्द्रविधिदृष्टे नकर्मणा ॥२२

एणमुखात्पण्मुखो नाम कार्तिकेयस्तु कृत्तिकात् ।

कुमारश्च कुमारत्वाद्ग गगर्भोऽग्निजोऽपरः ॥२३

एव कुमार सम्भूतो ह्यनघीत्य म वेदवित् ।

शास्त्राण्यनेकानि वेद चचार विपुलं तपः ॥२४

देवारण्येषु सर्वेषु नदीषु च नदेषु च ।

पृथिव्या यानितीर्थानि समुद्राद्यानिभारत ॥२५

ततः पर्याययोगेन नर्मदातटमाश्रित ।

नर्मदादक्षिणे कूले चचार विपुलं तपः । २६

ऋग्गु सामविहितं जपञ्जाप्यमर्हन्निशम् ।

ध्याममानोग्रहादेवं शुचिर्धमनिसन्ततः ॥७

ततो वर्षं सहस्रान्ते पूर्णो देवो महेश्वर ।

उभया सहितः काले तदा वचनमब्रवीत् ॥२८

हे राजेन्द्र ! पद्य सम्भव (ब्रह्माजी) ने विधि दृष्ट कर्म के द्वारा वेदोक्त जात कर्मादि सम्पूर्ण संस्कार किये थे । छे मुख होने से इनका एण्मुख— यह नाम पड़ गया था और कृत्तिका से पोषण प्राप्त करने के कारण इनका नाम कार्तिकेय हो गया था । कुमारत्व होने से इनका नाम कुमार हुआ और गङ्गा गर्भ अग्निज ये भी दूसरे नाम थे । इस प्रकार से कुमार समुत्पन्न हुए थे । वे कुछ भी अध्ययन न करके वेदों के जाता थे वे अनेक शास्त्रों को जानते थे और उन्होंने विपुल तपस्या की थी । हे भारत ! समस्त देवर्षियों में—नदियों में, नदी में और इस पृथिवी में समुद्रादि जो भी तीर्थ हैं उन सबमें होकर फिर पर्याय (पारी) के योग से नर्मदा के तट के समाश्रित हुए थे । नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर विपुल तपश्चर्या की थी । ऋग्-गु और सामवेदों में विहित जाप्य का जप करते हुए महानिश श्री महादेवजी का ध्यान करने वाले परम शुचि एवं धमनि

सन्तत ही गये थे । इनके अनेक सहस्र वर्षों के पूर्ण होने पर अन्त में महाेश्वर देव उमादेवी के साथ वहाँ पर समागत हुए और उस समय में यह वचन बोले—॥२२-२८॥

अहं ते वरदस्त्वात् गीरी माता पिता ह्यहम् ।  
 वर वृषीध्व यञ्चेष्ट त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२९॥  
 यदि तुष्टो महादेव उमया सह शङ्कर ।  
 वृणोमि मातापितरौ नान्यागतिर्भक्तिर्मम । ३०  
 एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्य पुत्रस्य वदनाञ्च्युतम् ।  
 तथेत्युक्त्वा तु स्नेहेन प्रेम्णा हं परिपस्वजे ॥३१॥  
 व्रतस्तं भूष्युं पात्राय ह्युभयोयाव शङ्कर ॥३२॥  
 मक्षयन्प्राध्ययञ्चं व सेनानीस्त्व भविष्यासि ॥३३॥  
 दिव्यी च ते वाहनं विव्यरूपो  
 दत्तो मया शक्तिधरस्य सट् स्थे ।  
 सुरामुचदीश्च जयेति चोक्त्वा  
 जगाम कैलासवर महात्मा ॥३४॥  
 गन्ते चाऽदर्शनं देवे तदा स शिखिवाहनः ।  
 स्थापयित्वा महादेव जगाम सुरमन्त्रिणौ ॥३५॥

ईश्वर ने कहा—हे तान । मैं आपकी वरदान देने वाला या गया हूँ । आपकी यह गीरी माता है और मैं आपका पिता हूँ । जो जो आप चाहते हैं वरदान का वरण कर लो जो जो तीनों लोकों में भी दुर्लभ हो पशुसुख ने कहा—हे महादेव । यदि आप मुझ पर परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हैं तो हे शङ्कर ! उमादेवी के साथ मैं आपको माता पिता वरण करता हूँ । इसके अतिरिक्त अन्य मेरी भक्ति और यति नहीं है । इस अनीश सुम वाक्य को जो कि अपने पुत्र के मुख से निकला या 'नयास्तु' अर्थात् ऐसा ही होना—सह कहकर बड़े ही प्रेम से उनका समाधिगन किया या । इसके उपरान्त उमा के साथ उसके महत्क का उपहारण करके भगवान् ईश्वर उससे बोले—ईश्वर ने कहा—आप प्रदाय-प्राप्त्य और सेनानी हूँगे । त्रिषो (तीनों) आपका वाहन होगा । युद्ध में शक्ति के धारण करने वाले

भाषणो दिव्य रूप प्रदान किया है । समस्त सुरों और असुरों पर विजय प्राप्त करो—वह महात्मा श्रेष्ठ पर्वत क्रीनाम पर चले गये थे । देवदेव के चले जाने पर दर्शन न होने पर उत्तमे भय में वह शिखि बाहन महादेवजी को स्नान कराकर सुरों के समीप चले गये थे ॥२६-३५॥

तदाप्रभृति तत्तीर्थं स्कन्दतीर्थंमिति श्रुतम् ।

सर्वपापहरं पुण्यं मर्त्यानां भुवि दुर्लभम् ॥३६

तत्र तीर्थं तु यो राजन्भवत्या स्नात्वाऽर्चवं येच्छिवम् ।

गन्धमाल्याभिषेकंश्च याशिकं स लभेत्फलम् ॥३७

स्कन्दतीर्थं तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः ।

तिलमिश्रणं तोयेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥३८

पिण्डदानेनर्षकेन विधिमुक्तेन भारत ।

द्वादशाब्दानितुष्यन्तिपितरोनाऽप्रसंशयः ॥३९

तत्र तीर्थं तु राजेन्द्र शुभं वा यदि वा शुभम् ।

इहलोकेपरेचैवतस्सर्वं जायतेऽक्षयम् ॥४०

तत्र तीर्थं तु यः कश्चित्प्राणत्यागं करिष्यति ।

शास्त्रमुक्तेन विधिना स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ॥४१

कल्पमेकं वसित्वा तु देवगन्धर्वपूजितः ।

अत्र भारतवर्षं तु जायते विमले कुले ॥४२

वेदवेदागतस्त्वज्ञः सर्वव्याधिविर्जितः ।

जीवेद्वर्षशतं साधुं पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥४३

इदं ते कथितं राजन्स्कन्दतीर्थं स्य मन्भवम् ।

धन्यं परास्यमायुष्यं सर्वं दुःखघ्नमुत्तमम् ।

सर्वपापहरं पुण्यं देवदेवेन भाषितम् ॥४४

तभी से यह तीर्थ 'स्कन्द तीर्थ'—इस नाम से सिद्ध हुआ है । यह तीर्थ समस्त पापों के हरण करने वाला है और परम पुण्य स्वरूप तथा इस भूमण्डल में अत्यन्त ही दुर्लभ है । हे राजन् ! उस तीर्थ में जो भी कोई मक्ति शक्ति से स्नान करके भगवान् शिव का अभ्यर्चन किया

करता है तथा गन्ध माल्य आदि उपचारों के द्वारा अभियेक करता है वह मनुष्य यज्ञ से समुत्पन्न फल को प्राप्त करता है । उस स्कन्द तीर्थ में जो स्नान करके पितृगण और देवों का यजन करता है तथा तिलों से मिश्रित जल से सन्तर्पण करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसे सुनो । हे भारत ! विधि से युक्त एक ही पिण्ड के दान से पितृगण बारह वर्ष तक के लिए वृक्ष एवं सृष्ट हो जाया करते हैं—इस कथन में बिल्कुल भी संशय नहीं है । हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में शुभ कर्म हो या अशुभ हो वह इस लोक में और परलोक में सभी अक्षय हो जाया करता है । उस तीर्थ में जो भी कोई अपने प्राणों का परित्याग करता है और शास्त्रोक्त विधि से किया करता है वह सीधा भगवान् शिव के मन्दिर में चला जाया करता है । यहाँ पर एक कल्प पर्यन्त निवास करके देवों और गन्धर्वों के द्वारा पूजित होता है । अग्नि के समाप्त होने पर वह फिर भारत में किसी परम विमल कुल में समुत्पन्न होता है । यहाँ जन्म ग्रहण करके वह वेदों और वेदांग शास्त्रों के तत्त्वों का ज्ञाता होता है तथा सभी व्याधियों से रहित होता है । वह यहाँ पर साग्र ही वर्ष तक जीवित रहा करता है तथा पुत्र-पौत्रादि से युक्त रहता है । हे राजन् ! यह आपको हमने स्कन्द तीर्थ की उत्पत्ति बतला दी है । यह परम धन्य—यश देने वाला—घायु धर्मक समस्त दुःखों का नाशक—अन्युत्तम—पुण्यमय और सभी पापों के हरण करने वाला है—ऐसा देवों के भी देव ने स्वयं अपने मुख से बतलाया है ॥३६-४४॥

### १०२—अङ्गिरसतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं नागिरसस्य तु ।

उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापविनाशनम् ॥१॥

पुराऽऽसीदगिरानाम ब्राह्मणो वेदपारगः ।

पुत्रहेतुर्गुणस्याऽदोचचारविपुलं तपः ॥२॥

नित्यं त्रिषवणस्नायी जपन्देवसनातनम् ।

पूजयंश्च महादेवं कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥३॥

द्वादशाब्दे ततः पूर्णं तुतोप परमेश्वरः ।

वरुणं च्छन्दयामास द्विजमांगिरसं वरम् ॥४

वद्रे स तु महादेवं पुत्रं पुत्रवता वरम् ।

वेदविद्यान्नतस्नातं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥५

देवाना मन्त्रिणं राजन्सर्वलोकेषु पूजितम् ।

ग्रह्यालक्ष्म्याः सदावासमक्षयं चाव्ययं सुतम् ॥६

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! हमके पश्चात् फिर चांगिरस तीर्थ को गमन करना चाहिए जो नर्मदा नदी के उत्तर तट पर स्थित है और समस्त पापों के विनाश करने वाला है । पुरातन समय में चांगिरस नाम वाला एक वेदों का पारंगामी ब्राह्मण था । युग के आदि काल में उसने पुत्र की प्राप्ति के लिए बहुत भारी उग्र तप किया था । यह नित्य ही तीनों कालों में स्नान करने वाला होकर सनातन देव का जाप किया करता था । जब चारह वर्ष पूर्ण हो गये थे तब परमेश्वर प्रभु प्रसन्न हुए थे । तब उस चांगिरस द्विज को वरदान प्रदान करने के लिये कहा था ॥१-४॥ उसने महादेवजी से पुत्रवान्ता में भी परम श्रेष्ठ पुत्र होने का वरदान माँगा था जो कि वेद विद्या के प्रत में स्नात हो और समस्त शास्त्रों का विद्वान् हो । ऐसा पुत्र होना चाहिये जो देवों का मन्त्री हो और हे राजन् । उस चांगिरस ने समस्त लोकों में पूजित—महालक्ष्मी का सदा वासा स्थान—अक्षय—अव्यय सुत की वाचना की थी ॥१-६॥

तथाभिलषितः पुत्रः सर्वविद्याविशारदः ।

भविष्यति न सन्देहश्च वमुक्त्वायथोहरः ॥७

वर्गंरङ्गिरसश्चापि बृहस्पतिरजायत ।

यथाभिलषितः पुत्रो वेदवेदांगपारगः ॥८

जाते पुत्रेऽङ्गिरास्तत्र स्थापयामास शंकरम् ।

दृष्टनुष्टमना भूत्वा जगामोत्तरपयतम् ॥९

तत्र चांगिरसे तीर्थे यः स्नात्वा पूजयेच्छिवम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति ॥१०

अपुत्रो लभते पुत्रमघ्नो घनमाप्नुयात् ।

इच्छते यश्च यं कर्म स तं लभतिमानवः ॥११

उसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण पुत्र जो समस्त विद्याओं का विशारद होना तुम्हें मिलेगा—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है—ऐसा बहुरूप भगवान् यन्मु यहाँ से बने गये थे । इन यन्मु के लिये हुये बरवानों से अंगिरस के बृहस्पति पुत्र ने जन्म प्रदण किया था जो कि जैसा उनका अभिप्रेत था वैसा ही वेद-वेदों का पारंगामी विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ था । उस पुत्र के उत्पन्न होने पर अंगिरस मुनि ने वहाँ पर भगवान् शंकर की स्थापना की थी । फिर वह परम हृष्ट और मस्तुष्ट मन बान्ता होकर उत्तर पर्वत पर चला गया था । वहाँ पर उस शंकरस्य तीर्थ में जा भी कोई स्नान करके महाशिव शिव का पूजन किया करता है वह सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होकर स्वर्गलोक को यमम किया करता है और निर्वृत मनुष्य इस तीर्थ को पुण्य-प्रभाव से अतुल्य धन की प्राप्ति कर लेता है । मनुष्य वहाँ पर जाकर जो भी कामना करता है उसी को पा लेता है ॥७ ११॥

### १०३—कोटितीर्थमाहात्म्यवर्णन

सतो गच्छेत्सुराजेन्द्रकोटितीर्थं मनुत्तमम् ।

श्रुत्वािकोटिर्गता तत्र परासिद्धिमुपागता ॥१

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणान्शुचिः ।

एकस्मिन्मोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥२

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्तिसृष्टेयता ।

पूजिते तु महादेवे वाजपेयफलं लभेत् ॥३

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके बाद प्रति उत्तम कोटि तीर्थ की गणना करे । जहाँ श्रुति काटि में जाने पर परम सिद्धि की उप-सिद्धि होती है । उस तीर्थ में स्नान करके पवित्र ब्राह्मणों को भोजन करावे । यहाँ विप्रगण श्रुतिगत एक बार भोजन करते हैं वह करोड़ गुना हो जाता है । उस तीर्थ में स्नान करके पितृ देवता का पूजन कर और

महादेवजी का भी पूजन करे तो वाञ्छेय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है  
॥१-२॥

### १०४ केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णन

सप्तपण्डिकसङ्ख्याकं केदारेश्वरसञ्ज्ञकम् ।  
 देवं शृणु वरारोहे दर्शनात्पापनाशनम् ॥१॥  
 सृष्टिकाले पुरादेवि देवा व्याप्ताहिमेनहि ।  
 शीतार्ताविह्वलाः सर्वे ब्रह्माणंशरणं गताः ॥२॥  
 हिमाद्रिणाऽदिताः सर्वे वयं देवजगत्पते ।  
 ग्राहिनीताश्चनुर्वं व्रजपितामहनमोऽनुते ॥३॥  
 देवानां वषट्मं श्रुत्वा श्लोकं वै ब्रह्मणा प्रिये ।  
 पीडिता हिमशलेन शङ्करश्चनुरेव च ॥४॥  
 नाहं यातुं समर्थाऽस्मि सत्यमेतन्मयोदितम् ।  
 महादेवमृतेदेवागतिरन्या न विद्यते ॥५॥  
 स एव शरणं देवः सर्वेषां नो भविष्यति ।  
 तस्याज्ञया मया सर्वे पर्वतारचिताः पुरा ॥६॥  
 कृतानृष्टिर्विचित्रा च हिमाद्रिश्चमयाकृतः ।  
 लभेभ्यःसर्वजन्तूनामधुष्योदुर्गमो गिरिः ॥७॥

ईश्वर ने कहा हे वर ( श्रेष्ठ ) आरोह ( चढ़ गठन ) बाली ! सब-  
 सठ सख्या बाने केदारेश्वर नाम से मुक्त प्रभु हैं । उन देव के विषय में  
 आप धरण करो । बिनके केवल दर्शन से ही सनस्त पापों का विनाश हो  
 जाया करता है ॥१॥ हे देवि ! प्राचीन समय में पहिले सृष्टि के समय में  
 सब देवता लोग हिम से व्याप्त होते हुए शीत से अत्यन्त दुःखित होकर  
 विह्वल हो गये थे । सब देवगण फिर परम पिता ब्रह्माजी की शरणागत  
 में गये थे ॥२॥ देवों ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! हे देव ! हम सब  
 लोग हिमाद्रि से पीडित हैं । हे वर नुखो बाने पितानह ! हम दहे करे  
 हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिए, आपकी सेवा में प्रणाम है ॥३॥ हे



प्रिये ! देवों के इन प्रार्थना के वचनों का प्रवण करके ब्रह्मात्री ने कहा—  
हे देवगण ! धाप लोग हिमवान् पर्वत से पीड़ित हैं जो कि भगवान् दायदूर  
का स्वसुर है । अतएव मैं तो वहाँ जाने में समर्थ नहीं हूँ—मैंने यह  
विष्कुन सस्य एवं स्पष्ट धापको सतला दिया है । हे देवगण ! महादेवजी  
के सिवाय वहाँ पर अन्य कोई भी दूमरी गति नहीं है ॥४-५॥ वह ही  
महादेवजी धाप सबके रक्षा करने वाले होंगे । उनकी ही आज्ञा से मैंने  
पहिले इन ममस्त पर्वतों की रचना की थी । मैंने यह बहुत ही अद्भुत  
सृष्टि की थी और इन हिमवान् पर्वत का भी मृजन मैंने ही किया था किन्तु  
यह गिरि हिमवान् सब जंतुओं के सेवन करने के योग्य नहीं है । यह  
धपण के अयोग्य और महात्रु दुर्गम पर्वत है ॥६-७॥

हिमाचलस्य तस्यैव शास्ता देवो महेश्वरः ।

तस्माद्यास्याम हे देवाः कलास पर्वतोत्तमम् ॥८

यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देवदेवो महेश्वरः ।

एवमुक्त्वा गतो ब्रह्मा देवैः सार्द्धं ममान्तिकम् ।

दृष्टोऽहं पूजितस्तंस्तु स्तुतोऽहं विविधैः स्तवैः ॥९

मया गम्मानिता देवाश्चतुर्वक्ष्यः प्रभूजितः ।

पूजयित्वा मया पृथो ब्रह्मा समनकारणम् ॥१०

किं कार्यं त्रिदशं सार्द्धं मागतोऽसि पितामह ।

कथिनं ब्रह्मणा सर्वं व्युतं सर्वं मया प्रिये ॥११

हिमाचलं समाहूय मर्यादा च कृता मया ।

सं सानाराजराजत्वे हिमाद्रिश्चप्रतिष्ठितः ॥१२

देवानां विषयाश्चैव गन्धर्वाणां तथैव च ।

यक्षाणामपि नागानां किन्नराणां तथैव च ॥१३

विद्यान्तराणां कीटार्यं पृथक्पृथङ्निवेशिता ।

रूततो भाति शंखेन्द्रः शुद्धस्फटिश्चसन्निभः ॥१४

जाह्नवोनिर्मलं रौप्यीयं शर्वाभीजनकस्तथा ॥१५

अम हिमाचल गिरि के ऊपर शासन करने वाले केवल महेश्वर देव  
ही हैं । हे देवगण ! इन कारणों से इन सब लोग प्रेष्ठ पर्वत कलास पर

हो घनें जहाँ पर सम्पूर्ण विश्व—ब्रह्माण्ड के आत्मा—देवों के भी देव  
 भयदायु महेश्वर माझानु विराजमान रहा करते हैं । इन प्रकार से देवों  
 को समझ कर मरनेशो ब्रह्माजी नमस्त देवगणों के साथ मेरे मनोप में  
 उरस्मित हुए थे । उन सबने मेरा दर्शन करके पूजा की और नात्रा प्रकार  
 के स्तोत्रों के द्वारा मेरा उन सबने स्तवन भी किया था ॥२-१॥ हे देवि !  
 मैंने भी उन नमन में उन सब देवताओं का आदर—सम्मान किया था  
 और ब्रह्माजी की विशेष रूप से पूजा की थी । ब्रह्माजी से उनका सम्बन्ध  
 करके मैंने उनके वहाँ पर सनातन करने का कारण पूछा था ॥१०॥  
 मैंने पूछा—हे पितामह ! क्या कारण है कि धाम इन देवगणों के साथ  
 वहाँ पर सनातन हुए हैं । ब्रह्माजी ने सब कृतान्त कह दिया था और हे  
 प्रिये । मैंने यह सब सुन लिया था ॥११॥ मैंने हिमाचल की बुनाकर एक  
 मर्यादा स्थापित कर दी थी और समस्त शैतों का राजाधिराज उसे प्रति-  
 श्रित कर दिया था । वहाँ पर देवों के देश—गणधर्वी—यज्ञी—नाथी  
 और किन्नरों तथा विद्यापरी के रहने एवं वीर्य—विहार करने के लिये  
 पृथक्—पृथक् स्थान नियत कर दिये थे ॥१२-१३॥ शैतो का स्वामी हिम-  
 वानु रूप नावप्य से विमुद्ग स्फटिक मणि के तुल्य हो था । पत्ता के  
 प्रवाह का ही उसके मस्तक पर शिरोवेष्टन बस्त्र था और वह सर्वांगी  
 ( पार्वती देवी ) का जनक था ॥१४-१५॥

सर्वदेवमयो दिव्यः सर्वतीर्थमयः कृतः ।

सर्वाश्रमनिवासश्च सर्वाभरनिषेवितः ॥१६

एवं संस्थाप्यशैलेन्द्रं लिङ्गमत्तिरहंस्थितः ।

विस्थातस्त्रिपुल्लोकेषु केदारेश्वरनामतः ॥१७

उदकं निर्मितं तत्र मन्त्रपूर्णं मया प्रिये ! ।

माहात्म्यं विविधं प्रोक्तं तिङ्गत्यचजलस्यच ॥१८

योऽथागत्य नरो भक्त्या सम्यङ् मां पूजयिष्यति ।

जतं योऽश्रंथं गृह्णाति विधानेन वरानने ! ॥

तत्पोदरे भविष्यामि त्रिगुणो न संशयः ॥१९

इत्युक्ते वचने देवि ! सदेयामुरपन्नगाः ।

यक्षरक्षः पिशाचाश्च भूतवेतालकिन्नराः ॥२०

विद्याधरगणाश्चैव मम दर्शनञ्जालसाः ।

समायाता वरारोहे ! पीत्वा तत्र जलं शुभम् ।

दृष्टोऽहं विविना तैस्तु लिङ्गमूर्त्तिगतः प्रिये ! ॥२१

हिमवान् समस्त देवों से परिपूर्ण दिव्य और सम्पूर्ण तोषों से समन्वित बना दिया था । वह सभी आश्रमों का निवास क्षेत्र और समस्त देवों के द्वारा निवेदित हो गया था । इस तरह का उस शैलराज को प्रतिष्ठित करके मैं लिङ्ग मूर्ति वाला होकर वहाँ पर स्थित हो गया था । उसी समय से तीनों लोकों में मैं केदारेश्वर—इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था ॥१६-१७॥ हे प्रिये ! वहाँ पर मैंने मन्त्र पूर्ण उदक (जल) का निर्माण किया था । नाना प्रकार का माहात्म्य लिङ्ग का और जल का कहा गया है ॥१८॥ जो मनुष्य यहाँ पर आकर भक्ति से अच्छी रीति से मेरी पूजा करेगा हे वरानने ! जो यही पर विधान पूर्वक जल ग्रहण किया करता है मैं उसके उदर में लिङ्ग के रूप वाला हो जाऊँगा—इसमें संशय नहीं है ॥१९॥ हे देवि ! इस प्रकार से कहने पर समस्त देवगण—असुर—पन्नग—यक्ष—राक्षस—पिशाच—भूत—वेताल—किन्नर और विद्याधर गण मेरी दर्शन—जालसा वाले होते हुए यहाँ पर समागत हुए थे । हे वरारोहे ! उन्होंने इस शुभ जल का पान किया था । फिर हे प्रिये ! उनके द्वारा लिङ्ग मूर्ति में स्थित मुझको विधि के सहित देखा गया था ॥२०-२१॥

मम तुल्याश्च ते जातास्तस्मिन्नद्रिवरे स्थिताः ।

जनलोकगतैः सिद्धैः पूज्यमाना वरानने ! ॥२२

अथ कालेन बहु भ श्रुत्वा मातात्म्यमुत्तमम् ।

केदारेश्वरदेवस्य जलस्य च विशेषतः ॥२३

मनुष्याः समुपायातास्ते रजोबहुलायतः ।

तमः प्रायाविशालादि ! तदाह माहिषं त्रपुः ॥२४

कृतवांस्तद्भयार्थाय न च ते भीतिमागताः ।

इह देवोऽप्र देवोऽप्र बभ्रमुस्तेदिदृशवः ॥२५

न तं दृष्टो मह देवि ! पतोऽह महिषाकृतिः ।

स्थितोऽस्म्यलक्ष्यरूपेण ततस्ते दीनमानसाः ॥

उद्विग्ना निश्वसन्तश्च घंराभ्यं परमं गताः ॥२६

नात्र देवोऽनतीर्थानि न गङ्गा पुण्यदायिनी ।

न धर्मो न परो लोकाः सर्वं मेतद्विडम्बनम् ॥२७

एषं किल पुराणेषु श्रूयते सर्वदा श्रुतो ।

हिमालये च केदारं लिङ्गं मोक्षप्रदायकम् ॥२८

हे परम श्रेष्ठ मुख वाली ! वे सब मेरे ही समान हो गये थे और उस गिरिश्रेष्ठ पर समवर्षित हो गये थे । जनलोक में स्थित सिद्धो के द्वारा वे पूज्यमान हुए थे ॥२२॥ हमके पश्चात् जब बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया था उस समय में केदारेश्वर देव का और विशेष रूप से जल का उत्तम माहात्म्य का ध्वरा करके मनुष्यगण वहाँ पर समागत हुए थे । क्यों कि हे विशाल नेत्रों वाली ! वे सब प्रायः अधिक रजोगुण वाले और तमोगुण से परिपूर्ण थे । उस समय में मैंने माद्विप रूप कर लिया था ॥२३-२४॥ यह माद्विप स्वरूप मैंने उनके बध करने के लिये ही धारण किया था कि तु वे भयभीत नहीं हुए थे और यही पर केदारेश्वर देव विद्यमान है—ऐसा कहते—बिचरते हुए वे मेरे दर्शन करने को दृष्टा से युक्त होकर भ्रमण कर रहे थे ॥२५॥ हे देवि ! उन्होंने मुझे नहीं देखा था क्यों कि मैं तो उस समय में महिष की प्राकृति में स्थित था । जब मैं इन प्रकार से अलक्ष्य रूप में वहाँ पर स्थित हो गया था तो वे अधिक दीन मन धाते हो गये थे और बहुत अधिक उद्वेग से पुक्त होते हुए खिन्नता से लम्बो श्वास लेने लगे एवं अधिक वैगम्य उत्पन्न हो गया था ॥२६॥ वे कहने एव सोचने लगे कि न तो यहाँ पर कोई देव है न तीर्थ ही है और न पुण्य प्रदान करने वाली गंगा नदी ही है । न कोई धर्म क्षेत्र है और परमोत्तम सोच ही है—यह सब विडम्बना मात्र ही है ॥२७॥ पुराणों में और वेदों में यह सर्वथा सुना

जाया करता है कि हिमालय पर्वत में मोक्ष प्रदान करने वाली केदारेश्वर भगवान् की लिए मूर्ति बिराजमान रहती है—यह क्या बात है—यह कथन प्रयथायं तो नहीं होता चाहिए ॥२८॥

एवं तु वदता तेषां मानुषाणां यशस्विनि !

आकाशादुत्थिता वाणी मया प्रोक्तानुकम्पया ॥२९॥

अमार्गं मा वन्दन्स्वत्र न निन्द्याः श्रुतयोज्ययाः ।

पुराणं नान्यथा प्रोक्तं ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥३०॥

ये निन्दन्ति पुराणानि धर्मशास्त्राणि नस्तिकाः ।

ते यान्ति नरकं घोरं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३१॥

सदा देवोऽत्रकेदारः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ।

विद्यते त्रिदशं पूज्यं सततं नैव दृश्यते ॥३२॥

करोति पूजां हिमवान्मासानष्टौ च शाश्वतान् ।

हिमाद्रिस्तेन पुण्येन नगेन्द्रस्तु कृतो नगः ।

सेव्यश्च रमणीयश्च सर्वं तीर्थं नमस्कृतः ॥३३॥

सर्वं रत्ननिधानश्च देवानां वल्लभस्तथा ।

ग्रीष्मे च वसन्ते च देवदेवोऽत्र दृश्यते ॥३४॥

नियतेनैव कालेन मानुषाणां च सर्वदा ।

यदिवुद्धिः परा जाता सर्वदा मम दर्शने ॥३५॥

हे यशस्विनि ! जब इस प्रकार से वे सब लोग परस्पर में बातचीत कर रहे थे तो उन मनुष्यों पर मुझे दया आ गई थी और उस समय मैं अनुकम्पा करके मेरे ही द्वारा कही गई आकाश से एक वाणी हुई थी ॥२९॥ “आप लोग यहाँ पर भिन्न मार्ग की बातें मत करो । अथवा वेद और पुराण निन्दा करने के योग्य नहीं हैं लोगों की रचना करने वाले ब्रह्माजी ने पुराणों को असत्य नहीं लिखा एवं बतलाया है । ये सभी सत्य हैं जो नास्तिक लोग पुराणों और धर्म शास्त्रों को बुराई किया करते हैं और उन्हें असत्य बतलाते हैं वे महान् घोर नरक में जाकर गिरा करते हैं और यह प्रसन्न काल पर्यन्त उसी में पड़े हुए यातनाएं सहा करते हैं ॥३०-३१॥ भगवान् केदारेश्वर देव यहाँ पर सर्वदा ही बिराजमान रहा

करते हैं जो परम पुरोपाय मोक्ष के प्रदान करने वाले हैं तथा स्वर्ग का निवास भी दिया करते हैं । वे वेदारेखर प्रभु देवों के द्वारा पूजा करने के योग्य विद्यमान हैं किन्तु मदा दिसलाई नहीं दिया करते हैं ॥३२॥ यह हिमवान् पर्वत निरन्तर घाठ ग्राम तक उनकी पूजा किया करता है । उसी पुण्य के प्रभाव से इस को समस्त पर्वतों ने पर्वतों का स्वामी बना दिया है और यह परम सेव्य-रमणीय एव सभी लोगों के द्वारा कथ्यमान है ॥३६॥ यह समस्त प्रकार के रत्नों की स्रजन है और देवगण का परम प्रिय है । यहाँ पर प्रीप्सु एव वसन्त ऋतु में वे देवों के भी देव दिसलाई दिया करते हैं । यदि मनुष्यों की बुद्धि मेरे दर्शन करने में सर्वदा परमोत्कृष्ट रूप से समुत्पन्न हो जाया जाती है तो नियत काल में दर्शन होता है ॥३४-३५॥

आस्यास्ये तदुपायं च श्रूयतां मावधानतः ।  
 मा विकल्पोऽत्रकर्तव्य सर्वान्कामानवाप्स्यथ ॥३६  
 क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।  
 प्रलयेऽप्यक्षयं प्रोक्तं महाकालवन नराः ॥३७  
 तत्राह सम्भविष्यामि लोकानामनुकम्पया ।  
 लिंगरूपेण शिप्रायास्तटेपुण्ये सुशोभने ॥३८  
 सोमेश्वरस्य देवस्य पश्चिमे स्थानमुत्तमम् ।  
 प्रसिद्धमुपयास्यामि केदारेश्वरनामतः ॥३९  
 सर्वदा दर्शनं तत्रमया साद्धं भविष्यति ।  
 सर्वेषां च प्रदास्यामि सर्वान्कामान्तसशयः ॥४०  
 इह यावत्फलं तस्माद्दास्यामि ह्यधिकं ततः ।  
 इतिते मानवाः सर्वे श्रुत्वा वाणीमनोरमाम् ॥  
 आकाशादुत्थिता दिव्या मन प्रह्लादकारिकाम् ॥४१  
 गता वन महाकालं सस्मरन्तो महेश्वरम् ।  
 विकल्पेन विचित्रेण सत्यमेवेति नान्यथा ॥४२

मैं उसका उपाय भी अभी बतलाऊंगा । आप लोग परम साधकान होकर उसका ध्वण करो । इस विषय में तुमको अपने हृदय में किसी

प्रस्वर का विकल्प नहीं करना चाहिए । प्रायः लोगों की सभी कामनाएँ परिपूर्ण होगी ॥३६॥ हे मनुष्या ! समस्त क्षेत्रों में भ्रष्टतम क्षेत्र तथा भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला है और इस महाकाल वन को प्रलय से भी न क्षीण होने वाला कहा गया है ॥३७॥ भोगों पर कृपा करके मैं यहाँ पर शिप्रा नदी के परम पुण्यमय सुन्दर तट पर निग के स्वरूप में रहने वाला प्रकट होऊँगा ॥३८॥ सोमेश्वर देव के पश्चिम भाग में अत्यन्त उत्तम स्थान है मैं यहाँ पर केदारेश्वर नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होऊँगा ॥ ६॥ यहाँ पर मेरे साथ मे सर्वदा दर्शन होगा । मैं यहाँ पर सबके समस्त मनोरथों को पूर्ण कर दूँगा । इनमें कुछ भी तथ्य नहीं है ॥४०॥ यहाँ पर कितना पुण्य—फल होता है उससे भी अधिक यहाँ पर दूँगा । उन सब मनुष्यों ने धाकाज से होने वाली—परम दिव्य एवं मन भी प्रसन्न करने वाली परम मनोरम बाखी का ब्रह्मण किया था और फिर सन्ने सब भगवान् महेश्वर महाकाल का क्विचि विकल्प से स्मरण करते हुए महाकाल वन में चले गये थे । सब सोच यहाँ कहते हुए जा रहे थे कि यह विस्तृत सत्य है और इसमें तनिक भी भ्रम्यया नहीं है ॥४१-४२॥

स्नात्वा शिप्राजले पुण्ये यावत्पश्यन्ति भास्करम् ।  
 तावद्दृष्टिपयोत्पन्न लिङ्गं पापप्रणाशनम् ॥४३  
 अथ ते हृषिताः प्रोचुः केदारोऽथ न तस्यप ।  
 दृष्टोऽस्माकं न सन्देहो गंगा शिप्राजले स्थिता ॥४४  
 ततस्ते प्रजयामासुः पुष्पेननिविधेस्तथा ।  
 पूजितोऽहं विशालाक्षितेपातुष्टोवरानने ॥४५  
 दुर्लभोऽतिशरो दत्तः कलासेऽथातमुत्सवम् ।  
 अक्षयञ्चपद दत्ताम्पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥४६  
 अतोऽहं त्रिदशैः प्रोक्तःकेदारेश्वरनामतः ।  
 प्रार्थिता पर्याभवत्यालोकानामनुकम्पया ॥४७  
 इहागत्य नरा ये च त्वां पश्यन्ति सुभक्तितः ।  
 तेषां फलं त्वया देव! दातव्यमधिकं यतः ॥४८

हिमाद्रौहिमनाथस्ययात्राया प्रत्यहं फलम् ।

लभन्तेचनरानित्यं नात्रकार्याधिचारणा ॥४६

परम पुण्यमय शिप्रा नदी के जल में स्नान करके जब तक भगवान् भुवन भास्कर का दर्शन करते हैं तभी तक समस्त पापों के विनाश कर देने वाले लिए का दर्शन उन सब लोगो की दृष्टि में समागत हो गया था अर्थात् सबने लिंगेश्वर का दर्शन प्राप्त कर लिया था ॥४३॥ इसके पश्चात् ये सब अत्यधिक प्रसन्न हुए थे और उनको यह निश्चय हो गया था कि यही भगवान् केदारेश्वर प्रभु हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं रहा है हम लोगो ने अब उनका दर्शन प्राप्त कर लिया है और कोई भी संदेह करने का अवसर नहीं है । शिप्रा नदी के जल में गंगा स्थित है ॥४४॥ इसके अनन्तर उन्होंने अनेक तरह के पुण्यों से अर्चना की थी । हे विशाल नेत्रों वाली ! हे परम श्रेष्ठ एव सुन्दर मुख वाली ! जब मेरी उन्होंने पूजा की तो मैं उनपर तुष्ट एव प्रसन्न हो गया था ॥४५॥ मैंने उनको अत्यन्त श्रेष्ठ एव दुर्लभ धरदान दिया था—कैलास गिरि पर उत्तम स्थान और पुनरावृत्ति ( दुबारा जन्म ग्रहण करना ) से रहित कभी छोण न होने वाला पद प्रदान किया था ॥४६॥ इसी लिये मैं देवों के द्वारा केदारेश्वर—इस नाम से पुकारा गया था और लोगो पर दया करके परम भक्ति से उन्होंने मेरी प्रार्थना की थी कि जो भी मनुष्य यहाँ पर आकर भक्ति पूर्वक आपका दर्शन करते हैं हे देव आपके द्वारा उनको अधिक फल अवश्य ही देना चाहिए क्योंकि हिमाचल में हिमनाथ की यात्रा का प्रतिदिन फल मनुष्य नित्य ही प्राप्त किया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥४७-४६॥

ब्रह्महा वासुरापोवास्तेयीवागुक्षतल्पगः ।

तत्प्रमर्कानरोयस्तुत्वाद्दृष्ट्वाकिस्त्रिपाकर. ॥५०

सोर्जपि याति परं स्थान पुनरावृत्तिवजितम् ।

चान्द्रायणानां विधिवच्छताना चैव यत्फलम् ।

तत्फलं समदाप्नोतिकेदारेश्वरदर्शनात् ॥५१



ते नरा. पशवो लोके तेषा जन्मनिरथ कम् ।  
 यन्नं दृष्टोमहाकालेकेदारेश्वरसंज्ञक ॥५२  
 कोमारयोवने बाल्ये बार्द्धकेषु राजितम् ।  
 तत्पापं संक्षयं यातिकेदारेश्वरदर्शनात् ॥५३  
 हिमालयकृता यात्रा तस्या प्रोक्त च यत्फलम् ।  
 सत्फलं समवाप्नोति केदारेश्वरदर्शनात् ॥५४  
 इत्युक्तोऽहं तदा देवि ! देवं प्रणतिपूर्वकम् ।  
 तथेति नमयाप्रोक्त तेऽपि देवादिवं गताः ॥५५  
 एष ते कथितो देवि । प्रभाव. पापनाशन ।  
 केदारेश्वरदेवस्य पिशाचारूपमता शृणु ॥५६

श्राद्धाण की हत्या करने वाला—मुशगान करने वाला—चोरी का  
 बर्ष करके बाला और गुरु की शिष्या पर गमन करने वाला ही जन्मदा  
 इन महापापात्मा पुरुषों के साथ सम्पर्क रखने वाला ही और चाहे कंसा  
 भी किलिबपो की खान बगो न हों आपका मनुष्य दर्शन प्राप्त करके वह  
 भी उस परम पद को प्राप्त हो जाता करता है जहाँ पहुँचकर फिर मह  
 बीवात्मा दूसरा जन्म ग्रहण नहीं किया करता है । विधि पूर्वक किये हुए  
 एक ही शान्दायण व्रतों का जो फल प्राप्त होता है वही फल भगवान्  
 केदारेश्वर के दर्शन से प्राप्त हो जाता करता है ॥५०-५१॥ वे मनुष्य इस  
 लोक में मनु के ही समान हैं और उनका इस समार में जीवन धारण  
 करना भी निरर्थक ही हुआ करता है जिन्होंने महाकाल धन में भगवान्  
 केदारेश्वर नाम वाले प्रभु का दर्शन प्राप्त नहीं किया है ॥५२॥ कुमार  
 अवस्था में—बाल्य में—बाल्यावस्था में और बार्द्धक्य म जो भी कुछ बुरे  
 कर्म या पाप हो उनका भक्षय केवल केदारेश्वर के दर्शन से ही आता है  
 ॥५३॥ हिमवान् पर्वत की यात्रा और उसका जो भी कुछ फल होता है  
 वह सब कह दिया है उसका जो भी कुछ पुण्य फल होता है वह केवल  
 केदारेश्वर के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥५४॥ हे देवि ! उस समय देवों  
 के द्वारा प्रणाम करते हुए मुझसे इस प्रकार कहा गया था और मैंने भी  
 ऐसा हीना—मह कह दिया था । फिर सब देवगण स्वर्ग लोक को गये

गये थे ॥५५॥ हे देवि ! आपके समक्ष मे यह पापों का विनाश करने वाला वेदारेड्वर भगवान् के दर्शन का प्रभाष बतला दिया है । अब यहाँ से भागे पिशाचेड्वर नामक भगवान् के विषय मे श्रवण करो ॥५६॥

### १०५—पिशाचेश्वरमाहात्म्यवर्णन

अष्टपष्टिकसख्याकं पिशाचाख्यमथेश्वरम् ।  
 शृणु देविप्रयत्नेन दर्शनात्पापनाशनम् ॥१  
 आदोकलियुगेर्दोवशूद्रोबहुधनोऽभवत् ।  
 सोमोनामसुविख्यातोनास्तिकोवेदानन्दकः ॥२  
 अब्रह्मण्यो नृशतश्च कदयो निरपन्नपः ।  
 विश्वासघातकश्चैव परस्वहरणे रतः ॥३  
 त्रिवर्गं हन्ता चान्येषामात्मकामानुवर्त्तिकः ।  
 स कदाचिन्मृतो देवि ! कष्टेन परमेण च ॥४  
 मरुदेशे पिशाचोऽमृन्मृन्तोदीनो भयावहः ।  
 नाशकृत्सपिशाचानां स्वपक्षोच्छेदकारकः ॥५  
 बहवो महितास्तेन पिशाचा बलवत्तराः ॥६

ईश्वर ने कहा—इसके अनन्तर अष्टमठ सख्या वाले पिशाच नामक ईश्वर का श्रवण अब हे देवि ! आप यत्न पूर्वक करिए जिसके दर्शन मात्र से ही समस्त पापों का विनाश हो जाता करता है ॥१॥ हे देवि ! आदि मे इस कलियुग मे शूद्र बहुत धन वाला हुआ करना या जिसका सोम यह नाम परम प्राप्त था । यह महान नास्तिक (ईश्वर की सत्ता का न मानने वाला) और वेदों की निन्दा करने वाला हुआ था ॥२॥ यह ब्राह्मण की सुरक्षा न करने वाला—महान् क्रूर स्वभाव से युक्त—कदर्य (प्रत्यन्त लोभ)—निरपन्नप (निर्लज्ज)—विश्वास का घात करने वाला—सदा पराये धन का उपहरण करने में रत रखने वाला था ॥३॥ यह अन्य तीनों धर्म धर्मात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों का हनन कर्ता प्रो

केवल घपनी ही अभिनायाग्री को पूति करने वाला था । हे देवि ! वह किसी समय मे परमाधिक कष्ट सहन करते हुए मृत हो गया था ॥४॥ यह अपने-अपने किए हुए घोर पाप पूर्ण कर्मों के कारण मरने के पश्चात् मरुमूनि ( मात्वाह ) मे जहाँ जन के लभाव के कारण प्राणी मर जाया करते हैं, पिशाच हुआ था जो परम नग्न—दीन और भयावना था । यह अपने लक्ष जाने पिशाचो का भी नाश करने वाला स्वपन्न का ही उच्छेदन करने वाला था । इमने बड़े २ अत्यधिक बलवाद् पिशाचों का भी मदन कर दिया था ॥५-६॥

अथतेनैवमार्गणकदाचिच्छाकृटायनः ।

स्वाध्यायनिरतो विद्वान्वाग्मीशमपरायणः ॥७

उदयादित्यसकाशोविभावमुसमद्युतिः ।

शकटेन सदा याति स पश्यन्पर्वतात्मजे । ॥८

गतो ददर्श तं रौद्र पिशाच च भयावहम् ।

स पिशाचः क्षुधाविष्टो भोक्तुकामोऽभ्यघावत ॥९

दृष्ट्वा तं शकटारूढं ब्राह्मण शकटायनम् ।

शकटस्य ष्वनिश्रुत्वा रूपं दृष्ट्वाद्विजस्य च ॥१०

तथारूपः पिशाचस्तु कर्णाम्ब्या वधिरीकृतः ।

आरमन्नाणपरो भूत्वा नष्टः कष्टेन पावति ।

तं घावन्तं समालोक्य पिशाच ब्राह्मणोऽश्रवीत् ॥११

पिशाच सस्तरूपोऽसि त्वरितश्चैव लक्ष्यसे ।

क्व घावसि समाचक्ष्व कुतस्ते भयमागतम् ॥१२

शकटस्यास्यमहतोघोपंश्रुत्वाभयङ्करम् ।

कर्मिणागधिरोजातोविसृजस्तवदर्शनान् ॥१३

पिशाचाना वलिष्ठाश्च श्रूयन्ते ब्रह्मराक्षसाः ।

स त्वं मा भोक्तुकामोऽसि विख्यातो ब्रह्मराक्षसः ॥१४

हे हिमाचल की पुत्रि ! इसके अनन्तर एक बार ऐसी घटना घटित हुई थी कि किसी समय में उगी मार्ग से शकटायन महर्षि निकले थे जो वेद वेदांगों के स्वाध्याय करने में रुदा निरत रहा करते थे बहुत ही

अधिक विद्वान्—दाग्मी (बोलने वाले) और सर्वदा शम मे परायण रहने वाले थे ॥७॥ इन महर्षि का स्वरूप उदित हुए सूर्य के समान तेजस्वी था और यह विभावनु के सुल्य सुति वाले थे । यह सदा शकट से ही गमन किया करते थे । वे उधर से जा रहे थे तभी उन्होंने उस अत्यन्त भयानक—रौद्र रूप वाले पिशाच को वहाँ पर देखा । वह पिशाच अत्यन्त भूखा था और वह इन शाकटायन महर्षि को खाने के लिए उस धोर दौट गया था ॥८-९॥ उस पिशाच ने एक शकट पर समाह्वत शाकटायन ब्राह्मण को देखकर तथा शकट ध्वनि का श्रवण किया था । उसने उस ने उस शकट में स्थित द्विज के स्वरूप का ध्वनिलोकन किया था ॥१०॥ उस प्रकार के स्वरूप वाला वह पिशाच उमी समय में कानो से बहारा हो गया था । हे पार्वति ! वह अपनी ही रक्षा करने में व्यस्त होता हुआ बहुत ही बध से नष्ट-ता हो गया था । इधर-उधर दौड़ लगाते हुए उस पिशाच की देखकर उस शाकटायन ब्राह्मण ने उससे कहा था— ॥११॥ हे पिशाच ! तू बहुत ही डरा हुआ-सा धोर अधिक शीघ्रता से दिखलाई दे रहा है । तू इस समय में वहाँ को जाने के लिए दौट लगा रहा है और तुझे किस का भय व्याप्त हो रहा है ? ॥१२॥ पिशाच ने कहा—इस शकट की महती भयानक ध्वनि सुनकर मैं कानो से बहिरा हो गया हूँ और घ्राणको देखकर मैं मूर्च्छित घर्षात् अचेतन-सा हो गया हूँ ॥१३॥ ब्राह्मण ने कहा—पिशाचो मे सबसे अधिक बलशाली ब्रह्म राक्षस सुने जाया करते हैं । वही तू अब मुझे खाने की इच्छा वाला है और तू ब्रह्म राक्षस परम विख्यात है ॥१४॥

पिशाचाना समर्थोऽस्मि नष्टोऽहं तव दशनात् ।

दृ.क्षं हि मृत्युः सर्वेषां जीवितं च सुदुल्लभम् ।

अतो भीत. पलायामि जीवहेतो मुखार्थत. ॥१५॥

कृतः पिशाचसौख्यतेमरणं श्रेय एव ते ।

पंशाची कुत्सितापोनिर्पापनामेवजायते ॥१६॥

संश्रु हि गतो जीवोभवत्येवसुखाग्रयः ।

तस्माज्जीदितुमिच्छामिप्रसीदश्वत्सराक्षस ॥१७॥

नाहं त्वां भोक्तुकामोऽस्मि ब्राह्मणोऽहं न राक्षसः ।

सर्वं भूतहितार्थाय विचरामि महीतले ॥१८

सर्वोपाभेव जन्तूनां मंत्रो ब्राह्मण उच्यते ।

माकुरुष्वभयं मत्तो मित्रभावगतो ह्यहम् ॥१९

तस्य तद्वचनं श्रुत्वापिशाचः स्वर्ग्यमानसः ।

प्रणम्यप्रत्युवाचेदं ब्राह्मणं शकटायनम् ॥२०

यदि ते सर्वं भूतानां दत्ता ह्यभयदक्षिणा ।

कर्मणा मनसावाचा मित्रभावं गतो यदि ॥२१

उस पिशाच ने कहा था—हे ब्राह्मण । निस्सन्देह मैं समस्त पिशाचों में महान् बलवान् हूँ एवं परम समर्थ भी हूँ किन्तु तुम्हारे दर्शन से जो मैं नष्ट-वा हो गया हूँ—मेरी सारी शक्ति क्षीण हो गई है । यह भीत तो दुःखदायिनी हुआ करती है और यह जीवन अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है । इसलिये मैं सुखपूर्वक जीवन रखने के लिए इन जीवन के ही कारण से भयभीत होकर दौड़ रहा हूँ ॥१५॥ ब्राह्मण ने कहा—हे पिशाच ! तुमको हम जीवन जीने में सुख कहाँ है ? तेरा तो मरना ही कल्याण करने वाला है । तुम्हें जो यह पिशाच बन जाने की योनि प्राप्त हुई है । यह तो बहुत ही बुरी है और महापापियों को ही यह मिला करती है । पिशाच ने कहा—कहीं भी रहे सर्वत्र ही यह जीवात्मा सुख के ही आश्रय वाला हुआ करता है । इसीलिये मैं जीवित रहना चाहता हूँ हे ब्रह्म राक्षस ! आप मुझ पर प्रसन्न होकर कृपा कीजिए ॥१६-१७॥ ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्रह्म राक्षस नहीं हूँ । मैं तो ब्राह्मण हूँ । मैं तुम्हें खाना भी नहीं चाहता हूँ । मैं इस भूमण्डल में समस्त प्राणियों के हित करने के लिये ही विचरण किया करता हूँ ॥१८॥ देखो, यह ब्राह्मण वर्ण ऐसा होता है कि यह सभी प्राणियों का हित करने वाला और सबका मित्र कहा जाया करता है । मुझसे हे पिशाच ! तुम किसी भी प्रकार का भय मत करो मैं तो तुम्हारे साथ मित्र भाव की ही प्राप्त हो गया हूँ ॥१९॥ उसके उस वचन का श्रवण कर पिशाच स्वस्य मन वाला हो गया । उस पिशाच ने शकटायन विप्र को प्रणाम करके यह वचन बोला

या ॥२०॥ यदि धापने समस्त प्राणियो को धमय प्रदान करने की दक्षिणा दे दो है और यदि धाप मन—कर्म तथा वचन से मित्र भाव को प्राप्त हो गये हैं धर्मान् पूर्णतया धाप मेरा हिज हो चाहते हैं ॥२१॥

पृच्छामि त्वा महाभाग सशयो हृदये स्थितः ।

श्रुत्वाऽनुकम्पया सम्यक्तन्त्रे व्याख्यातुमर्हसि ॥२२

केन कर्म त्रिपाकेन पेशाचं याति मानवः ।

पिशाचत्वात्कथं मुक्तिः प्राप्यते पापकर्मभिः ॥२३

इति तस्य वचः श्रुत्वा पिशाचस्य वरानने ।

ममत्वेनावृतस्तस्मै प्राबोचच्छाकटायनः । २४

अपहृत्य च विप्रस्त्वं देवस्त्वं च विशेषतः ।

तेन पापेन पापिष्ठा पिशाचत्वं प्रयान्ति च ॥२५

पितरं मातरं चैव स्त्रियं बालं द्विजं तथा ।

वञ्चयित्वा हरत्यर्थं स पिशाचो भवेन्नरः ॥२६

राजद्रव्यं गृहीत्वा तु न यजेन्नददानियः ।

आत्मानमेव पुष्णति पिशाचत्वं स गच्छति ॥२७

विश्वासघातका ये च परदाररताश्च ये ।

प्राप्नुवन्ति पिशाचत्वं तथा ये वेदनिन्दकाः ॥२८

हे महाभाग ! मेरे हृदय मे एक बड़ा भारी सशय उत्पन्न हो गया है । उमके विषय मे मैं आपसे पूछ रहा हूँ । आप उसे सुनकर कृपया अच्छी तरह से व्याख्या करके समझाने के योग्य हैं ॥२२॥ यह मनुष्य किस कर्म के त्रिपाक से इस पिशाच की योनि को प्राप्त किया करता है ? और यह भी बतलाइये कि वे कौन से कर्म हुआ करते हैं जिनके करने से इन पिशाचता प्राप्त कराने वाले पापपूर्ण कर्मों से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं ? ॥२३॥ हे वरानने ! उस पिशाच के उस वचन को सुनकर ममता से भर कर शाकटायन अपने कहने लगा ॥२४॥ ब्राह्मण का धन और विशेष रूप से देवीसुर सम्पत्ति का अपहरण करके ही उस महापाप से पापिष्ठ लोग पिशाच की योनि प्राप्त किया करते हैं ॥२५॥

माता-पिता, स्त्री, बालक और द्विज को प्रतारित करके जो इनके धन का हरण करता है वह मनुष्य भी पिशाच हो जाता है ॥२६॥ जो राजा का द्रव्य ग्रहण कर न तो उससे यजन करना है और न दान ही देता है उससे केवल अपना ही पोषण किया करना है वह भी पिशाचत्व को प्राप्त हो जाता करता है ॥२७॥ जो विश्वास के घान करने वाले होते हैं और पराई स्त्रियों से रति रक्ता करते हैं तथा जो वेदों को निन्दा करने वाले हैं वे भी पिशाच-योनि को प्राप्त हो जाता करते हैं ॥२८॥

निन्दन्ति ये पुराणानि धमशास्त्राणि सवदा ।

ते भवन्ति पिशाचाश्च ये सदा पिशुना नराः ॥२९

इति ते कथितं सर्वं वेदप्रामाण्यतोऽधुना ।

इदानीं कथयिष्यामि यस्त्वं जातोऽनितच्छृणु ॥३०

सोमकोनाम शूद्रस्त्वं परममप्रकाशकः ।

विश्वासघातको जातो देवब्राह्मणदूपकः ॥३१

नास्तिको भिन्नमर्यादो जन्मन्यथापि सप्तमे ।

सकुलपातयित्वाय नरकेदारुणे मृगम् ॥३२

पिशाचयोनिं सम्प्राप्तः पुनः प्राप्स्यसि रौरवम् ।

महारौरवसञ्ज्ञं तुक्कचं कालसूत्रकम् ।

यन्त्रपीडनकं रौद्रं मयनं कुन्मवालुकम् ॥३३

इत्येवं वदतस्तस्य ब्राह्मणस्य यशस्विनि ।

सस्मार प्राक्तनं जन्म सत्सञ्ज्ञात्कुत्सितं स्वकम् ॥३४

दुःखामिभूतो निश्चेष्टो धिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन् ।

पतितो भूतले देत्रि इदं वाक्यमयाश्रवीत् ॥३५

जो पुरुष सदा पुराणों की घोर भर्षा काश्यों की बुराई किया करते हैं और जो चुगलघोर होते हैं वे मनुष्य पिशाच हो जाते हैं ॥२६॥ यह सब इस समय मैंने वेदों के प्रमाण के आधार पर ही बतला दिया है और अब मैं यह बात बतनाता हूँ जिसके कारण से तुम पिशाच हो गये हो इसे सुन लो ॥३०॥ तुम सोमक नामधारी शूद्र थे और हमेशा दूसरों के मर्म (रहस्य) को प्रकट करने वाला था । तुम विश्वास का घात करने

वासे तथा देवों घोर ब्राह्मणों की धुराई किया करते थे ॥३१॥ परम नास्तिक—मर्यादा को तोड़ देने वाला इस सातवें जन्म में भी बराबर रहा था । तुमने अपने आपके सम्पूर्ण कुल को अत्यन्त दारुण नरक में डालकर इस पिशाच की योनि को प्राप्त किया है । फिर भी तुम अभी प्रागे रौरव—महारौरव—कुकच—काल सूत्रक—यन्त्र पीठिनक—रौद्र—मघन—कुम्भ बालुक आदि महा घोर नरको को प्राप्त करोगे । हे यशस्विनि ! यह ब्राह्मण इस प्रकार से कह ही रहा था कि उस पिशाच ने अपने पूर्व जन्म का इस विप्र के सारसङ्ग से स्मरण कर लिया था जो कि बहुत ही धुरा था ॥३२-३४॥ मुझे धिक्कार है—मैं धिक्कार का पात्र ही हूँ—ऐसा बारम्बार कहना हुआ यह पिशाच अत्यन्त दुःखित होकर बेहोश हो हे देवि ! भूतल में गिरकर यह वाक्य बोला—॥३५॥

अहोकेनापि पुण्येन भयता सह दर्शनम् ।

जात ममाल्पपुण्यस्य दोनस्यकृपणस्य च ॥३६

नास्ति धर्मसमं मित्रं नास्ति धमसमागतिः ।

नास्तिधर्मसमं त्राणं स च नास्ति मम प्रभो ॥३७

मग्नीऽहं दु खजलघो मग्नीऽहं पापकर्म मे ।

भ्रान्तोऽहमन्धतम सिततस्त्वांशरणं गतः ॥३८

नमस्तेऽस्तु महाभाग किं करोमि प्रशाधि माम् ।

तत्तपोनलनिदिष्टमिदं प्रःप्तं मयाऽधुना ॥३९

एवं निगदतस्तस्य पिशाचस्य वरानने ।

कथयामास माहात्म्य सविप्रःशाकटायनः ॥४०

पृथिव्यायानितीर्षानि आसुमुदगतानिव ।

क्षेत्राणियानिसन्तीहतेषाक्षेत्रं सुपुण्यदम् ॥४१

महाकालधनं क्षेत्रं प्रलयेऽप्यक्षयं गतम् ।

लिङ्गं तत्र महाक्षेत्रे पिशाचत्वविनाशनम् ॥४२

दुण्डेश्वरस्य देवस्यदक्षिणेन्द्रिदशाचितम् ।

पेशाचं विधत्तेभूयः पिशाचयोनिनाशनम् ।

तस्य दर्शनमात्रेण पिशाचत्वात्प्रमोक्ष्यसे ॥४३



मो हो ! मेरा न मासूम कौन-सा कोई ऐसा पुण्य का उदय हुआ है जिससे आपका यह दर्शन मुझे प्राप्त हो गया है अन्यथा मैं तो महापापी दोन घोर कृपण हूँ ॥३६॥ धर्म के समान प्रण्य कोई मित्र नहीं है और धर्म के तुल्य कोई दूसरी गति ही है । यह धर्म ही परम रक्षक है । इसके अतिरिक्त रक्षा करने वाला अन्य कुछ भी नहीं है । हे प्रभो ! वह धर्म ही मेरा लेश मात्र भी नहीं है ॥३७॥ मैं तो दुःखों के अपार सागर में गमन हो गया हूँ और पापों के दलदन में गटा हुआ हूँ । मैं इस परम घोर धन्वकार में भ्रम रहा हूँ इसलिए अब मैं आपकी शरण में प्राप्त हो गया हूँ ॥३८॥ हे महाभाग ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । मुझे आप प्रशासित कीजिये कि मैं क्या करूँ । आपके इस उपस्था के बल से निर्देश किया हुआ मैंने अब यह प्राप्त कर लिया है ॥३९॥ हे वरानने ! इस प्रकार से उस पिशाच के कहने पर उस विप्र शाकटासन ने माहात्म्य कहा था ॥४०॥ इस भूमण्डल में समुद्र पर्यन्त दो भी तीर्थ हैं और जितने भी यहाँ पर धर्म के क्षेत्र हैं उन सबका सृपुण्य प्रदान करने वाला क्षेत्र एक ही है ॥४१॥ वह महाकाल वन नामक क्षेत्र है जो प्रलय काल में भी जब कि सभी कुछ नष्ट हो जाता करते हैं अवश्य बना रहा करता है । उस महाक्षेत्र में शिव लिंग हैं जो कि इस पिशाच की योनि का विनाश कर देने वाले हैं ॥४२॥ दुष्पेश्वर देव के दक्षिण भाग में देवों के द्वारा समन्वित पंशाच लिंग है जो पिशाच की योनि का नाश कर देने वाला है । उसके दर्शन करने का ही ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि इससे ही मनुष्य पिशाच योनि से प्रयुक्त हो जाया करता है ॥४३॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स पिशाचो वरानने ! ।

आजगामत्वरायुक्तो नमस्कृत्यद्विजं तदा ॥४४

महाकालवने पुण्ये ममोहितरुलप्रदे ।

ददर्श तत्र तल्लिङ्गं स्नात्वा शिप्राजले शुभे ॥४५

दर्शनात्तस्य लिङ्गस्यसपिशाचो वरानने ॥

तत्सणाद्विष्यदहस्तु दिव्याभरणनूपितः ॥४६

दिव्यं विमानमारूढो गतो लोके सनानने ।  
 उद्धृत्यसकलं गोत्रं मातृकं पंतुकंतथा ॥४७  
 दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यंमाहात्म्यातिशयं प्रिये ! ।  
 प्रोक्तं देवं विमानस्थैः सिद्धं राकाशगंस्तथा ॥४८  
 पिशाचोऽपि गतः स्वर्गं मस्य लिंगस्य दर्शनात् ।  
 अतो देव स विख्यातो भविष्यति महीतले ॥  
 पिशाचेश्वरसञ्ज्ञस्तु सर्वपापप्रणाशनः ॥४९

हे धरानने ! उस ब्राह्मण के इस वचन का धरणा करके वह पिशाच उस ब्राह्मण सामंतायन का प्रणाम करके उसी समय में बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर वहाँ पर समागत हो गया था ॥४४॥ अभीष्ट फल के प्रदान करने वाले परम पुण्यमय उस महाकाल धन में पहुँचकर उसने शिखा के पुम जल में स्नान किया और फिर उस लिंग का दर्शन किया था ॥४५॥ हे धरानने ! वह पिशाच उस लिंग के दर्शन से उसी क्षण में दिव्य देह धारण करके परम दिव्य धारणों से विभूषित हो गया था और फिर परम दिव्य विमान में सवार होकर सनानन लोक को चला गया था और फिर उसने इसी के प्रभाव से अपने पितृकुल तथा मातृकुल के पितरों का भी उद्धार कर दिया था ॥४६-४७॥ हे प्रिये ! उस महान् आश्चर्य से भरे हुए इस माहात्म्य के अतिशय को देख कर देवगण भी जो विमानों में स्थित थे और आकाशगामी सिद्ध गण भी रहने लगे थे—ओ हो ! क्या अद्भुत माहात्म्य है कि इस लिंग के केवल दर्शन से यह महान् पावात्मा परम निकृष्ट पिशाच भी स्वर्ग में चला गया है । इसी लिये वह देव इस महोत्तल में पिशाचेश्वर संज्ञा वाला विख्यात हो जायगा क्योंकि यह तो पिशाचों के भी समस्त पापों का नाश करने वाला है ॥४८-४९॥

येष्वप्रन्तिनरादेवि ! पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ।  
 तेषांहिपितरः सद्योयेवापितरयेस्थिताः ।  
 पिशाचत्वाद्धिमुच्यन्ते स्वर्गं यान्ति न संशयः ॥५०

अश्वमेधस्य यज्ञस्य नाम्यगिष्टस्य यत्कलम् ।  
 तत्कलं लभते मोक्षपि पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५१  
 गवाया पिण्डदानेनयस्तुष्यं समुदाहृतम् ।  
 तत्पुण्यमधिकं ज्ञेयं पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५२  
 ये पश्यन्ति चतुर्दश्यां पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ।  
 प्रेतत्वं चपिश्नाचत्वं कुलेतेपानजापते ॥५३  
 न विद्योति नरो याति नरकं चनपश्यति ।  
 प्रसङ्गेनापियं पश्येत्पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥५४  
 सर्वेश्वरं प्रमायुक्तं सर्ववन्द्यमग्निवतः ।  
 मोदतेपितृलोके स पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५५  
 कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा स्वर्गं च गच्छति ।  
 स्पर्शनादस्तं शिवस्य पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥५६  
 तदेव स नरो मुक्तः संनारनिगडादिभिः ।  
 यदेव वीक्षतेनिर्द्धं पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥५७  
 यज्ञानां तपसा चैव दानानां चैव यत्फलम् ।  
 तत्फलं कोटिगुणितं जायतेतस्यवर्शनात् ॥५८  
 यदि पश्येत्तदुद्दंश्या वंशाक्षे काशिकेतया ।  
 तस्यपुण्यमसंख्यातं जायतेनाश्रसंज्ञकम् ॥५९  
 एवते कथितो देवि ! प्रभावः पापनाशनः ।  
 पिशाचेश्वरदेवस्य श्रूयता सङ्गमेश्वरम् ॥६०

हे देवि ! जो मनुष्य इस पिशाचेश्वर नामक शिव का दर्शन किया  
 करते हैं उनके समस्त पितर जो भी नरकों में यादनाएँ मोक्ष रहे हैं सुरन्त  
 ही पिशाचता से मुक्त होकर स्वर्ग को गमन किया करते हैं—इसमें कुछ  
 भी सन्देह नहीं है ॥५०॥ यही भाँति यज्ञ क्रिये हुए धर्मसेवक यज्ञ का  
 जो फल होता है उसी पुण्य-फल को मनुष्य भगवान् पिशाचेश्वर के दर्शन  
 से प्राप्त कर लेता है ॥५१॥ गया में पिण्डों के दान से जो पुण्य बढ़ाया  
 गया है उससे भी अधिक पुण्य पिशाचेश्वर के दर्शन से होता है ॥५२॥  
 चतुर्दशी में जो पिशाचेश्वर का दर्शन करते हैं उनके कुल में प्रेतत्व और

पिशाचता कमो नहीं होती है । ॥५३॥ वह दियोनि और नरक में नहीं जाता है । जो अन्य प्रसङ्ग से भी पिशाचेस्वर का दर्शन कर लेता है वह सब ऐश्वर्य और वाण्ययो से मुक्त हो जाता है तथा पितृ लोक में भी परम प्रसन्न रहता है । कीर्तन से ही पापमुक्त हो जाता है । दर्शन से स्वर्ग मिला करता है । लिंग के स्पर्श से सात कुसों को पवित्र कर देता है । ज्योही दर्शन करता है वैसे ही संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है । यज्ञ—तप—दानों का जो फल है उनसे करोड़ गुना फल दर्शन से होता है । वैशाख—कार्तिक में चतुर्दशी के दर्शन से जो पुण्य होता है वह असंख्य है—इसमें संशय नहीं है । हे देवि ! यह पापों का नाशक प्रभाव कह दिया है ॥५४-६०॥



१०६—अग्नितीर्थ, सर्पतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! अग्नितीर्थं मनुत्तमम् ।

तत्र स्नात्वा तु पक्षादी मुच्यते सर्वकिल्बिषः ॥१॥

तत्रतीर्थे तु यः कन्या दद्यात्स्वयमलङ्कृताम् ।

तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥२॥

अग्निष्टोमातिरात्राम्यां शतशतगुणीकृतम् ।

प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा यथाशक्त्या ह्यलङ्कृताम् ॥३॥

तस्याः पुत्रत्रयपौत्राणां या भवेद्रोमसङ्गतिः ।

स याति तेन मानेन शिवलोके परा गतिम् ॥४॥

धोमार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् सर्वोत्तम अग्नि तीर्थ को गमन करना चाहिए पक्ष के आदि में वहाँ पर स्नान करके मनुष्य समस्त किल्बिषो से मुक्त होकर विमुक्त हो जाया करता है ॥१॥ जो कोई मनुष्य उस तीर्थ में स्वयं समलङ्कृत करके किसी कन्या का दान दिया करता है उसका जो पुण्य—फल बताया गया है वह हे नरोत्तम ! मुझसे थबण कीजिए । अग्निस्तोम और अतिरात्र इन दोनों के पुण्य से सो—सो गुना पुण्य फल अलकारों से यथाशक्ति विभूषित कन्या का दान करके पुरुष प्राप्त किया करता है ॥२-३॥ उस कन्या के पुत्र और पौत्रो

के जितने भी शरीर को रोमावलि होती है उन्हीं के मान से यह पुण्य  
शिव लोक में परागति को प्राप्त करता है ॥४॥

ततो गन्धेन्महाराज नर्पतीर्थं मनुत्तमम् ।

यत्र सिद्धा महासर्पस्तिपस्तप्त्वा युधिष्ठिर ! ॥५॥

वासुकिस्तक्षकोघोर. सर्प ऐरावतस्तथा ।

कालियश्चमहाभागः कर्कोटकवनञ्जयो ॥६॥

गह्वरूढो महातेजा धृतराष्ट्रो वृकीदरः ।

कुलिको वामनश्चैव तेषां ये पुत्रपौत्रिणः ॥७॥

तत्र तीर्थं महापुण्यं तपस्तप्त्वा मुहुष्करम् ।

भुञ्जन्ति विविधान्भोगान्क्रीडन्ति च यथासुखम् ॥८॥

तत्र तीर्थं सुय। स्नात्वा तपेयेत्पितृदेवता ।

वाजपेयफलं तस्य पुरा प्रोवाच शङ्कर ॥९॥

स्नातानासर्पतीर्थं तु नराणां सुविभारत ।

सर्ववृश्चिकजातिभ्यो न भयविद्यते क्वचित् ॥१०॥

यो माकण्डेय महर्षि ने कहा—हे महाराज । इसक अनन्तर सर्वोत्तम  
सर्प तीर्थ में गमन करे । हे युधिष्ठिर । जहाँ पर महा सर्पों ने तपस्वर्षा  
करके सिद्धि प्राप्ति की है । उन महा सर्पों के नाम बतनाये जाते हैं—  
वासुकि—तक्षक—परम घोर सर्प ऐरावत—महाभाग कालिय—कर्कोटका  
—घनञ्जय—शिवरूढ—महान् तेज वाला धृतराष्ट्र—वृकीदर—कुलिक  
घोर वामन ये महा सर्प कहे जाते हैं । इनके जो भी पुत्र पौत्र पौत्र पौत्र  
भी सब हैं । उस महा पुण्यमय तीर्थ में य परम दुष्कर तपस्या करके नाना  
प्रकार के भोगों का उपभोग किया करते हैं और सुख पूर्वक क्रीडा करते  
हैं ॥५-८॥ उन तीर्थ में जो कोई भी मनुष्य स्नान करके अपने पितृगण,  
और देवों का तर्पण किया करता है भगवान् शङ्कर ने पहिले ही कहा था  
कि उस पुण्य को वाजपेय यज्ञ करने का फल होता है ॥९॥ हे मारव !  
इस भूमीक में इस सर्प तीर्थ में स्नान किये हुए पुण्यो को सर्प तथा वृश्चिक  
( बिच्छू ) जातियों से नहीं भी कभी कोई भय नहीं होता है ॥१०॥

मृतो भोगवतीं गत्वापूज्यमानोमहोरर्गः ।  
 नागकन्यापरिवृतो महाभोगपतिर्भवेत् ॥११  
 मार्गशीर्षस्य मासस्य कृष्णपक्षे च याऽष्टमी ।  
 सोपवासः शुचिभूत्वा लिङ्गं सम्पूरयेत्तिलैः ॥  
 यथाविभवसारणं गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥१२  
 एवं विधाय विधिवत्प्रणिपरयक्षमापयेत् ।  
 तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्वनरेश्वर ॥१३  
 तिलास्तत्र च यत्सख्याः पत्रपुष्पफलानि च ।  
 तावत्स्वर्गपुरे राजन्मोदते कालमीप्सितम् ॥१४  
 तत्र स्वर्गत्परिभ्रष्टो जायते विमले कुले ।  
 सुरूपः सुभगश्चैव धनकोटिपतिर्भवेत् ॥१५

वह मनुष्य मृतपुगन होकर भोगवती पुरी पहुँच जाता है और वहाँ पर महान् उरगो के द्वारा पूज्यमान हो जाता है । उसको नाग कन्याएँ चारो ओर से घेरे रहा करती हैं और अन्त में वह महाभोग पति हो जाता करता है ॥११॥ मार्गशीर्ष मास के कृष्णपक्ष में जा अष्टमी तिथि है उसमें उपवास के साथ पवित्र होकर लिंग को तिलों से पूरित कर देवे और अपने विभव की शक्ति के अनुसार गन्ध पुष्पादि उपचारों के द्वारा लिंग का सम्यक् चर्च करना चाहिए । इस प्रकार से विधि—विधान के साथ करके प्रणाम करे और अपराध—दोषापन कराना चाहिए । हे नरेश्वर ! उसका जो भी पुण्य—फल होता है उसको सुनिए । जितनी संख्या में वहाँ पर जो तिल होते हैं तथा जो सख्या पत्र पुष्प और फलों की होती है हे राजन् ! उनमें ही वर्षों तक वह पूजा करने वाला भक्ति ईप्सित काल पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है । फिर उस लम्बी स्वर्ग निवास करने की अवधि समाप्त हो जाने पर वहाँ से अष्ट होकर यहाँ इस भूमण्डल में किसी विमल कुल में जन्म ग्रहण किया करता है । वह परम सुभग और सुन्दर सुरूप धाला होते हुए जन का भो बगोड़ पति हुमा करता है ॥१२-१५॥

१०७—श्रीकपालतीर्थमाहात्म्यवर्णन

चतुर्थं संप्रवक्ष्यामि देवस्य चरितं महत् ।

श्रुतमात्रेण येनैवसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१

कपालो कान्तिको भूत्वा यथा स व्यचरन्महीम् ।

पिशाचं राक्षसंभूतं डाकिनोयोगिनीवृतं ॥२

मंदरं रूपमस्याय प्रेतासनपरिग्रहं ।

त्रैलोक्यस्याऽभयं दत्त्वाश्चचार विपुलं तपः ॥३

आपादोक्तु कृतातप्रह्यापादो नामविश्रुतम् ।

कन्यामुक्ता तत्रोऽन्यथदेवेकपरमेष्ठिना ॥४

तदाप्रभृतिराजेन्द्र म कन्येश्वर उच्यते ।

उत्सय दर्शनभावेण ह्यश्वमेधफल लभेत् ॥५

देवो मार्गं पुनस्तत्र भ्रमते चमदृच्छया ।

विक्रीणातिबलाकारो दृष्ट्वावोक्तोहरेणतु ॥६

यदि भद्रं चेतवोष करोपिमयिसाम्प्रतम् ।

वनाभिर्भरमेतिग ददामिबहुने धनम् ॥७

श्रीमार्कण्डेयस्यो ने क्त्वा—अब से क्षेत्रेश्वर प्रभु का चौथा महान् चरित कहना है जिसके चरन प्रणय कर लेने ही से मनुष्य सभी प्रकार के पापों से श्रमुक्त हो जाता करता है । तपसात् शम्भु कपालो और कन्या धारण करने वाले होकर मन्मुखं महीमण्डल पर विचरण किया करते थे और उनके साथ पिशाच-राक्षस-भूत डाकिनी और योगिनिर्वा रहा करती थी ॥१-२॥ परम मंदर स्वल्प धारण करके त्रैलोक्य को घूमना का दान देकर प्रेतासन पर स्थित होकर परम दुःखद तपस्या को थी । वहाँ पर उन्होंने आपादो की थी अतएव आपादो यह नाम विश्रुत हो गया था । इसके घनन्तर परमेष्ठी देव ने अन्यत्र कन्या मुक्त करदी थी । हे राजेन्द्र ! सभी से वह कापेश्वर कहे जाते हैं । उनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है । फिर देव मार्ग में वहाँ पर मदृच्छा से भ्रमण करते थे ; एक बलाकार विक्रय किया करता था ।

भगवान् हर ने उसे देखकर उससे कहा—हे भद्र यदि आपको कोई क्रोध न हो तो भीर मुझ पर आप नाराज नहीं होंगे तो आप बलाओं से मेरे लिंग को भर दीजिए । मैं आपको बहुत अधिक धन दूँगा ॥३-७॥

एवमुक्तोऽप्य देवेन न वणिग्लोभमोहितः ।

योजयामास बलका लिंगे चोत्तममध्यमान् ॥८

तावद्यावत्क्षयं सर्वं गताः काले सुसञ्चिताः ।

स्थित समुन्नत लिंगं दृष्ट्वा शोकमुपागतम् ॥९

कृत्वा तुखण्डरूढानिस देवः परमेश्वरः ।

उवाचप्रहसन्वाक्य त दृष्ट्वागतसाध्वमम् ॥१०

नचमे पूरितं लिंगं यास्यामि यदि मन्यसे ।

ददामि तन्न वित्तते यदि लिंगं प्रपूरितम् ॥११

अधन्यो कृतपुन्योऽहं निग्राह्य परमेश्वर ।

तव प्रियमकुर्वाण चोऽप्येशास्वती समाः ॥१२

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वणिक्पुत्रस्य भारत ।

असक्षयं धनं दत्त्वा स्थितस्तत्र महेश्वर ॥१३

तदा प्रभृति राजेन्द्र ! बलाकैरिव भूपितम् ।

प्रत्ययार्थं स्थितं लिंगं लोकानुग्रहकाम्यया ॥१४

जब इस तरह से शत्रु ने द्वारा उम बनिषे से कहा गया तो वह वणिक सोम से 'मोहित' हाकर उत्तम—मध्यम बलकाओं को उनके लिंग पर योजित करने लग गया था । वह तब तक उन्हें योजित करता ही चला गया जब तक सुसञ्चित वे सब क्षय को प्राप्त हो गई थी अर्थात् सब समाप्त हो गई थी जो उमने एकत्रिन कर रखी थी किन्तु उम लिंग को पूरित नहीं हुई थी क्योंकि वह तो बैसा ही समुन्नत होकर स्थित हो रहा था—यह देखकर वह वणिक बड़े भारी शोक को प्राप्त हो गया था । वह परमेश्वर देव सण्ड-सण्ड करने हँगते हुए बोले और उसको भयगुण देखकर उससे कहा—मेरे लिंग को पूरित नहीं किया गया है यदि ऐसा तुम मानते हो तो मैं सब चला जाऊँगा । यदि मेरा लिंग प्रपूरित हो गया होता तो मैं बही पर तुम्हें धन दे देता । उम वणिक ने कहा—हे



परमेश्वर । मैं बहुत ही लज्जित और बिना पुण्य धारण है और निग्रह करने के योग्य है । जापना विन न करता हुआ मैं बहुत समयों तक बिना कलश । हे भाग्य ! इस पवन को सुतकार उठ बहिकु पुत्र को प्रभय पन बेकर मन्त्रेश्वर वही पर स्थित हो गय थे । हे राजेश्वर । सभी से मकर मनाकों से भूयित को मति लोका पर प्रनुग्रह करने की कामना से विदवास कराने के लिए यह नियमित हो गया था ॥५-१४॥

देवेन रचित पापकीलया मुप्रतिष्ठितम् ।

देवमार्गमति स्यात् त्रिपुलोकेषुविश्रुतम् ।

पश्यन्प्रपूजयन्वाऽपि सर्वपापं पमुच्यते ॥१५॥

देवमार्गं तु यो गत्वानुब्रजेद्वलाकेश्वरम् ।

पञ्चायतनमामाद्यह्रदलाकं स गच्छति ॥१६॥

देवमार्गं मृतातां तुलराणां भावितात्मनाम् ।

न भवेत्पुनरावृत्तीरुद्गलेश्वरकदाचन ॥१७॥

देवमार्गस्य माहात्म्यं भक्त्या ध्रुवोत्तम ! ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽप्य काया विचारणा ॥१८॥

ह पापों । देवदत्त के क्रीडा से ही सुप्रतिष्ठित देवमार्ग की रचना की जो श्री परम विष्णुवत् पौर हीनो लोका में विद्युत् नय । इसका दर्शन करके भयवा इसको पूजा करते हुए ममत्ता पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है । जो कोई उक्त देवमार्ग में आकर भगवान् बलासेद्वर को पूजा किया करता है वह पञ्चायतन को प्राप्त करके छत्रलाक में गमन किया करता है । जो भावित्र धात्वा वाले पुरुष उक्त देवमार्ग में मृत्युगण होते हैं उन नरों की उस चरलाक से यहाँ फिर पुनः आवृत्त कर्म भी नहीं होती है अर्थात् फिर यहाँ आकर जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं । ह नरोत्तम इस देवमार्ग के माहात्म्य की भक्ति से प्रवृत्त करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त पश्य ही हो जाया करता है—दम्ये कुम्भी विचारणा नहीं करनी चाहिये ॥१५-१८॥

## १०२—जामदग्न्यतीर्थं माहात्म्यवर्णनं

ततोगच्छेद्वराधीश तीर्थं परमशोभनम् ।  
 जमदग्निरितिख्यातं यत्रसिद्धो जनादनः ॥१  
 कथं सिद्धो द्विजश्रेष्ठ वासुदेवो जगद्गुरुः ।  
 मानुष रूपमास्थाय लोकानां हितकाम्यया ॥२  
 एतत्सर्वं यथान्याय देवदेवस्यचक्रिणः ।  
 चरितं श्रोतुमिच्छामि कथ्यमानं त्वयाऽनघ ॥३  
 आसीत्पूर्वं महाराज हैहयाधिपतिर्महान् ।  
 कार्तवीर्यं इति ख्यातः राजा बहुसहस्रवान् ॥४  
 हस्त्यश्वरथमम्पन्नः सर्वशस्यभृतां वरः ।  
 वेदविद्याश्रितस्नातः सर्वभूताभयप्रदा ॥५  
 माहिष्मत्याः पतिः श्रीमाधाजा ह्यक्षीहिणीपतिः ।  
 स कदाचिन्मृगान्हन्तुं निजंगाम महाबलः ॥६  
 बहुभिद्दियसं प्राप्तो भृगुकच्छमनुत्तमम् ।  
 जमदग्निर्माहातेजा यत्र तिष्ठति तापसः ॥७

श्रीमार्कण्डेय ऋषि ने कहा—हे धराधीश । इसके उपरान्त उस परम शोभा से सनुत्पन्न तीर्थ को गमन करे जहाँ पर जनादन सिद्ध हुए थे और जो जमदग्नि—इस नाम से विप्रसूत है । युधिष्ठिर ने कहा— हे द्विजो मे परम श्रेष्ठ ! जगत् के गुरु वासुदेव ने कैसे सिद्धि प्राप्त की थी और लोको पर हित की कामना से मनुष्य का स्वरूप धारण किया था ॥१-२॥ देवो के भी देव के इस सम्पूर्ण चरित का भगवान् चक्रधारी के वृत्तान्त वा न्याय पूर्वक वर्णन में श्रवण करना चाहता हूँ । हे अनघ ! आपके द्वारा यह कथ्यमान होना चाहिए अर्थात् आप ही इसे वर्णन कीजिए । श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे महाराज ! एक परम महान् हैहयाधिपति पहिले हुआ था । वह कार्तवीर्य—इस नाम से विख्यात था और वह राजा एक सहस्र बाहुओं वाला था । वह समस्त प्राणियों को भय प्रदान करने वाला राजा था तथा हाथी, घोड़े और रथ आदि

से सुसम्पन्न था एक समस्त क्षत्र धारियों के परम श्रेष्ठ और सब विद्या तथा शक्तियों में स्नातक था । यह श्रीमान् माहिष्मती पुरी का पति और अक्षोहिणी सेना का स्वामी था । वह एक बार किमो समय में महाम् बल-वान्नी मृगों को मारने के लिये निकल गया था बहुत दिनों में परम उत्तम मृगु कञ्ज में वह ग्राह्य हो गया था जहाँ पर तपस्वी जमदग्नि ऋषि महान् वेद से युक्त स्थित थे ॥३-७॥

रेणुकासहित श्रीमान्सर्वभूताभयप्रवः ।

तस्य पुत्रोऽभवद्गामसाक्षान्नारायणःप्रभुः ॥८

सर्वक्षत्रगुरायुक्तो ब्रह्मविद्ब्राह्मणोत्तमः ।

तोपयन्परया भक्त्या पितरोपरमाधवत् ॥९

तत्तदाचार्युत्तं दृष्ट्वा जमदग्नि प्रतापवान् ।

चरन् मृगयागत्वा ह्यतिष्ठेन्नन्यमन्त्रयत् ॥१०

तयेति चोक्त्वा स नृप समृष्यबलवाहनः ।

जगाम चाऽऽश्रम पुष्पमृषेस्तस्य महाम्भना ॥११

तत्क्षणादेव सम्पन्न क्षिया परमयावृताम् ।

विस्मयं परम तत्र दृष्ट्वा राजा जगामह ॥१२

गतमाधस्तु सिद्धेन परमान्नेनभोजितः ।

सभूर्यबलवाधारा ब्राह्मणेन यदृच्छया ।

किमेतदिति पप्रच्छ कारण शक्तिमेव च ॥१३

कामधेनोः प्रभाव तं ज्ञात्वा प्राह ततो द्विजम् ।

वक्षिणां देहि मे विप्र कल्मषा धेनुमुत्तमाम् ॥१४

वह तपस्वी जमदग्नि प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले श्रीमान् रेणुका के सहित वहाँ पर तपस्या किया करते थे उनके पुत्र राम अर्थात् परशुराम हुए थे जो साक्षात् प्रभु नारायण ही थे । वैसे यह ब्रह्म के ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण थे किन्तु सम्पूर्ण क्षत्रियों के गुणों से युक्त थे । परशुराम अपने माता-पिता के परम भक्त थे और परा मातृ-पितृ-भक्ति के द्वारा उन्हें पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करते हुए परमार्थ का ज्ञान रखने वाले थे । उस समय में परम प्रतापी जमदग्नि मुनि ने वहाँ पर सहस्राङ्ग

राजा को नमस्कार देख कर बो कि मृगया ( शिकार ) करते हुए वहाँ पर  
 उभस्थित हुए मे वनरानि उनके पास गये और उनका आतिथि-सत्कार  
 करने के लिये निमन्त्रित किया था । 'उपास्तु'—अर्थात् इच्छा प्राप्त  
 आतिथ्य हनको स्वीकार है—नह कहकर वह राजा अपने समस्त मृत्यु—  
 मृत्यु और वाहनों के सहित उग्र परम पवित्र पुण्य स्व महाना नृपि के  
 आश्रम में पहुंच गये थे । उसी क्षण में सुम्नत्र क्षीर परम श्री से मनाहुत  
 उन आश्रम को देखकर वहाँ पर राजा को परमाधिक विस्मय हो गया  
 था । वहाँ पर पहुंचते ही परमोत्तम मुनिद्वय बल के द्वारा राजा को उनके  
 समस्त मृत्यु और सेवा के सहित ब्राह्मण ने इच्छा पूर्वक यथेष्ट भोजन करा  
 दिया था । राजा ने यह समस्त विधान भैरव देखकर अपने इस सब  
 अत्यधिक पूर्ण आतिथ्य करने का कारण पूना था और ऐसी आतिथ्य के  
 सम्पन्न कर देने की क्या शक्ति है—नह भी प्रश्न किया था । मुनि के कह  
 देने पर कामधेनु के उन महान् प्रभाव को जानकर राजा ने उष द्विज से  
 कहा—हे विप्र ! मोक्ष तो हमको करा दिया है अब कुछ दक्षिणा दो  
 और वह दक्षिणा वह कल्पों को दूर करने वाली इस उत्तम धेनु को  
 हनका दे दो ॥८०१४॥

शत शतसहस्राणामनुतं नियुतं परम् ।

भूपिनाना च धेनूनां ददामि तवत्वार्युदम् ॥१५

अमुतंअमुतंर्नाह शतकोटिमिरत्तमाम् ।

वामधेनुभिमात्तात नर्दधिप्रतिगम्यताम् ॥१६

एवमुक्तं नराजैन्द्रस्तेन विप्रैर्गभारत ।

क्रोधसरत्तनयन इक्षं वचननर्नर्वात् ॥१७

यस्येहश. कामचारा मर्त्यापि द्विजपात्तन ।

बहं ते पदयतस्तस्मान्नयामि नुरभि गृहात् ॥१८

कः क्षीडति नरोपेण निमंपोहिमहाहिना ।

मृत्युहृष्टोऽन्तरेणाऽपिममधेनु नयेत्तमः ॥१९

एवमुक्त्वा महादण्डं ब्रह्मदण्डमिवाऽनरम् ।

गृहीत्वा परमकूडो जमदग्निस्वाचह ॥२०

यस्याऽस्ति शक्तिस्त्रेजो वा क्षत्रियस्य कुलाऽवमः ।

धेनुं नयतु मे सद्यः क्षीणायुः सपरिच्छदः ॥२१॥

राजा ने जमदग्नि से कहा—मैं आपकी शक्त—महत्त्व—प्रभुत्व और नियुक्त तथा प्रबुद्ध भूपित धेनु देता हूँ किन्तु यह कामधेनु मुझको चाहिए । जमदग्नि ने कहा—हे तात । ध्युन ( दश हजार )—नियुक्त धीर सो करोड़ भी धेनुओं के बदले में मैं इस उत्तम कामधेनु को नहीं देसकता हूँ आप यहाँ से वापिस चले जाइए । हे भारत । उस विप्र के द्वारा जब राजेन्द्र महसाजुंन इस प्रकार से कह दिया गया तो वह राजा क्रोध से रक्त नेत्रों वामा होकर मुनि से यह वचन बोला—हे द्विजपासन । धर्मत् द्विजों में महान् नीच । जिस तेरा भोगे प्रति भी ऐसा काम चार धर्मत् मनचाहा करतावा है तो मैं प्रब देराते हुए ही तेरे घर से इस सुरभि को ले जाता हूँ । द्विज ने कहा—ऐसा कौन है जो नियंत्रण होकर क्रोध से युक्त महान् सर्प से क्रोडा करता है । जो इस मेरा कामधेनु को लेवावेगा धर्मत् लेजाने की इच्छा करेगा वह नीच में ही मृत्यु के द्वारा दृष्ट हो जावेगा अर्थात् मर लेवा इस प्रकार से कहकर जमदग्नि ने परम क्रुद्ध होकर दूसरे ब्रह्मदण्ड की ही भाँति अपने महादण्ड को प्रहण करके वह मुनि बोला—त्रिम क्षत्रिय का ऐसा तेब पयवा शक्ति है शी कुन में अपम मेरी इस धेनु को लेजावे वह सपरिच्छर सुरभ्य ही क्षीण आयु वाला हो जावे ॥१५-२१॥

एतच्छ्रुत्वा वच क्रूरं हेहयः शतशोवृत ।

धावमानःक्षितितले ब्रह्मदण्डहतोऽपतत् ॥२२॥

हुङ्कुतेन ततो वेन्वाः ब्रह्मपाशासिपाणय ।

निर्गच्छन्तः प्रहृष्यन्ते कल्मषायाः सहस्रदाः ॥२३॥

नासापुटायाद्रोमाभ्रात्किराता मागधा गृहात् ।

रुध्रान्तरेषु चोत्पन्नाः दत्तशोऽय सहस्रदाः ॥२४॥

एवमन्वोऽप्यमाहत्य हेहयष्टं कणान्दहन् ।

विनाशं सह विभ्रंण गता ह्यर्जुनतेजसा । २५

कात्तंवीर्यो जयं लब्ध्वा महद्दृश्ये हत्वा द्विजोत्तमम् ।

जगाम स्वा पुरीं दृष्ट्वा कृतान्तवशमोहितः ॥२६

ततस्तराम्बिनः प्राप्तपदचाद्रामोगतेरिषो ।

आक्रन्दमानांजननी ददर्शपितुरन्तिके ॥२७

केनेदमात्मनाशाय ह्यशानात्माह्वयं कृतम् ।

मम तातं जिघांसुर्वो द्रष्टुं मृत्युमिहेच्छति ॥२८

सैब्यों जनों से परिवृत्त हृद्दय ने जमदग्नि के इस परम क्रूर बचन को सुना था और वह धावमान होना हुआ अद्भुत से हृत् होकर मृतम में गिर गया था । इसके अनन्तर उस कामपा पितृ के हुंकार से महर्षों ही मन्त्र-पाठ और अग्नि ( तजवार ) हाथों में लेने वाले निकनते हुए दिखलाई दे रहे थे । मामापुत्रों के अग्रभाग से—रोमों के अगले भाग से—गुह्र से और रन्ध्रों के अन्तर्गों में संबन्धों और महर्षों ही किरात और माग्य उत्सर्ग हो गये थे । इस प्रकार हृद्दय के टट्टुर्णों को दग्ध करते हुए थापस में एक दूसरे को मारकर महर्षाशुन के तेज से विप्र जमदग्नि के महिष्ठ मन्त्र विनाश को प्राप्त हो गये थे । रामा कार्त्तवीर्य उस युद्ध में विजय प्राप्त करके और उस उत्तम द्विज का धध करके अपनी पुरी को जना गया था और कृतान्त वश से मोहित देगा गया था । इसके पश्चात् उस रिषु के भले जाने पर शीघ्रता से युक्त राम ( परनुराम ) वहाँ प्राप्त हो गये थे । उन्होंने अपने पिता के मन्दिष्ट माता को दृश्य करते हुए देखा था । परनुराम ने कहा—किस दुष्ट ने अज्ञान से आत्म नाश करने के लिये ऐसा दुस्माह्वय किया है ? मेरे पिताजी को मारने की इच्छा बाला यह यही पर अत्र स्वयं अपनी मृत्यु का देखने की इच्छा कर रहा है ॥२२-२८॥

ततामा रामवाक्येन गतमस्वेवविह्वला ।

उदरं करपुग्मेन ताटयन्तीह्युशाच तम् ॥२९

अर्जुनेन नूनमेन शप्रियैरपरैः सह ।

इहाभ्यात्यपिता तेन निहतो वाङ्मनालिना ॥३०

तं पश्य निहृतं सातं गतामुंगतचेतसम् ।  
 संस्कृत्य विधिवत्पुत्र तर्पणस्वयथावचम् ॥३१॥  
 एतद्ध्रुत्वासवचनं जननीमभिवाधनाम् ।  
 प्रतिज्ञामकरोधातां शृणुष्वचनराविप ॥३२॥  
 त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी निः क्षत्रियकुलान्वयाम् ।  
 स्नात्वा च तेषामसृजा तर्पयिष्यामि ते पतिम् ॥३३॥  
 तस्यापि परशुना दाहन्कात्तवीर्यस्य दुर्मतेः ।  
 छित्त्वा पास्यामि रुधिरमिति सत्यं शृणुष्व मे ॥३४॥

इसके धनस्तर राम के इस वाक्य से घत मन्व की मति घत्यस्त  
 बिल्वन होती हुई उसको माता दोनों हाथों से छाती पेटती हुई उमते  
 यह वचन बोली—परम क्रूर सहस्राजुंन ने दूसरे क्षत्रियो के सहित पहाँ  
 आकर दाहशाली उमने ही तेरे पिता को निहृत किया है । हे बेटा । अपने  
 मृत पिता का दर्शन कर ले जो इस समय मे मन प्राण और चेतना से  
 रहित हैं । हे पुत्र । मम इसका तुम विधिपूर्वक अग्नयेष्टि सम्कार कर  
 शाली ओर ठीक २ रीति इनका तर्पण करो । हे नराविप ! माता के यह  
 वचन सुनकर उस अपनी जननी का अभिवादन करके उठोनि जो उस  
 समय में प्रतिज्ञा की थी उसका भाष प्रव श्रवण करिये—क्षत्रिय कुल के  
 धन्वय वाली इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय रहित करके उन्ही के  
 रक्त से स्नान कर के ही मम में भाएके पति का तर्पण करूँगा । मैं अपने  
 इस फरसा से उस दुर्मति कार्तवीर्य की मुजाओं का छेदन करके ही उसका  
 रुधिर पान करूँगा—यह मेरा वचन सर्वथा सत्य है उसे सुन लो । इस  
 प्रकार से प्रतिज्ञा करके परम प्रतापी जामदग्न्य ने महान् क्रोध से  
 आविष्ट होकर फिर अपने पिता जामदग्नि का संस्कार किया था  
 ॥३६-३४॥

एवं प्रतिज्ञा कृत्वाऽतो जामदग्नयः प्रनामयान् ।  
 क्रोधेन महताऽविष्टाः संस्कृत्य पितरं ततः ॥३५॥  
 न हिष्मतीं पुरी रामो जगाम क्रोधमूर्च्छितः ।  
 छित्त्वा दाह्वनं तस्य हत्वा तं क्षत्रियाधमम् ॥३६॥

जगामक्षत्रियान्तात पृथिवीमवलोकयन् ।  
 सप्तद्वीपाणं वयुता सशलवनकाननाम् ॥३७  
 पूर्वतः पश्चिमामाशा दक्षिणोत्तरतः कुरुन् ।  
 स्यमन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरहृदान् ॥३८  
 सतेपुरुधिराम्भस्सुहृदेपु क्रोधमूर्च्छिता ।  
 पितृन्सन्तप्यं यामामरुधिरेणेतिनः श्रुतम् ॥३९  
 अथर्षीकादेयोपेत्य पितरो ब्राह्मणपंभम् ।  
 तं क्षमस्वेति जगदुस्ततः स विरराम ह ॥४०  
 तेषां समीपे यो देशो हृदानां रुधिराम्भसाम् ।  
 स (स्य) मन्तपञ्चकमिति पुण्यं तत्परिकीर्तितम् ॥४१  
 निवृत्त्यं कर्मणस्तस्मात्पितृन्प्रोवाचपाण्डव ।  
 रामः परमत्रमर्त्तमायद्विदं रुधिरं मया ॥४२  
 क्षिप्तं पञ्चमु तीर्थेषु तद्भूयात्तीर्थं मुत्तमम् ।  
 तथेत्युत्त्या तु ते सर्वे पितरोऽद्भ्यस्ता गताः ॥४३

क्रौर से एक दम मूर्च्छित होते हुए परशुराम माहिष्मती पुरी को  
 चल दिये थे । और वहाँ पहुँचकर उसकी जो सहस्र बाहुओं का वन था  
 उसको काटकर उन अधम क्षत्रिय को मार गिराया था और फिर क्षत्रियों  
 के घन कर देने के लिए सात द्वीपों और अणवों वाली—पूर्वत और वन  
 काननों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को देखते हुए वहाँ से चल दिये थे । पूर्व  
 से पश्चिम दिशा तथा दक्षिण उत्तर धुरधो को गये थे । सामन्तक पञ्चक  
 में पाँच रुधिर के हृदय किये थे । उन रुधिर के जल वाले हृदों में उन  
 परशुराम ने क्रोध से मूर्च्छित होकर रुधिर से ही पितृमण का अर्पण किया  
 था—ऐसा हमने सुना है । इसके धनन्तर अर्षीकादि पितरों ने उन  
 ब्राह्मण ऋषि के समीप में उपस्थित होकर उनसे कहा था—उम्हरी समा  
 कर दोजिये । इसके पश्चात् वह विरत हो गये थे । रुधिर रूपी जल  
 वाले उन हृदों के समीप में जो देश है वह स्यमन्तक पञ्चक—इस पुण्यमय  
 नाम से परिकीर्तित किया जाता है । हे पाण्डव ! उस कर्म से निवृत्त  
 होकर परम धर्मात्मा राम ने पितरों से कहा था कि मैंने जो यह रुधिर



पौत्र तेषां में प्रक्षिप्त क्रिया है वह उत्तम तीर्थ हो जावे—उयास्तु—  
पर्याप्त ऐसा ही होना—यह कह कर सब पितृगण धृष्टयता को प्राप्त हो  
गये थे ॥३६-४३॥

एवं रामस्य सप्तर्षीदेवमार्गं युधिष्ठिर ।

सर्वपापक्षयकरो दर्शनात्स्पर्शानान्तृणाम् ॥४४

रेणुकाप्रत्यघार्याय अद्यापि पितृदेवता ।

दृश्यन्नेदेव मार्गस्थाः सर्वपापक्षयंकराः ॥४५

तत्र तीर्थं तु राजेन्द्र नर्मदोदधिसङ्गमे ।

स्यानं कृत्वा विधानेनमुच्यन्तेपातकैर्नराः ॥४६

कुशाग्रैणाऽपि कौन्तेयनस्पृश्यो महोदधिः ।

अनेन तत्रमन्त्रेण स्नातव्यं नृपसत्तम ॥४७

नमस्ते विष्णुरुपाय नमस्तुभ्यमपापते ।

सान्निध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि ॥४८

हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार से देव मार्ग में राम का सप्तर्षी दर्शन से  
घोर स्पर्श करने से मनुष्यों के समस्त पापों के क्षय करने वाला होता  
है । रेणु का माता के प्रथम (विदवास) के लिए उस समस्त पापों  
के क्षय करने वाले देव मार्ग में स्थित पितृ देवता गण प्रभों भी दिखलाई  
दिया करते हैं । हे राजेन्द्र ! नर्मदा और सागर के संगम उस तीर्थ में  
विधान के साथ स्नान करके मनुष्य पातकों से मुक्त हो आया करते हैं ।  
हे कौन्तेय ! कुशा के अग्र भाग से भी महोदधि का स्पर्श नहीं करना  
चाहिये । हे नृप सत्तम ! वहाँ पर इन निम्नांकित मन्त्र के द्वारा स्नान  
करना चाहिये । हे अपापते ! हे देवेश ! विष्णु के स्वरूपधारी आप की  
सेवा में प्रणाम अर्पित है—गलों के स्वामी की सेवा में नमस्कार है ।  
लवणाम्भ सागर में आप सान्निध्य करिये ॥४४-४८॥

अग्निश्च तेजो मृडया च देहे रेतोश्च विष्णुरमृतस्य नाभिः ।

एतद्द्रवन्पाण्डवसत्यत्रावयं ततोऽत्रगाहेत पति नदीनाम् ॥४९

पञ्चवरत्नसमायुक्तं फलपुष्पाक्षतंयुतम् ।

मन्त्रेणाग्नेन राजेन्द्र दद्यादघं महोदधेः ॥५०

सर्व रत्ननिधानस्त्वं सर्व रत्नाकराकर ।

सर्वामरप्रधानेश गृहाणार्घं नमोऽस्तु ते ॥५१

आजन्मजनितात्पापान्मामुद्धर महोदधे ।

याह्यर्चितोरत्ननिधे पर्व तान्पार्वणोत्तम ॥५२

कोऽपर सागराद्देवात्स्वग द्वारविपाटन ।

तत्र सागरपर्यन्तं महातीर्थं मनुत्तमम् ॥५३

जामदग्न्येन रामेण तत्र देवः प्रतिष्ठितः ।

यत्र देवाः स गन्धर्वा मुनयः सिद्धचारणाः ॥५४

उपामते विरूपाक्षं जमदग्निमनुत्तमम् ।

रेणुकाच्चैव येदेवी पश्यन्ति भुवि मानवाः ॥५५

प्रियवासे शिवे लोके वसन्ति कालमीप्सितम् ।

तत्र स्नात्वानरो राजंस्तपयन्पितृदेवताः ॥५६

तारयेन्नरकाद्धोरात्कुलानां शतमुत्तरम् ।

स्नात्वा दत्त्वाऽग्र सहिताः श्रुत्वा वै भक्तिपूर्वकम् ॥५७

हे पाण्डव । अग्नि—तेज और मृडया देह मे इसके अनन्तर घमृन को नाभि धिप्णु है—यह सत्य वाक्य बोलता हुआ नदियों के पति मे फिर धवगाहन करना चाहिये । हे राजेन्द्र । पार्वी रत्नों से युवन फल-पुष्प और प्रक्षतो से समन्वित इस निम्न मन्त्र से महोदधि को अर्घ्य देना चाहिए ॥५०॥ हे समस्त घमरो मे प्रमानो के भो ईश ! आप सम्पूर्ण रत्नो की खान हैं और सभी रत्नो के धाकरो की धाकर हैं । हमारे इस अर्घ्य को ग्रहण कीजिये आपकी सेवा मे आपके लिए हमारा प्रणाम अर्पित है । यह अर्घ्य देने का मन्त्र है । हे महादधे । मेरे जन्म से लेकर समुत्पन्न हुए पापों से मेरा उद्धार कर दो । हे पार्वणोत्तम ! हे रत्ननिधे ! आप समर्चिष्ठ होकर पर्वतो को गमन कीजिए । यह विमर्जित का मन्त्र है । इस सागर देव से अधिक स्वर्ग के द्वार को विपाटन करने वाला दूसरा कौन हो सकता है ? वही सागर तक अत्युत्तम महा तीर्थ है । जामदग्न्य धी परगुराभ ने वही पर देव को प्रतिष्ठा की थी जहाँ पर देव वण—गन्धर्व—मुनि लोग—सिद्धगण और चारण सभी अत्युत्तम

जमदग्नि विरूपाक्ष भयवान् की उपासना किया करते हैं। इस भूमि में जो मनुष्य रेणुका देवी का दर्शन किया करते हैं वे प्रियवास शिवलोक में मन्मोह काल पर्यन्त निवास किया करते हैं। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करने अपने सिङ्गण भोर देवों का वर्णन करते हुए मनुष्य पौर नरक में उत्तर में होने वाले भी कुर्बों का उद्धार कर देता है। स्नान करने यही पर शान करके भोर शक्ति पूर्वक सहित इस माहात्म्य का श्रवण करके भी प्रपत्ता भोर अपने बहुत से कुल का तारण कर दिया करते हैं ॥५०-५७॥

### १०६—रेवाखण्डपुस्तकदानादिमाहात्म्यवर्णन

इतिवः कथितं विप्रारेवा माहात्म्यमुत्तमम् ।  
ययोपदिष्टं पार्याय मार्कोडेयेनवपुरा ॥१  
तथा तीर्थं कदम्बाश्च तेषु तीर्थं विशेषतः ।  
प्राधान्येन मया कथाता यथासक्यं यथाक्रमम् ॥२  
एतत्पवित्रमनुक्तं ह्येतत्पापहर परम् ।  
नर्मदाचरितं पूष्य माहात्म्यं मुनिभाषितम् ॥३  
सप्तकल्पानुगो विप्रो नर्मदायां मुनीश्वराः ।  
भृङ्गण्डतनयो धीमान्परमार्थविदुत्तमः ॥४  
संश्लेष्य सर्व तीर्थानि नदीः सर्वाश्चर्यपुरा ।  
बहुकलास्मरा रेवामालक्ष्यशिवदेहजाम् ॥५  
मेकलेति चशर्वोत्तमं शरणं शर्वजां ययौ ।  
अजराममरां देवीं दंत्यध्वकरी पराम् ॥६  
महाविमवसयुक्ता भवधनी भवजाह्नवीम् ।  
तस्यामावश्यं सत्प्रोप जातं सोऽन्यजरामरः ॥७

श्रीभृङ्गजी ने कहा—हे विप्रगण ! पुरातन समय में जिम प्रकार से महर्षि मार्कोडेय जी ने पार्यं पुत्रिष्ठर को इतका उपदेश किया था वही मैंने प्रायः लोगों को यह प्रत्युत्तम माहात्म्य वर्णन करके बतला दिया है। मैंने

बहुत-से तीर्थों का तथा उनमें भी विशिष्ट तीर्थों का प्रधान रूप में संख्या और क्रम के अनुसार वर्णन किया है । यह परमन्त ही पवित्र और अनुन पापों के हरण करने वाला है मुनीश्वरो ! पुण्यमय नर्मदा का चरित एवं माहात्म्य है जिसको कि महामुनि ने कहा था । हे मुनीश्वरो ! साग कल्पों तक अनुगमन करने वाला मृकण्ड का पुत्र विप्र बह्वन ही बुद्धिमान् और उत्तम भयं का नेता था । इतने पहिले तमस्त तीर्थों का मलो भानि सेवन करके और तमस्त नदियों का सेवन करके बहुत कल्पों तक स्मरण की जगि वाली और शिव प्रभु के देह से समुत्पन्न हुई रेवा नदी को देखकर के भगवान् शर्व के द्वारा मेकला—इम नाम से कही गई और शर्व से ही समुत्पन्न हुई के कारण में वह चले गये थे । यह देवी जरा रहित—अमर—परा—और दैत्यों के घ्नं करने वाली थी—महान् धैर्य से समन्वित—संसार की बाधाओं का हनन करने वाली और भव की जाह्नवी थी । उसमें सत्प्रेम को धाव्य करके वह प्रेमी भी धरामर हो जाया करता है ।

॥१-७॥

पष्टितीर्थं सहस्राणिपष्टिकोटध्रुवपत्तमाः ।

ध्रुवस्थितानि रेवायास्तीरयुग्मेपदेपदे ॥८

सरितः परितः सन्ति सतीर्यास्तु सहस्रशः ।

नतुला यान्ति रेवायास्त्राश्च मन्ये मुनीश्वराः । ॥९

एतद्वः कथितं सर्वं यत्पृष्टमखिल द्विजाः ।

यन्महेशमुख्याञ्छ्रुत्वावापुराह ऋषीन्प्रति । १०

तद्वन्मृकण्डतनयोऽयमूमाखिला नदीम् ।

सतीर्या पदशः प्राह पाण्डुपुत्राय पावनीम् ॥११

एतच्च कथितं सर्वं सक्षेपेणद्विजोत्तमाः ।

नर्मदाचरितं पुण्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१२

किमन्यैः सरिता तोयैः सेवितंस्तु सहस्रशः ।

यदि ससेव्यते तोयं रेवायाः पापनाशनम् ॥१३

मेकलाजलससेवी मुक्तिमाप्नोति सादवतीम् ॥१४

रेवा के दोनों तटों पर कश्म—कश्म पर है उत्तपो । बाह्र हजार  
 और भाठ करोठ तीर्थ व्यवस्थित हैं । सरिता के दोनों ओर सहस्रों सतीर्थ  
 हैं । हैं वृन्दीस्वरो । वे सब रेवा की तुलना प्राप्त नहीं होते हैं—ऐसा मैं  
 मानता हूँ । हे द्विमण्डल । प्रायः लोगों ने जो कुछ भी मुझसे पूछा है वह  
 सब मैंने आसकी बतला दिया है जो कि भगवान् महेश के मुख से प्रवृत्त  
 करके वायुदेव ने ऋषियों से कहा था । उभी भक्ति मृकण्ड के पुत्र ने भी  
 सम्पूर्ण तथो का अनुभव प्राप्त करके इस पावनी सतीर्था को पद से पाण्डु  
 के पुत्र को कहा था । हे द्विजोन्मो ! यह सभी शेष से मैंने कह दिया  
 है । यह नर्मदा का चरित परम पुण्यमय है और तीनों लोकों में परम  
 दुर्लभ है । अन्य सहस्रो सरिताओं के जलों का सेवन करने से क्या लाभ  
 है यदि रेवा का जल भली भाँति सेवन किया जावे जो कि पापों के नाश  
 करने वाला है । मेरुका के जल का सेवन करने वाला शाश्वती मूर्ति की  
 प्राप्ति किया करता है ॥५-१५॥

यथा यथा भजेन्मर्त्या यद्यदिच्छति तीर्थं नः ।

सुतदाप्नोति नियतं श्रद्धयाऽश्रद्धयापि च ॥१५

इदं ब्रह्माहरिरिदमिदं साक्षात्परोद्दरं ।

इदं ब्रह्म निराकारं कव्यं नर्मदाजन्मम् ॥१६

तावद्गजन्ति तीर्थानि नद्योद्भवफलप्रदाः ।

यावन्नस्मरते रेवासेवाहेवा कलौ नरैः ॥१७

ध्रुवं लोके हितार्थाय शिवेन स्वशरीरतः ।

शक्तिः कापिसृष्टिर्द्रुवा रेवेयमवतारिता ॥१८

तावद्गजन्ति यज्ञादनं वनक्षेत्रादपो भृशम् ।

यावन्नमं दानाम् कीर्तनं क्रियते कलौ ॥१९

गरिमा गण्यते तावत्तपोदानश्रुतादिषु ।

नरैर्षा प्राप्यते चाधदमुविभगंमवा धुनी ॥२०

ये वसन्त्युत्तरेकूले रुद्रस्यानुवशा हि ते ।

वसन्ति पान्यतीरे ये लोकं ते यान्ति वैष्णवम् ॥२१

जैसे—जैसे मनुष्य मजन करात है और तीर्थों में गमन करने वाला जो-जो भी चाहता है वही-वही नियत रूप से वह अवश्य ही प्राप्त कर लिया करता है चाहे वह धृदा से करे प्रथवा प्रथदा से करे । यह नर्मदा का जल ही ब्रह्मा है—यही हरि है तथा यह जल ही परारर साक्षात् हर है—यही निराकार ब्रह्म है और यही कंवक्ष्य है । तभी तक अन्य समस्त तीर्थ गर्जन किया करते हैं पर्यात् अपने द्वारा प्राप्त होने वाले पुण्य-फल की घोषण करते हैं और नदिमाँ भी सुन्दर फल देने वाली बना करती हैं जब तक इस कलियुग में नरो के द्वारा देवा की सेवा से होने वाले पुण्य फल का स्मरण नहीं किया जाता है । यह निश्चय ही लोक में हित सम्पादन करने के लिये भगवान् शिव ने अपने ही शरीर से कोई सर्िता के स्वरूप धारो यह देवा शक्ति अद्यतारित की है । तभी तक वन क्षेत्रादि यश अत्यधिक गर्जना किया करते हैं जब तक इस कलियुग में नर्मदा क नाम का कीर्तन नहीं किया जाता है । उप—दान और दत्त आदि में तभी तक गौरव की गणना हुआ करती है जब तक भूमण्डल में मनुष्यों के द्वारा भगं से समुस्पन्न नदी की प्राप्ति नहीं की जाया करती है । जो उत्तर कुन में निवास किया करते हैं वे रुद्र के अनुचर होते हैं और जो याम्य तट पर निवास करते है वे वंष्णव लोक में गमन किया करते हैं ॥१५-२१॥

धन्यास्ते देशवर्गास्ते येषु देणेषु नर्मदा ।

नरकान्तकरीशश्वसश्रिताशय निर्मिता ॥२२

कृतपुण्याश्च ते लोकाः शोकाय न भवन्ति ते ।

ये पिबन्ति जलं पुण्यं पार्यतीपतिसिन्धुजम् ॥२३

इदं पवित्रमतुलं रेवायाश्चरितं द्विजाः ।

शृणोति यः कीर्तयते मृच्यते सवपातकैः ॥२४

घटफलं सर्ववेदैश्च सपटङ्गपदक्रमैः ।

श्रुतं श्च पठितं स्तस्मात्फलमष्टगुणं भवेत् ॥२५

ये पुनर्भवितास्मान् शास्त्रं शृण्वन्ति नित्यशः ।

पूजयन्ति च तच्छास्त्रं नामर्दं वरप्रभूषणैः ॥२६

पुष्पैः फलैश्चन्दनाद्यंभोजनैर्विविधैरपि ।

शास्त्रेऽस्मिन्पूजितेदेवा पूजितागुरवस्तथा ॥२७॥

इहलोकेपरैर्चैव नात्र कार्या विचारणा ।

तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन गन्धवस्त्रादिभूषणं ॥२८॥

पूजयेत्परया भक्त्या वाचक शास्त्रमेव च ।

वेदपाठैश्च यत्पुष्पमग्निहोत्रैश्चपालितं ॥२९॥

तत्फलं समवाप्नोति नर्मदाचरिते शुभे ।

कुक्षेत्रे च यत्पुण्यं प्रभासे पुष्करे तथा ॥३०॥

ये धोष्ठ देश परम धन्य हैं जिन देशों में नर्मदा नदी बहती है । यह साक्षात् भगवान् शम्भु के द्वारा निर्मित नदी है जो निरन्तर ही नरकों का अन्त करदेने वाली है जो लोग इसका सदा सश्रय ग्रहण करते हैं । ये लोक महान् पुण्यों के करने वाले हैं और उन को शोक कभी भी नहीं होता है जो पार्वती देवी के पति के द्वारा विरचित इस नदी के पुष्प जल का पान करते हैं उनको कभी भी शोक का प्रबन्ध ही प्राप्त नहीं होता है ॥२३॥ हे द्विजगण ! यह देवा का चरित मतुल पवित्र है । जो इस चरित का ध्यान करता है और जो इसका कीर्तन करता है अथवा पढ़ता है वह सभी महा पातकों से छुटकारा पा जाता करता है । जो फल पद—फल—घन—बटा—बत्ती आदि छँ मङ्ग के सहित समस्त वेदों के पढ़ने एवं श्रवण करने का फल होता है उस फल से अठगुना फल इस नदी से हुमा करता है ॥२४॥ जो लोग भावित भावना वाले होते हैं और नित्य ही शास्त्र का ध्यान किया करते हैं । वश्य और भूषणों के द्वारा उस नर्मदा के शास्त्र का जो साग पूजन किया करते हैं । पुष्प—फल—चन्दन आदि द्वारा तथा विविध भाक्ति के पूजन से इस शास्त्र के पूजन किये जाने पर समस्त देवता और गुह्यगं पूजित हो जाया करते हैं । इस लोक में और पर लोक में भी सब समर्पित होते हैं—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करने चाहिए । इसलिये सभी प्रकार के प्रणवों से श्रवण—ध्यान—श्रवण आदि के द्वारा पराभक्ति में इस शास्त्र का और इसके वाचन करने वाले

का पूजन करना चाहिए । देशों के पाटो से तथा पालित अग्नि होत्रों से जो पुष्प फल होता है वही पुष्प फल गुप्त नर्मदा के चरित में प्राप्त हो आया करता है । कुरुक्षेत्र में—प्रभासक्षेत्र में तथा पुष्कर में जो पुष्प होता है वही पुष्प फल परम गुप्त नर्मदा के चरित के पठन, ध्वज और समर्पण से हो आता करता है ॥२६-३०॥

रुद्रावर्तं गयाया च वाराणस्यां विशेषतः ।

गंगाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे ॥३१

एवमादिषु तीर्थेषु यत्पुष्पं जायते नृणाम् ।

नर्मदाचरितं श्रुत्वा नः पुष्पं सकलं लभेत् ॥३२

आदिमध्यावसानेषु नर्मदाचरितं शुभम् ।

यः शृणोति नरो भवत्या शृणुष्वं तरुफलं महत् ॥३३

समाप्य शिवसंस्थानं देवकन्यासमावृतः ।

रुद्रस्यानुचरो भूत्वा शिवेन सह मोदते ॥३४

परमास्थानमिदं पुष्पं सर्वाख्यानेष्वनुत्तमम् ।

गृहेऽपि पठयत्यस्य चतुर्वर्णस्य सत्तमाः ॥३५

पुस्तकं पूजयेद्यस्तु नर्मदाचरितस्य तु ॥३६

नर्मदा पूजिता तेन भगवांश्च महेश्वरः ।

वाचके पूजिते तद्देवाश्च ऋषयोऽर्चिताः ॥३७

रुद्रावर्त में, गया में, विशेष करके वाराणसी में, गङ्गा द्वार में, प्रयाग में, गङ्गा सागर के सङ्गम में, इस तरह के बड़े २ तीर्थों में मनुष्यों को जो भी पुष्प फल प्राप्त होता है वही पुष्प फल नर्मदा के चरित को ध्वज करके सम्पूर्ण रूप से प्राप्त हो आया करता है । यदि, मध्य और अख्यान में नर्मदा के शुभ चरित का जो भी कोई मनुष्य भक्ति से ध्वज किया करता है उसके महान् फल का ध्वज करो । शिव के संस्थान को प्राप्त करके देव कन्याओं से समावृत होता हुआ भगवान् रुद्र देव के अनुचर होने का पद प्राप्त करके शिव के ही साथ आनन्द प्राप्त किया करता है । परमास्थान परम पुष्पफल है और ध्वज सभी आख्यानों में सर्वोत्तम



आरूपान् है । हे योऽत्रवा ! जिसका पाठ चारों तरफों के घर में भी किया जाता है ; उसने पर को परम दाय प्राप्त है और वह शुद्धस्य तथा कुल भी अतीव धन्य है जो नर्मदा चरित को पुस्तक को पूजा किया करता है । जिसने नर्मदा नदी का पूजन कर लिया है उसने भगवान् महेश्वर का ही अभ्यर्पण कर लिया है । इस पुराण के वाचन करने वाले का जिसने पूजन किया है नागों उसने सभी देशों और शृण्णियों का भर्चन कर लिया है ॥३१-३७॥

लेखयित्वा च सकल रेवाचरितमुत्तमम् ।

भूषण सर्वशास्त्राणां यो वदाति द्वित्रन्मने ॥३८

नर्मदा सर्वतीर्थेषु स्नानदानेन यत्फलम् ।

तत्फल समवाप्नोति उत्तरेनाञ्ज च शय ॥३९

एतत्पुराणं यद्वोक्तं महामुण्यफलप्रदम् ।

स्वर्गदं पुत्रदं धन्य यशस्य कीर्तिवर्धनम् ॥४०

धर्म्यं मायुष्यममृतुलं दुःखदुःस्वप्ननाशनम् ।

पठत्त शृण्वत्ता चापि तव वारामार्थं निद्विदम् ॥४१

यत्प्रदत्तमिदं पुण्यं पुराणं वाच्यते द्विजा ।

शिवलोके स्थितस्तस्य पुराणस्य रवरसरो ॥४२

इति निगदितमेतन्नर्मदायाश्चरित्रं

पवनगदितग्रथं सर्ववक्त्रादवाप्य ।

त्रिसुधनजनधन्यं रवेतदादौ मुनीनां

कुलपतिपुरतस्तत्सूतमुत्स्येन मातु ॥४३

इस सम्पूर्ण रेवा के उत्तम चरित को लिखवा कर इस समस्त दान्त्रों के मूषण स्वल्प का जो कोई किसी ब्राह्मण को दान दिया करता है उस को नर्मदा अन्य समस्त तीर्थों में स्नान और दान से जो फल प्राप्त होता है वही फल उस मनुष्य को दिया जाती है, इसमें उतक भी संशय नहीं है । यह पुराण भगवान् पर के द्वारा ही रहा गया है और महान् पुत्र फल का प्रदान करने वाला है । यह स्वर्ग निवास, पुत्र देने वाला है, परम धर्म, यशस्य और कीर्ति के बढ़ाने वाला है । धर्म से मुक्त, आयु प्रदान

करने वाला, अनुपम और दुःख तथा सुरे स्वप्नों के नाश करने वाला है । जो भी इसका पाठ किया करते हैं तथा इसका श्रवण करते हैं उनके समस्त कामों के प्रयाजन को सिद्धि प्रदान करने वाला है । जो यह दान किये हुए पुण्यमय पुराण को द्विजों के द्वारा बाँधा जाया करता है उनको शिवलोक में स्थिति हुमा करती है । और यह पुराणाक्षर बरसरी होता है । यह हमने नर्मदा परितः कह दिया है । यह शिव के मुख से प्राप्त करके वायु देव ने इस सर्वोत्तम को कहा है । यह त्रिमुखन के जनों का वन्दनीय है । आदि ज्ञान में कुतपति के आगे सूननों ने माधु स्या से इय का वर्णन किया है ॥३८-४३॥

### ११०—सत्यनारायणविप्रसम्वादेवर्णनं

व्रतेन तपसा वाऽपि प्राप्यते वाञ्छितं फलम् ।  
 सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ॥१  
 नारदेनैवमुक्तं न भगवान् कमलापतिः ।  
 सुरपथेषु प्राह तच्छृणुष्वं समाहिताः ॥२  
 एकदा नारदोऽश्रीपराशुरग्रहकाम्यया ।  
 पर्यटन् विविघाल्लोकान्मर्त्यलोकमुपागतः ॥३  
 तत्र दृष्ट्वा जनाः सर्वे नानादुःखसमन्विताः ।  
 नानाद्योनिःसमुत्पन्नाः क्लिश्यन्ते पापकर्मभिः ॥४  
 केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेद्भवम् ।  
 इति सञ्चिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ॥५  
 तत्र नारायणं देवं शुश्रूषणं चतुर्भुजम् ।  
 शङ्खचक्रगदापद्मवन्मालाविभूषितम् ॥६  
 दृष्ट्वा तं देवदेवेशं वक्नुं समुपचक्रमे ।  
 नमस्ते वाट् मनोज्ञीतरूपायाऽनन्तशक्तये ।  
 आदिमध्यान्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥७

ऋषियो ने कहा—हे महामुने ! जिस व्रत प्रथवा तप से मनुष्यों को मन वाञ्छित फल ही प्राप्त होता है उसे देवों के देवाय नारदजी के पूछे

हुए प्रदानानुसार मैं श्रवण करना चाहता हूँ । ऊँचे आप कहिये ॥१॥ श्री  
 सूतजी ने कहा—श्रीनारदजी ने द्वारा उस प्रकार से कहें जैसे भगवान्  
 कमला पात्र में उन देवर्षि से जिस प्रकार से जो भी कहा था वही भाव  
 लोग सब वरन साकपाव होकर श्रवण कीजिए । एक समय श्री वात है  
 कि योगेश्वर देवर्षि श्रीनारदजी भूमि लोको पर अनुग्रह करने की इच्छा  
 से प्रत्येक भोक्तों में पर्यटन करते हुए मनुष्य लोक में जाकर प्राप्त हो गये  
 थे । वहाँ पर उनके द्वारा सभी मार्ग लोक विवाही मनुष्य प्रत्येक प्रकार  
 के दुःखों से युक्त नाना प्रकार की योनियों में समुत्पन्न प्रपत्ते किये हुए पाव  
 पूर्ण क्रमों से क्लेश पाते हुए देखे गये थे ॥२॥ देवर्षि नारदजी ने  
 अपने मन में इन विचार भूलोक दामी मनुष्यों की ऐसी बुरी दशा देख  
 कर सोचा था कि ऐसा कौन सा उपाय हो सकता है जिसके करने से  
 त्रिदिवज रूप से इनके दुःखों का विनाश हो जावे । उसी समय में यही  
 विचार करते हुए विष्णु लोक में पहुँच गये थे । वहाँ पर भगवान् नारद-  
 यण देव का दर्शन किया था जो सुकल बरते वाले थे और जिनकी चार  
 भुजाएँ थी । नारायण का स्वरूप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला  
 से विभूषित था । उन देवों के देव प्रभु का दर्शन करके नारदजी ने अपना  
 कथन प्रारम्भ किया था । नारदजी ने कहा—मन और वाणी से भी परे  
 स्वरूप वाले, परमेश शक्ति में सुमन्वत तथा आदि, मध्य और अन्त से  
 रहित, बिना गुणों वाले और गुणों की प्राप्ता वाले प्रभो । आपका  
 लिये नमस्कार है ॥३॥

सर्वेषामादिभूताय भक्तानामाशितानिने ।

अ दशास्तोत्र तद्वेदविष्णुनारद प्रत्यभयत ॥५

किमर्थं भागतोऽसित्थ किन्तेमनसिबसंतं ।

कथयस्वमहाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ॥६

पस्यल्लोके जनासर्वे नामाश्लेषसमन्विता ।

नानायोनिसमुत्पन्ना पथ्यन्ते पापकर्मभिः ॥१०

तत्सर्वं ज्ञापयेन्नायं लपामेव तद्दद ।

शौतुमिच्छामि तत्त्वं कृपाप्रस्तियदिने मयि ॥११

वृद्धब्राह्मणरूपेणप्रच्छद्विजमादरात् ॥२३

किमयं भ्रमसे विप्र महीकृत्स्नां सुदुःखितः ।

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां यदि रोचते ॥२४

ब्राह्मणोऽतिदरिद्रोऽहं भिक्षार्थं भ्रमणं मम ।

उपायं यदि जानासि कृपया कथय प्रभो ॥२५

इसके अनन्तर स्तब्ध करके भगवान् श्री सत्य नारायण प्रभु का स्मरण करते हुए अपने घर की घोर गहन करे । ऐसी विधि से इस व्रत एव पूजन के करने पर मनुष्यों की वाञ्छा की सिद्धि निश्चय रूप से हो जाया करती है । विशेष करके इस परम घोर कलियुग में भूतल में दुःखों के विनाश करने का पन्थ कोई भी उपाय ही नहीं है । हे द्विज ! अब मैं भगवान् सत्य नारायण प्रभु की कृपा बतलाता हूँ जिनके धवन करने से मनुष्य कृतकृत्य भर्षात् पूर्णकाम एवं सफल हो जाया करता है । कृपा का यही से आरम्भ होता है—काशीपुर नामक ग्राम में कोई एक परम निर्धन विप्र था । वह विचारा सुना और तृषा से मत्पन्थ ध्याकुल होकर निरन्तर पृथ्वी पर भ्रमण किया करता था । इस प्रकार से मत्पन्थ दुःखिन उम ब्राह्मण को ब्राह्मणों पर विशेष प्यार करने वाले सत्यनारायण भगवान् ने देखकर स्वयं एक वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके उसके समीप में समागत हुए और बहुत ही आदर के साथ उम ब्राह्मण से उन्होंने पूछा था—हे विप्र ! आप मुझे यह तो कृपा करके बतलाइये कि आप इस तरह से मत्पन्थ दुःखित होते हुए किन् प्रयोजन की सिद्धि के लिए सम्पूर्ण भूमि पर भ्रमण किया करते हैं ? मैं यही सब सुनने की इच्छा रखता हूँ । यदि आप ठीक समझते हो तो यह मुझे बतला दीजिये । ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ और बहुत ही मधिक दृष्टि हूँ । मेरा यह समस्त भ्रमण केवल भिक्षा की प्राप्ति के लिये होता है । यदि आप मेरे इस उदर भरण की पोषा के निवारण का कोई उपाय जानते हों तो हे प्रभो ! पाप कृपाकर मुझे यह बतला दीजिये ॥२०-२५॥

- सत्यनारायणो विष्णुर्वाञ्छितार्थफलप्रदः ।  
 तस्यैव द्विजपादून् कुम्भपत्रतमुत्तमम् ।  
 यत्कृत्वा सर्व्व दुःखेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥२६
- विवानञ्च व्रतरयाञ्च विप्रायाऽऽभाष्य यत्नतः ।  
 सत्यनारायणो वृद्धस्तत्रंवाऽन्तरधीयत ॥२७
- ततोऽसौ मनसा विप्रश्चिन्तयामास ईश्वरम् ।  
 व्रतं नारायणेनोक्तं विदिश्वामन्दिर गयी ॥२८
- ततोऽहं तत्करिष्यामि व्रतं मनसि चिन्तितम् ।  
 इति निश्चित्य विप्रोऽसौ रात्रौ निद्रा न लब्धवान् ॥२९
- उत्त. प्रातः समुत्थाय सत्यनारायणव्रतम् ।  
 करिष्येऽहञ्च सद्भक्त्या सिद्धाय भगवद्द्विज ॥३०
- तस्मिन्नेव दिने विप्रः प्रचुरं द्रव्यमाप्तवान् ।  
 तेनैव वन्धुभिः सादृशं सत्यस्य व्रतमाचरन् ॥३१
- सर्व्वं दुःखविनिमुक्तं सर्व्वसम्पत्समन्वितं ।  
 वभूव स द्विजश्च श्लोघ्नतस्याऽऽप्यप्रसादतः ॥३२
- ततः प्रभृति कालञ्च मासि मासि व्रतं कृतम् ॥३३
- एवं नारायणादेतद् व्रतं ज्ञात्वा द्विजोत्तमः ।  
 सर्व्वं पापविनिमुक्तो दुर्लभं मोक्षमाप्तवान् ॥३४
- व्रतभेददयदा विप्रं पृथिव्या सञ्चरिष्यति ।  
 तदं व सर्व्वं दुःखं हि मानवानां विनश्यति ॥३५
- एव नारायणेनोक्तं नारदाय महात्मने ॥३६

उत्त वृद्ध ब्राह्मण वेप वाने प्रभु ने कहा—हे द्विजों में पादूत के समान ! भगवान् सत्यनारायण विष्णु सम्पूर्ण वाञ्छित वषों के फलों के प्रदान करने वाले हैं । उन्हीं के परम उत्तम व्रत एवं भजन को आप करिये जिसके करने से मनुष्य इस संसार में सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाया करता है । श्री भगवान् ने नारद जी से कहा—उन बुभुक्षित विप्र को इस सत्यनारायण प्रभु के व्रत का पूरा विधान अत्यपूर्वक कहकर वह वृद्ध ब्राह्मण के स्वरूप में उपस्थित सत्यनारायण प्रभु वही पर प्रवृत्त

हो गये थे । उनके वही छिप जाने पर इसके पश्चात् उस विप्र ने मन में ईश्वर का चिन्तन किया था कि यह व्रत तो स्वयं नारायण ने ही मुझे बतलाया है—यह समझकर वह मन्दिर में गया था । इसके अनन्तर अपने अपने मनमें विचार किया था कि मैं इस व्रत को करूँगा—ऐसा निश्चय करके उस ब्राह्मण ने रात्रि में निद्रा प्राप्त नहीं की थी अर्थात् व्रत करने के निश्चय करने पर इसी के विगठन करते रहने में रात की नींद बिल्कुल नहीं आई थी । फिर सुबह होते ही वह द्विज । वह उठकर मन में विचारने लगा कि मैं सत्य नारायणभगवान् का व्रत प्रवक्ष्य करूँगा ऐसा संकल्प करके वह सिद्धार्थ को प्राप्त हो गया था । भगवान् सत्य नारायण प्रभु की ऐसी कृपा हुई कि उसी दिन में उस विप्र ने प्रचुर दान प्राप्त कर लिया था । उसी द्रव्य से उसने अपने बन्धुओं के साथ में मिल कर सत्य नारायण का व्रत किया था । इसके करने से वह सभी कष्टों से निमुक्त हो गया था और सब प्रकार की सम्पत्ति में युक्त हो गया था । वह द्विजों में श्रेष्ठ इसी व्रत के प्रभाव से एवं प्रसाद में सर्व सुख सम्पन्न हो गया था । सभी से लेकर सर्वदा प्रत्येक मास में उसने यह व्रत किया था । इस प्रकार से उस द्विज श्रेष्ठ ने इस सत्य नारायण के व्रत का ज्ञान साक्षात् भगवान् नारायण से ही प्राप्त किया था और यह इसे करके समस्त पूर्व कृत पापों से छुटकारा पाकर पूर्णतया विशुद्ध हो गया तथा उसने अन्त में परम दुर्लभ मोक्ष के पद को भी प्राप्त कर लिया था । भगवान् श्री विष्णु ने देवर्षि नारद जी से कहा—हे द्विज ! जिस समय में यह व्रत पृथिवी में संचार प्राप्त कर लेगा उसी समय में भ्रु मण्डल में समस्त परग पीडित मानवों का दुःख पूर्ण रूप से विलुप्त हो जायगा । श्री सूतजी ने कहा—हे महर्षियो ! इस रीति से महान् आत्मा वाले देवर्षि श्री नारद जी से भगवान् नारायण ने इस व्रत के विषय में कहा था । जो कि मैंने आप लोगों के सामने बर्णन कर दिया है ॥२६-३६॥